आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य
और
चरित्र-विकास

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य
और
चरित्र-विकास

[भागलपुर विश्वविद्यालय की पी एच० डी० उपाधि के लिए
सन् १९६३ ई० में स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० बेचन, एम० ए०, पी-एच० डी०
प्राध्यापक हिन्दी-विभाग, मारवाड़ी महाविद्यालय
(भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार)

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली

चिरजीवी श्री चन्द्रशेखर झा 'आज़ाद' को
समर्पित,
जिन्हें मेरी सभी रचनाएं बहुत प्रिय हैं—

—बेचन

प्रथम संस्करण मार्च १९६५

प्रकाशक सन्मार्ग प्रकाशन
१६ यू० बी० बँगलो रोड, दिल्ली ६
मूल्य सोलह रुपए
मुद्रक भारत मुद्रणालय, शाहदरा, दिल्ली-३२

चिरजीवी श्री चन्द्रशेखर झा 'आज़ाद' को
समर्पित,
जिन्हें मेरी सभी रचनाए बहुत प्रिय हैं—

—बेचन

भूमिका

प्रस्तुत शोध-प्रबंध डॉ॰ बैजल के गूढ़ अध्ययन-मनन का परिचायक है। इसमें हिन्दी के कथा-चरित्रों के विकास का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक युग की तात्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में प्रमुख कथाकारों और उनके महत्वपूर्ण कथा-चरित्रों की चर्चा की गयी है।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि आलोच्य विषय पर अब तक इस दृष्टि से शोध नहीं हुआ है, यह क्षेत्र बिलकुल अछूता है, किन्तु हर्ष की बात है कि इस शोध प्रबंध के प्रणयन के बाद इस दिशा में अन्वेषण के नये सीमांत स्थापित हुए हैं।

इस प्रबंध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विषय से संबंधित जो भी सामग्री हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में उपलब्ध है, अध्येता को उसकी पर्याप्त जानकारी है और प्रसंगानुसार उसका उपयोग भी सही ढंग से किया गया है। अध्येता ने बड़ी तत्परता और श्रम के साथ अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है।

चरित्र-रूपायन के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों का विश्लेषण स्पष्ट, विवेचन स्वच्छ और मूल्यांकन निष्पक्ष हुआ है।

लेखक के पास चरित्रों के यथार्थ विकास को समझने की वैज्ञानिक दृष्टि एवं शक्ति है और उसकी भाषा एवं शैली भी ऐसी है जो शोध की प्रचलित पद्धतियों के विभेद को प्रकट करने की शक्ति रखती है। अध्येता ने जिन प्रतिमानों का प्रयोग किया है वे सर्वमान्य हैं, किन्तु इस विषय के अन्वेषण के संदर्भ में इन प्रतिमानों का सफलता से प्रयोग करना उनकी मौलिकता का द्योतक है।

हिन्दी साहित्य में शायद यह पहला ही अवसर होगा जब कोई भी पाठक इस ग्रन्थ को सामने रखकर आधुनिक कथा-साहित्य में प्रयुक्त चरित्रों के क्रम-विकास की स्पष्ट रूपरेखा देख सकेगा।

ऐसे शोध-प्रबंध के प्रणयन के लिए मैं हृदय से लेखक को साधुवाद देता हूँ।

—डॉ॰ माहेश्वरीसिंह 'महेश'
एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰ (लंदन)
प्राध्यापक, स्नातकोत्तर विभाग,
भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
(बिहार)

१।८।६४

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध-प्रबंध पर सन् १९६१ ई० में भागलपुर विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है।

शोध-प्रबंध के विचारणीय विषय 'आधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य' से मतलब है प्रेमचन्द, प्रसाद, गुलेरी प्रभृति कथाकारों की रचनाओं से प्रारम्भ होता हुआ नागार्जुन और रेणु आदि की रचनाओं तक फैला हुआ हिन्दी-कथा साहित्य।[1] आधुनिक शब्द जुड़ने से यह काल और भी संकुचित हो गया है। इसका प्रारम्भ सन् १९१० के आसपास से माना जा सकता है।[2] हालांकि हिन्दी के आलोचक इसकी सीमा १९वीं शताब्दी से निर्धारित करते हैं।[3] इस प्रकार यह इतिहास केवल पचास वर्ष पुराना है।

---

१ "वस्तुतः आधुनिक हिन्दी उपन्यास की परम्परा का सूत्रपात प्रेमचन्द से ही होता है।" हिन्दी गद्य-साहित्य, पृ० ५२

२ (क) कहानी विशेषांक, १९५६ जनवरी, श्रीपतराय पृ० ६

(ख) "आधुनिक हिन्दी-कहानी का उत्थान, वास्तव में, बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हुआ।" डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, हि० क० शि० वि० का वि०, निवेदन, पृ० १

(ग) "ऐसी तिथि मानने का मूल कारण यह है कि १९०० से १९०८ तक आठ वर्षों का समय आधुनिक साहित्य में अराजकता का काल है। इस अराजकता-काल में गद्य साहित्य की विशेष अवनति हुई। गद्य की भाषा एकदम अव्यवस्थित हो गई। व्याकरण की अशुद्धियाँ लगभग प्रत्येक पृष्ठ में होती थीं। बंगला, मराठी, संस्कृत और अंग्रेजी पुस्तकों पर पुस्तकें अनुवादित हो रही थीं। मौलिक रचनाओं का अभाव था। गद्य की जो नई भाषा बनने जा रही थी, उसके लिए कोई आदर्श हमारे सामने न था। अराजकता-काल के पश्चात् साहित्यिक व्यवस्था का काल (१९०८-१९१६) आता है।"

—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १९

३ (क) "हिन्दी में आधुनिक ढंग से उपन्यास का लिखना भारतेन्दु-युग से ही प्रारम्भ हो गया था।" —हिन्दी साहित्य, पृ० ४१५

(ख) "आधुनिक काल का प्रारम्भ १८४७ ई० से होता है।

—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १५

(ग) "हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग सन् १८५० ई० से प्रारम्भ होता है।" आलोचना (इतिहास, अंक), पृ० ७१

पर इस थोड़े-से समय में ही हिन्दी कथा-साहित्य ने जो प्रगति की वह अद्वितीय है—कम-से-कम भारतीय साहित्य में। विश्व के आधुनिक कथा-साहित्य का इतिहास भी पुराना नहीं है पर हिन्दी का कथा-साहित्य तो बिलकुल ही नया है[3], आधुनिक। डॉ० धर्मवीर भारती का मत है—"हिन्दी का आधुनिक युग लगभग सौ वर्षों का है।"[4] हिन्दी कथा साहित्य का यह प्रथम चरण १९१० से १९३० तक समान गति से चलता रहा। १९३० से १९४५ तक कथा-साहित्य का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है। इस दौरान में युद्ध आया जिसने हमारे कथा-साहित्य को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया कम-से कम मानसिक दृष्टि से इसका गहरा प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ा। जैनेन्द्रकुमार भगवती-चरण वर्मा अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, राहुल चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ये हैं युद्ध पूर्व की हमारी बड़ी प्रतिमाएं, हिन्दी कथा-साहित्य को इनकी बड़ी देन है। पर अत्यन्त दुःख के साथ स्वीकारना पड़ता है कि १९४५ तक पहुंचते-पहुंचते जैसे इनकी रचना-शक्ति को किसीने हर लिया। इस बीच ऐसा लगा कि कुछ दिनों के लिए हिन्दी-कथा-साहित्य में एक गत्यवरोध आ गया। किन्तु गत्यवरोध ज्यादा दिनों तक नहीं रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अर्थात् सन् १९५० ई० के लगभग हिन्दी कथा-साहित्य ने नया मोड़ भी लिया जो सर्वथा नया न होते हुए भी नवीनता रखता है।[5] वह है हमारे देहातों और अंचलों में जाकर वहाँ के सच्चे स्वाभाविक निश्छल चित्र उपस्थित करना तथा आजादी के बाद के नव-निर्माण की प्रचेष्टा को भी चित्रित करना। इसके लिए नागार्जुन रेणु मार्कण्डेय कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह शैलेश मटियानी ओंकारनाथ श्रीवास्तव केशवप्रसाद मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द्र द्वारा चित्रित यथार्थ संघर्षमय जीवन चित्रण को तिलांजलि देकर मनोवैज्ञानिक कथालोक के क्षेत्र में अज्ञेय एवं जोशी प्रभृति लेखकों के द्वारा जो कथित निराशात्मक प्रयोग हुए थे, उनने आशा वादी मोड़ लिए और इन कथाकारों की नयी कृतियों ने चरित्र-सृष्टि के द्वारा नवीन विश्वास की परम्परा को आगे बढ़ाया। नवीन ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के कारण कथा साहित्य में रेल तार इंजन एटम बम, राकेट जैसी बातों को भी संरक्षण मिलने लगा। साथ ही समुद्र क्षेत्रीय विशेषताएं, टेस्ट ट्यूब बेबीज यौन परिवर्तन इत्यादि की बातें भी कथा साहित्य में प्रवेश करने लगी हैं।[8] राष्ट्रीय नव-निर्माण बड़ी टक्करों और दुमंजिलों की नई जगमगाहट कथाकारों को नई प्रेरणा प्रदान कर रही है।[9]

४ "हिन्दी में आधुनिक कहानी की परम्परा का सूत्रपात और विकास वस्तुतः प्रसाद की कहानी 'ग्राम' और प्रेमचन्द की कहानी 'पंच परमेश्वर' से होता है।"
—हिन्दी गद्य साहित्य, पृ० ८०

५ आलोचना, अंक ८, साहित्य में गतिरोध पृ० २

६. कहानी विशेषांक १९५६ पृ० १०

७ बलचनमा, मैला आंचल परती परिकथा, दुखमोचन

८ [illegible] का पंछी [illegible]

९ आलोचना (१४) पृ० २१

कहने का अर्थ यह कि हमारे कथा चरित्रों में आज विस्तार के साथ गहराई भी मिलने लगी है।"[१] इसलिए इस प्रबंध में विषय की सीमा (आधुनिकता) का ध्यान रखते हुए प्रेमचन्द के पूर्व से प्रारम्भ करते हुए आज तक की प्रमुख रचनाओं के चरित्र-विकास की व्याख्या की गई है। हिन्दी कथा-चरित्रों की क्या महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेख्य उपलब्धि हुई है, इसका स्पष्ट अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसीलिए अनेकानेक ख्याति प्राप्त कथाकारों का सम्यक् अध्ययन नहीं किया गया है। क्योंकि कथा साहित्य का विवरणात्मक इतिहास प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य नहीं है।

मुझे जहाँ तक ज्ञात है कि इस क्षेत्र में कोई शोध-कार्य शायद अब तक हिन्दी में नहीं हो पाया है। संभवतः समस्त भारतीय भाषाओं में भी ऐसी पुस्तकों की संख्या ज्यादा नहीं है। हिन्दी में केवल चरित्र-विकास से संबंधित बहुत कम साहित्य प्राप्त है। पाश्चात्य साहित्य में ऐसा अध्ययन हुआ अवश्य है पर चरित्र पात्र या चरित्र विकास विषयक बहुत कम स्वतंत्र पुस्तकें अब तक प्रकाशित हैं। हिन्दी में तो इसका नितांत अभाव है ही, तथापि इस शोध-प्रबंध के लेखन-शिल्प में मुझे ई० एम० फोरस्टर की पुस्तक 'दी आसपेक्ट ऑफ दी नावेल' वाल्टर एलन की पुस्तक 'दी इंगलिश नावेल', डॉ० देवराज उपाध्याय की पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी-कथा-साहित्य और मनोविज्ञान', एवं डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल की पुस्तक 'हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास' आदि से बड़ी सहायता मिली है।

इस अध्ययन में हिन्दी के कथा चरित्रों का यथातथ्य वास्तविक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण करने का ही उद्देश्य रहा है, अतएव उपन्यासकारों अथवा आलोचकों के पूर्वाग्रहों से बचने का प्रयास किया गया है और पात्रों के मूल्यांकन की समस्याओं एवं तत्संबंधी आलोचनात्मक विचारों को ज्यादातर जान-बूझकर टाला गया है। अन्ततः यह एक शोध प्रबंध है अतएव इसकी निष्ठा का निर्वाह आवश्यक है।

इस प्रबंध का लेखन समाप्त हो जाने पर दिसम्बर १९६१ में डॉ० रणवीर रांग्रा का एक शोध-ग्रंथ 'हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास' प्रकाशित हुआ है विषय-निर्वाह की दृष्टि से मेरे शोध-ग्रंथ से अवश्य ही यह भिन्न कोटि का ग्रंथ है, जिसका विस्तार भी यशपाल तक ही है। डॉ रांग्रा ने उपन्यासकारों द्वारा चरित्र-चित्रण की अपनायी गयी विविध प्रणालियों का विश्लेषण किया है, जबकि मेरा उद्देश्य मात्र चरित्रों का विकास प्रस्तुत करते हुए उल्लेख्य चरित्रों पर प्रकाश डालना है। मैंने इसके लिए उपन्यास और कहानी दोनों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। केवल चरित्र-चित्रण का अध्ययन करना मेरा उद्देश्य नहीं है। चरित्र-चित्रण एक अलग चीज है चरित्र-विकास अलग। चरित्र-चित्रण के द्वारा चरित्रों की व्याख्या की जाती है, जिसका सम्बन्ध सम्बन्धित कृतियों से होता है। चरित्र-विकास दिखलाने में यह स्पष्ट किया जाता है कि अमुक प्रकार के विकास अमुक युग में क्यों हुए और इन चरित्रों से कथा-साहित्य में क्या मोड़ आये ?

---

१० कथा के तत्त्व, पृ० ७०

चरित्र-विकास की रेखाओं को अधिक स्पष्टता से समझने के उद्देश्य से इस प्रबंध में समस्त संस्कृत एवं हिन्दी वाङ्मय को ध्यान में रखते हुए चरित्र विकास का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। मैंने इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर संबंधी हिन्दी एवं संस्कृत में प्रचलित चरित्रों के मूल्यांकन की शास्त्रीय विधियों का भी परिचय दिया है।

प्रस्तुत प्रबंध में प्रमुख कृतियों से उभरने वाले प्रमुख चरित्रों को खोजा भी गया है। जिन प्रमुख कहानियों और चरित्रों को लिया गया है वे कुछ नमूने हैं। इस प्रकार के और भी प्रमुख चरित्र हो सकते हैं, किन्तु जैसा कि मैंने प्रारम्भ में ही निवेदन किया है कि चरित्र-चित्रण करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैंने चरित्र विकास को समझने का प्रयत्न किया है। नमूने के तौर पर अविकसित कुछ चरित्रों की ओर इंगित कर देना भी मैंने अपना कर्तव्य समझा है, किन्तु प्रतिनिधि चरित्रों के अन्तर्गत किसी ऐतिहासिक उपन्यास के चरित्रों को नहीं रखा गया है क्योंकि ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में अधिकांश कार्य परिमाणमूलक है। इन ऐतिहासिक चरित्रों पर समकालीन जीवन-संबंधों की प्रतिक्रिया देखना भी संभव नहीं है। अतएव इनका व्यापक अध्ययन नहीं किया गया है।

इस अध्ययन में हिन्दी के अधिकांश कथाकारों एवं आलोचकों का सहयोग मुझे मिला है। सर्व श्री डॉ० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, नागार्जुन, अमृतराय, फणीश्वरनाथ 'रेणु', डॉ० देवराज, शिवदानसिंह चौहान, अश्क, यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, डॉ० माहेश्वरीसिंह 'महेश', नलिन विलोचन शर्मा, डॉ० रामखेलावन पांडेय, डॉ० शिवशंकर शर्मा आदि ने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहयोग एवं सुझाव देकर मेरी धारणाओं को पुष्ट किया है जो इस प्रबंध के रूप में प्रस्तुत है।

मैंने इलाहाबाद में आयोजित (अखिल भारतीय) साहित्यकार सम्मेलन के आमंत्रण पर उपन्यास एवं कहानी गोष्ठी में भी भाग लिया था। उस अनुभव और व्यापक चर्चा से भी मेरे अनुसंधान को पर्याप्त शक्ति और दृष्टि मिली। इसी उद्देश्य से मैंने लखनऊ इलाहाबाद बनारस पटना आदि स्थानों की कई बार यात्रा करते हुए विद्वानों का निर्देशन प्राप्त किया। मेरे लिए हर्ष और संतोष का विषय यह है कि सर्वत्र मेरे विचारों की संपुष्टि होती गई।

जिस विषय के शोध के हेतु इस प्रबंध की रचना की गई है उसका महत्व आज के युग में काफी बढ़ गया है। आधुनिक आलोचकों का मत है कि किसी भी उपन्यासकार का महत्व-मूल्यांकन उसके पात्रों के चित्रणों के द्वारा ही संभव है। इसीलिए वाल्टर एलन ने अपनी पुस्तक दी इंगलिश नावेल में लिखा है— "देयर इज नो ग्रेट नावेल विदाउट ग्रेट कैरेक्टर।"[११]

शोध प्रबंध को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत विषय का प्रारम्भ करते हुए कथा, उपन्यास, कहानी, चरित्र, शील आदि के मूलतत्व एवं उनके उद्भव और विकास का विवेचन हुआ है। द्वितीय अध्याय में

---

११ दी इंगलिश नावेल पृ० १२

चरित्रों के विभिन्न भेदों-उपभेदों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय को आसानी से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पूर्वार्ध में भारतीय मत का और उत्तरार्ध में पाश्चात्य मत का उल्लेख है। तृतीय चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में भारतेन्दु-युग के पूर्व से भी प्रारम्भ करते हुए नवीनतम कथा चरित्रों का क्रम विकास प्रस्तुत है। षष्ठ अध्याय में प्रतिनिधि तथा अविकसित चरित्रों की व्याख्या की गई है। षष्ठ अध्याय के बाद उपसंहार की योजना की गई है जिसमें सम्पूर्ण शोध प्रबंध का सार है। परिशिष्ट के अन्तर्गत सर्वप्रथम चरित्रों की उपलब्धि, अभाव और सम्भावनाओं एवं नारी चरित्रों की योजना का सांगोपांग विवेचन है। परिशिष्ट में ही कतिपय आलोचकों के विचार, पत्र, प्रश्नावली और उपलब्धि स्थान आदि का संकलन किया गया है।

मेरा सौभाग्य है कि हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक डॉ० नगेन्द्र प्रो० विश्वनाथ मिश्र डॉ० माहेश्वरीसिंह 'महेश' इस शोध-प्रबंध के परीक्षक थे। इन परीक्षकों ने मुक्तकंठ से मेरे इस प्रयास की सराहना की जिससे मुझे पर्याप्त उत्साह मिला। उन सभी परीक्षकों का मैं आभारी हूँ।

अंत में मैं विश्वविद्यालय के उच्चाधिकारियों अपने अनेक शुभचिन्तकों एवं अपने शिष्यों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनके सहयोग एवं उत्साह से ही इस प्रबंध का लेखन संभव हो सका। इन व्यक्तियों में मैं सबसे अधिक आभारी हूँ मित्रवर श्री यदुनन्दनप्रसादजी का जिन्होंने शोध प्रबंध के टंकन की समस्या सुलझाई और अपनी कारीगरी से शोध प्रबंध को सुशोभित कर दिया। मुझे दुख है कि मैं अपने मित्र को इसके लिए अब तक कोई प्रतिदान न दे सका। इन कार्यों के लिए मित्रवर श्री योगेश्वरसिंहजी को भी मैं धन्यवाद देना नहीं भूल सकता। शोध-प्रबंध के प्रकाशन के लिए मैं भाई प्रेमनाथजी को बहुत धन्यवाद देता हूँ जिनके बार-बार आग्रह करने पर भी मैं समय पर पुस्तक की पांडुलिपि इन्हें नहीं दे सका। अन्यथा इस पुस्तक का प्रकाशन बहुत दिनों पहले ही हो गया होता।

—लेखक

चरित्र विकास की रेखाओं को अधिक स्पष्टता से समझने के उद्देश्य से इस प्रबंध में समस्त संस्कृत एवं हिन्दी वाङ्मय को ध्यान में रखते हुए चरित्र-विकास का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। मैंने इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर अंग्रेजी हिन्दी एवं संस्कृत में प्रचलित चरित्रों के मूल्यांकन की शास्त्रीय विधियों का भी परिचय दिया है।

प्रस्तुत प्रबंध में प्रमुख कृतियों में उभरने वाले प्रमुख चरित्रों को खोजा भी गया है जिन प्रमुख कहानियों और चरित्रों को लिया गया है वे कुछ नमूने हैं इस प्रकार के और भी प्रमुख चरित्र हो सकते हैं, किन्तु जैसा कि मैंने प्रारम्भ में ही निवेदन किया है कि चरित्र-चित्रण करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैंने चरित्र विकास को समझने का प्रयत्न किया है। नमूने के तौर पर अविकसित कुछ चरित्रों की ओर इंगित कर देना भी मैंने अपना कर्तव्य समझा है, किन्तु प्रतिनिधि चरित्रों के अन्तर्गत किसी ऐतिहासिक उपन्यास के चरित्रों को नहीं रखा गया है क्योंकि ऐतिहासिक उपन्यासों के रूप में अधिकांश कार्य परिमाणमूलक है। इन ऐतिहासिक चरित्रों पर समकालीन जीवन-संबंधों की प्रतिक्रिया देखना भी संभव नहीं है। अतएव इनका व्यापक अध्ययन नहीं किया गया है।

इस अध्ययन में हिन्दी के अधिकांश कथाकारों एवं आलोचकों का सहयोग मुझे मिला है। सर्व श्री डॉ॰ रामविलास शर्मा प्रकाशचन्द्र गुप्त नागार्जुन, अमृतराय फणीश्वरनाथ 'रेणु' डॉ॰ देवराज, शिवदानसिंह चौहान अश्क, यशपाल भैरवप्रसाद गुप्त डॉ॰ माहेश्वरीसिंह 'महेश' नलिन विलोचन शर्मा, डॉ॰ रामखेलावन पांडेय, डॉ॰ शिवशंकर वर्मा आदि ने प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहयोग एवं सुझाव देकर मेरी धारणाओं को पुष्ट किया है, जो इस प्रबंध के रूप में प्रस्तुत है।

मैंने इलाहाबाद में आयोजित (अखिल भारतीय) साहित्यकार सम्मेलन के आमंत्रण पर उपन्यास एवं कहानी गोष्ठी में भी भाग लिया था। उस अनुभव और व्यापक चर्चा से भी मेरे अनुसंधान को पर्याप्त गति और पुष्टि मिली। इसी उद्देश्य से मैंने लखनऊ इलाहाबाद बनारस, पटना आदि स्थानों की कई बार यात्रा करते हुए विद्वानों का निर्देशन प्राप्त किया। मेरे लिए हर्ष और संतोष का विषय यह है कि सर्वत्र मेरे विचारों की संपुष्टि होती गई।

जिस विषय के शोध के हेतु इस प्रबंध की रचना की गई है उसका महत्व आज के युग में काफी बढ़ गया है। आधुनिक आलोचकों का मत है कि किसी भी उपन्यासकार का महत्व-मूल्यांकन उसके पात्रों के चित्रणों के द्वारा ही संभव है। इसीलिए वाल्टर एलन ने अपनी पुस्तक 'दी इंगलिश नावेल' में लिखा है—"देयर इज नो ग्रेट नावेल विदाउट ग्रेट कैरेक्टर।"[11]

शोध प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत विषय का प्रारम्भ करते हुए कथा उपन्यास कहानी, चरित्र शील आदि के मूलतत्व एवं उनके उद्भव और विकास का विश्लेषण हुआ है। द्वितीय अध्याय में

---

११ दी इंगलिश नावेल पृ॰ १५

चरित्रों के विभिन्न भेदों-उपभेदों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय को आसानी से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पूर्वार्ध में भारतीय मत का और उत्तरार्ध में पाश्चात्य मत का उल्लेख है। तृतीय चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में भारतेन्दु-युग के पूर्व से भी प्रारम्भ करते हुए नवीनतम कथा चरित्रों का क्रम विकास प्रस्तुत है। षष्ठ अध्याय में प्रतिनिधि तथा अविकसित चरित्रों की व्याख्या की गई है। षष्ठ अध्याय के बाद उपसंहार की योजना की गई है, जिसमें सम्पूर्ण शोध प्रबंध का सार है। परिशिष्ट के अन्तर्गत सर्वप्रथम चरित्रों की उपलब्धि अभाव और संभावनाओं एवं भावी चरित्रों की योजना का सांगोपांग विवेचन है। परिशिष्ट में ही कतिपय आलोचकों के विचार, पत्र, प्रश्नावली और उपलब्धि स्थान आदि का संकलन किया गया है।

मेरा सौभाग्य है कि हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचक डॉ० नगेन्द्र, प्रो० विश्वनाथ मिश्र डॉ० माहेश्वरीसिंह 'महेश' इस शोध-प्रबंध के परीक्षक थे। इन परीक्षकों ने मुक्तकंठ से मेरे इस प्रयास की सराहना की जिससे मुझे पर्याप्त उत्साह मिला। उन सभी परीक्षकों का मैं आभारी हूँ।

अंत में मैं विश्वविद्यालय के उच्चाधिकारियों अपने अनेक शुभचिन्तकों एवं अपने शिष्यों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनके सहयोग एवं उत्साह से ही इस प्रबंध का लेखन संभव हो सका। इन व्यक्तियों में मैं सबसे अधिक आभारी हूँ मित्रवर श्री गजवदनप्रसादजी का जिन्होंने शोध-प्रबंध के टंकन की समस्या सुलझाई और अपनी कारीगरी से शोध प्रबंध को सुशोभित कर दिया। मुझे दुख है कि मैं अपने मित्र को इसके लिए अब तक कोई प्रतिदान न दे सका। इन कार्यों के लिए मित्रवर श्री योगेश्वरसिंहजी को भी मैं धन्यवाद देना नहीं भूल सकता। शोध-प्रबंध के प्रकाशन के लिए मैं भाई प्रेमनाथजी को बहुत धन्यवाद देता हूँ जिनके बार-बार आग्रह करने पर भी मैं समय पर पुस्तक की पांडुलिपि इन्हें नहीं दे सका। अन्यथा इस पुस्तक का प्रकाशन बहुत दिनों पहले ही हो गया होता।

—बेचन

शब्दों के संक्षिप्त रूप

पृ०	पृष्ठ
डॉ०	डॉक्टर
प्रो०	प्रोफेसर
प्र०	प्रकाश
हि० क०	हिन्दी कहानी
शिल्पविधि	हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास
आ० हि० क० सा० और मनो०	आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान
हि० सा०	हिन्दी साहित्य
श्रीवास्तव	डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव
आ०	आचार्य
आ० हि० सा० का वि०	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास
हि० ग० सा०	हिन्दी गद्य साहित्य
दीक्षित	डाक्टर त्रिलोकीनारायण दीक्षित
वाजपेयी	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
ऋ० वे०	ऋग्वेद
धवन	डा० सुषमा धवन
भट्ट	उदयशंकर भट्ट
जोशी	इलाचन्द्र जोशी
वर्मा	भगवतीचरण वर्मा
वर्मा	वृन्दावनलाल वर्मा
शर्मा	डॉ० रामविलास शर्मा
आ० हि० सा०	आधुनिक हिन्दी साहित्य
शेखर	शेखर एक जीवनी
हि० क० शि० का वि०	हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास
पं०	पंडित
ले०	लेखक
सं०	सम्पादक
स० ही०	सच्चिदानंद हीरानंद

अनु०	अनुवादक
सं०	संस्करण
वि०	विक्रमी
लि०	लिमिटेड
ई०	ईस्वी
मु०	मुद्रक
तृ०	तृतीय
द्वि०	द्वितीय
सं०	सम्पाद्
आदिकाल	हिन्दी साहित्य का आदिकाल

विषय-सूची

अध्याय १

विषय-प्रवेश

मनुष्य का प्रारम्भिक साहित्य कथा-प्रधान है। उस समय कथा किसी घटना का रोचक वर्णन मात्र नहीं थी। वह मात्र मनोरंजन का साधन भी नहीं थी। बल्कि मानव-जीवन के दैनिक व्यवहार में दृष्टान्त और उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती थी। कथा की यह प्रवृत्ति अत्यधिक लोकप्रिय थी। छोटे बच्चे अपनी दादी-नानी से, प्रौढ़ और युवक कथावाचकों से कहानियां सुना करते थे। राजसभाओं में कथा सुनाकर मनोरंजन करने वाले लोगों को खासकर नियुक्त किया जाता था। भारत में ये विदूषक और ऐंग्लो-सेक्सन राजसभाओं में 'ग्लीमेन' के नाम से मशहूर थे। ये घूम-घूमकर राजसभाओं की कथा आम जनता को भी सुनाया करते थे।[1]

नाटक, उपन्यास कहानी और प्रबन्ध काव्य के रूप में हमारा साहित्य भी कथा साहित्य ही है।

परिणामयुक्त घटना का वर्णन ही कथा है जिसमें मनुष्य जीव, या जड़ पदार्थ के सम्बन्ध की किसी विशेष अवस्था या अवस्थाओं का आदि से अन्त तक वर्णन हो। ये वर्णन यदि सत्य पर आधारित हों तो ऐतिहासिक काव्य (कथा नाटक प्रबन्ध काव्य) या इतिहास बनता है। यदि काल्पनिक हों तो कथा कहानी आख्यायिका, छोटी कहानी उपन्यास नाटक या प्रबन्ध काव्य की रचना होती है।

निष्कर्ष यह कि "कथा साहित्य हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की समस्याओं को परस्पर समाज सम्बन्धों में पड़कर जीवन बिताने के माध्यम से हल करने का एक विशेष प्रकार का कलात्मक रूप-विधान है।"[2]

कथा का अर्थ और तत्त्व

साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ ने कहा है कि "छन्द के बन्धन से जो रचना मुक्त हो उसे गद्य कहते हैं।"[3]

'भारतीय ज्ञान कोष' अग्निपुराण में कहा गया है—"अपद पदसंताने गद्यं

---

१ समीक्षा शास्त्र, पृ० १२१
२ प्रगतिवाद, पृ० १२१
३ साहित्य दर्पण पृ० २२६

तदपि गद्यते"—अर्थात् पदरहित पदसमूह को गद्य कहते हैं।[४]

आचार्य दंडी ने अपने 'काव्यादर्श' में ऐसी गद्य-रचनाओं का वर्गीकरण करते हुए कहा कि चरणरहित पदसमूह का नाम गद्य है। इसके आख्यायिका तथा कथा—ये दो भेद हैं।[५]

आख्यायिका का लक्षण बताते हुए साहित्यदर्पणकार ने कहा कि कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धिनी होती है। धर्म अर्थ काम मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है।[६]

आचार्य दंडी के मतानुसार कादंबरी, हर्षचरित दशकुमारचरित पंचतंत्र आदि सभी कथा और आख्यायिका दो विभिन्न नामों से पुकारी जाती हुई भी वास्तव में एक ही जाति के अन्तर्गत आती हैं।

अभीप्सित अर्थ की सिद्धि के लिए विद्वान् किसी भी घटना से अपने काव्य या कथा को प्रारम्भ करने का अधिकार रखते हैं। परन्तु कथा और आख्यायिका नाम से प्रचलित ग्रंथों को देखकर यदि विचार किया जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि कथा की कहानी कल्पित हुआ करती थी और आख्यायिका की ऐतिहासिक। इस दृष्टि से कादम्बरी कथा है और हर्षचरित आख्यायिका।[७]

आधुनिक युग में संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व से कथा का प्रारम्भ होता है।

उपदेश वाली कथाओं में दो व्यापक तत्त्व होते हैं—घटना और उद्देश्य।

शेष प्रकार की कथाओं में नायक-नायिका, उद्देश्य, घटनाचक्र, नायक-नायिका पर विपत्ति, सम्मिलन या उद्देश्य की सिद्धि—ये पाँच तत्त्व होते हैं।

इन सब कथाओं में उद्देश्य की सिद्धि के लिए नायक या नायिका को देवी-देवताओं, परियों अथवा अन्य शक्तियों की सहायता प्राप्त होती है।

कुछ आचार्यों का मत है कि मनुष्य जब वास्तविक संसार में गुण का आदर नहीं देखता तो कथा के कल्पित संसार में उन गुणों का आदर कराकर, उसे उचित फल दिलाकर अपनी मनस्तुष्टि कर लेता है। यह मनस्तुष्टि वास्तविक संसार से उत्कर हो या न हो, पर वस्तुतः मनुष्य की यह एक उदात्त वृत्ति होती है कि वह उचित का उचित के साथ संयोग देखने के लिए लालायित और उत्कंठित रहता है। इसी उचित उत्कंठा को तृप्त करने का प्रयास ही कथा है।

कथा के साथ स्मृति का घना सम्बन्ध होता है। इसीलिए कथा को प्रारम्भ करने की प्राचमिक शैली में 'एक था राजा' जैसी अभिव्यक्ति का परिचय मिलता है।[९]

---

४ अग्निपुराण का काव्य शास्त्रीय भाग, पृ० २६

५. हिन्दी काव्यादर्श पृ० २२

६ साहित्य दर्पण, पृ० २१५

७ हिन्दी काव्यादर्श पृ० १८

८. आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ५९

९. कुछ विचार, पृ० १५, श्री हंसराज भाटिया पृ० ११

कथा का उद्भव और विकास

अपनी-अपनी प्रभावोत्पादक स्मृतियों को सुनाने में ही पहली कहानी की रचना हुई होगी, परिणामतः उत्सुकता और कौतूहल के कारण मानव ने अपनी खोजवृत्ति के द्वारा जिन घटनाओं का, तथ्यों का विस्तार किया, वही समय पाकर कथा और कहानी बन गई।

सम्भवतः प्रथम मानव ने जब पहली बार बोलना शुरू किया, अपनी ज्ञान की आँखें खोलीं और सूरज के जगमगाते प्रकाश में सृष्टि के विराट, अद्भुत दृश्य को लोभ से देखा और उसे अपने मनोमंदिर की चित्रशाला में संजोकर रखा तभी, आश्चर्यमय सृष्टि के उन प्रथम दिनों में ही हजारों-लाखों कहानियों का सृजन हो चुका होगा।[10]

इसके बाद डार्विन के विचारानुसार उसने अपने आसपास जो कुछ देखा उसकी नकल उतारने लगा—वृक्ष के तनों और खुरदरे पत्थरों पर चित्र बनाने लगा। इस बीच उसकी वाक्-शक्ति का और भी विकास हुआ और कहानी गीतों के पालने में झूलने लगी।

कहानी के विकास के उस प्रथम युग में रात को बच्चे घर के आँगन में खेलते थे या बूढ़े आग तापते थे और जंगली जीव-जन्तुओं की कहानी सुनते-सुनाते थे।[11]

संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद का 'श्रुति' नाम भी कथा-साहित्य के इस तथ्य की पुष्टि करता है कि एक से दूसरे ने सुनकर ही कथा या वर्णन के रूप में उसकी रक्षा की। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर वेद को कहानियों का मूल स्रोत मानना उचित जान पड़ता है। वेद में आई हुई कहानियों का पुराणों में कुछ रूपान्तर हो गया है। रामायण तथा महाभारत में इसके कई अंशों में और भी परिवर्तन दीख पड़ता है। परन्तु कथानक का मूल एक ही है।[12]

बौद्ध तथा जैन साहित्यों में भी इन कहानियों के बीज विद्यमान हैं।

पर छोटी-छोटी कथाओं का कहीं-कहीं केवल बीज मात्र होता है। इनका पूर्ण विकास आगे के आख्यान-ग्रंथों में मिलता है। इस तरह संस्कृत के कितने ही आख्यान और आख्यायिकाएँ ऋग्वेद संहिता से बीज रूप में प्राप्त होकर उपनिषदों, निरुक्त बृहद् देवता, कात्यायन सर्वानुक्रमणी और पुराणों आदि से होती हुई अपने आख्यान रूप में विकसित हुई हैं जैसे इक्ष्वाकु नरेश राजा हरिश्चन्द्र तथा पुरूरवा और उर्वशी की कथाएँ।[13]

यद्यपि वैदिक साहित्य में गद्य-पद्य में लिखी कहानियों की कमी नहीं है, पर

---

१० कहानी की कहानी (सुदर्शन)

११ कहानी की कहानी (सुदर्शन)

१२ वैदिक कहानियाँ, पृ० ७

१३ हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० ८

अलंकृत गद्य काव्य का विकास जिसका प्रधान उद्देश्य रस-सृष्टि है, निश्चित रूप से गुप्त सम्राटों की छत्रछाया में ही हुआ।

परन्तु, यह भी निश्चित है कि गद्य साहित्य को आधुनिक रूप प्राप्त होने में कई शताब्दियाँ लगी होंगी। सौभाग्य से हमें कुछ ऐसे प्रमाण प्राप्त हैं जिनसे अलंकृत गद्य के प्राचीन अस्तित्व में कोई सन्देह नहीं रह जाता। गिरनार में महाक्षत्रप रुद्रदामा का सुप्रसिद्ध लेख निःसन्दिग्ध रूप से प्रमाणित करता है कि सन् १५० ई० के पूर्व संस्कृत में सुन्दर गद्यकाव्य लिखे जाते थे। यह सारा लेख गद्य काव्य का एक सुन्दर नमूना है। सम्राट् समुद्रगुप्त ने प्रयाग के स्थान पर हरिषेण कवि द्वारा रचित जो प्रशस्ति खुदवायी थी वह सुन्दर गद्य काव्य का एक दूसरा नमूना है। हरिषेण ने इस प्रशस्ति को संभवतः ३५० ई० में लिखा होगा। इसमें गद्य और पद्य दोनों का समावेश है और काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। सुबन्धु और बाण ने जिस तरह के गद्यों में अपने रोमांस लिखे हैं, यह गद्य भी उसी जाति का है। इससे यह निश्चित रूप से प्रमाणित होता है कि इस रचना के पहले भी समृद्ध गद्य काव्य का अस्तित्व था।[१४]

किसी-किसी यूरोपियन पंडित की धारणा है कि सारे संसार में भारतवर्ष से ही कहानियाँ गई हैं। इस तरह कथा को साहित्य का एक सबल रूप माना जाता है। संस्कृत साहित्य में कथा की आरम्भ ही समृद्ध परम्परा है और उसकी व्याख्या भी कई एक मतों द्वारा हुई है।

वात्स्यायन ने काम सूत्र में जिन ६४ कलाओं के नाम गिनाये हैं, उनमें आख्यान आख्यायिका और कथा आदि भी हैं।

भामह ने भी अपने काव्यालंकार में कथा का लक्षण बताया है। उनका निष्कर्ष है कि कथा में वक्त्र और अपवक्त्र छन्द नहीं होते उच्छ्वासों में इसे विभाजित नहीं करते संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश में इसे कहा जा सकता स्वयं नायक इसमें अपना चरित्र नहीं कहता वरन् किन्हीं दो व्यक्तियों के वार्तालाप रूप में यह कही जाती है।[१५]

आचार्य दंडी ने कथा और आख्यायिका के भेद को नहीं माना। उन्होंने इनको गद्य के दो स्वतंत्र रूप मानते हुए भी एक ही प्रकार की रचना माना।

उन्होंने कहा कि कथा नायक कहे या कोई दूसरा व्यक्ति, अध्याय विभाजित हो अथवा नहीं, बीच में वक्त्र, अपवक्त्र छन्द आवें या नहीं इन सबसे कोई अन्तर नहीं होता।[१६]

तत्कालीन गद्य और पद्य कथाओं में चरित्रों की कथा अथवा चरित्र-परिचय और वंश-परिचय को ही प्रधानता प्राप्त थी। उसमें केवल विषय की ही प्रधानता नहीं थी। हाँ संवाद या कथोपकथन को अवश्य आंशिक प्रधानता मिल चुकी थी।[१७]

---

१४ आधुनिक हिन्दी-साहित्य (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी), पृ० २१
१५. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन पृ० १४
१६. हिन्दी काव्यादर्श पृ० १७
१७ साहित्यदर्पण, पृ० १२७

आगे चलकर रुद्रट् ने भी इस विषय पर अपना मत देते हुए "कथा के प्रारम्भ में देवता और गुरु को नमस्कार, अपने तथा अपने कुल का परिचय देकर कथा का उद्देश्य कथन, प्रारम्भिक कथान्तर द्वारा प्रधान कहानी का आभास और सम्पूर्ण शृंगार का सम्यक विन्यास करते हुए कथा जाने को अभीष्ट बतलाया है।"[18]

बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र ने कथा का विश्लेषण करते हुए कहा कि "कथा गद्य पद्य, संस्कृत प्राकृत अथवा किसी भी भाषा में लिखी जा सकती है तथा उसका नायक धीर, शान्त होता है।' उन्होंने बृहत कथा को लम्भों (अध्यायों) में विभक्त कहा है। ऐसा कहकर उन्होंने कथा में गद्य को कथा का प्राण मान लिया।"[19]

चौदहवीं शताब्दी के संस्कृत समीक्षक कविराज विश्वनाथ ने कथा की व्याख्या करते हुए लिखा—"कथा में सरस वस्तु गद्य के द्वारा ही बनती है। इसमें कहीं कहीं आर्या तथा कहीं वक्त्र और अपवक्त्र छन्द होते हैं। आरम्भ में पद्यमय नमस्कार और खलादिकों का चरित्र निबद्ध होता है।"[20]

कादम्बरी जैसी अलंकृत महाकथा के रचयिता बाणभट्ट ने अपने श्लोकों में कहा है—"नवागता मधु की भाँति कथा अपने आकर्षक, मधुर आलाप और कोमल विलास, दीपक और उपमा अलंकारों से युक्त नवीन पदार्थ द्वारा विरचित निरन्तर श्लेष के कारण सघन उज्ज्वल दीपक सदृश उपयोगी, चम्पा की कलियों से गुंथी और बीच-बीच में मल्लिका पुष्पों से सुशोभित माला के समान किसे आकर्षित नहीं करती।"[21]

न्याय दर्शन के मत में पदार्थ के यथार्थ निश्चय किंवा प्रतिपक्ष के पराजय प्रयोजक वाक्य का ही नाम कथा है।[22]

किसी-किसी मत में वादी प्रतिवादी के पक्ष और प्रतिपक्ष का परिग्रह ही कथा है। (सर्वदर्शन संग्रह)।[23]

संस्कृत के परवर्ती भाषा-साहित्य अपभ्रंश आदि में कथा ने 'कहा' का रूप ले लिया—जैसे धम्मकहा (धर्मकथा) भविसयत्त कहा (भविष्यत्त कथा)।

इस तरह की कथा का अत्यधिक प्रचार भी था। जान पड़ता है कि इन कथा काव्यों पर उल्लिखित संस्कृत कथा के लक्षणों का काफी प्रभाव पड़ा है और इनका क्रम विजय-कथा चरित रासो और विलास आदि द्वारा स्वीकृत हुआ।[24]

महाकवि चन्दबरदायी के पृथ्वीराज रासो का नाम कथा ही है, यद्यपि यह

---

१८. वैतालठ, पृ० १४०
१९. कथा सरित्सागर, पृ० ६
२०. साहित्यदर्पण, पृ० २२७
२१. कादम्बरी, पूर्व भाग, पृ० ८, ९,
२२. न्यायदर्शन
२३. हिन्दी विश्वकोष पृ० १७७
२४. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल, पृ० ५९

कथा काव्य है। इसमें कथा की व्यापकता स्वीकृत हुई, पात्रों का सुन्दर समावेश और चित्रण हुआ।

विद्यापति की कीर्तिलता के आधार पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अनुमान किया है कि कथा कहानी, चरित काव्यों के ही पर्यायवाची हैं और कथा-कहानी के आधार के परिचायक हैं।

आठवीं शताब्दी के आचार्य हरिभद्र ने कथा के चार प्रकार—अर्थ-कथा, काम कथा धर्म-कथा और संकीर्ण-कथा—बताते हुए प्राकृत भाषा के गद्य तथा पद्य समाविष्ट गद्य में 'धम्मकहा' का प्रणयन किया है।

दसवीं शताब्दी के पुष्पदंत विरचित अपभ्रंश काव्य 'णायकुमारचरिउ' (नाग कुमार चरित) में वर्णित है कि रानी विशालनैना ने नागकुमार की माता पर पर-प्रेम का दोष इंगित कर सजा के रूप में राजा से उसके आभूषण उतरवा लिये थे। बेटे नागकुमार ने वापस लाकर अपनी माता को आभूषणों से सहित इस प्रकार देखा जैसे वह 'कुकवि की लिखी हुई कथा' हो। इससे विदित होता है कि अलंकारों का होना कथा-काव्य में अत्यन्त आवश्यक था।

अस्तु, संस्कृत आचार्यों ने कथा तथा आख्यायिका के स्वरूपों की व्याख्या में काफी समय लगाया परन्तु वे विषय या शैलीगत विशेषताओं के आधार पर इनका स्वतन्त्र रूप निर्धारित न कर सके।

भामह ने कथा तथा आख्यायिका नाम से कथा साहित्य के दो रूप स्वीकार किये।

पर आचार्य दंडी को यह स्वीकार नहीं। उन्होंने कथा आख्यायिका को एक ही वस्तु के दो नाम बताये।[२८]

रुद्रट और विश्वनाथ भी इन रचनाओं के निश्चित रूप नहीं प्रतिष्ठित कर सके।

आज कथा और आख्यायिका के लिए 'उपन्यास' और 'कहानी' शब्दों का प्रयोग होता है। परन्तु वर्तमान उपन्यास तथा कहानी प्राचीन कथा तथा आख्यायिका से एक हद तक स्वतन्त्र रचनाएं हैं। प्राचीन कथाओं में घटनाओं का क्रमिक विकास होता था। परन्तु आधुनिक उपन्यास तथा कहानियों में घटनाओं का विन्यास कुछ टेढ़ा और चमत्कारिक भी हो जाता है।[२९]

पुराने ढंग की कथा-कहानियों में कथा का प्रवाह अखंड गति से एक दिशा में चलता जाता था जिसमें लक्ष्य की पूर्ति के लिए घटनाएं क्रम क्रम से जुड़ती चली जाती थीं। पर यूरोप में जो नये ढंग के कथानक 'नावल' के नाम से चले और जो बंगभाषा में 'उपन्यास' तथा मराठी में 'कादम्बरी' के नाम से प्रचलित हुए, वे कथा के भीतर की किसी भी परिस्थिति से आरम्भ होते हैं उनमें घटनाओं की शृ खला लगातार सीधी न

२८. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन पृ० १६
२९ हिन्दी साहित्य कोश पृ० १४०

जाकर इधर-उधर तथा शृंखलाओं से गुम्फित होती चलती है। घटनाओं की योजना का यही टेढ़ापन और वैचित्र्य आधुनिक उपन्यासों और कहानियों की विशेषता है। ये विशेषताएं इन्हें पुराने ढंग की कथा-कहानियों से अलग करती हैं।"[27]

आज का कथाकार घटनाओं की धारावाहिकता के साथ ही भाव और रचना कौशल पर पूर्ण ध्यान देता है। किसी कहानी अथवा उपन्यास के लिए अब प्राचीन आचार्यों द्वारा निरूपित प्रतिबंध आवश्यक नहीं माने जाते। आज के कहानीकार तथा उपन्यासकार प्राचीन कथाकारों की अपेक्षा मौलिकता का अधिक प्रदर्शन करते हैं। आज के ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिकता तथा घटनाओं के क्रमबद्ध विस्तार के आधार पर 'आख्यायिका के समकक्ष और भाव तथा कल्पना प्रधान उपन्यास और कहानियां अपनी काल्पनिकता काव्यात्मकता एवं रोचकता के आधार पर अप्रत्यक्षरूप से 'कथा' के समकक्ष मानी जा सकती हैं। अब तो उपन्यास तथा कहानी भी दो स्वतंत्र तरह की रचनाएं बन चुकी हैं। उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन तथा जीवन के अधिक अंगों की और कहानी में जीवन के एक अथवा सीमित पक्ष की व्याख्या रहती है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र का सांगोपांग विकास दिखाया जाता है तो कहानी में चरित्र के किसी खास अंश या अंग की झांकी मात्र चित्रित होती है।

कथात्मक गद्य-साहित्य के वर्तमान रूप उपन्यास तथा कहानी में भावोत्कर्ष कल्पना तथा प्रतिपादन शैली के चमत्कार की अपेक्षा औत्सुक्य की भावना तीव्र रूप में प्रस्तुत होती है। इसमें अर्थ बोध की प्रधानता होती है क्योंकि इसके बिना कौतूहल का बना रहना संभव नहीं। इसमें भाषा अपनी अर्थक्रिया सीधे ढंग से करती है। इसमें कथावस्तु के प्रस्तुत अर्थ को प्रधानता मिलती है और भाव तथा रचना-कौशल का स्थान गौण रहता है। हां, भाव तथा रचना-कौशल का स्थान गौण रहता है। हां भाव तथा रचना-कौशल को उनमें रखना अवश्य पड़ता है। ऐसा नहीं होने से उनमें साहित्यिकता तथा रोचकता नष्ट हो जायगी।

इसके विपरीत 'काव्य' तथा नाटक में भाव और रचना-चमत्कार की प्रधानता होती है।

अतः साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों में 'कहानी' का स्वतंत्र और विशिष्ट रूप होता है।"[28]

गद्य रचना होने के कारण रूपविधान (फार्म) और शैली (स्टाइल) की दृष्टि से कथा के कई भेद हो सकते हैं, जैसे नाटक उपन्यास कहानी गल्प आख्यायिका जीवनी कथा-काव्य, आत्म-चरित भ्रमणवृत्तान्त रेखाचित्र संस्मरण स्केच और रिपोर्ताज आदि। आज जीवन में अर्थपूर्ण कोई भी घटना, मार्मिक क्षण या अंश कथा की विशाल परिधि में सिमट जाता है। जीवन के किसी भी पहलू को चित्रित करनेवाली हर गद्य-रचना जिसमें कथातत्व हो, आज कथा कहलाती है। रेखाचित्र, लघु कथा रिपो-

---

२७ हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० १२
२८ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० २६

पाकर इधर-उधर तथा शृंखलाओं से गुम्फित होती चलती है। घटनाओं की योजना का नहीं टेढ़ापन और वैविध्य आधुनिक उपन्यासों और कहानियों की विशेषता है। ये विशेषताएं उन्हें पुराने ढंग की कथा-कहानियों से अलग करती हैं।"[27]

आज का कथाकार घटनाओं की धारावाहिकता के साथ ही भाव और रचना कौशल पर पूर्ण ध्यान देता है। किसी कहानी अथवा उपन्यास के लिए अब प्राचीन आचार्यों द्वारा निरूपित प्रतिबंध आवश्यक नहीं माने जाते। आज के कहानीकार तथा उपन्यासकार प्राचीन कथाकारों की अपेक्षा मौलिकता का अधिक प्रदर्शन करते हैं। आज के ऐतिहासिक उपन्यास ऐतिहासिकता तथा घटनाओं के क्रमबद्ध विस्तार के आधार पर 'आख्यायिका' के समकक्ष और भाव तथा कल्पना प्रधान उपन्यास और कहानियां अपनी काल्पनिकता, काव्यात्मकता एवं रोचकता के आधार पर अप्रत्यक्षरूप से 'कथा' के समकक्ष मानी जा सकती हैं। अब तो उपन्यास तथा कहानी भी दो स्वतंत्र तरह की रचनाएं बन चुकी हैं। उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन तथा जीवन के अधिक अंगों की और कहानी में जीवन के एक अथवा सीमित पक्ष की व्याख्या रहती है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र का सांगोपांग विकास दिखाया जाता है तो कहानी में चरित्र के किसी खास अंश या अंग की झांकी मात्र चित्रित होती है।

कथात्मक गद्य-साहित्य के वर्तमान रूप उपन्यास तथा कहानी में भावोत्कर्ष, कल्पना तथा प्रतिपादन शैली के चमत्कार की अपेक्षा कौतूहल की भावना तीव्र रूप में प्रस्तुत होती है। इसमें अर्थ बोध की प्रधानता होती है क्योंकि इसके बिना कौतूहल का बना रहना संभव नहीं। इसमें भाषा अपनी अर्थक्रिया सीधे ढंग से करती है। इसमें कथावस्तु के प्रस्तुत अर्थ को प्रधानता मिलती है और भाव तथा रचना-कौशल का स्थान गौण रहता है। हां, भाव तथा रचना-कौशल का स्थान गौण रहता है। हां भाव तथा रचना-कौशल को उसमें रखना अवश्य पड़ता है। ऐसा नहीं होने से उसमें साहित्यिकता तथा रोचकता नष्ट हो जायगी।

इसके विपरीत 'काव्य' तथा नाटक में भाव और रचना-चमत्कार की प्रधानता होती है।

अतः साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों में 'कहानी' का स्वतंत्र और विशिष्ट रूप होता है।"[28]

गद्य रचना होने के कारण रूपविधान (फार्म) और शैली (स्टाइल) की दृष्टि से कथा के कई भेद हो सकते हैं जैसे नाटक उपन्यास कहानी गल्प, आख्यायिका जीवनी कथा-काव्य, आत्म-चरित्र भ्रमणवृत्तान्त रेखाचित्र संस्मरण स्केच और रिपोर्ताज आदि। आज जीवन में अर्थपूर्ण कोई भी घटना आंशिक रूप या अंश कथा की विधान परिधि में सिमट आता है। जीवन के किसी भी पहलू को चित्रित करनेवाली हर गद्य-रचना जिसमें कथातत्त्व हो आज कथा कहलाती है। रेखाचित्र, लघु कथा, रिपो-

२७ हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ६२

२८ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, पृ० २१

दैव डायरी, पत्र-कथा, संस्मरण, मनःस्थिति-चित्रण, इंटरव्यू आदि विभिन्न निर्वाह पद्धति वाले गद्यखंड कहानी की परिधि में आते हैं।[२९]

आज तक संसार में जितनी कथाएं प्राप्त हैं, वे दो प्रकार की हैं—सत्य और काल्पनिक। इसी आधार पर हमारे यहां कथा के दो भेद नियुक्त हुए—आख्यायिका और कथा। आख्यायिका सत्य घटनाओं पर आश्रित और कथाएं कल्पना के रथ पर सवार।

आजकल कथा साहित्य के कई रूप प्राप्त हैं—पौराणिक कथाएं जिनमें असाधारण मानव-चरित्र या देव-चरित्र का वर्णन होता है, उदाहरण दृष्टान्त रूप में कही हुई कथा, कहानी जिनमें अद्भुत तत्त्व की विशिष्टता होती है—परियों, राक्षसों, कल्पित राजा-रानियों की कथाएं इसी प्रेरणा में आती हैं, आख्यान या अनुभूति के रूप में वर्णित कथाएं, उपाख्यान या कथा के अन्तर्गत आई हुई दूसरी कथा, गाथा कथाएं, उपन्यास और लघु उपन्यास, छोटी कहानियां, उपदेशात्मक कथाएं (फेबुल) दन्तकथा या लीजेण्ड—जो जनसाधारण में सत्य तथा ऐतिहासिक मानी जाती हैं और चुटकुले।

संस्कृत में सब प्रकार की कथाओं के पांच भेद माने गये हैं—आख्यायिका, कथा, खंडकथा, परिकथा और कथानिका।[३०]

इनमें से आख्यायिका और कथा से उपन्यासों का तात्पर्य प्राप्त होता है। क्रमबद्ध घटनाओं तथा बड़ी कथा वाले ऐतिहासिक उपन्यास आख्यायिका के अन्तर्गत आए हैं। 'कथा' में सिर्फ कल्पित कथाएं आती हैं। ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियों के लिए हिन्दी में "आख्यायिका' का प्रयोग हो सकता है। खंड-कथा छोटी कहानियों के लिए प्रयुक्त था तो उस अर्थ में हम आधुनिक कहानियों को ले सकते हैं। विलक्षण कहानियां परिकथा कहलाती हैं। जहां एक के अन्तर्गत कई कथाएं गुंथती चली जाएं उसे कथानिका समझिये, जैसे कथा-सरित्सागर, बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी—परिकथा और कथानिका का सम्मिश्रण है। स्पष्ट है कि ये भेद घटना की विचित्रता और कथानक के आधार पर किये गये हैं।

उपन्यास और कहानी

आधुनिक साहित्य में कथा से उन्हीं दो रूपों का बोध होता है जिसे उपन्यास और कहानी कहते हैं।

किसी वृत्तान्त या विवरण को कथा कहते हैं। विद्वानों[३१] का मत है कि यदि वह विवरण कल्पित हो तो वह कथा है यदि ऐतिहासिक हो तो आख्यायिका है।

'कथा' नामकरण से ही स्पष्ट है कि वह एक ऐसी रचना है जो अपनी मनोरंजक

---

२९ नई कहानी, हरिशंकर परसाई

३० अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग पृ० २

३१ वाङ्मय विमर्श, पृ० २४

सुबोध और रोचक होगी। कथा में आये चरित्र भी महान् या आदर्श (धीरोदात्त) न होकर प्रायः धीरललित या धीरप्रशांत होंगे। इसीलिए विश्व की सभी भाषाओं में कथा का महत्व स्वीकार किया गया और पर्याप्त कहानियां लिखी गयीं।

कथा-रचना के जो विधान माने गये, उनसे भी कथा की परिभाषा पर काफी प्रकाश पड़ता है। स्टीवेन्सन ने कहा कि (१) एक प्लाट के अन्तर्गत पात्रों का समावेश हो या (२) कुछ चुने हुए पात्रों के इर्दगिर्द घटनाओं परिस्थितियों, वेशभूषा आदि वर्णित हो या (३) किसी खास परिस्थिति के अन्तर्गत घटनाओं और पात्रों को प्रस्तुत कराया जाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कथा सामाजिक चरित्रों का ही कलात्मक चित्रण है।[१२]

कथा और आख्यायिका नाम मात्र के गद्य हैं। उनमें वह स्रोतस्विनी बहती है जो छन्द के प्राण हैं। वे काव्य की श्रेणी में आती हैं।

पर वह झंकार जो कविता का प्रारम्भ है उपन्यास में दुर्लभ है। उपन्यास तथ्य जगत के बहुत निकट है। उनमें यथार्थ जीवन के चित्रण का प्रयास ही प्रधान है। कथा और आख्यायिका में कल्पना-शक्ति का सहारा लेकर एक रसमय लोक का निर्माण किया जाता है। इसलिए, वास्तव में कथा-आख्यायिका काव्य के बहुत निकट है और उपन्यास तथ्यप्रधान इतिहास के निकट।

उपन्यास और कहानियां आज साहित्य के सबसे मजबूत और जनप्रिय अंग हैं। इसका कारण यह है कि उपन्यास और कहानी के लेखक की अपनी एक राय होती है। कविता की तरह वह भावावेग द्वारा अन्तर्जगत की अनुभूति को उतना नहीं बताता। वह बाह्यजगत की समस्याओं के बारे में अपना निश्चित मत, अपनी निश्चित धारणा व्यक्त करता है।

इसी सिलसिले में दिनकर[१३] के कथाकाव्य के संबंध में व्यक्त विचारों पर भी ध्यान देना चाहिए— 'मुझे यह भी पता है कि जिन देशों तथा दिशाओं से आज हिन्दी काव्य की प्रेरणा पार्सल से मोल या उधार मंगाई जा रही है, वहां कथा-काव्य की परम्परा निःशेष हो चुकी है और जो काम पहले प्रबंध-काव्य करते थे वही काम अब बड़े मजे में उपन्यास कर रहे हैं। किन्तु, अन्य बहुत-सी बातों की तरह मैं एक इस बात का भी महत्व समझता हूं कि भारतीय जनता के हृदय में प्रबंध-काव्य का प्रेम आज भी काफी प्रबल है और वह अच्छे उपन्यासों के साथ-साथ ऐसी कविताओं के लिए भी बहुत ही उत्कंठित रहती है। किसी भी काव्य का आधार कथात्मक विवरण ही होता है। बिना कथा या कथानक के काव्य का भवन खड़ा नहीं किया जा सकता। इसीलिए, वर्णनात्मक विधान के क्षेत्र में कथा और काव्य साहित्य एक हो जाते हैं। काव्य के निर्धारित गुणों का पूर्णतया त्याग करके कथा साहित्य का निर्माण नहीं हो सकता। उसी तरह कथा के आधार के बिना कोई काव्य नहीं टिका हो सकता। रस-निष्पत्ति या आनन्द की प्राप्ति

---

१२ इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ लिटरेचर, पृ० १४२

१३ रश्मिरथी भूमिका, पृ० 'क'

की दृष्टि दोनों के काम एक ही समान हैं। यदि कोई कहानी या उपन्यास श्रोता या पाठक के हृदय में आनन्द की उत्पत्ति न कर सके तो वह साहित्य नहीं हो सकता। उसी तरह रस-निष्पत्ति तो काव्य का सर्वप्रधान गुण ही है। 'रसात्मकं वाक्यं काव्यं'—रस ही काव्य का प्राण है।[१४]

इन समानताओं के बावजूद कथा-साहित्य का अन्य काव्यों से तब अवश्य विभेद हो जाता है जब काव्य को साहित्य की शास्त्रीय पद्धति का बड़ी कड़ाई से पालन करना पड़ता है। छन्द अलंकार गुण रीति आदि के निर्वाह के लिए काव्य को जिस तरह बंध जाना पड़ता है उस तरह कथा-साहित्य को बंधने की जरूरत नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि कथा-साहित्य शास्त्रीय पद्धति का निरादर करता है या उनसे विमुख है या उनका प्रयोग अनावश्यक है या जान-बूझकर नहीं किया जाता। आवश्यकता पड़ने पर शास्त्रीय पद्धति का भी उपयोग या प्रयोग होता है। कथा-साहित्य का मूल उद्देश्य चरित्र-चित्रण या घटना-वर्णन द्वारा हृदय पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालना ही होता है। पर काव्य में विशेषकर छन्दोबद्ध काव्य में संगीतात्मक और रागात्मक तत्व की प्रधानता होती है। साधारण काव्य कथा के आधार पर अन्य प्रासंगिक बातों को अपने में समेट लेता है, पर कथा-साहित्य अपने विवरणात्मक भाव को छोड़कर किसी तरफ भाग नहीं सकता। उसमें विवरणात्मक विधान की ही विशेषता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा-कहानियों में काव्यत्व का प्रचुर समावेश हुआ है—दशकुमार चरित्र कादम्बरी, हर्षचरित प्रभृति ग्रंथ इसके उदाहरण हैं। अब पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से कहानियों में लघुता और क्षिप्रता लाना आवश्यक हो गया है। इसीलिए शास्त्रीय पद्धति का निष्ठा पूर्वक निर्वाह आवश्यक नहीं माना जाता।

कथा-साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि वह समष्टि से व्यक्ति का सीधा सम्पर्क स्थापित करता है। अन्य काव्यों में जिस तरह काव्यागत जीवन के सम्पर्क में आने के लिए कई मोड़ों और चक्करों को पार करना आवश्यक होता है वैसा कथा साहित्य में नहीं होता। उसमें जीवन का विधान सरल और अविच्छिन्न होता है। इसलिए उसके साथ सम्पर्क शीघ्रता और आसानी से स्थापित हो जाता है।[१५]

वर्तमान कथा-साहित्य में बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित जीवन के घात-प्रतिघातों से अधिक जीवन के अन्तरंग और अन्तर्तम रूप का ही अधिक चित्रण रहता है। इस तरह जीवन और जगत के नाना पर्तों को लेकर काव्य भी चलेगा और कथा साहित्य भी। एक भाव-व्यंजना को प्रधानता देगा, दूसरा घटनाओं के विकास द्वारा विभिन्न परिस्थितियों को उद्घाटित करेगा। कथा-साहित्य के विवरणात्मक विधान की अपनी विशेषताएं हैं और वह साहित्य के अन्य विवरणात्मक रूपों से एकदम भिन्न है।

कविता मुक्तक या प्रबंध-काव्य दो प्रकार की होती है। महाकाव्य तथा खंड-

---

१४ साहित्य साधना की पृष्ठभूमि, पृ० ११४

१५. वही

काव्य प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत आते हैं और विषय-प्रधान होने के कारण उपन्यास के अधिक निकट हैं। इनमें पद्यबद्ध कथा होती है जो गद्य में लिखे आख्यानकों के यथा मुवाद जैसे लगते हैं। इसलिए दोनों में समानता स्वाभाविक ही है। दोनों में जीवन संघर्ष और घटनाओं का चित्रण तथा वर्णन-शैली समान होती है। महाकाव्य, नाटक तथा उपन्यासों में पात्रों का चरित्र-चित्रण जीवन की विभिन्न स्थितियों का वर्णन, वस्तु-विन्यास भावाभिव्यंजना आदि प्राय: एक ही समान होते हैं। इसीलिए ऐसे आख्यानक काव्य या चरित्रप्रधान महाकाव्य उपन्यासों के विशेष निकट होते हैं। फिर भी उनमें कुछ भेद हैं। वे भिन्न प्रकार की कृतियां हैं और उनके आदर्श भी भिन्न हैं। काव्यों के नायक-नायिका अति महान और दिव्य होते हैं। उनमें बहुत ही उच्च-कोटि के कार्यों का विवरण तथा स्थान-स्थान पर अलौकिकता और चमत्कारिकता का उपयोग होता है। कवि की कल्पना-शक्ति भी काव्यों में उन्मुक्त उड़ानें भरती है और अपने वर्णनों को विशेष मनोग्राही बनाने के लिए कवि अपने काव्य-सामर्थ्य का इच्छापूर्वक प्रदर्शन करता है। महाकाव्यों में कथोपकथन नहीं के बराबर होते हैं पर यही कथोपकथन नाटक और उपन्यास में महत्वपूर्ण तथा ध्यान आकर्षित करनेवाले होते हैं।[१६]

परन्तु, अब ऐसा देखा जाता है कि ये सब विभिन्नतायें भी क्रमश: घटती जा रही हैं। इधर के काव्यों में साधारणजन भी पात्र बनाये जाने लगे हैं, उनमें अलौकिकता की कमी हो रही है और कुछ-कुछ कथोपकथनों का भी समावेश किया जाने लगा है। काव्य अब घटनाप्रधान नहीं वरन वर्णनात्मक होने लगे हैं और उनका भी मुख्य उद्देश्य मनोरंजन हो चला है। फिर भी उपन्यासों से काव्यों की विभिन्नताओं के क्रमश: कम होते जाने के बावजूद कई बातों में ये मूलरूप में ही भिन्न रहेंगे—क्योंकि दोनों की वर्णन-शैली भिन्न-भिन्न है। काव्य का पूर्ण आनन्द काव्यकला का ज्ञान रखनेवाले पाठक ही उठा सकते हैं। पर उपन्यास अपने कथा-प्रवाह तथा सजीव भाषा में कथोपकथन के द्वारा अपना अभिप्राय व्यक्त करने के कारण मर्मस्पर्शी होते हैं। इसीलिए वे साधारण पाठकों के लिए भी समान रूप से आकर्षक होते हैं। कविता के समान उनकी मर्मोक्ति वैविध्यपूर्ण अलंकृत भाषा में छिपी-छिपी नहीं रहती। इसी कारण महाकाव्य जब थोड़े से विशिष्ट पाठकों के लिए हैं तो उपन्यास सर्व-साधारण के लिए बोधगम्य हैं। महाकाव्य सत्य और कल्पना के सामञ्जस्य द्वारा ऐतिहासिक प्रमाण बन जाते हैं। बहुत से महाकाव्य ऐतिहासिक घटनाओं पर ही आधारित हैं। जब उपन्यासों का माध्यम नहीं निकला था तब लगभग सभी महाकाव्यों का विषय ऐतिहासिक घटनाएं ही थीं। उनका महत्व सिर्फ काव्यात्मक ही नहीं था अक्सर विद्वान उन्हें ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में भी उद्धृत करते थे।[१७]

उपन्यासों का आदर्श है व्यक्ति की स्वतंत्रता जो यंत्रयुग की विशेष देन है। कथा-आख्यायिका के आदर्श हैं काव्य-कला के पूर्व-निर्धारित और परम्परागत

---

१६ हिन्दी उपन्यास साहित्य पृ० १३

१७. बहु पीपल, पृ० १२२

सदाचार। उपन्यास में दुनिया या समाज के यथार्थ चित्रण का प्रयास होता है। ऐतिहासिक और जासूसी आदि उपन्यास जो समाज की वर्तमान हालत से दूर भी हटते हैं, वे भी इतिहास और जासूसी के वर्तमान दायरे के भीतर ही अपनी कल्पना की उड़ानें भरते हैं। परन्तु कथा-आख्यायिका में वास्तविक दुनिया से भिन्न एक अलग दुनिया बनायी जा सकती है।

उपन्यास मौजूदा हालत को नजर अंदाज कर भविष्य का चित्र उपस्थित नहीं कर सकता पर काव्य वर्तमान की पूर्णतया उपेक्षा कर अपने आदर्श गढ़ सकता है। इसीलिए उपन्यासकार वर्तमान की पकड़ से बाहर नहीं जा सकता न कवि की भांति वह जमाने से आगे रहने का ही दावा कर सकता है। उपन्यासकार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यही है कि वह समाज की हालतों और गतिविधि का यथार्थ चित्रण करे।[18]

कविता तभी लोकप्रिय हो सकती है यदि किसी महत्त्वपूर्ण आख्यान गाथा या कथा का आश्रय लेकर अपनी उद्देश्य-सिद्धि करे। उदाहरण के लिए राम-काव्य कृष्ण काव्य तथा लोक-काव्य हमारे सामने हैं जिनमें लोक-कथाएं, पुराणों की कथाएं, किंवदन्तियां आदि भरी हुई हैं। ये कथाएं स्वयं अपने-आपमें एक काव्य हैं—उनमें मनुष्य की सबसे आत्मीय अनुभूति संगृहीत है। महाकवियों ने अपनी रचनाओं में उन्हें केवल एक ऊंचे धरातल पर स्थापित कर दिया है। ऐसा करते हुए स्वयं वे भी अमर कवि बन गये हैं। राष्ट्र-कवि ने इसीलिए बड़ी मार्मिक बात कही है—"राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।" सचमुच राम ने बहुतों को महाकवि बना दिया।[19]

उपन्यास महाकाव्य के रूप में

महाकाव्य उपन्यासों के बहुत समीप है। कविता का यही रूप उपन्यास के समीप है। इसीलिए उपन्यासों को गद्यमय महाकाव्य या 'एपिक इन प्रोज' कहा गया है। इसी तरह महाकाव्यों को भी हम पद्यमय उपन्यास या 'नावेल इन वर्स' कह सकते हैं। उपन्यास और महाकाव्य दोनों ही विषय-प्रधान होते हैं। उनमें वर्णन की प्रधानता होती है। दोनों में ही पात्रों के साथ कुछ घटनाएं किसी विशेष क्रम से घटित होती हैं। उनमें जीवन की विविध दशाओं को उद्घाटित करने वाले कथा-चक्र, वस्तु-वर्णन और भाव-व्यंजना के नपे-तुले परिमाण की आवश्यकता होती है। कथा-प्रवाह दोनों ही के लिए आवश्यक है।[20]

पर इतने समीप होते हुए भी ये दो भिन्न तरह की कृतियां हैं। महाकाव्यों का आदर्श भिन्न है। उपन्यासों का आदर्श उनसे अलग है। महाकाव्यों में महान व्यक्तियों और कार्यों का चित्रण होता है तो उपन्यासों में साधारण व्यक्तियों का भी जीवन

---

१८. आधुनिक हिन्दी-साहित्य, पृ० ६८

१९. कहानी, मासिक अक्तूबर १९६०

२०. हिन्दी-उपन्यास

चित्रित होता है। उपन्यास हमारे प्रतिदिन के जीवन की चीज हैं। उनमें सामाजिक जीवन में प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाएं चित्रित होती हैं। यथार्थ का सजीव चित्रण ही उपन्यासों की सफलता की कुंजी है।

तुलसी के राम का शासन समुद्र की लहरें मानती हैं रत्नाकर के वक्ष पर स्पर्श मात्र से शिलाएं तैरती हैं और आकाश में कपि उड़ते हैं। परन्तु यदि 'प्रेमचन्द' या 'कौशिक' ऐसी विलक्षणताओं और चमत्कारों को अपनी रचनाओं में लाते तो 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' की तरह उनका प्रचार भले ही हो जाता पर साहित्य की कोटि में बसी रचना को स्थान मिलने से रहा। उपन्यासकार की कल्पना कवि-कल्पना की तरह उन्मुक्त नहीं होती। उसकी दिव्य-दृष्टि रवि-रश्मियों से प्रतिम्बित नहीं कर सकती। उसके पैरों में यथार्थ की जंजीर होती है। उसे यथार्थ को, अपने घर और जगत को ही भलीभांति देखकर संतुष्ट हो जाना पड़ता है।

यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महान घटनाओं और व्यक्तियों का वर्णन महाकाव्य का लक्षण नहीं, उपलक्षण मात्र है। यदि उपन्यासों के वर्तमान रूपों का विकास महाकाव्यों के युग में हो गया होता तो संभव है कि उसके भी आदर्श यही होते।

अब तो महाकाव्यों का अर्थ ही बदल-सा हो गया है। उनमें भी अब सामान्य व्यक्ति और जीवन को चित्रित करने की रुचि दिखाई पड़ने लगी है। यूरोप में तो ऐसे कई महाकाव्यों की रचना भी हो चुकी है। इसीलिए विद्वानों की राय में महाकाव्यों की अवनति का एक प्रधान कारण उपन्यास भी है।[४१]

उपन्यास और महाकाव्य की अक्सर तुलना की जाती है। उपन्यास हमारे आधुनिक पूंजीवादी समाज के महाकाव्य हैं। साहित्य का यह रूप पूंजीवादी समाज की यौवनावस्था में अपने पूर्ण विकास पर पहुंचा। पर अब ऐसा लगता है कि पूंजीवादी समाज के निरन्तर ह्रास ने उपन्यास-कला को भी ग्रस लिया है। हम यह भी कह सकते हैं कि उपन्यास बुर्जुआ साहित्य की सबसे प्रतिनिधि उपज और श्रेष्ठतम रचना भी है। यह कला का एक नया रूप है।

रैनेसां या पुनर्जागरण काल के पहले उपन्यासों का अस्तित्व नहीं था। अगर था भी तो अपने प्रारम्भिक रूप में।

उपन्यास मानवीय चेतना को गहरा बनाने उसे विस्तृत करने का अपना उद्देश्य भी अभी तक पूरा नहीं कर सका है। इसी प्रसंग में प्रसिद्ध कवि और आलोचक राल्फ फाक्स ने यह भी प्रश्न उठाया है कि क्या हमारी सभ्यता यानी पूंजीवादी सभ्यता की समाप्ति के साथ ही उपन्यासों का भी अन्त हो जायगा। ठीक उसी प्रकार जैसे प्राचीन सभ्यता के अन्त के साथ ही महाकाव्यों का भी अन्त हो गया? किन्तु तथ्य यह है कि महाकाव्य ने 'वार्लोवा पेस्ट' में फिर जन्म लिया। और यह भी कि जब महाकाव्य प्राचीन समाज के साथ ही विलीन हो गया था तो उपन्यास ने उससे अनुप्राणित

---

४१ हिंदी-उपन्यास पृ० ४

हो नये कला-रूप में साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। किन्तु इसका लक्ष्य महाकाव्यों से भिन्न था—नये मानव की आशा-आकांक्षाओं और उसकी संघर्षमय जिन्दगी को चित्रित करना इसका उद्देश्य था। पर जहाँ तक हमारी कलात्मक अभिरुचि का सवाल है, लगता है जैसे उसकी पूर्ति महाकाव्य ही कर सकते हैं।[५२]

अब सिनेमा को लीजिये। यह ध्वनि रंग मिश्री संगीत—जो प्राचीन संगीत से बिल्कुल भिन्न है, की क्षमताओं से युक्त है। क्या यह नई प्राणवान कला-युग के महाकाव्य की रचना नहीं कर सकती ?

तो इस बात को मानना ही पड़ेगा कि सिनेमा काफी हद तक ऐसा करने में सफल हो सकता है। पर वह पूर्वस्पेन युग के महाकाव्य का पार्ट नहीं अदा कर सकता। उपन्यास मानव का अधिक पूर्ण रूप उसके महत्त्वपूर्ण आन्तरिक जीवन के चित्र उपस्थित कर सकता है जो मानव के निरे नाटकीय क्रियाशील रूप से भिन्न चीज है और इसीलिए सिनेमा की क्षमता से भी बाहर है। यह अवश्य है कि सिनेमा की चुनौती उपन्यास को फिर से अपने लुप्त महत्त्वपूर्ण गुणों को प्राप्त करने को बाध्य करे और सबसे बढ़कर क्रियाशीलता की आवश्यकताओं का अनुभव करने को बाध्य करे। इसी क्रियाशीलता और नाटकीय तत्त्वों के कारण जासूसी उपन्यास लोकप्रियता प्राप्त करते हैं—जिनका सिनेमा के द्वारा पोषण होता है और उपन्यास जिससे कतराते हैं। सिर्फ यही कहकर जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता को नहीं समझा जा सकता कि लोग अपराध या हिंसा से प्रेम करते हैं।[५३]

महाकाव्यों द्वारा समाज की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यासों के द्वारा वैसा न तो हुआ और न होना संभव है। महाकाव्यों के पात्रों में और जिस समाज की वे उपज थे एक संतुलन था। उपन्यासों के युग में वह संतुलन विलुप्त हो चुका है। महाकाव्यों का पात्र समाज का एक अंग है वह कभी-कभी तो प्रकृति का एक अंग बन जाता है अथवा उससे अभिभूत जान पड़ता है। किन्तु प्रकृति से उसके संघर्ष का या प्रभुत्व का कहीं पता नहीं चलता। 'डाँटो व रोलाँ' में भी 'ईसाइयों' और काफिरों—दो समाज के द्वन्द्व की कहानी है और इसमें वर्णित शार्लेमिन रोलाँ ओलिवर, गद्दार योद्धा गानेलो व्यक्तिगत से अधिक प्रतिनिधि चरित्र हैं—बुद्धिमत्ता साहस, फरमाबरदारी और विश्वासघात के प्रतीक।[५४]

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी[५५] ने प्रश्न उठाया है कि उपन्यास की परम्परा और महाकाव्य की परम्परा नितान्त भिन्न वस्तु है। ऐसी हालत में उपन्यास को 'एपिक नावेल' कहना साहित्यिक दृष्टि से समीचीन नहीं। पर राष्ट्रीय जीवन के किसी विशेष युग का सर्वतोमुखी उद्घाटन करना उपन्यास में संभव भी नहीं है। सामाजिक जीवन

५२ उपन्यास और लोक-जीवन पृ० १२
५३ वही, पृ० १६
५४ वही पृ० १६
५५. आधुनिक-साहित्य पृ० १२०

का यथार्थ चित्रण और युग की ज्वलंत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना—जो महाकाव्य कर सकते हैं—उपन्यासों के लिए असंभव है।

सर्वप्रथम टालस्टाय के उपन्यास 'वार एण्ड पीस' को 'राष्ट्रीय उपन्यास' की संज्ञा दी गयी। जिन्होंने इसका अध्ययन किया है वे मानते हैं कि यह कृति वास्तव में उपन्यास नहीं, उससे कुछ अधिक है।

हिन्दी के कुछ आलोचकों ने प्रेमचन्द के गोदान को भी हिन्दी का 'महाकाव्यात्मक उपन्यास' माना है।[४५]

महाकाव्य में विराट जीवन को प्रस्तुत किया जाता था। उसमें घटना-क्रम या चरित्र-चित्रण व्यक्तिगत न होकर प्रतीकात्मक रहते हैं। उसमें भावात्मक जीवन के प्रतिनिधि सत्य का दर्शन कराया जाता है। उसके पात्रों में समस्त युग की वाणी मिलती है। उसमें नायक के चरित्र को अपने युग और कवि के व्यक्तित्व से बहुत दूर ले जाकर कल्पना के उच्च शिखर पर खड़ा कर दिया जाता है। फिर उसे प्रकृति और परिवेश से महान बनाकर देखने का प्रयास होता है। इसलिए महाकाव्य हमें पात्रों का व्यक्तित्व देता है, चरित्र नहीं।

उपन्यास और नाटक

उपन्यास चित्रण और वर्णन प्रधान साहित्य है। इसलिए नाटकों से भी उसका स्वरूप अलग है। नाटकों में घटनाएं अधिक वेगवान, प्रवाहशील और नाटकीय परिस्थितियों के द्वन्द्व के उपयुक्त होती हैं। उपन्यास में घटनाओं की गति मन्द और व्यापक होती है। नाटक में किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर तीव्र गति से बढ़ने की आवश्यकता है। पर उपन्यास में घटनाएं क्रम क्रम से अपने को उद्घाटित करती हुई बढ़ती हैं। समस्त उपन्यास ही एक प्रकार से कार्य होता है। नाटकों में स्वतन्त्र रूप से, स्वभाव वैचित्र्य तथा चारित्रिक विशेषताओं के चित्रण का अवसर नहीं मिल सकता। वे परिस्थिति, संयोग और एक दूसरे के संघात में चरित्र का उद्घाटन करते हैं। उपन्यासों में इस तरह के बंधन नहीं हैं। इसीलिए विद्वानों ने उपन्यास को पड़ी रेखा (होरिज़ेन्टल लाइन) और नाटक को खड़ी रेखा (वर्टिकल लाइन) कहा है। यानी उपन्यास का विषय समतल और नाटक का नीचे से ऊपर की ओर दौड़ने वाला। उपन्यास की विशेषता का पता या समीक्षा उसके प्रत्येक अध्याय के आधार पर ही की जा सकती है।

इसके विपरीत नाटक का संबंध घटनाओं की असाधारण प्रगति, संघर्ष और अंतिम फल से होता है। उपन्यास घटनाओं की स्वाभाविक गति और फैलाव से संबंधित है। नाटक चरित्र की परिस्थितियों और उनसे होनेवाले विस्मय-कारक परिणामों को चित्रित करते हैं। उपन्यासों में चरित्र की मीमांसा अधिक तटस्थ और निरपेक्ष होती है।[४६]

---

४६ नलिन विलोचन शर्मा, आलोचना, (५) पृ० ११४ गोपाल कृष्ण कौल, वही पृ० १४४

आजकल नाटकों का निर्माण किसी समस्या विशेष के निरूपण, दिग्दर्शन और समाधान को प्रदर्शित करने के लिए भी होता है। पर उपन्यासों में स्वाभाविक चित्रण इतना आवश्यक है कि वे किसी विशेष समस्या को आधार बनाकर नहीं चल सकते। हाँ, यह बात सही है कि कतिपय उपन्यासों में जीवन के किसी खास महत्त्व पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। किन्तु, समस्या-उपन्यासों का नाम अब तक नहीं सुना गया।

प्रेमचन्द का मत था कि नाटकों की अपेक्षा उपन्यास में चरित्र-विकास की अधिक गुंजाइश है।[४८]

इस संबंध में गेटे ने लिखा है कि "उपन्यास में मनोवृत्तियों का चित्रण प्रधान होता है, चरित्र और कर्म का नहीं गति धीमी होनी चाहिए नायक को सहन करने वाला होना चाहिए, न कि कर्मण्य"। इसके विपरीत नाटक का नायक क्रियाशील और कर्मठ होना चाहिए। साथ ही अपनी पूर्णता की प्राप्ति के लिए उसे रंगमंच की अपेक्षा रहती है। पर उपन्यास अपना रंगमंच अपने पात्रों में लिये फिरता है।

नाटककार उपन्यासकार की तरह चरित्र-विश्लेषण का सुयोग नहीं पाता। यह काम उसे थोड़े से इशारों उस पात्र के कथोपकथन उस पात्र के संबंध में दूसरों की उक्तियों के द्वारा करना पड़ता है। नाटक में पात्र जो करता है, उसकी महत्ता है, न कि उसके कथन की। घटना और पात्र एक दूसरे से संघर्ष में आगे बढ़ते हैं और उन घात प्रतिघातों से उत्पन्न क्रियाओं द्वारा हम पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन देखते हैं। नाटककार का यह बड़ा कठिन कार्य है कि भिन्न-भिन्न पात्रों के रूप में उसे हर क्षण नया-नया मनोभाव स्वीकार करते रहना पड़ता है।[४९]

उपन्यास का स्वरूप-विकास

संस्कृत साहित्य में उपन्यास शब्द मनोरंजन के अर्थ में प्रयुक्त होता था। इसलिए आज भी उपन्यास में मनोरंजन को ही सर्वोच्च माना है। किन्तु उपन्यास के साथ स्वाभाविक अनुभव और संभाव्य घटनाएं भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। उसका प्रयोजन यह है कि वह प्राकृतिक चित्रों और दृश्यों के माध्यम से मनोरंजन की ओर अपने मित्रों को भावनाजन्य बंधन में बांधे। उपन्यास लेखन-कला का उत्कृष्टतम रूप है। इसे संसार की कल्पनाजन्य संसृति के वर्तमान युग का सबसे बड़ा उपहार माना गया है।

नाटक संगीत चित्रकला और वास्तुकला के पीछे विकास का एक बहुत बड़ा इतिहास है। उपन्यास अल्पकालीन है। परन्तु इसका क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। यह सामान्य कथा उद्‌घाटन से लेकर दार्शनिक चिंतन तक को अपनी परिधि में समेट लेता है। इसकी सरूपता विविध तत्त्वों की मानवीय स्पन्दनशीलता में है।

उपन्यास मात्र कल्पनाभिमिश्रित गद्य नहीं है। यह है मनुष्य के जीवन की गाथा, उसके सम्पूर्ण जीवन की गाथा उसके सम्पूर्ण जीवन को मुखर करने वाला गद्य।

---

४८. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास, पृ० १६

४९. साहित्य का साथी, पृ० ९८

इसीलिए केवल ऊपरी चमकदमक और शैली के चमत्कार से सफल उपन्यास का सृजन संभव नहीं। उपन्यास के लिए जीवन में गहरी पैठ, गहरी अनुभूति और व्यापक सहानुभूति आवश्यक है। इसी कारण कलारूपों में उसका इतना महत्त्वपूर्ण और उच्च स्थान है। इसीलिए उसमें सफलता अति कठिन है, और लेखन-कार्य कष्टकर तथा सर्वग्राही है।"[10]

उपन्यास अन्य कलारूपों से इसलिए भी भिन्न है कि उसमें जीवन के गोपनीय अंश जैसे मानसिक संघर्षों को भी चित्रित करने की शक्ति है। यथार्थ का यह चित्रण कविता नाटक, संगीत, तथा चित्रकला से भिन्न है। उपन्यास समूचे और अविभाज्य मानव-जीवन को अपनी विषयवस्तु बनाता है। मनुष्य का चेतन, अर्धचेतन या अचेतन कुछ भी उसकी परिधि से बाहर नहीं।

उपन्यास शब्द संस्कृत के 'अस्' धातु से बना है जिसका अर्थ है रखना। इसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग हैं और घं प्रत्यय का प्रयोग है। कुल मिलाकर इसका अर्थ है सम्यक रूप से उपस्थापन। बाद में इस शब्द ने कई लाक्षणिक अर्थ भी ग्रहण किये। सर मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोष में उपन्यास के कुछ अर्थ इस प्रकार दिए हैं—"उपक्षेप (मेनशन) अभिकथन (स्टेटमेंट) सम्मति (सजेशन), उद्धरण (कोटेशन), सन्दर्भ (रेफरेंस)। डा० मैकडोनल ने अपने शब्दकोष में इसके अर्थ इस तरह लिखे हैं—"विज्ञप्ति (इन्टीमेशन) अभिकथन (स्टेटमेंट) उद्घोषण (डिक्लेरेशन) वादविवाद (डिस्कशन)। स्पष्ट है कि यद्यपि संस्कृत वाङ्मय में 'उपन्यास' शब्द का यथेष्ट प्रयोग होता था पर उसका उस समय यह अर्थ नहीं था जो आज समझा जाता है—अर्थात गद्य में यथेष्ट लंबी कथा। यह अर्थ आधुनिक युग की देन है और यही प्रधान तथा अधिकतम प्रचलित अर्थ भी है।"[11]

कथा के अर्थ में उपन्यास शब्द का सबसे पहला प्रयोग बंगला-साहित्य में प्राप्त होता है। सन् १८५७ ई० में श्री भूदेव मुखर्जी लिखित ऐतिहासिक उपन्यास को ही बंगला-साहित्य के इतिहासकारों ने बंगला का प्रथम उपन्यास माना है। सन् १८६१ में श्री रामसदय भट्टाचार्य द्वारा लिखित 'अद्भुत उपन्यास' प्रकाशित हुआ। इसके पहले 'अलालेर घरेर दुलाल' नाम की एक और रचना प्रकाशित हो चुकी थी। इस तरह श्री भट्टाचार्य की रचना से यह पता चलता है कि १८६१ तक उपन्यास शब्द का इतना प्रचलन हो चला था कि अन्य लेखकों द्वारा भी इसका नवीन अर्थ में प्रयोग हो सके। उपन्यास शब्द के पहले बंगला में कथा कहानी आख्यान उपाख्यान, उपाख्यान आदि ही शब्द बंगला में प्रचलित थे। पर यह निर्विवाद है कि उस समय तक बंगला के लेखक अंग्रेजी से प्राप्त साहित्य की सर्वथा नवीन विधा 'नाविल' से परिचित हो चुके थे। १८७५ में प्रकाशित एक पुस्तक में श्री भूदेव मुखोपाध्याय ने एक स्थल पर लिखा है—'मैंने लगभग बीस वर्ष पूर्व अंग्रेजी के 'नाविल' के अनुकरण पर एक

---

१०. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृ० ९१
११. वही

कथा बंगला में मिली थी।" उसका संकेत 'ऐतिहासिक उपन्यास' नाम की अपनी रचना की ओर है। वस्तुतः इस पुस्तक में एक नहीं, बल्कि 'अंगार विनिमय' और 'सफल स्वप्न' नामक दो कथाएं संकलित हैं।"[52]

कुछ अन्वेषकों ने बंगला में प्रथम कथा के प्रकाशन का समय 'समाचार दर्पण' नामक पत्र में २४ फरवरी और ९ जून १८२१ माना है जब उस पत्र में एक 'बाबू' विशेष का चरित्र प्रस्तुत किया गया था। यह विशेष मनोरंजन के उद्देश्य से किया गया था। दो वर्ष बाद १८२३ में प्रथम बंगला उपन्यास 'नव बाबू विलास' का प्रकाशन भवानीचरण बनर्जी द्वारा हुआ।[53] आज की परिभाषाओं के अनुसार इन कथाओं में औपन्यासिक तत्व नहीं के बराबर हैं। पर यह अवश्य है कि कृति के नाम में उपन्यास शब्द का प्रयोग 'नाविल' के अर्थ में ही किया गया है।

जहां तक पत्र-पत्रिकाओं का प्रश्न है बंगदर्शन नामक बंगला पत्रिका में उपन्यास का सबसे पहला प्रयोग कदाचित् सन् १८६४ में हुआ था। बंकिम युग में (१८७२ ई॰) जो बंगला साहित्य का निर्माण-युग कहलाता है—उपन्यास शब्द का आधुनिक अर्थ में प्रयोग हो चुका था।

डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त का मत है कि हिन्दी में उपन्यास शब्द का सबसे पहला प्रयोग संभवतः १८७१ में 'मनोहर उपन्यास' नाम की एक कथा-पुस्तक के नामकरण में हुआ था। डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों में इसे उच्चतम स्थान देते हैं। पर आचार्य शुक्ल आचार्य द्विवेदी डॉ॰ वार्ष्णेय आदि चोटी के हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस कृति का कहीं उल्लेख भी नहीं किया है। (हिन्दी पुस्तक साहित्य पृ॰ २९)

कुछ लोगों का कहना है कि उपन्यास शब्द का आधुनिक अर्थ में प्रचलन मराठी से आरंभ हुआ। पर यह इसलिए अग्राह्य है कि स्वयं मराठी में उपन्यास के लिए 'कादम्बरी' शब्द का प्रयोग होता है।

गुजराती में उपन्यास के लिए 'नवलकथा' का प्रयोग है। नाविल से 'नवल' लेकर तथा कथा जोड़कर इसे बनाया गया। ध्वनि साम्य के कारण 'नवल' शब्द को अपनाया गया। पर चूंकि 'नवल' का बोध नहीं हो सकता इसलिए 'कथा' जोड़कर उसे पूरा किया गया।"[54]

दक्षिण भाषाओं में 'तमिल' में उपन्यास शब्द का प्रयोग प्रायः आज भी होता है। पर वहां इसका अर्थ है 'व्याख्या' और यह अर्थ मैकडोनल के भाव-अभिव्यंजन भाव-विचार आदि के निकट पड़ता है। हिन्दी में भारतेन्दु काल में उपन्यास का इसी अर्थ में दो सज्जनों ने प्रयोग किया है। पर इसका प्रचलन नहीं हुआ।

---

५२ वही

५३ अंग्रेजी दैनिक 'स्टेट्समैन' ९ मार्च १९५९, सम्पादक के नाम पत्र स्तम्भ में प्रकाशित पृ॰ आर॰ मित्रा के विचार

५४ हिन्दी साहित्य कोश पृ॰ १४०

बंगला में इसी प्रकार रोमांस के लिए उपन्यास शब्द बना। पर वह भी चल नहीं सका। 'नोवेल' से मिलता-जुलता 'नवल' शब्द भी बंकिम बाबू के समय में प्रयुक्त हुआ था।

उर्दू में उपन्यास को 'नाविल' ही कहा जाता है। उपन्यासकार के बदले 'नवल कथाकार' या 'नवलकार' शब्द चला था। पर ये उसी समय अप्रयुक्त हो गये। अब केवल उपन्यास शब्द ही विशेष प्रचलित है।

'नावेल' की तरह फिक्शन, भी उपन्यास शब्द के लिए चलता है।[२४] 'फिक्शन साधारणतः सभी छोटी-बड़ी कहानियों और उपन्यासों के लिए प्रयुक्त होता है तथा नाविल, रोमांस स्टोरी आदि उसके कई भेद हैं। फिक्शन का अर्थ काल्पनिक, झूठी या मिथ्या कहानियां है।[२५] रोमांस पहले दक्षिण यूरोप की बोलियों (delicus) को कहते थे। उन्हीं भाषाओं में लिखी कहानियों को 'रोमांस' कहा जाने लगा। ये कहानियां कल्पित मानव जीवन की सीमाओं से परे, विचित्र विस्मयकारी और रोमांचक होती थीं।

'स्टोरी', फेबुल आदि शब्द छोटी कहानियों के लिए प्रयुक्त होते थे।

हिन्दी में या भारतीय भाषाओं में जो जब पाश्चात्य प्रभाव के कारण वहां जैसी ही कहानियां लिखी जाने लगीं तो उनके नये नामकरण की भी आवश्यकता पड़ी।

अंग्रेजी शब्द नाविल या 'नावेल' लैटिन के विशेषण 'नावेला' इटालियन और स्पेनिश शब्द 'नोवेल' और फ्रांसीसी शब्द 'नोवेसी' से मिलकर बना। पुनरुत्थान युग के प्रारंभ से ही एक काल्पनिक लघुकथा के अर्थ में यूरोप की विभिन्न भाषाओं में इस शब्द का प्रयोग प्रचलित था। गद्य में लिखी इन लघु-कथाओं में साधारण जीवन की झांकियां प्रस्तुत की जाती थीं। सोलहवीं शताब्दी में इटालियन लघु-कथाओं के अनुवाद के साथ ही इस शब्द का भी अंग्रेजी साहित्य में प्रचलन हो गया। अगली शताब्दी में कथाओं का आकार विस्तृत हो गया। पर इन बड़ी कथाओं के लिए भी 'नावेल' शब्द का प्रयोग होता रहा जो आज तक भी जारी है।

उपन्यास की परिभाषा

'साहित्य' अथवा 'कविता' की परिभाषा जिस तरह कठिन है और कोई भी एक परिभाषा सम्पूर्णतः स्वीकृति नहीं हुई है उसी तरह 'उपन्यास' को भी परिभाषित करना कठिन है। देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने इस तरह के प्रयत्न किये हैं। पर कोई भी एक परिभाषा उपन्यास के सभी अंगों और पहलुओं को स्पष्ट नहीं करती। नीचे हम कुछ परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

"उपन्यास"—प्रसिद्ध आलोचक डा० श्याम सुन्दरदास कहते हैं—"मनुष्य के

---

२४. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १४०

२५ अंग्रेजी-हिन्दी कोश, पृ० ५१७ (ज्ञान मंडल)

वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[47]

पर यह परिभाषा सीमित है। क्या उपन्यास केवल वास्तविक जीवन की कथा है? अनेकानेक तिलस्मी जासूसी और अन्य उपन्यास इसके उदाहरण हैं कि उपन्यास का वास्तविक जीवन से संबंध नहीं भी हो सकता है। 'काल्पनिक' शब्द भी उसकी सीमा को संकुचित करता है।

"मैं"—उपन्यासकार प्रेमचन्द कहते हैं— 'उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ।'[48] स्पष्ट है कि इस परिभाषा में सिर्फ चरित्रप्रधान उपन्यासों पर ध्यान दिया गया है। इसमें उपन्यास के विशेष अंग अथवा प्रकार-विशेष को ही महत्त्व दिया गया है जो कि पूर्ण सत्य नहीं।

इस परिभाषा को निश्चित करने की कोशिश में न्यू इंगलिश डिक्शनरी में कहा गया है—"उपन्यास एक काल्पनिक गद्य कथा अथवा इतिवृत्त है जो पर्याप्त दीर्घ होता है और जिसके कथानक में उन चरित्रों और कार्य-व्यापारों का चित्रण होता है जो वास्तविक जीवन के चरित्रों और कार्यव्यापारों को निरूपित करने का प्रयास करते हैं।" यह परिभाषा उपन्यास की भाषा और आकार की ओर संकेत मात्र करती है। किन्तु इसमें उपन्यास के विषय वस्तु की सीमा संकीर्ण रूप में व्यक्त है। उपन्यास तो अपनी व्यापकतम परिभाषा में जीवन का वैयक्तिक और प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है।"[49]

हेनरी जेम्स ने इस सिलसिले में कहा है— 'उपन्यास जीवन के संघर्षमय चित्र हैं। डा० हर्बर्ट मुलर ने इसीसे मिलती-जुलती बात कही है—"उपन्यास मूलतः मानवीय अनुभव का निरूपण है चाहे वह यथार्थ हो या आदर्श और इस प्रकार उपन्यास में अनिवार्यतः जीवन की आलोचना रहती है।"[50]

उपर्युक्त दोनों विचारकों ने उपन्यास में जीवन के निरूपण को अनिवार्य माना है। पहले ने उपन्यास की वैयक्तिकता पर जोर दिया है। दूसरे ने उसके विषय-वस्तु का यथार्थ और आदर्श के रूप में—दो तरह के—विभाजन किये हैं और आलोचना तत्त्व को भी आवश्यक माना है।

वस्तुतः ये परिभाषाएं पूरे चित्र को उपस्थित नहीं करतीं। आज उपन्यास जीवन की परोक्ष-अपरोक्ष अभिव्यक्ति का सशक्ततम माध्यम तथा उसकी व्यापकता और समग्रता को छू रहा है। उसकी धारा जीवन की धारा की तरह विस्तृत और व्यापक है। उसे कुछ शब्दों में सीमित नहीं किया जा सकता।

हिन्दी के प्रतिनिधि साहित्यकारों ने उपन्यास के मूलतत्त्व की विवेचना करते हुए उसे मानव-चरित्र पर प्रकाश डालनेवाला और उसके रहस्यों को खोलनेवाला

---

४७ साहित्यालोचन, पृ० १८०

४८. कुछ विचार, पृ० १८

४९. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृ० २९

५० वही पृ० १०

बताया है।[११]

व्यक्ति के भीतर का अहंभाव जब सभी विरोधों की उपेक्षा कर निर्ममता से अपने को दृढ़ रखने का आयोजन करता है, तो उसके अन्दर का गुप्त सम्भावनांश उस आयोजन को पराजित कर स्वयं अपने को प्रतिष्ठित करने और वर्तमान रहने को भी साथ ही उत्सुक होता है। यह द्वन्द्वावस्था ही जीवन की चेष्टा का और उपन्यास का मूल है। इसीलिए राल्फ फाक्स ने कहा कि "मानव जीवन की विविध सर्वांगीण अभिव्यक्ति उपन्यासों में ही संभव है।" उपन्यास केवल गद्य में लिखी हुई कथा नहीं। राल्फ फाक्स ने उसे मानव-जीवन का गद्य माना है।[१२]

वाल्टर एलेन ने महान उपन्यासों में महान चरित्रों का रहना अनिवार्य माना है। उनका कहना है कि मानव-जीवन की विविधताओं को जितनी विशदता से उपन्यास चित्रित करते हैं उतनी विशेषता से काव्य नहीं।[१३]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही है, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं। इस कोटि में साधारणतः गद्य में लिखित और कल्पनाप्रसूत सम्पूर्ण कथा आ जाती है। इस तरह उपन्यासों में मानव-जीवन अपनी सम्पूर्ण विविधताओं विषमताओं और उलझनों के साथ चित्रित होते हैं जिसे मनोरंजन की व्यापक दृष्टि सजीव और सशक्त बना देती है। उपन्यासकार घटना और चरित्र के ईंट-गारे से जीवन का एक ऐसा महल खड़ा करता है जिससे समाज को अधिक सुखमय और उपयोगी जीवन का संदेश मिलता है।

उपन्यास का उद्भव—उपन्यास को श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत रखा गया है। कथा-साहित्य में मनुष्य की अभिरुचि प्रारम्भ से ही रही है। उसकी उत्सुकता की प्रवृत्ति ही कथा-साहित्य की लोकप्रियता के मूल में रही होगी। इसी प्रवृत्ति के कारण कथा में रोचकता आती है और पाठक की जिज्ञासा की समुचित तृप्ति के बाद ही उसका अन्त होता है।[१४]

आधुनिक हिन्दी गद्य का प्रारम्भ ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से होता है। उस समय भारत में आये अंग्रेजों के लिए देश की भाषा का ज्ञान आवश्यक था। इसी दृष्टि से और उन्हें सरलतापूर्वक भाषा की शिक्षा देने के लिए, साथ ही जो मनोरंजक भी हो ईंशा अल्लाखां ने 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की।

भारत में या किसी अन्य भारतीय भाषा में उपन्यास लिखने की परम्परा प्राचीन

---

११ कुछ विचार, पृ० ३८
१२ दी नाविल एंड दी पीपुल, पृ० २५
१३ दी इंग्लिश नावेल, पृ० १५
१४ हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ० १७

नहीं है। विश्वसाहित्य में यद्यपि मुरासकी रहनेवाली जापानी महिला लोसिकीबू द्वारा १००० ई० में उपन्यास की बुनियाद डाली गयी थी परन्तु १८वीं सदी के पहले उपन्यासों की समुचित महत्ता की स्थापना नहीं हुई। १९वीं सदी में आकर उपन्यासों ने विराट रूप लिया और उनकी महत्ता तथा लोकप्रियता की स्थापना हुई। इसी तरह यदि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' के उपन्यास होने का दावा छोड़ दिया जाय तो भारत में भी उपन्यासों का विकास आधुनिक युग की देन है।[५२]

हम पहले ही कह आये हैं कि यूरोप में आधुनिक उपन्यासों का विकास रेनासां काल से होता है—सर्वप्रथम इटली से। यह युग सामन्तवाद के ह्रास और नये व्यापारी पूँजीपति वर्ग के उदय का था। उस समय के उपन्यासों में प्रेम और साहस की नैतिक और पौराणिक कहानियां होती थीं जिनमें पतित स्त्रियों दुराचारी पादरियों, मसहूम किसानों और कुलीन घरों के सामन्तों का चरित्र चित्रण किया जाता था। इटली के उपन्यासकार बोकेशियो की हास्य और व्यंग्यपूर्ण रचना 'डी-केमरान' (१३४८) उस समय की विश्वविख्यात कृति है। उसके बाद स्पेन के लेखक सरवान्ते ने १७वीं सदी के प्रारम्भ में 'डान क्विक्जोट' की रचना की जिसने उस समय के साहित्य में उथल-पुथल मचा दी। १६वीं सदी में फ्रांस में रैबेल जैसा प्रतिभाशाली लेखक पैदा हुआ जिसने 'गरगन्चुआ' की रचना की। बाद के सौ वर्षों में फ्रांस में रोमानी और यथार्थ वादी उपन्यासों की रचना होती रही। इन सब देशों की उपन्यास-परम्परा से प्रेरणा और प्रभाव प्राप्त कर अंग्रेजी उपन्यासों का विकास हुआ और आधुनिक अर्थों में 'उपन्यास' ने अपनी प्रौढ़ता प्राप्त की। इसके पहले भी सोलहवीं शताब्दी के अंत में उपन्यासों की रचना का प्रारम्भ हो चुका था। १८वीं सदी से पहले सर फिलिप सिडनी का 'आर्केडिया' (१५९०) जान बनियन का 'पिलग्रिम्स' प्रोग्रेस (१६७८-८४) डानियल डीफो का 'राबिन्सन क्रूसो' (१७१९) और मोल फ्लेण्डर्स (१७२२) एवं जानेथन स्विफ्ट का गलिवर्स ट्रेवल्स (१७२६) प्रकाशित हो चुके थे। इन लेखकों ने सर्वोचित विधान द्वारा मानव-जीवन का यथार्थ चित्रण करके आधुनिक उपन्यासों के विकास की एक महान परम्परा तैयार कर दी थी।[५३]

इस महान परम्परा की गोद में विश्वसाहित्य में उपन्यास का प्रौढ़तम विकास तथा चरमोत्कर्ष हुआ। १८वीं और १९वीं सदी में इंगलैंड फ्रांस और रूस में असंख्य औपन्यासिक लेखकों की प्रतिभाओं ने विश्वसाहित्य का गौरव बढ़ाया। सेमुअल रिचार्डसन ओलिवर गोल्डस्मिथ जेम आस्टिन सर वाल्टर स्काट, चार्ल्स डिकेन्स थेकर जार्ज इलियट आदि इंगलैंड में वाल्टेयर, विक्टर ह्यूगो बालजक जोला अनातोले फ्रांस आदि फ्रांस में और रूस में पुश्किन गोगोल सर्गान्तीफ तुर्गनेव दास्तावस्की, टाल्सटाय जैसी कुछ ही महान प्रतिभाओं का नाम हम यहां गिनाते हैं।

इन लेखकों तथा उस काल की अन्य प्रतिभाओं ने साहित्य के अन्य रूपों से

---

५२. आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य पृ० १९

५३ हिन्दी गद्य-साहित्य पृ० ५०

भिन्न उपन्यास की अलग सत्ता स्थापित की। इनके उपन्यासों का वर्गीकरण छायावादी, यथार्थवादी साथ ही प्रभाववादी और प्रकृतिवादी के रूप में हुआ। साथ ही उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि वस्तु-निरूपण की दृष्टि से उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन और जीवन की समस्याओं को उपस्थित करना या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अंकित करना है। रूपविधान और वस्तु-विन्यास के संबंध में भी यह निश्चित हो गया कि उपन्यास में कथानक और चरित्र-चित्रण ही प्रमुख हैं। यह भी स्थापना हुई कि उपन्यास चाहे कितना भी यथार्थ क्यों न हो वह लेखक के उर्वर मस्तिष्क और संवेदनशील हृदय की कल्पना-जन्य कृति है—सिर्फ बाह्य जीवन की अनुकृति नहीं और वह कल्पना मानव जीवन और मानव-अनुभवों पर आधारित है।

उपन्यासों का विकास गद्य के विकास के साथ जुड़ा हुआ है और गद्य के विकास को हर युग में नवयुग का आगमन कहा गया है। इस तरह भारत या पाश्चात्य देशों में उपन्यास आधुनिक औद्योगिक युग की देन है। इसीलिए वे पद्यबद्ध भी नहीं होते। जिन परिस्थितियों ने उपन्यास के विकास में सहायता दी है, उन्हींने गद्य के विकास में भी सहायता दी। यूरोप में गद्य में लिखित उपन्यासों के पूर्व प्रेमाख्यानक कविताएं प्रचलित थीं जिन्हें उपन्यासों की जननी कह सकते हैं।[१७]

उस समय मध्ययुगीन सभ्यता का अंत तथा नवीन औद्योगिक सभ्यता का आविर्भाव हो रहा था। इसी नई औद्योगिक सभ्यता के साथ ही नवीन मध्यवर्ग की सत्ता स्थापित हो रही थी। इस तरह उपन्यास जहां एक ओर गद्यसाहित्य के निर्माण और विकास का समकालीन है वहां वह मध्यवर्ग के उत्थान का भी समसामयिक है। यही उसकी साहित्यिक और सामाजिक स्थिति विशेष है।[१८]

विचारों के क्षेत्र में इस नवीन युग का आरम्भ धार्मिक विचारधारा के स्थान पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और व्यक्तिमूलक विचारों के साथ हुआ। इससे भी उपन्यासों के विकास में सहायता मिली। क्योंकि धार्मिक युग में उपन्यासों के लिए स्थान नहीं था क्योंकि उपन्यासों का संबंध व्यक्ति के वास्तविक दैनिक जीवन से है और उसमें साधारण दैनिक घटनाओं का भी पूरा योग रहता है।[१९]

उपन्यास और कहानियां नये यंत्र-युग के सभी गुण-दोषों के साथ उपस्थित हुईं। छापे की कल ने इनकी मांग बढ़ायी और पूर्ति भी की। यह भी एक गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियां संस्कृत की कथा और आख्यायिका की सीधी सन्तान हैं। हां, ऐसा एक युग अवश्य रहा है जब कादम्बरी और दशकुमार चरित की रीति पर सभी प्रांतीय भाषाओं में उपन्यास लिखे गये थे। इसीलिए कहीं-कहीं तो उपन्यास का पर्याय वाची शब्द ही कादम्बरी है।[२०]

---

१७ हिन्दी गद्य साहित्य, पृ० ४६

१८ आलोचना (इतिहास विशेषांक), पृ० १११

१९ आधुनिक साहित्य पृ० १२५

२० आधुनिक हिन्दी-साहित्य, पृ० [illegible]

उपन्यास, कहानी, लघु कहानी और लघु उपन्यास

उपन्यास तथा कहानी दोनों कथात्मक गद्य-साहित्य के रूप हैं। दोनों में कथा की प्रधानता होती है। दोनों में कथावस्तु द्वारा पाठकों की कुतूहल वृत्ति जगा कर उन्हें आकर्षित किया जाता है। दोनों में पात्र संवाद आदि का सौन्दर्य होता है। परन्तु आकार की दृष्टि से उपन्यास बृहद और कहानी लघु रचना है। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ कई गौण कथाएं होती हैं। पर कहानी में सिर्फ एक कथा होती है। उपन्यास में जीवन के व्यापक अंगों का चित्रण होता है। पर कहानी में जीवन के एक अंग की झांकी रहती है। उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक कथोपकथन लंबे और व्यापक पदावली युक्त होते हैं। कहानी में यह संभव नहीं। कहानी का एक रूप भावात्मक भी होता है। पर भावप्रधान उपन्यास देखने में प्रायः नहीं आते। उपन्यास का स्वरूप लघु कथा या कहानी से इस मानी में भी भिन्न होता है कि कहानी जीवन का एक मार्मिक चित्र परिस्थिति की विशेषता, घटनाओं के मार्मिक उद्घाटन के साथ उपस्थित करती है। इन तीनों के योग से उसका अभिष्ठ प्रभाव उत्पन्न होता है।"[७१]

अब हम गल्प या लघु कहानियों पर भी विचार करें। यद्यपि उपन्यास और गल्प दोनों का आधार और प्रणाली एक है। तथापि इन दोनों को अब भिन्न समझा जाने लगा है। कुछ लोगों की धारणा है कि गल्प का नवीन आविष्कार अमेरिका के कहानी-लेखक हाथर्न और पो ने किया। पर यह धारणा उचित प्रतीत नहीं होती। इसके आविर्भावक प्रसिद्ध उपन्यासकार स्काट और डिकेन्स आदि हो चुके हैं। हां, यह अवश्य है कि अमेरिका के उपर्युक्त लेखकों ने स्काट और डिकेन्स आदि की कहानियों का रूप शृंगार किया उसे नवीन साज-सज्जा दी और उसे एक स्वतंत्र कला-कोटि में ला बिठाया। परन्तु मूल में वे फिर भी भिन्न नहीं हैं। हां, आगे चलकर गल्प या छोटी कहानी का उद्देश्य जीवन की एक मार्मिक झलक दिखाना हो गया जिससे अब यह उपन्यास के कथाभाव से स्वतंत्र हो गई। अब यह जीवन के चतुर्दिक चित्रों को अंकित करना छोड़ केवल एक क्षण में घनीभूत चित्र का दृश्य उपस्थित करती है। इसीलिए, इन दिनों यद्यपि यह आकार में लघु उपन्यास से बड़ी भी हो पर उसकी गणना गल्प ही की जाती है।"[७२]

फिर भी यह अवश्य है कि उपन्यास और गल्प दोनों वस्तुतः एक ही जाति की चीजें हैं। शुरू में तो छोटे उपन्यास को ही कहानी कहते थे। परन्तु प्रेस और सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से छोटी कहानियों का बड़ा प्रचार हुआ और उपन्यास से बिल्कुल स्वतन्त्र हो गयी।"[७३]

अब आकार मात्र कहानी की विशेषता नहीं है। कहानी का अपना एक लक्ष्य

---

७१ आधुनिक साहित्य, पृ० १२२
७२ साहित्यालोचन पृ० १८०
७३ साहित्य का साथी, पृ० ९६

होता है। कम-से-कम पात्रों और घटना की योजना द्वारा उस उद्देश्य की पूर्ति की जाती है। वहाँ घटना और पात्र निमित्त तथा लक्ष्य ही प्रधान होता है। पर उपन्यास में चरित्रों और घटनाओं की प्रधानता रहती है। वे केवल निमित्त मात्र नहीं। उनका स्वच्छन्द विकास होता है। और यही कहानी तथा उपन्यास में प्रधान भेद है।

इसका यह अर्थ नहीं कि कहानी में घटना और पात्र गौण होते हैं। पर प्रथम प्रधानता लक्ष्य को मिलती है। उस लक्ष्य की सिद्धि के लिए पात्रों और घटना की सृष्टि होती है और लेखक का व्यक्तिगत मत भी अधिक स्पष्ट होता है।

कुछ विद्वानों ने इस भेद को समझाते हुए यह भी कहा है कि उपन्यास एक शाखा प्रशाखा वाला विशाल वृक्ष है और कहानी एक कोमल, सुकुमार लता। कुछ ने यह भी कहा है कि उपन्यास और कहानी का वही सम्बन्ध है जो महाकाव्य और गीति काव्य का। इन सबसे यह स्पष्ट है कि उपन्यास में जहाँ पूरे जीवन का चित्रण होता है, वहाँ कहानी में जीवन की एक झाँकी मात्र मिलती है। मानव-चरित्र के किसी एक पहलू पर या किसी घटना पर प्रकाश डालने के लिए ही छोटी कहानी लिखी जाती है। इसीलिए इसमें बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुंजाइश नहीं।

इसके सिवा कहानी की भाषा भी सरल और सुबोध होनी चाहिए। यह साधारण जनता के लिए लिखी जाती है। वहाँ सरलता में सरसता पैदा कीजिए, यही खूबी है।[७४]

बृहद् और लघु उपन्यास का भेद आकार के आधार पर है। उपन्यास में असंख्य घटनाओं और अनेक पात्रों की योजना सहज ही में की जा सकती है। लघु उपन्यास जीवन या समाज के किन्हीं विशेष प्रश्नों को उपस्थित करते हैं और तदनुसार समस्त योजना आती है।[७५]

ध्यान से देखने पर यह भी कहा जायगा कि लघु उपन्यास किसी एक खास चित्र को उपस्थित करना चाहते हैं। इसलिए कथानक की इस संक्षिप्त योजना के अनुसार ही पात्रों की सृष्टि होती है। लघु उपन्यास का प्रधान पात्र नियोजक-सा काम करता और इसी तरह आकर्षण का केन्द्र बनता है। उसी तरह अन्य पात्रों को भी अधिक प्रभावशाली बनना पड़ता है। उदाहरण के लिए रघुवंश महाकाव्य और मेघदूत गीति काव्य को लें। रघुवंश में सम्पूर्ण रघु-परम्परा ही आकर्षण का केन्द्र है। किन्तु मेघदूत में विरही यक्ष है। बृहद् और लघु उपन्यास के पात्रों में भी यह विभेद है। लघु उपन्यास में प्रमुख नायक ही कथा का केन्द्र बिन्दु है। उसके तथा अन्य पात्रों के व्यक्तित्व में कुछ विशेषता प्रदान करना आवश्यक होता है। कभी-कभी उसे असाधारण भी बनाना पड़ता है। व्यक्तिगत गुणों के साथ ही सामाजिक तत्त्व वाले सत्य का वह अन्वेषी है। उसी में उसके जीवन का आदि-अन्त सन्निहित है। वे अपने आप से संघर्ष भी करते हैं और उसी से उनका चरित्र निखरता है। उसका चरित्रगत आन्तरिक द्वन्द्व यदि उसके

---

७४ कुछ विचार पृ० २४

७५. आलोचना (उपन्यास विशेषांक) पृ० १६७

सामाजिक कर्त्तव्यों में बाधा न बने तो उपन्यास को सफलता मिलती है।"[76]

निष्कर्ष यह कि कहानी में पात्रों से जीवन आता है। कहानी के पात्र उपन्यास के पात्रों से भिन्न होते हैं। उपन्यास में चरित्र चित्रण की गुंजाइश अधिक है। कहानी में चरित्र के किसी विशिष्ट पक्ष का ही चित्रण सम्भव है। कहानी की दुनिया छोटी और उसके प्रारम्भ भी छोटे होते हैं। और यह कि चरित्र-चित्रण या चेतना-प्रवाह के उद्घाटन में कहानी उपन्यास की प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकती।"[77]

इसके अलावा साहित्य के अन्य अंगों यानी नाटक, काव्य प्रबन्धकाव्य— जिन का रूप-विधान भी उत्तम है—उपन्यास और कहानियाँ यथार्थ के अधिक निकट हैं। इसीलिए उपन्यास और कहानी के पाठक वर्णित पात्रों के उत्थान-पतन उनकी मनोभावना से शीघ्र अपनापन स्थापित कर लेते हैं उनके दुख से दुखी सुख से सुखी होते हैं और यही यथार्थ की पकड़ रचनाओं को सफल या असफल बनाती है। यही कारण है कि विष्णु शर्मा से लेकर प्रेमचन्द तक सामाजिक यथार्थ जिस मात्रा में मिलता है उतना वाल्मीकि से लेकर दिनकर तक नहीं। "कथावाचकों ने हमें होरी गोबर और झुनिया दिये प्रबन्धक काव्यकार अभी तक हमें राम, कृष्ण, मनु और करण देते आ रहे हैं।"[78]

चरित्र विकास विश्लेषण

इसलिए हम ऐसा मान सकते हैं कि एकमात्र चरित्र या पात्र ही कथा का मेरुदण्ड है। पात्र और चरित्र के इर्द-गिर्द फैला हुआ वातावरण परिस्थितियाँ और आवेष्टन ही लेखक या कलाकार के लिए कच्चा माल है जिसे पक्का (मैगनिफाइड) बनाकर वह नाटक कहानी, आख्यायिका अथवा उपन्यास जीवनवृत्त आत्म-चरित्र, भ्रमण-वृत्तान्त और महाकाव्य आदि का कलेवर तैयार करता और उसे सजाता है। कथा का प्रधान लक्ष्य चरित्र-चित्रण द्वारा मानव-संवेदना को जाग्रत करना है। इस संवेदन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ही वह घटनाओं का सृजन करता है और संगीत की रीति की तरह आरोह, अवरोह की गति संचालित करता है, क्लाइमैक्स पर पहुंचता और उतरता है।

इतिहास भी घटनाओं और चरित्रों का वर्णन है। इसलिए इतिहास भी कथा साहित्य की कोटि में आते हैं। किन्तु, दोनों में मौलिक विभेद है। इतिहास यथार्थ व्यक्तियों के वास्तविक व्यापार का उल्लेख करते हैं और इस तरह वे घटनाओं के चित्रण में यथार्थता लाते हैं। पर कथा-साहित्य में देश, काल और पात्र के साथ ही घटनाओं का वर्णन भी कलात्मक ढंग से उपस्थित किया जाता है। कथा-साहित्य भी सत्य पर आधारित होता है पर उसके मूल में मानव प्रकृति और तज्जन्य व्यापार का

---

७६ वही
७७. हिन्दी कहानी, पृ० १४
७८. दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि पृ० १०७

वास्तविक रूप उपस्थित करता है। कथा-साहित्य की घटना सत्य होने पर भी उसके नाम कल्पित हो सकते हैं। किन्तु, इतिहास में ऐसा नहीं हो सकता। घटना और नाम का सत्य होना ऐतिहासिकता की रक्षा के लिए आवश्यक है।

पात्र और चरित्र-रहित कथा की कल्पना नहीं की जा सकती। वे कथा के लिए अनिवार्य हैं। चाहे कथा में चरित्र-चित्रण की सुस्पष्ट योजना न भी हो पर चरित्र तो हर हालत में होगा ही। चरित्र के आधार पर ही कथा का महल खड़ा किया जा सकता है। निबन्ध और भाषण जसी विचारात्मक रचनाओं में भी चरित्र की स्थापनाओं को मानना ही पड़ता है क्योंकि वहां भी अभिव्यक्ति का माध्यम कोई एक प्रारम्भी आवश्यक है जो अपनी व्यक्तिगत संवेदना और विशेषताओं का भी परिचय देता है। नाटक, उपन्यास कहानी, महाकाव्य खंडकाव्य, रेखाचित्र आदि सृजनात्मक साहित्य में तो चरित्र की महत्ता सर्वसम्मत है।

भारतीय मत के अनुसार नाटक में सिर्फ तीन तत्त्वों को माना गया है—वस्तु, नाटक और रस। पाश्चात्य आचार्यों के मतानुसार इन तत्त्वों की संख्या सात तक पहुंच जाती है—कथावस्तु, पात्र कथोपकथन, देश-काल, उद्देश्य शैली, अभिनेयता। इससे स्पष्ट है कि पात्र का स्थान दोनों मतों में सर्वोपरि और विशिष्ट है।[७९]

नाटक में अनेक पात्रों के माध्यम से घटनाओं का विकास होता है। नाटक के प्रमुख पात्र को नायक और उसकी पत्नी या प्रेयसी को नायिका कहा जाता है।

नाटक उपन्यास और कहानी के चरित्र चित्रण में अन्तर भी है। नाटक में चरित्र-चित्रण का स्वच्छन्द अवसर नहीं मिलता। उसे पात्रों के द्वारा ही अपने मनो भावों का स्पष्टीकरण करना पड़ता है। वह उपस्थित परिस्थितियों (Situation) के घेरे में रहता है। अतः कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नाटककार के लक्ष्य और अभीष्ट के विपरीत भी फल निकल आते हैं। उसे तो अपनी ओर से पात्रों के विषय में कुछ कहने की स्वतन्त्रता है नहीं। इसलिए कथावस्तु, घटनाओं और कथोपथन द्वारा ही उसे अपने चरित्रों की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालने की मजबूरी है।

उपन्यासों में चरित्र-चित्रण के लिए साक्षात और परोक्ष या अभिनयात्मक दोनों ही तरीकों को अपनाया जा सकता है। पर नाटकों में सिर्फ तीन प्रकार से चरित्र चित्रण हो सकते हैं।[८०]

पहला कथोपकथन द्वारा। पात्रों के आपसी वार्तालाप द्वारा उनकी चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है।

दूसरा, स्वगत कथन। एकान्त में जब मनुष्य अपने-आप सोचता है और मन के विकारों या विचारों को प्रकट करता है तो उससे उसकी चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। स्वगत-कथन द्वारा आन्तरिक या मानसिक संघर्ष का भी चित्रण होता है।

तीसरा कार्यकलाप। मनुष्य की उच्चता या नीचता का पता उसके कामों से

७९. साहित्य विवेचन, पृ० २२०
८०. साहित्य विवेचन, पृ० २२१

ही चलता है। उसके कार्यों से ही उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

पात्रों की पुष्ट योजना महाकाव्य में भी आवश्यक मानी गई है। खंडकाव्य, प्रेमगीत शोकगीत और उपालंभगीत आदि पात्रों के मनोभाव को ही व्यक्त करते हैं। शोकगीतों में मुग्धा के माध्यम से प्रेम-निवेदन या प्रेमी प्रेमिका की आपसी बातचीत आदि पात्रोचित अनुभूतियों के ही उदाहरण हैं। रेखाचित्र और जीवनी तो उल्लेख्य पात्र या व्यक्ति के प्रत्यक्ष जीवन का ही परिचय देते हैं।

मानवता का जीवन-यापन साहित्य-सृष्टि का विषय है। कथा-साहित्य द्वारा उस जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति होती है। मानव चरित्र या चरित्र का चित्र जैसे जैसे विकसित होता है बदलता है वैसे-वैसे कथा-साहित्य में विभिन्नता और अन्तर आता-जाता है। इसीलिए प्रेमचन्द उपन्यास को कथा-साहित्य का प्रधान अंग मानते हैं।[८१] जबकि मानव का वैयक्त और मानवत्व कथा साहित्य के अंग बन जाते हैं तो दूसरी तरफ महाकाव्य में युग की विशिष्ट काव्यात्मक गरिमा को ही स्थान मिलता है। चरित्र का प्रयोग वहां भी होता है। पर उपन्यास में चरित्र को जितनी विशिष्टता प्राप्त होती है उतनी साहित्य के किसी अन्य रूप में नहीं। इसलिए उपन्यास को उस चम त्कारिक कला-कौशल की भी आवश्यकता नहीं जिसके बिना महाकाव्य का प्रभाव क्षीण हो जाता है।[८२]

इन्हीं कारणों से उपन्यास-लेखक के लिए सतर्क कला की नहीं सतर्क दृष्टि की आवश्यकता होती है, महान कल्पना नहीं उदात्त चेतना की आवश्यकता है। जैनेन्द्र कुमार का मत है— 'अपने साहित्य में कुछ मैंने शब्द के द्वारा कहा है, कुछ चित्र के द्वारा व्यक्त किया है क्रियात्मक यानी कथा-साहित्य। वहां आप तो कुछ कहते नहीं, कथा के पात्र ही कहते-सुनते हैं फिर उनकी बातें उनकी प्रवृत्ति और कथा की परि स्थिति से बनती हैं। कोई परस्पर की अनुकूलता होना उनमें जरूरी है। बल्कि प्रति कूलता और मतविरोध भी उनमें हो सकते हैं। मुझे यह भी लगता है कि एक कथा की पात्रों की या व्यक्तित्व की भिन्नता में जितना गहरा और गम्भीर विरोध समा सकता है उतना ही उसका महत्त्व है। फिर कथा के किस पात्र या पात्र के किस कार्य और समूची वस्तु के किस पहलु में उस मन्तव्य को देखा जाय जिसको लेख समझकर लेखक ने कलम उठाई है। स्पष्ट ही इस निर्धारण का काम मुश्किल है और जोखम से भरा है।'[८३] साधारणतः उपन्यास-लेखक दो तरह से अपने पात्रों के चरित्र का विकास करता है—घटनाओं से उसका संघर्ष दिखाकर और पात्र के भीतर स्वाभाविक अंकुर के विशेष गुण का निमित्त बनाकर। पहले को बाह्य उपकरण मूलक और दूसरे को आन्तरिक उपकरणमूलक विकास कहते हैं। यह दूसरी तरह का विकास ही स्वाभाविक

---

८१ कुछ विचार, पृ० १८
८२ आलोचना (इतिहास अंक),
८३ साहित्य का श्रेय और प्रेय पृ० १४

और हृदयग्राही होता है।"[८३]

चरित्र-विकास में वार्तालाप का महत्वपूर्ण स्थान है। "यह वार्तालाप रस्मी नहीं होना चाहिए। किसी चरित्र के मुंह से निकलने वाले प्रत्येक वाक्य द्वारा उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ना चाहिए।"[८४]

'उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट गहरा और विकासपूर्ण होगा पाठकों पर उसका उतना ही गहरा असर पड़ेगा।[८५] उपन्यास के चरित्र भी लेखक की कल्पना में पूर्णरूप से नहीं आ जाते। उनका क्रमशः विकास होता है। यह विकास इतने गुप्त या अस्पष्ट रूप से होता है कि पाठक को किसी तब्दीली का ज्ञान भी नहीं होता। अगर चरित्रों में किसीका विकास रुक जाय तो उसे उपन्यास से हटा देना चाहिए क्योंकि उपन्यास चरित्रों का ही विषय है। अगर उसमें विकास दोष है तो वह उपन्यास कमजोर हो जाएगा। कोई चरित्र अन्त में भी वैसा ही रहे जैसा वह पहले था—उसके बल बुद्धि और भावों का विकास न हो तो वह असफल चरित्र है।"[८६]

चरित्र-चित्रण उपन्यास का प्रधान अंग है। प्रसिद्ध लेखक और उपन्यास-कला के आचार्य श्री शरच्चन्द्र चटर्जी का कहना था—"चरित्रों के क्रम विकास के लिए मैं बहुत अधिक सावधान रहता हूं। घटनाओं का प्रभाव चरित्रों के ऊपर कई रूपों में पड़ता है। गौण तथा मुख्य रूप से प्रभावित करने के साथ ही कुछ घटनाएं ऐसी भी हैं जो केवल चरित्रों की रूपरेखा ही दर्शाती हैं और अथवा अधिक से अधिक सूक्ष्मरूप से उनके विकास में सहयोग देती हैं। घटनाओं की प्रतिक्रिया या क्रिया ही चरित्रों के उत्थान तथा पतन का कारण होती हैं और उनमें सहयोग देती हैं। इसी को चरित्रों का क्रम-विकास कहा जाता है।"[८७]

किन्तु कहानियों में चरित्र के विकास का वैसा अवसर नहीं प्राप्त हो सकता जैसा उपन्यासों में। उपन्यास में पूरा जीवन चित्रित होता है और कहानियों में जीवन की एक झांकी दिखाई जाती है। इसी एक झलक में कहानीकार को घटनाओं कार्य व्यापारों संवाद, परिस्थिति आदि कई बातों पर ध्यान देना पड़ता है। इसलिए चरित्र के विकास का इस में पूरा अवसर नहीं मिल सकता। फिर भी हिन्दी में एकाध ऐसी कहानी है जिसमें चरित्र के निर्देशन का विकास का नहीं मौका मिल पाया है उदाहरण के लिए प्रेमचन्दजी की 'बड़े भाई साहब' नामक कहानी। अधिकतर कहानियों में एक ही पात्र प्रमुख होता है। एक ही पात्र पर ध्यान देने से कभी-कभी शील का स्थूल आभास भी अच्छी साहित्यिक कहानियों में दिखाई देता है। गुलेरीजी की कहानी 'उस ने कहा था' में लहनासिंह का चरित्र उसका उदाहरण है। स्वाभाविक है कि जीवन

---

८४ साहित्य का साथी, पृ० ७६

८५. कुछ विचार, पृ० ५५

८६. वही

८७ उपन्यास कला, ५५६

की मात्र एक झाँकी होने के कारण कहानियों में जो चरित्र व्यक्त होता है, वह जीवन का अंशमात्र होता है।[८८]

चरित्र-चित्रण आज की कहानियों में कथानक से अधिक महत्त्व प्राप्त कर रहा है। कहानियों में पात्र के सम्पूर्ण चरित्र को प्रकाशित करने वाले एक अंश पर जोर डाला जा रहा है जो उस पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाश पुंज से भर देते हैं। वस्तुतः आज वही कथा सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है जिसमें किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की व्याख्या के लिए पात्रों का सृजन तथा उनका चरित्र चित्रण हो।[८९] ऐसे चरित्र चित्रण के लिए लेखक के लिए मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान आवश्यक है। वैसे तो सभी पात्र लेखक की कल्पना की उपज हैं। पर उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी निखरना चाहिए। मात्र लेखक के कठपुतले होने से पाठक के लिए वे अरुचिकर व्यर्थ और आकर्षणहीन होंगे। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार विलियम थेकरे का कहना था कि उसके पात्र उसके वश में नहीं रहते, वरन् उसकी लेखनी उन पात्रों के वश में हो जाती है। वास्तव में पात्रों के सजीव और स्वाभाविक चित्रण के लिए लेखक का उनसे तटस्थ रहना आवश्यक है। पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उपस्थित करने के लिए वह उसके वैयक्तिक मानसिक और सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण से अवश्य सहायता ले सकता है। उपन्यास लेखक की सफलता या असफलता का बहुत अंश इसी एक बात पर निर्भर करता है।

चरित्र-प्रधान उपन्यास जीवन की व्याख्या द्वारा मनोरंजन के साथ ही उपदेश देने वाले भी होते हैं। जीवन की वास्तविक तथा विस्तृत व्याख्या में वही सफल होगा जिसकी दृष्टि पैनी हो। अपने इर्द-गिर्द फैले संसार, उसके सुख-दुख, आनन्द विषाद को तो सभी देखते हैं सोचते भी हैं। पर सिनेमा के चलचित्रों की भाँति उनके मानस पटल पर सांसारिक घटनाओं का अस्तित्व और स्मृति क्षणिक होती है। पर वही घटनाएं पैनी दृष्टिवाले व्यक्ति के लिए भावमयी और स्थायी अनुभूति का रूप ले लेती हैं। वह अपने इर्द-गिर्द फैले संसार को देख-परखकर उन्हें अपने में आत्मसात कर लेता है। उसकी सजग इन्द्रियाँ उसके सदा चौकन्ने प्राण, उसकी हृदयग्राही अनुभूतियाँ साधारण वस्तुओं का यथार्थ मर्म उपस्थित करती हैं और उन वस्तुओं का उपयोगकर साहित्य की सृष्टि होती है।[९०]

मनोवैज्ञानिकों ने भी मस्तिष्क की दो मुख्य अवस्थाएं मानी हैं। पहली चैतन्यावस्था दूसरी अर्धचैतन्यावस्था। अर्धचैतन्यावस्था में ज्ञानभंडार छिटपुट रूप मनुष्य के मस्तिष्क में उपस्थित रहता है। जिस प्रकार बिजली का बटन दबाकर आप अन्धकारपूर्ण कमरे को आलोकित करते हैं उसी प्रकार उपन्यासकार अपने चौकन्ने और सजग मन को जाग्रत कर उस छिटपुट ज्ञान को एकत्रित कर साहित्य सृष्टि के लिए उसका उपयोग करता है। यह मानसिक प्रक्रिया जिस लेखक में जितनी

---

८८ वाङ्मय विमर्श, पृ० १८
८९. कुछ विचार पृ० १०
९० दृष्टिकोण, पृ० १०१

अभिज्ञाविनी होगी वह अपने अनुभवों को उतना ही सजीव और स्वाभाविक रूप में उपस्थित कर सकेगा और पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम होगा। जिस चीज को जैसा हम देखते हैं, सुनते हैं सूंघते हैं चखते हैं अनुभव करते हैं, उसे कला के सांचे में ढालकर उपस्थित करना एक सफल उपन्यासकार का ही काम है।

चरित्र तो पात्र के गुण-दोषों का लेखा-जोखा है जो कि समाज की ही एक प्रणाली है। समाज स्वयं एक निरन्तर परिवर्तित होने वाली संस्था है। और, परिस्थिति का कर्ता तथा नियामक होने के बावजूद मनुष्य परिस्थिति का दास है। ठीक उसी तरह जिस तरह राष्ट्र। स्वयं अपने बनाये नियमों की अवहेलना करने की उसे स्वतन्त्रता नहीं है उसे उन नियमों की दासता स्वीकार करनी ही पड़ती है। देश काल पात्र समाज और परिस्थिति के दायरे में रहकर ही गुण और दोषों की विवेचना की जा सकती है। इन वस्तुओं को छोड़कर चरित्र चित्रण में किसी गुण अथवा दोष को एक ही प्रमाण में प्रदर्शित करना व्यापक नियमों के विरुद्ध है। अन्यथा संभव है कि जो बात आप समझते रहे हों वह ठीक आपकी समझ के विपरीत हो। साथ ही सच्चाई यह भी है कि एक ही बात भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने पर भिन्न-भिन्न रूप-रंग की भी दिखाई पड़ती है।

चरित्र और चरित्र-चित्रण

मानवता के नाते उपन्यास का पात्र भी इसी सांसारिक उधेड़बुन में पड़ा हुआ एक प्राणी है। उसका हृदय एक छोटा-सा संसार है। उसके गुण-दोषादि द्वन्द्व हृदय और मस्तिष्क के दो पाटों के बीच पिसते हैं जिसका प्रभाव सिर्फ उस पर ही नहीं उसके संसर्ग में आने वाले सभी प्राणियों पर पड़ता है। पात्र के जीवन में उत्थान-पतन और परिवर्तन करने वाली अन्तस की इस अटूट शृंखला का ही नाम अन्तर्द्वन्द्व है। इस अन्तर्द्वन्द्व को जो लेखक जितने सुन्दर रूप में चित्रित कर सकता है, वह उतना ही सफल होता है।

पात्र का चरित्र ही उसका जीवन-परिचय है। दैनिक जीवन में किसी नये व्यक्ति के संसर्ग में आने पर हम उससे पूर्ण परिचित हो जाना आवश्यक समझते हैं। चरित्र-संबंधी यह परिचय इसलिए भी जरूरी है कि भविष्य में उसके द्वारा कोई हानि न हो। उसके विषय में पहले ही जितना मालूम हो जाय उतना ही अच्छा है। पर उपन्यास के पात्र के विषय में ठीक इसके विपरीत बात है। यदि उसके चरित्र के संबंध में सभी बातें पहले ही स्पष्ट हो जाएं तो पाठक की उसमें कोई दिलचस्पी या उत्सुकता शेष न रहेगी। फलतः उसकी आनन्दानुभूति में कमी पड़ेगी। इसीलिए उनका यथास्थान उद्घाटन ही कलात्मक और अच्छा है।

इसका कारण यह है कि वास्तविक जीवन और उस वास्तविकता के आधार पर कल्पित पात्र के जीवन में अन्तर है। मनुष्य प्रतिदिन के जीवन के भावों को उसी रूप में ग्रहण करता है जिस रूप में वे उपस्थित होते हैं। किन्तु साहित्य में प्रयुक्त भाव

की मात्र एक झांकी होने के कारण कहानियों में जो चरित्र व्यक्त होता है, वह जीवन का अंशमात्र होता है।[८८]

चरित्र-चित्रण आज की कहानियों में कथानक से अधिक महत्व प्राप्त कर रहा है। कहानियों में पात्र के सम्पूर्ण चरित्र को प्रकाशित करने वाले एक अंश पर जोर डाला जा रहा है जो उस पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाश पुंज से भर देते हैं। वस्तुतः आज वही कथा सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है जिसमें किसी मनोवैज्ञानिक सत्य की व्याख्या के लिए पात्रों का सृजन तथा उनका चरित्र-चित्रण हो।[८९] ऐसे चरित्र-चित्रण के लिए लेखक के लिए मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान आवश्यक है। वैसे तो सभी पात्र लेखक की रचना की उपज हैं। पर उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी निखरना चाहिए। मात्र लेखक के कठपुतले होने से पाठक के लिए वे अरुचिकर व्यर्थ और आकर्षणहीन होंगे। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार विलियम थैकरे का कहना था कि उसके पात्र उसके वश में नहीं रहते वरन् उसकी लेखनी उन पात्रों के वश में हो जाती है। वास्तव में पात्रों के सजीव और स्वाभाविक चित्रण के लिए लेखक का उनसे अलग रहना आवश्यक है। पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उपस्थित करने के लिए वह उसके वैयक्तिक मानसिक और सामाजिक परिस्थितियों के विवरण से अवश्य सहायता ले सकता है। उपन्यास लेखक की सफलता या असफलता का बहुत अंश इसी एक बात पर निर्भर करता है।

चरित्र-प्रधान उपन्यास जीवन की व्याख्या द्वारा मनोरंजन के साथ ही उपदेश देने वाले भी होते हैं। जीवन की वास्तविक तथा विस्तृत व्याख्या में वही सक्षम होगा जिसकी दृष्टि पैनी हो। अपने इर्दगिर्द फैले संसार, उसके सुख-दुख आनन्द विषाद को तो सभी देखते हैं भोगते भी हैं। पर सिनेमा के चलचित्रों की भांति उनके मानस-पटल पर सांसारिक घटनाओं का अस्तित्व और स्मृति क्षणिक होती है। पर वही घटनाएं पैनी दृष्टिवाले व्यक्ति के लिए भावमयी और स्थायी अनुभूति का रूप ले लेती हैं। वह अपने इर्दगिर्द फैले संसार को देख-परखकर उन्हें अपने में आत्मसात कर लेता है। उसकी सजग इन्द्रियां उसके सदा चौकन्ने मन उसकी हृदयग्राही अनुभूतियां साधारण वस्तुओं का यथार्थ मर्म उपस्थित करती हैं और उन वस्तुओं का उपयोगकर साहित्य की सृष्टि होती है।[९०]

मनोवैज्ञानिकों ने भी मस्तिष्क की दो मुख्य अवस्थाएं मानी हैं। पहली चैतन्यावस्था दूसरी अर्धचैतन्यावस्था। अर्धचैतन्यावस्था में ज्ञानभंडार छिटपुट रूप मनुष्य के मस्तिष्क में उपस्थित रहता है। जिस प्रकार बिजली का बटन दबाकर आप अन्धकारपूर्ण कमरे को आलोकित करते हैं उसी प्रकार उपन्यासकार अपने चौकन्ने और सजग मन को जाग्रत कर उस छिटपुट ज्ञान को एकत्रित कर साहित्य सृष्टि के लिए उसका उपयोग करता है। यह मानसिक प्रक्रिया जिस लेखक में जितनी

---

८८ वाङ्मय विमर्श पृ० ६५
८९. कुछ विचार, पृ० ३०
९० दृष्टिकोण पृ० १०१

ग्रभिव्यक्तिनी होगी वह अपने अनुभवों को उतना ही सजीव और स्वाभाविक रूप में उपस्थित कर सकेगा और पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल होगा। जिस चीज को जैसा हम देखते हैं, सुनते हैं सूंघते हैं, चखते हैं अनुभव करते हैं उसे कथा के सांचे में ढालकर उपस्थित करना एक सफल उपन्यासकार का ही काम है।

चरित्र तो पात्र के गुण-दोषों का लेखा-जोखा है जो कि समाज की ही एक प्रणाली है। समाज स्वयं एक निरन्तर परिवर्तित होने वाली संस्था है। और, परिस्थिति का कर्त्ता तथा नियामक होने के बावजूद मनुष्य परिस्थिति का दास है। ठीक उसी तरह जिस तरह राष्ट्र। स्वयं अपने बनाये नियमों की अवहेलना करने की उसे स्वतन्त्रता नहीं है उसे उन नियमों की दासता स्वीकार करनी ही पड़ती है। देश काल पात्र समाज और परिस्थिति के दायरे में रहकर ही गुण और दोषों की विवेचना की जा सकती है। इन वस्तुओं को छोड़कर चरित्र चित्रण में किसी गुण अथवा दोष को एक ही प्रमाण में प्रचलित करना व्यापक नियमों के विरुद्ध है। अन्यथा संभव है कि जो बात आप समझते रहे हों, वह ठीक आपकी समझ के विपरीत हो। साथ ही सच्चाई यह भी है कि एक ही बात भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने पर भिन्न भिन्न रूप रंग की भी दिखाई पड़ती है।

चरित्र और चरित्र चित्रण

मानवता के नाते उपन्यास का पात्र भी इसी सांसारिक उधेड़बुन में पड़ा हुआ एक प्राणी है। उसका हृदय एक छोटा-सा संसार है। उसके गुण-दोषादि द्वन्द हृदय और मस्तिष्क के दो पाटों के बीच पिसते हैं जिसका प्रभाव सिर्फ उस पर ही नहीं उसके संसर्ग में आने वाले सभी प्राणियों पर पड़ता है। पात्र के जीवन में उत्थान-पतन और परिवर्तन करने वाली अन्तस की इस अटूट शृंखला का ही नाम अन्तर्द्वन्द्व है। इस अन्तर्द्वन्द्व को जो लेखक जितने सुन्दर रूप में चित्रित कर सकता है, वह उतना ही सफल होता है।

पात्र का चरित्र ही उसका जीवन-परिचय है। दैनिक जीवन में किसी नये व्यक्ति के संसर्ग में आने पर हम उससे पूर्ण परिचित हो जाना आवश्यक समझते हैं। चरित्र-संबंधी यह परिचय इसलिए भी जरूरी है कि भविष्य में उसके द्वारा कोई हानि न हो। उसके विषय में पहले ही जितना मालूम हो जाय उतना ही अच्छा है। पर उपन्यास के पात्र के विषय में ठीक इसके विपरीत बात है। यदि उसके चरित्र के संबंध में सभी बातें पहले ही स्पष्ट हो जाएं तो पाठक की उसमें कोई दिलचस्पी या उत्सुकता शेष न रहेगी। फलतः उसकी आनन्दानुभूति में कमी पड़ेगी। इसीलिए उनका यथा स्थान उद्घाटन ही कलात्मक और अच्छा है।

इसका कारण यह है कि वास्तविक जीवन और उस वास्तविकता के आधार पर कल्पित पात्र के जीवन में अन्तर है। मनुष्य प्रतिदिन के जीवन के भावों को उसी रूप में ग्रहण करता है जिस रूप में वे उपस्थित होते हैं। किन्तु साहित्य में प्रयुक्त भाव

पाठक के हृदय में रसनिष्पत्ति में सहायक होते हैं।[११]

पात्रों का परिचय दो तरह से कराया जाता है। एक है पाश्चात्य ढंग दूसरा है पौर्वात्य। पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार दो व्यक्तियों को आपस में परिचित कराने के लिए एक तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो दोनों को जानता हो। किन्तु पौर्वात्य तरीके के अनुसार दो व्यक्ति जभी आपस में मिलते हैं तो वार्तालाप के क्रम में वे एक-दूसरे से स्वयं ही परिचित हो जाते हैं। प्रथम प्रकार में लेखक स्वयं मध्यस्थ का स्थान ग्रहण करता है। साहित्यिक परिभाषा में पाश्चात्य ढंग को साक्षात या विश्लेषणात्मक कहते हैं। दूसरे प्रकार को अभिनयात्मक या परोक्ष क्रम कहते हैं। इस अभिनयात्मक या पौर्वात्य पद्धति को ही अधिकांश पाश्चात्य उपन्यास-समीक्षकों ने भी श्रेष्ठ माना है। इसमें पात्र कथोपकथन और कार्य-व्यापार द्वारा स्वयं आपस में परिचित हो जाते हैं। कथोपकथन द्वारा किया गया चरित्र-चित्रण उत्तम माना गया है। अतएव अभिनयात्मक या परोक्ष प्रणाली का अधिक व्यवहार ही उत्तम है।

उपन्यासों के गवेषणात्मक अध्ययन से उपरोक्त दो प्रणालियों के अलावा एक तीसरी प्रणाली का भी अस्तित्व दिखाई पड़ता है। इसकी ओर अभी तक किसी भी समीक्षक का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है—यह है कार्यों द्वारा चरित्र-चित्रण। विचार पूर्वक देखा जाय तो चरित्र-चित्रण के लिए यह सर्वोत्तम पद्धति है। पर इसका बहुत कम उपयोग हुआ है। इस प्रणाली का व्यवहार करते हुए लेखक न तो पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार पात्रों के गुण-दोषों का उल्लेख करता है और न पौर्वात्य ढंग से कथोपकथन के द्वारा चरित्र का विकास करता है। वह पात्रों के कार्यों द्वारा ही उनका चरित्र-चित्रण करता है। इस प्रणाली का जन्म विरोधाभास से होता है। एक पात्र दूसरे पात्र से वार्तालाप में कहता है, 'तुम मेरे यहाँ न आया करो। तुम अपना मुँह मुझे न दिखाया करो। मैं तुमसे घृणा करता हूँ।' किन्तु समय पर वह अपनी कथनी के ठीक विपरीत आचरण करता है। वह जरूरत के अनुसार उसी 'घृणित' व्यक्ति के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग करने को तैयार रहता है, उत्सर्ग कर देता है। अतः इस प्रणाली में वचन और कर्म में घोर विरोध कथनी और करनी में जबरदस्त अन्तर दिखाई पड़ता है। इस प्रणाली के द्वारा मन, वचन और कर्म का पारस्परिक द्वन्द्व बताते हुए मौन दीप्त निरूपण का सरस और आकर्षक आयोजन किया जाता है। ऐसे चरित्र-चित्रण के लिए लेखक को मनोविज्ञान का विशेष ज्ञाता होने की आवश्यकता है। उसे अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से देखना पड़ता है कि एक ही श्रेणी के पाँच मनुष्यों की मनोवृत्तियों में कहाँ-कहाँ अन्तर है। इन बारीकियों को सुलझाने में ही कहानी में अद्भुत चरित्रों की सृष्टि होती है।[१२]

सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज से अलग करके मनुष्य की ठीक व्याख्या नहीं हो सकती। जातीय वंशीय कौटुम्बिक और पैतृक विरासत तथा

---

११ हिन्दी के सामाजिक उपन्यास, पृ० १८

१२. हिन्दी के सामाजिक उपन्यास, पृ० २०

परिस्थितियों से ही उसका निर्माण होता है। इसलिए उसके चरित्र को भलीभांति समझने के लिए इन बातों का ज्ञान आवश्यक है। इसके अलावा उसकी व्यक्तिगत योग्यता का भी परिचय आवश्यक है क्योंकि उसी के बल पर वह अपने वातावरण और इर्दगिर्द की दुनियां से टक्कर लेता है तथा उनसे प्रभावित अथवा आतंकित होकर अपने आचरण को उसके अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है। शारीरिक अवस्था या तज्जनित विषमताएं भी उसके चरित्र को ढालने में महत्वपूर्ण भाग लेती हैं।

जीवंत चित्र उपस्थित करने के लिए इन सभी बातों का कहानी में आना आवश्यक है।

लेखक का कौशल इस बात पर निर्भर करता है—किसी चरित्र की कल्पना के सिलसिले में वह उन छोटी-छोटी घटनाओं का चुनाव करे जो उस पात्र की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकें। इसके अलावा निम्नलिखित बातों में जो सहायक हों उनका विवरण भी आवश्यक है। वे हैं आयु रंग-रूप मुखाकृति पैतृक अंश जो चरित्र में विद्यमान हो, परम्परागत प्रथाओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, उसकी कल्पना और उसके स्वप्न उसकी दिनचर्या उसके कार्य और जीवन की घटनाएं।[13] चरित्र चित्रण में लेखक के लिए अत्यधिक सतर्कता आवश्यक है। जिस तरह चित्रकार द्वारा अंकित एक ही रेखा चित्र को बना अथवा बिगाड़ सकती है, वही हाल चरित्र-चित्रण का भी है। कुशल लेखक किसी घटना अथवा वर्णन को अपनी कथा में स्थान देने के पहले गंभीरतापूर्वक और अच्छी तरह सोच लेता है कि वह चरित्र के विकास में कहां तक सहायक है।

चरित्रों को चार प्रकार से चित्रित किया जा सकता है—कथन, संकेत, वार्तालाप और घटनाओं द्वारा।[14]

चरित्र प्रधान उपन्यासों का विशेष महत्त्व है। उपन्यास पढ़ लेने के बाद भी उसकी घटनाएं पाठक के मानस-पटल पर बहुत दिनों तक अंकित रहती हैं। कुछ उपन्यास ऐसे भी होते हैं जिन्हें हम कभी नहीं भूलते।

क्लैरिस हार्लो एम्मा (मैडम) बोवेरी शेक्सपियर की सुमन कामायनी का बब्बर, तितली का मधुबन आदि ऐसे पूर्ण चरित्र हैं कि भुलाये नहीं भूलते। उनका स्वरूप उनकी मूर्ति मन में बसी रहती है मानो हमारे चेतन जीवन में ही हमारा-उनका साक्षात्कार हुआ हो। अतएव उनके साथ ही हम उन कृतियों को भी याद रखते हैं जिनके द्वारा हमारा-उनका परिचय हुआ था। यह चित्रण अत्यधिक कठिन कार्य है और इसे सफलतापूर्वक करने में ही उपन्यास कथा की सजीवता और निपुणता है।[15]

वस्तु और स्थिति एवं चरित्र

वस्तु और स्थिति का पात्रों के चरित्र से बड़ा घना सम्बन्ध है। निकटता की

१३ कहानी कला, पृ० ४८
१४ हिन्दी कहानी, पृ० ३७
१५. उपन्यास कला पृ० १२१

इस सूक्ष्मता को नहीं समझ पाने के कारण ही अनेक उपन्यासकार उन्हें पृथक नहीं कर पाते। ऐसे उपन्यासों में चरित्र चित्रण घटना अथवा परिस्थिति पर ही निर्भर करते हैं। उनमें पात्रों के वास्तविक चरित्रों और मनोवृत्तियों का स्पष्ट निर्देशन नहीं हो पाता पर सफल उपन्यासकार अपने पात्रों की मनोवृत्तियों के अनुकूल ही चलता है और उन्हें परिचालित करता है। इसीलिए ये पात्र सजीव स्वाभाविक और प्रभावशाली होते हैं। चरित्र-चित्रण के लिए इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

कुछ विचारकों का मत है कि चरित्र-प्रधान उपन्यासों में घटना का विकास और कथानक का स्थान निम्न होता है। पर यह बात उतनी सत्य नहीं जितनी समझी जाती है। वास्तव में चरित्र-चित्रण की वहां प्रधानता होने के कारण घटनाएं तथा कथानक उसके आश्रित होकर रहते हैं। फिर भी उनका महत्व अपनी जगह पर बना रहता है।

चरित्र चित्रण पांच प्रकार से होता है और प्रत्येक उपन्यासकार का इस सिल सिले में अपना मौलिक ढंग होता है।

कुछ लेखक चरित्र-चित्रण की वर्णनात्मक शैली अपनाते हैं। वे स्वयं पात्रों के गुण-दोषों विचारों और मनोवृत्तियों का अध्ययनकर अपना मत प्रकट कर देते हैं।[16] प्रेमचन्दजी के उपन्यासों में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। 'रंगभूमि' में सूरदास के चरित्र की अधिकांश विशेषताएं वे स्वयं अंकित कर देते हैं— 'सूरदास एक बहुत ही क्षीणकाय दुर्बल और सरल व्यक्ति था। उसे दैव ने कदाचित भीख मांगने के लिए ही बनाया था।" आगे वह दूसरे पात्रों के विषय में भी लिखते हैं— 'चाल सेवक दुहरे बदन के गोरे चिट्टे आदमी थे। बुढ़ापे में भी चेहरा लाल था। मुख की आकृति से गुरूर और आत्मविश्वास झलकता था। मिसेज सेवक के चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं। उससे उसके हृदय की संकीर्णता टपकती थी।'[17] आधुनिक युग में इस शैली का विशेष महत्व नहीं है। अब पाठक उपन्यासकार के दृष्टिकोण से ही पात्रों को नहीं देखना चाहते। वे पात्रों का स्वयं अध्ययन करके उनके बारे में अपनी राय बनाना चाहते हैं।

इस वर्णन शैली द्वारा जिन पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है, वे रोचक नहीं हो पाते। पात्रों के गुण-दोषों का ज्ञान रहने के कारण उनके द्वारा होने वाले कार्यों के प्रति भी उनकी उत्सुकता नहीं रहती। वे पहले से ही उनके कार्यों का अनुमान कर लेते हैं। हां उन्हें आश्चर्य तभी होता है जब वे पात्र अपने स्वभाव के विरुद्ध आचरण करते हैं। परन्तु उससे पाठकों में उनके प्रति अविश्वास की भावना ही अधिक जाग्रत होती है।

दूसरा तरीका है संकेत द्वारा चरित्र-चित्रण करना। इस शैली में घटनाओं अथवा दृश्यों का सहारा लेकर लेखक पात्रों के विचारों पर प्रकाश डालता है। उन घटनाओं अथवा दृश्यों के प्रति वे पात्र जो दृष्टिकोण अपनाते हैं, वही उनकी मनो-भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

श्री जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में इस शैली के उदाहरण बहुतायत से प्राप्त

---

१६ साहित्यालोचन, पृ० २०९

१७ रंगभूमि

होते हैं। 'तितली' में वह लिखते हैं—"अब चौबेजी ! आखिर से चली आई, किन्तु प्राणों से उनका मारना देखने में मुझे सुख न मिला। आह ! कितने निडर वे गंगा के किनारे टहलते थे। उनपर विंचेस्टर रिपीटर के छर्रों की चोट—बिल्कुल ठीक नहीं। मैं आज ही इन्द्रदेव को शिकार खेलने से रोकूंगी—आज ही।" इस प्रकार लेखक संकेत द्वारा पात्र की चरित्रगत कोमलता का प्रकट कर देता है।[18]

वर्तमान युग में चरित्र-चित्रण की यह संकेतात्मक प्रणाली ही अधिक उपयुक्त जान पड़ती है। लेखक के लिए यह भी उचित नहीं कि वह अपने पात्रों के चरित्र एवं दूसरे के चरित्रों पर अपनी राय जाहिर करे। सबसे उत्तम मार्ग यही है कि पात्रों की चरित्र-वृत्ति का तात्विक उल्लेखमात्र किया जाय और बाकी निर्णय पाठकों पर छोड़ दिया जाय।

तीसरी शैली है वार्तालाप द्वारा चरित्र चित्रण करना। ऐसा माना जाता है कि बोलचाल से ही मनुष्य के आचार-विचार का पता चल जाता है। कथोपकथन द्वारा पात्रों की मनोवृत्तियों का पूरा पता चल जाता है और साथ ही घटना का क्रमिक विकास भी होता चलता है। निरालाजी की 'अप्सरा' में देखिये कनक और सर्वेश्वरी की बातें।

कनक—'हाँ अम्मा मैं कला को कला की दृष्टि

सर्वेश्वरी

कनक—मुझे सख्त नफरत है।"[19]

उपर्युक्त वार्तालाप से दोनों के चरित्र का अन्तर स्पष्ट झलकता है। यह आवश्यक नहीं कि पात्र के मुंह से निकले प्रत्येक वाक्य को लेखनीबद्ध किया जाय। बहुत-सी बातें अनर्गल और अर्थहीन भी होती हैं। कभी-कभी ऐसी बातें भी निकल पड़ती हैं जो बहुत ही उच्च विचार की महत्त्वपूर्ण और आन्तरिक स्थिति को प्रकट करनेवाली होती हैं। ऐसी बातें मन और हृदय पर अंकित हो जाती हैं। सफल उपन्यासकार ऐसे ही सम्भाषणों को अपनी कृतियों में स्थान देते हैं जो उस रचना के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होते हैं।

चौथा तरीका है घटनाओं के माध्यम से, उनका सहारा लेकर चरित्र-चित्रण करना। घटनाओं का पात्रों से बहुत घना सम्बन्ध होता है। जिस पात्र का जैसा स्वभाव होता है, वह उसीके अनुसार कार्य करता है। इस तरह घटनाएं पात्र के चारित्रिक गुण-दोषों को स्पष्ट करती हैं।

मानव जीवन के प्राय: सभी सिद्धान्त परिस्थिति पर ही निर्भर करते हैं। परिस्थितियों से लाचार होकर एक सद्विचार और सत्यवादी मनुष्य भी झूठ बोल सकता है तथा दुष्कर्म कर सकता है। अपनी परिस्थितियों की इसी टक्कर में पात्रों के चरित्र की दृढ़ता की पहचान होती है। घटनाएं पात्रों के जीवन को प्रभावित कर उसमें परिवर्तन ला देती हैं। इसी परिवर्तन को देखकर पात्रों के चरित्र का निर्धारण

---

१८. उपन्यास कला, पृ० १२२

१९. साहित्य विवेचन, पृ० [illegible]

किया जा सकता है।[९९]

आम तौर पर उपन्यास के कथानक में एक ही मुख्य और शेष सहायक घटनाएं होती हैं। अपने सिद्धान्तों के अनुसार पात्र मुख्य घटना की धारा में बहता चलता है, पर सहायक घटनाएं मुख्य घटना की पूर्ति के साथ ही चरित्र चित्रण का कार्य भी करती चलती हैं।

कंकाल का तपस्वी निरंजन इसका उदाहरण है। जब वह अबोध बालक था तभी पिता ने उसे साधुओं के एक मठ में दे दिया था। साधना में जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत करने के कारण ही वह महन्त बना और एक सिद्ध पुरुष के रूप में उसकी ख्याति फैली। ऐसे ही समय उसके बाल्यकाल की मित्र किशोरी से उसकी भेंट होती है। उसकी अतीत स्मृति जगती है। नियम और संयम का बांध अनेक प्रयत्नों के बावजूद टूट जाता है। निरंजन की जीवन-धारा तेजी से अपने महात्मा-जीवन के विपरीत बहने लगती है। धर्म की ओट में अपनी प्रेयसी किशोरी के साथ उसका जीवन सुख से बीतने लगता है। एक ही घटना उसकी चारित्रिक दुर्बलताओं पर पड़े हुए पर्दे को हटा कर उसका असली रूप दिखा देती है।

किन्तु, इस शैली के चरित्र चित्रण में यह आवश्यक है कि सहायक घटनाएं छोटी हों नहीं तो वे मुख्य घटना को नुकसान पहुँचा सकती हैं। साथ ही यह भी आवश्यक है कि वे मुख्य घटनाओं से सम्बन्धित हों। इन दोनों में असामंजस्य रहने पर कथानक का क्रमिक विकास अवरुद्ध हो जायगा, दो धाराएं एक दूसरे से होड़ करती हुई वह निकलेंगी और वैसा कथानक पूर्ण नहीं हो सकेगा।

पांचवां और अन्तिम तरीका है पात्रों के एकाकी विचारों द्वारा चरित्र-चित्रण करना। अनेक उपन्यासकार इसी शैली का सहारा लेकर अपने पात्रों के चरित्रों का उद्‌घाटन करते हैं। जिसका जैसा चरित्र होता है उसके विचार भी वैसे ही होते हैं। एक भ्रष्ट और पतित व्यक्ति के विचार कभी उच्च नहीं हो सकते। उसी तरह एक विचारवान और ईमानदार मनुष्य की प्रवृत्ति उच्चता की ओर अग्रसर करती है। इस तरह पात्रों के विचार उनके चरित्र के बुनियादी तथ्यों का उद्‌घाटन करते रहते हैं।

इस शैली का उपयोग करनेवाले लेखकों के लिए मनोवैज्ञानिक अनुभवों की विशेष आवश्यकता है। उन्हें ध्यान रखना पड़ता है कि किस चरित्र का पात्र किस प्रकार के विचार रखेगा। परिस्थितियों के दबाव में पड़कर पात्रों के जो क्रिया-कलाप होते हैं, वे ही उसके चरित्र को पूर्णतया स्पष्ट नहीं कर सकते। वे सिर्फ सत्य तक पहुंचने में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए कोई भी सत्यवादी मनुष्य किसी भी अवस्था में चोरी या अन्य कुकर्मों की प्रशंसा नहीं कर सकता चाहे वह उस कार्य को करता ही क्यों न हो।[१००]

परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर मधुबन और तितली दोनों ही की विचार-

---

१०० वही

धाराएं परिवर्तित हो जाती हैं। मधुबन मना जैसी वेश्या का उद्धार करता है जो समाज और संसार की दृष्टि में एक अनुचित कार्य है। वह भी इस प्रश्न पर सोचता विचारता है, तर्क करता है। अन्त में निश्चित करता है कि वह अपना कर्तव्य कर रहा है। इससे उसके स्वभाव की दृढ़ता प्रकट होती है कर्तव्य के प्रति उसकी आस्था स्पष्ट होती है। इसी तरह उपन्यास के अन्तिम भाग में हम तितली को भी विचार करते हुए देखते हैं। उसे अपने सतीत्व का बहुत अधिक ध्यान है यहां तक कि इस बारे में अपने प्रति जरा भी सन्देह के सम्बन्ध में वह अत्यधिक असहिष्णु है।

चरित्र-चित्रण में भाषा का भी बड़ा महत्त्व है। सुन्दर भाषा और उपमाएं पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने में सहायक होती हैं। उपयुक्त शब्दों का चुनाव और स्पष्ट भाव-व्यंजना ही भाषा की सुन्दरता का अर्थ है। सफल चरित्र चित्रण के लिए वस्तु और पात्र के सम्बन्धों का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। अक्सर ऐसा होता है कि लेखक वस्तु-विधान में ही अपनी समस्त शक्तियों को खर्च कर डालता है। इससे चरित्र चित्रण कमजोर हो जाता है। कभी वह चरित्र चित्रण पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित करता है तो वस्तु विन्यास कमजोर हो जाता है और सुन्दर चरित्र चित्रण भी महत्त्वहीन हो जाता है। अतः लेखक को चरित्र-चित्रण और वस्तु विधान में उपयुक्त सामंजस्य स्थापित करना जरूरी है।''

पात्रों की वास्तविकता पर विचार करते समय यह प्रश्न स्वाभाविक तौर पर आता है कि क्या लेखक अपने पात्रों को हाड़-मांस का पुतला सजीव और वास्तविक बनाकर हमारे सामने उपस्थित कर सका? क्या उन पात्रों के प्रति हमारी वैसी ही सहानुभूति जाग्रत होती है जैसी हम अपने जाने बूझे लोगों के प्रति रखते हैं? यदि हमारे मन में वह सहानुभूति पैदा हो सके तो कहना चाहिए कि लेखक अपने प्रयत्न में सफल हुआ। इसके विपरीत यदि उसके पात्र सांसारिक जीवन से भिन्न एक विचित्र लोक के प्राणी हैं जिनकी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियां अलौकिक हैं तो लेखक मानव जीवन की व्याख्या करने में अवश्य असफल रहा। ग्रंथाकार चाहे अपने साधारण अनुभव का उपयोग करे या असाधारण अनुभवों की परीक्षा करे उसके पात्रों को सजीव स्त्री-पुरुषों की भांति व्यवहार करना पड़ेगा।''

अब प्रश्न यह उठता है कि हम उपन्यास के पात्रों को क्यों अपने समान हाड़ मांस का पुतला देखना चाहते हैं क्यों उनसे मनुष्योचित आचरण की आशा रखते हैं? इसका कारण है मनुष्य के अन्तस में छिपी भावना की तीव्रता और यथार्थ कल्पना की प्रवृत्तियां। इसी प्रवृत्ति के कारण हम कल्पित पात्रों को भी सजीव बना डालते हैं। मानसिक सृष्टि के इस क्रम की व्याख्या करना सिर्फ उन्हीं के लिए कठिन नहीं जो साधारण पाठक हैं अपितु उनके लिए भी कठिन है जो वैसी कल्पनाओं के निर्माता हैं। एक विद्वान की सम्मति में यह एक आध्यात्मिक शक्ति है जो कभी-कभी तो लेखक की

---

१०२ उपन्यास कला, पृ० १२७

१०३ साहित्यालोचन पृ० १९९

कलम पकड़ लेती है और उसकी रुचि के विरुद्ध भी उसे चला सकती है।[104] इसका मर्म यही है कि सफल लेखक अपने पात्रों को स्वतंत्र संकल्प शक्ति से युक्त कर देता है। वे पात्र अपने मनोवेगों और परिस्थितियों से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके कथन या कार्य कभी-कभी ऐसे हो जाते हैं जिसकी लेखक ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। यह कल्पनाशक्ति की पराकाष्ठा है जिसके रहस्य का उद्घाटन लेखक या समालोचक के लिए कठिन है। सृष्टि-वैचित्र्य का सिद्धान्त ही इस मानसिक कल्पना में अमित जान पड़ता है।[105]

अतः इस मानसिक कल्पना की बातों को यथास्थान छोड़कर इस बात पर विचार करें कि वे कौन-सी चीजें हैं, कौन-से उपाय हैं जो लेखक को सजीव वर्णन की शक्ति देते हैं। किसी नाटक के अभिनय में जो काम किसी पात्र की वेष भूषा, रंग-ढंग और नाट्य-कौशल से निकलता है, वही काम उपन्यास-लेखक अपने वर्णन कौशल से लेता है। दृश्य-काव्य में पात्र और उसके अभिनय को देखकर हम उसके चरित्र से परिचित होते हैं। उसी तरह उपन्यास में किसी पात्र के आकार प्रकार स्वभाव-विचार और रूप-रंग का वर्णन पढ़कर उससे हम अपना मानसिक संबंध स्थापित करते हैं। उस पात्र की शारीरिक या मानसिक जो भी विशिष्टताएं हों उसे पाठकों के मानसिक नेत्रों के समक्ष साक्षात सजीव धारण करके उपस्थित होना चाहिए। कुछ लोगों की ऐसी राय है कि पात्रों का ऐसा सजीव वर्णन उपस्थित करने के लिए हर छोटी-छोटी बात का भी सविस्तृत वर्णन आवश्यक है। पर यह धारणा गलत है। कुशल कलाकार तो सिर्फ अपने मतलब की बातें चुन लेता है और उन्हें अपने भावों विचारों या शब्दों से आभूषित कर अपने उद्देश्य की पुष्टि करता है।

उपन्यासों की कथा कहने के तीन ढंग हैं। ऐतिहासिक या अन्य पुरुषवाचक आत्मचरित्रिक या उत्तमपुरुषवाचक और तीसरा पत्रात्मक। पहले तरीके से चरित्र चित्रण प्रायः विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा होता है। दूसरे और तीसरे तरीके में अभिनयात्मक या परोक्ष प्रणाली अपनायी जाती है। प्रायः लेखकगण वर्णन के लिए विश्लेषणात्मक और परस्पर कथोपकथन के लिए अभिनयात्मक प्रणाली ही अपनाते हैं। इसलिए उपन्यासों में प्रायः दोनों तरीकों का सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी कृति पर विचार के समय यह अध्ययन किया जाय कि उसमें किस प्रणाली का कहाँ तक प्रयोग हुआ है और कहाँ तक सम्मिश्रण। इसी आधार पर उस कृति की सफलता को आंका जा सकता है।

उपन्यास प्रायः दो प्रकार के होते हैं—बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी।[106] पहले में पात्रों की प्रधानता होती है और व्यापार शृंखला को गौण-स्थान मिलता है। दूसरे में व्यापार शृंखला या घटनाचक्रों को प्राथमिक स्थान मिलता है और पात्रों का प्रयोग

---

१०४ साहित्यालोचन पृ० ९००

१०५. साहित्यालोचन पृ० २०

१०६ समीक्षा शास्त्र, पृ० ११५

उनके विकास और सुधार रूप से संचालन में किया जाता है। यह किसी भी तरह सन्देहात्मक नहीं कि पात्रों की प्रधानता अवश्य श्रेष्ठ है। घटनाएं मनुष्य के हृदय पर स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकतीं। परन्तु पात्रों के चरित्र अवश्य बसा कर सकते हैं। अतएव वे उपन्यास अवश्य उत्तम श्रेणी के हैं जिनमें चरित्र-चित्रण का अधिक ध्यान रखा जाता है। यदि विचार कर देखा जाय तो वस्तु और चरित्र या पात्रों में परस्पर कुछ-न-कुछ विरोध अवश्य रहता है। जहां वस्तु की प्रधानता होती है वहां पात्रों को तदनुकूल संचालित किया जाता है। परिणामतः पात्रों के चरित्र में असंगति आ जाती है। पर जहां चरित्र चित्रण को प्रधानता मिलती है वहां घटनाचक्र को इसी प्रधानता के अन्तर्गत संचालित किया जाता है जिससे वस्तु का सामंजस्य प्रायः बिगड़ जाता है। इसलिए उच्च कृतियों में दोनों का उपयुक्त सम्मिश्रण ही श्रेयस्कर है। पर इस मिश्रण में यदि वस्तुविधान और चरित्र-चित्रण का उचित संतुलन न होगा तो उससे लाभ के बदले हानि भी हो सकती है। जिन उपन्यासों का उद्देश्य रोमांचकारी घटनाओं का वर्णनमात्र है, वहां वस्तुविधान को प्रधानता और चरित्र चित्रण को गौण स्थान मिलेगा। ऐसे उपन्यासों के पात्र घटनाचक्र के वशीभूत होकर इधर-उधर डोलते फिरेंगे और कृति की रोमांचकारिता को बढ़ाने में आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होंगे। किसी-किसी उपन्यास में किसी विशेष प्रवृत्ति या प्रकृति के मनुष्यों का विशेष स्थितियों के संदर्भ में मिलन होता है और उसी कारण उनमें आपस में प्रेम या वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है। अतएव ऐसे उपन्यास की वस्तु का उचित और संतुलित विधान होना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि जिस स्थिति में पात्रों का आपसी सम्पर्क होता है उसका घटनाचक्र पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इस तरह पात्रों में ही घटनाएं अंतर्हित रहती हैं। इसलिए किसी उपन्यास पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें वस्तु और पात्र कहां तक एक दूसरे से संबद्ध हैं।[१०७] साथ ही यह भी विचारणीय है कि जिन घटनाओं का किसी कृति में समावेश हुआ है उनका औचित्य सिद्ध करने में लेखक सफल हुआ है या नहीं? इसका अर्थ यह हुआ कि पात्र जिन रागद्वेषात्मक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कोई काम करते हैं वे संतोषजनक या संगत हैं या नहीं उनके जो परिणाम या प्रभाव दिखाये गये हैं वे स्वाभाविक, उपयुक्त या संगत हैं या नहीं। यदि वस्तु के निमित्त किसी पात्र को उसके स्वभाव के विपरीत कोई काम कराया जाय तो अवश्य कहा जायगा कि वस्तु और चरित्र के पारस्परिक संबंध का उचित ध्यान उक्त कृति में नहीं रखा गया। कभी-कभी जन्मभर के दुष्ट और नीच क्रूर और दुर्जन व्यक्ति को अन्त में सुजन-शिरोमणि बना दिया जाता है और इस अद्भुत परिवर्तन का संतोषजनक कारण भी नहीं बताया जाता। ऐसा करना सर्वथा अनुचित और पात्रों तथा वस्तु के संबंध के सामंजस्य को नष्ट करना है।[१०८]

नाटकों में भी प्रमुख और गौण दो प्रकार के पात्र होते हैं। पर नाटककार

---

१०७ साहित्यालोचन, पृ० २०५

१०८ साहित्यालोचन, पृ० २०५

प्रमुख पात्रों के चित्रण पर ही अधिक ध्यान दे पाता है और गौण पात्रों पर कम। अनेक नियमों से आबद्ध रहने के कारण उसके पात्रों की संख्या भी कम होती है। पर उपन्यासकार अपने पात्रों की संख्या इच्छानुसार कम या अधिक कर सकता है। उसे अपने सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण का नाटककार से अधिक अवसर प्राप्त है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता तो यह उसकी असमर्थता है। नाटककार को इस सबंध में अवसर की जो कमी है उसे रंगमंच पूरा करता है जहाँ वेश-भूषा भाव भंगिमा आदि द्वारा चरित्रों की विशेषताओं को उभारा जा सकता है। पर उपन्यासकार को ये बाह्य उपकरण उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए उपन्यास में पात्रों के चरित्र चित्रण का बहुत अधिक महत्त्व है। कवि और उपन्यासकार को अपनी सजीव वर्णन-शक्ति द्वारा अपने पात्रों को स्वाभाविक सुंदर और मूर्त रूप देना आवश्यक है। पात्रों के आंतरिक या बाह्य दुबलताओं को स्पष्ट कर उनके विचार-संघर्षों का दिग्दर्शन कर उनके मानवीय आचरणों को देखकर ही पाठकों को सहानुभूति जाग्रत होती है। तभी पाठक उनके सुख-दुख क्षोभ-हर्ष खुशी और विपत्ति में उसे अपना समझकर शरीक होते हैं और इसी में चरित्र-चित्रण की सफलता है। अन्य वर्गों समय आदि के उपन्यासों में कुशल लेखक की लेखनी के चमत्कार द्वारा ऐसे पात्र उपस्थित किये जाते हैं कि पाठकगण उन्हें अन्य आचार विचार के मानव मानकर भी उनसे सहानुभूति रखने लग जाते हैं। किन्तु, प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जब कोई उपन्यासकार किसी विशिष्ट उद्देश्य या किसी सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन को लेकर कोई रचना करता है तो वह न सिर्फ कथावस्तु को मनमाने तौर पर निर्मित कर चुप रह जाता बल्कि पात्रों को भी अपने उद्देश्य के अनुसार चित्रित कर अपने ही विचार उनके मुखों से कहलाने लगता है। ऐसा वर्णन सर्वथा अस्वाभाविक हो जाता है।[१०१] तब पाठकगण ऐसे पात्रों को कठपुतली ही मान बैठेंगे। इसलिए, उपन्यासकार का यह कर्तव्य है कि वह अपने पात्रों को सजीव मानव बनाकर, मानकर, उन्हें उनके संसार में स्वतंत्र विचरण करने छोड़ दे उनके क्रिया-कलाप कथोपकथन आदि को स्वाभाविक रूप में नियंत्रित करे। यहां यह शंका उठ सकती है कि ऐसा करने से पात्रगण लेखक के अनुशासन से बाहर हो जा सकते हैं। पर यह कोरी भावुकता है। लेखक की काल्पनिक सृष्टि का पात्र अपनी स्वतंत्र संकल्पशक्ति से कितना भी बलवान क्यों न हो पर है वह आखिर अपने स्रष्टा की कल्पना की ही उपज और इसलिए उसके क्रिया-कलापों विचारों सभी पर लेखक का प्रकारा अधिकार स्वाभाविक है। वास्तव में यह बात इसलिए उठती है कि जब सशक्त उपन्यासकार अपने पात्रों को स्वतंत्र संकल्प-शक्ति से युक्त कर उन्हें इच्छानुसार विचरण के लिए छोड़ देता है तब स्वतः ही कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें उपन्यास में स्थान देना आवश्यक हो जाता है। तभी ऐसा कहा जाता है कि वे पात्र लेखक के नियंत्रण से बाहर हो गये।

यह प्रश्न भी उठता है कि उपन्यासों को कल्पित कथा मानते हुए भी उनके

---

१०१ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० २०१

पात्रों के प्रति पाठकों में अपनापन क्यों उत्पन्न होता है, क्यों वे उनके दुख से दुखी और सुख से सुखी होते हैं ? इसका कारण मुख्यतः यही है कि सफल लेखक की लेखनी द्वारा चित्रित पात्रगण कल्पित होते हुए भी जीवित मनुष्य की तरह यथार्थ और स्वाभाविक आचरण करते हैं। यह लेखक की सफलता उसकी कौशल यथार्थकारिता वर्णनशक्ति की महत्ता है जो हमें चकित कर देती है और कल्पना में यथार्थता का आनंद देती है।[110]

यों तो उपन्यास के सभी अंग एक-दूसरे पर आश्रित हैं पर वस्तु तथा चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध विशिष्ट है। किसी उपन्यास में व्यापार तथा किसी में पात्रों की प्रधानता रहती है पर स्मरण रखना चाहिए कि पात्रों के द्वारा ही व्यापार-शृंखला परिचालित होती है। पात्रों में ही घटनाएं अन्तर्निहित होती हैं। यह भी है कि एक ही घटनाचक्र में पड़े हुए कई पात्रों में किसी के प्रति विशेष संवेदना और किसी के प्रति संवेदना का न जाग्रत होना भी स्वाभाविक है। ऐसा होना या न होना उन पात्रों के चरित्रों पर निर्भर करता है। चरित्र की शक्ति ही क्रमशः साधारण मानव को भी उच्चतम पद पर पहुंचा सकती है और लोक को आकर्षित करती है। इस कारण चरित्र का प्रभाव विशेष स्थायी होता है और घटनाएं उसमें सहायकमात्र होकर उस प्रभाव को बढ़ाती हैं। इसलिए घटनाओं और पात्रों का उचित उपयोग ही समीचीन है।[111] यदि बलपूर्वक किसी एक चीज को अनुचित प्रधानता दी जायगी तो उससे कृति का महत्त्व ही कम होगा। हां ऐसे भी उपन्यास हैं जिनका उद्देश्य सिर्फ घटनाओं की भीषणता और रोमांचकारिता का प्रदर्शन करना है। वहां पात्रों का स्थान भी घटनाओं जैसा ही होता है। वहां पात्रों का उपयोग केवल घटनाओं को प्रदर्शित और वहन करने के लिए होता है। ऐसे उपन्यासों में वस्तु और चरित्र के उचित उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता।[112]

आज के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता पात्रों के चरित्र और व्यक्तित्व का चित्रण है। कथा को पढ़कर हम उसे भुला देते हैं। किन्तु उनके पात्रों में कुछ ऐसे विशिष्ट गुण होते हैं, उनके व्यक्तित्व कुछ ऐसे मधुर और प्रभावशाली होते हैं कि भुलाये नहीं भूलते। गोदान का 'होरी', कायाकल्प का 'चक्रधर' तितली का 'मधुबन' अन्ना-केरनिना की 'अन्ना', पर्ल बक का 'वांग लुंग' और 'ओलान' तथा रोम्या रोलां का 'जान क्रिस्टाफर' ऐसे ही पात्र हैं जिन्हें हम कभी नहीं भूलते। उनका चरित्र उनकी मूर्ति हमारे लिए कुछ इतनी परिचित है कि हमें लगता है जैसे जीवन में हमारा उनसे साक्षात्कार हो चुका है। उनके चरित्र इतने परिचित और जाने-पहचाने होते हैं कि हम उन्हें अन्तरंग मित्रों के सदृश अनुभव करने लगते हैं।[113]

---

११०. साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० १६१

१११. कहानी का रचना विधान, पृ० ८८

११२. हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृ० ३२

११३. योरोपीय उपन्यास, पृ० ७४

इस प्रकार कथावस्तु की स्वाभाविकता सरसता या उत्कृष्टता से ही कोई कृति बड़ी नहीं कहलाती। महान पात्रों की सृष्टि करके ही कलाकार वस्तुतः अपनी कृति का महत्त्व तथा स्वयं अपनी महत्ता प्रमाणित करता है। यदि वह ऐसे पात्रों की सृष्टि नहीं कर सकता जो अविस्मरणीय हों तो निश्चय ही उसे श्रेष्ठ उपन्यासकार नहीं माना जा सकता। अमर पात्रों की सृष्टि ही कलाकार के अमरत्व को प्रमाणित करती है।

थीम और चरित्र-विकास

कथाकार अथवा नाटककार पात्रों के थीम-निर्माण की प्रक्रिया में ऐसी पद्धति का सहारा लेते हैं जिससे थीम विशेष का व्यापकत्व तथा उसका प्रभाव प्रस्फुटित होता है। इनमें निम्नलिखित पद्धतियाँ उल्लेखनीय हैं—[११४] समानान्तर पद्धति विपरीत पद्धति समानान्तर-विपरीत पद्धति एवं शेषपूरक पद्धति। प्रथम पद्धति थीम-करेंसे की पद्धति है। इसमें एक ही प्रबन्ध में पृथक-पृथक दो कृत्यों का चित्रण समानान्तर ढंग से होता चलता है। यह आवृत्ति के द्वारा व्याप्ति की सिद्धि है। विपरीत पद्धति में एक ही स्थान पर सदाचारी और दुराचारी कृपण और उदार तथा मूर्ख और बुद्धिमान का चित्रण होता चलता है। यह थीम द्वन्द्व की पद्धति है जिसके वैपरीत्य से व्यक्ति की सम्पूर्णता सिद्ध होती है। समानान्तर-विपरीत पद्धति में अभिन्न आलंबन के प्रति अथवा समप्रतिष्ठ प्रेरणा के कार्यस्वरूप दो विपरीत प्रतिक्रियाओं या संकल्पों का जन्म होता है। एक ही प्रेयसी को पाने के लिए रत्नसेन जोगी बनकर तथा अलाउद्दीन दल बादल लेकर निकल पड़ता है।[११५] गोकुलसिंह का आदर्श एक को गांधी-विनोबा के सर्वोदयवाद की ओर और दूसरे को वर्ग संघर्ष के भूदानवाद और विप्लववाद की ओर ले जाता है। शेष पूरक पद्धति में जीवन का बचा शेष (अति प्रमुख पात्रों से बचा जीवन का शेष) दिखाया जाता है। ये सामान्यतः गौण होते हैं जिनके दिखा देने से ऐसा मालूम पड़ता है कि जीवन का बचा शेष पूरा हो गया। हार्डी के उपन्यासों में गौण-पात्रों की टोली रहती है। प्रेमचन्दजी के गोदान में यही हालत है।[११६]

चरित्र और कथाकार

वास्तव में कोई भी रचना रचयिता के चरित्र उसके मनोभाव, उसके जीवन के आदर्शों और दर्शन को प्रकट करनेवाली होती है। जो लेखक देश प्रेमी है, उसके चरित्र घटनायें और परिस्थितियाँ सभी उसी रंग में रंगी नजर आती हैं। सिर्फ आनन्द और मनोरंजन का उद्देश्य रखने वाले लेखकों की रचनाओं के चरित्र ऐसे हैं जिन्हें दुनिया का कोई दुख-सुख नहीं छूता। वे तिलिस्म बनाते और बिगाड़ते रहते हैं।

---

११४ थीम निरूपण, पृ० ५२

११५. जायसी के पद्मावत का नायक

आशावादी लेखक की रचनाओं में जीवन के प्रति उसका आशावाद छलकता होगा। शोकवादी लेखक अत्यधिक प्रयत्न से भी अपने पात्रों को विनोदशील नहीं बना सकता। 'आजाद-कथा' को पढ़िये। आपको तुरन्त मालूम हो जायगा कि लेखक हंसने-हंसाने वाला जीव है। फ्रायड के कथनानुसार कला में प्रदर्शित सभी भावनाएं व्यक्तिगत अनुभूति से जन्म लेती हैं। पर युंग का कहना है कि कला में प्रदर्शित सभी भाव मनुष्य की दबी हुई भावनाएं मात्र नहीं हैं।[117]

कलाकार और उसके पात्रों के सम्बन्ध पर यदि विचार किया जाय तो कहना होगा कि सामाजिक संस्थाओं और व्यक्तियों के सम्बन्ध की अनुरूपता उपन्यासकार और उसके द्वारा निर्मित कल्पित चरित्र में नहीं है। परिपार्श्वजन्य निजी विवशता को रूपानुरूपता एवं आत्मीयता देने का प्रयास लेखक अवश्य करता। लेखक के व्यक्तित्व के विकास का जो क्रम है, वही क्रम उसके पात्रों के विकास में भी अवश्य दीख पड़ता है। पर क्या इसका यह अर्थ है कि पात्र या पात्रों का एक वर्ग उपन्यासकार के प्रतिरूप हैं? नहीं, ऐसी बात नहीं। घटनाओं की विविधता एवं पात्रों के बाहुल्य द्वारा लेखक अपनी अनुभूति आत्मचेतना और स्फूर्ति को परिवेश देता है। पर लेखक के व्यक्तित्व का अत्यन्त छोटा-सा अंश ही उन पात्रों को प्राप्त होता है। हां यह बात अवश्य है कि किसी एक पात्र या उसके वर्ग को लेखक की गहरी सहानुभूति प्राप्त रहती है। फिर भी किसी एक पात्र में ही लेखक के व्यक्तित्व का पूर्ण परिचय नहीं मिल सकता, उसके विभिन्न उपन्यासों के मुख्य पात्रों की एक-सूत्रता में उसके व्यक्तित्व के सिर्फ संकेत ही मिल सकते हैं।[118] किसी एक उपन्यास में तो लेखक अपने जीवन के अनुभव का 'क्रास-सेक्शन' ही दे पाता है। लेखक के व्यक्तिगत जीवन के संस्कार, अनुभव और घटनाएं, कथासूत्र, पात्रता विचार-धारणा और माध्यम को नियोजित नियन्त्रित अवश्य करते हैं।[119] लेखक यदि पात्र को अपनी स्थिति में डालकर स्वयं पात्र बन जाय तो उसकी तटस्थता का निर्वाह नहीं हो सकता। तटस्थता का त्याग कर वह पात्रों की विशिष्टता उनके परस्पर सम्बन्धों प्रेरणा और परिवेश संपृक्तता का तटस्थ अध्ययन और विश्लेषण नहीं कर सकता। इसलिए सजीव चित्रण के हित में यह आवश्यक है कि लेखक पात्रों की तटस्थता को निजत्व प्रदान कर अनुभूतिगत सत्य का स्वरूप दे। इस तरह लेखक पात्रों में सन्निहित भी है और अलग भी।[120] उसका अलगाव तटस्थ विश्लेषण को आधार व्यक्तित्व और वैयक्तिकता देता है। उसका सान्निध्य सजीवता और स्फूर्ति प्रदान करता है।

प्रेमचन्दजी की छाया न तो रंगभूमि के सूरदास में मिलेगी न गोदान के होरी में। 'शेखर—एक जीवनी' के लेखक अज्ञेय न तो शेखर हैं और न 'नदी के

---

११७ आधुनिक मनोविज्ञान, पृ० १४१

११८. आलोचना (उपन्यास अङ्क), पृ० १४१

११९. दी राइटर एण्ड हिज़ क्राफ्ट, पृ० २८

१२० दी इंग्लिश नावेल, पृ० १४

द्वीप' के मुख्य। वास्तावस्की के पात्र तो उससे और अधिक भिन्न हैं यद्यपि उसमें अपने प्रकस्थाओं को स्वतन्त्र व्यक्तित्व और पृथकत्व देने की अपूर्व क्षमता है। श्रीकांत और सव्यसाची (पथेर दावी) परस्पर भिन्न होते हुए भी शरच्चन्द्र से अभिन्न भी हैं और भिन्न भी। मध्यवित्त बंगाली समाज और उसके संस्कारों के प्रतिनिधि शरच्चन्द्र के पात्र उस सस्कारिक परिवेश में कुंठित आकुंचित होते हुए भी उनकी वृत्तियों के स्वतन्त्र प्रकाशन हैं। उपन्यास-लेखक में अनुभव की व्यापकता दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता घटनाओं और वृत्तियों के विश्लेषण द्वारा एक नये संश्लेष की प्रक्रियमता जितनी अधिक होगी, उसी मात्रा में उसके पात्रों में विविधता मिलेगी।[१२१]

लेखक-पात्र सम्बन्ध की दृष्टि से यदि वर्गीकरण किया जाय तो यह बात अवश्य है कि पात्रों का एक वर्ग अपने स्रष्टा का प्रतिनिधि है उसके विचारों और भावों का वाहक है। पर ऐसे पात्रों में वैयक्तिकता तो रहती है पर व्यक्तित्व नहीं। कथाकार उन्हें अपने मनोनुकूल ढांचे में ढालकर उपस्थित करता है उन्हें अपना पूर्ण स्नेह प्रदानकर अपने व्यक्तित्व का लेप चढ़ा देता है। पर ऐसा होने के कारण ही लेखक के व्यक्तित्व से भिन्न उनकी कोई सत्ता नहीं। ऐसे पात्रों की सजीवता और सक्षमता का आधार कथाकार में निहित सजीवता और सक्षमता ही है।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि उपन्यास आत्म चरित्र नहीं है। आत्म चरित्रात्मक उपन्यासों में भी लेखक निजत्व के संस्कार का अभिलाषी है। 'चान क्रिस्टोफर' रोलां नहीं यद्यपि वह रोलां से अभिन्न है। साथ ही वह उसका संस्कारक भी है। 'शेखर—एक जीवनी' का शेखर भी वैसा ही है। ऐसे पात्र लेखक के भावों और विचारों के मात्र वाहक होंगे। इनका महत्त्व भी इसी आधार पर है न कि स्वतन्त्र और निजी व्यक्तित्व के कारण। सामाजिक आधार पर निर्मित पात्र टाइप वर्ग विशेष के प्रतिनिधि अथवा असामाजिक होते हैं। ऐसे पात्रों की पात्रता का आधार है सामाजिक चेतना-वृत्ति। मूल्य की धारणा के आधार पर पात्रता के वर्ग हैं। पूर्व मूल्यों के स्थापक और विस्तारक तथा नवमूल्य निर्धारक और प्रतिष्ठापक।[१२२] किन्तु उपन्यासकार की भांति आख्यायिका-लेखक अपने व्यक्तित्व को छिपाकर नहीं रख सकता। उसे हर समय अपने व्यक्तित्व को प्रकट रखना और अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते रहना पड़ता है। उसकी शैली पाठक के अंतरंग मित्र की होती है। वह घरेलू और आपसी आदमियों की तरह गपशप करता है।[१२३]

आधुनिक उपन्यासकार अपनी कृति का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका है। अब वह तटस्थ प्रेक्षकमात्र नहीं है। प्रसिद्ध आलोचक टी० सी० बीच महोदय का कहना है कि उपन्यास-कला के विकास के साथ ही उपन्यासकार की छाया उसकी अपनी कृति से

---

१२१ आलोचना (उपन्यास अङ्क), पृ० १४३

१२२ आलोचना (उपन्यास अङ्क), पृ० १४४

१२३ साहित्यालोचन पृ० २२२

दूर होती गयी। पहले वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण घटनाओं की शृंखला जोड़ने किसी रहस्य का उद्‌घाटन करने या किसी न किसी बहाने रंगमंच पर आकर पाठकों का संबोधित कर जाता था। थेकर के 'वैनिटी फैयर' में यही तरीका पाठकों के हृदय को विक्षुब्ध कर देता है। पर ज्यों-ज्यों उपन्यास-कला में प्रौढ़ता आती गयी, उसने लेखक की उंगली छोड़कर स्वयं बोलना प्रारम्भ किया। आज भी उपन्यास-कला अनेक प्रयोगों के साथ यही कर रही है। पर उसकी पद्धति अब पाठकों के हृदय को विक्षुब्ध नहीं करती। उपन्यासकार अपनी कृतियों में अवश्य प्रविष्ट है। पर यह हस्तक्षेप—प्रवेश उसकी कला का संश्लिष्ट अंश बन चुका है। आज का जागरूक उपन्यासकार अपने उपन्यास का अंशमात्र ही नहीं वरन् एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश बन गया है। आज की औपन्यासिकता नैयायिक के अधिक सन्निकट है। इस दृष्टिकोण के कारण उपन्यास के विभिन्न पात्रों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। वह दूसरों को जो दीखता है उससे अलग नहीं है क्योंकि द्रष्टा से दृश्य पृथक नहीं हो सकता। इतना ही नहीं आप यह भी पायेंगे कि उपन्यासकार से पात्रों को अलग करना भी संभव नहीं। उपन्यास जो कुछ भी है वह उपन्यासकार की छाया है प्रतिबिंब है।"[१२४]

पहले के उपन्यासों में दो दुनिया साथ-साथ बसती थीं—एक उपन्यास की दूसरी उपन्यासकार की। लेखक उपन्यास में प्रवाहित जीवनधारा को दूर से देखा करता था। मनुष्य के आचरण में बुद्धि से नियमित एक मर्यादा होती थी। सारी घटनाएं कार्य और कारण की शृंखला में बंधी रहती थीं। लेखक अपनी सब्जेक्टिव दुनिया से उपन्यास की आब्जेक्टिव दुनिया में निरन्तर आता-जाता रहता था जो बड़ी खटकने वाली बात थी—उसी तरह जैसे एक देश का प्राणी दूसरे देश में मनमाने ढंग से प्रवेश करने पर खटक। परन्तु अब वही बात नहीं। उपन्यासकार के लिए उपन्यास उसका अपना संसार बन चुका है। वह अब उस दुनिया से पृथक जीव नहीं। चेतना प्रवाह-पद्धति ने वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठा के अंतर को मिटा दिया है। अपने संसार में अब यदि वह परिभ्रमण करता है तो यह उसका अधिकार ही है।[१२५]

आत्मनिष्ठा आधुनिक कथा साहित्य की कई विशेषताओं में एक है। फिल्डिंग और थैकरे अपने वृत्तान्त-विवरणों को व्यक्तिगत टिप्पणियों द्वारा सदा सुसज्जित रखते थे। फिर भी उनमें दार्शनिक तटस्थता विद्यमान थी। इसीलिए उनकी रचनाएं गंभीर अर्थों में निर्वैयक्तिक ही कही जाती हैं। कलात्मकता के अभाव के बावजूद अपनी दार्शनिक तटस्थता के बल पर ही वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी कथाओं में प्रवेश कर पाते थे। आज के सौन्दर्यमूलक साहित्यिकों के मुकाबले में अपनी सामग्री की पकड़ उनमें अधिक थी। यह स्वाभाविक भी है—क्योंकि संकुलता और विकराहट के इस युग में कलाकार अपनी भावना की गूढ़ता और रहस्यमयता की ओर झुकने के लिए बाध्य है। इसीलिए तटस्थता और यथार्थता की वस्तुनिष्ठ पकड़ उसके लिए कठिन है। पाठक से

१२४ आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान पृ० ११९

१२५. वही, पृ० ११९

लिप्त रहने के लोभ का उसे बाध्य होकर संवरण करना पड़ता है। अपनी चेतना की वास्तविकता ही उसका संबल है जिसके बारे में वह थोड़ा निश्चिन्त और आश्वस्त है। नहीं तो बाहर सभी चीज़ें अस्तव्यस्त और कनफ्यूज्ड हैं।"[126]

कथाकार सिर्फ अपनी अनुभूति की दुनिया के प्रति आश्वस्त है। इसीलिए वह अपनी उसी दुनिया का निर्माण करता है। वर्जीनिया वुल्फ के उपन्यासों के बारे में इसी तरह के विचार एक आलोचक ने प्रकट किये हैं। "वर्जीनिया वुल्फ के पात्रों के संबंध सूत्र अपने स्रष्टा के साथ स्पष्ट हैं" वे कहते हैं— "पात्र उसी के ढंग पर सोचते हैं। उसी की वाणी में बोलते हैं। उनके बीच लेखिका का प्रवेश अनधिकार चेष्टा-सा नहीं जान पड़ता। जहां लेखिका ही देखनेवाली भी हो वहां उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि वह सभी पाठकों के समक्ष अपने अस्तित्व का प्रमाण देती रहे ताकि जब वे पात्रों का मूल्यांकन करें तो उसका भी ध्यान रखें।"[127]

महादेवी वर्मा के चरित्र उनके सहचर हैं। वह स्वयं कहती हैं—"इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं। उसके बाहर तो वे अनन्त अंधकार के अंश हैं।"[128]

इसीलिए लेखिका ने अपने पात्रों के बीच अपने को भी एक पात्र बनाते हुए अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट किया है। अतीत के चलचित्र स्मृति की रेखाएं—आदि रचनाओं में उनके सबल व्यक्तित्व के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

चरित्र या पात्र ही किसी कृति के भाग्य-विधाता होते हैं। चरित्र विहीन अथवा सजीव पात्रों के बिना किसी कृति का प्रभाव जनता पर नहीं पड़ सकता। अमेरिकी नाटककार टैनिसी विलियम की कृतियां इसके उदाहरण हैं। प्रारंभ में उन्हें कोई सफलता न मिली। पर बाद में जब उन्होंने अपने चरित्रों को रंग-मंच पर लाने के लिए उनमें प्रभावकारी परिवर्तन किये तो उन्हें विपुल ख्याति प्राप्त हुई। इस संबंध में हिन्दी के यशस्वी कथाकार श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का कहना है कि लेखक को जिस वर्ग का विशेष अनुभव हो जहां वह पला और बढ़ा हो उसी का वह सफलतापूर्वक चित्रण कर सकता है। अपने कथा-चरित्रों की सृजन-प्रेरणा के संबंध में वे कहते हैं—"मैं किसान-मजदूरों के बारे में ज्यादा नहीं लिख सका। मैं निम्न मध्यवर्ग में पैदा हुआ और उसी वर्ग का चरित्र-चित्रण मैंने अपनी कृतियों में अधिकांशत किया है। बिना किसी व्यक्ति अथवा वर्ग का पूरा ज्ञान प्राप्त किये साहित्य-सर्जना मेरे ख्याल में बददयानती है। यदि लेखक किसानों और मजदूरों से उठा है, अथवा उनमें रहता है तो उन्हें छोड़कर उच्चवर्ग का चित्रण उसके लिए गलत होगा। इसी तरह उच्चवर्ग के साहित्यिक के लिए बिना निम्नवर्ग की परिस्थिति का पूरा ज्ञान प्राप्त किये केवल

१२६ वही पृ० ११६

१२७ वही, पृ० ११६

१२८ 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' की भूमिका

बौद्धिक सहानुभूति के बल पर, उसका चित्रण करना ठीक नहीं होगा। इससे उसके साहित्य में वह गुण न आयगा जो अनुभूति के सच्चे और खरेपन से पैदा होता है।[109]

शरच्चन्द्र की कृतियों के प्रभावशाली होने के रहस्य यही है। शरत ने अपने अधिकांश पात्रों को अपना व्यक्तित्व दिया क्योंकि वे पात्र उन्हें आस-पास ही मिले थे। प्रसिद्ध उपन्यास 'श्रीकान्त' में उल्लिखित राजलक्ष्मी उनकी सुपरिचिता राजबाला ही थी, पटना की गणिका राजलक्ष्मी नहीं हालांकि राजलक्ष्मी के जीवन की कतिपय घटनाओं से उन्होंने प्रेरणा अवश्य ली। उनके जीवन से पूर्ण परिचय रखनेवाले इस बात को भलीभाँति जानते हैं। हाँ, एक भद्र परिवार की महिला होने के कारण नाम उन्होंने राजबाला का न रखकर राजलक्ष्मी ही रखा। राजबाला मुजफ्फरपुर के एक चिकित्सक तथा न्यू डिस्पेन्सरी नामक एक एलोपैथिक औषधालय के मालिक चन्दर बाबू की पत्नी थी।[110]

हरबर्ट रीड के शब्दों में व्यक्तित्व का मर्म अहम् में ही निहित है। वह कहता है—"द इगो इज द सिनथिसिस आफ सेनसेशन्स ऐंड इज सेपरेटेड बाय कानसस एक्स पीरियेंस।"[111] विश्व की अनेक प्रतिभाओं के जीवन से यह बात सिद्ध है कि रचना करने के क्षणों में व्यक्तित्व और लेखक—दोनों आमने-सामने होते हैं। ऐसे क्षणों में मस्तिष्क के विशाल अंधकार पट से एक विचित्र प्रकाश फूटता है जिसका उद्गम-स्थल अव चेतन अथवा उपचेतन मस्तिष्क है। किन्तु, केवल यही बात किसी मौलिक रचना का कारण नहीं—मूलवस्तु है व्यक्तित्व।

विचार और व्यक्तित्व दोनों एक साथ ही विकसित होते हैं और दोनों का चरम उन अतलस्पर्शी क्षणों को प्राप्त करता है जिनमें प्रेरणाओं का जन्म होता है। कलाकार की संवेदना हर चरित्र को प्राप्त होती है इसलिए यह कहना संभव नहीं कि कलाकार किस चरित्र में मौजूद है। गोस्वामी तुलसीदास यदि रावण जैसे भीषण और दुर्दांत चरित्र की सृष्टि में अपना आत्मभाव समर्पित न करते तो राम जैसे महान और आराध्य चरित्र की सृष्टि भी संभव न थी और न रावण के चरित्र से कुछ सीखा जा सकता था। इस तरह काव्य में कलाकार अपने आत्मभाव को स्रष्टा के अनुरूप ही रखता है।[112] किन्तु, औपन्यासिक पात्रों की पूर्णता लेखक की समग्रता में नहीं उनके अपने विकास की परिसीमाओं में ही मिलती है। लेखक अपने पात्रों में उपस्थित है, उसकी रुचियाँ ही पात्रों की रुचियाँ हैं फिर भी पात्र लेखक की अनुकृतिमात्र नहीं है। उपन्यासकार का महत्त्व पात्रता के उपयुक्त परिवेश और मनोवृत्ति का आधार निर्धारित करने में है। रूपकों के पात्रों की तरह औपन्यासिक पात्रों में कृतित्व की अपेक्षा नहीं क्योंकि वहाँ तुलनात्मक रूप से उनका संघर्ष अधिक तीव्र और

---

१०९. आजकल नवम्बर १९५८ पृ० १९
११०. वही, पृ० २४
१११. समीक्षा शास्त्र, पृ० ३५
११२. जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत

निश्चित परिणामकारी होता है इसलिए सजग उपन्यासकार अपने पात्रों का विकास स्वाभाविक तौर पर उनकी अपनी पृष्ठभूमि में कराता है। उनकी सजीवता चरित्रहीनता अथवा कुंठाओं के मनोवैज्ञानिक-सांस्कृतिक आधार को स्पष्ट करता है उनके बंधनों और मोक्ष के प्रयासों को व्यक्त करता है जिससे सदा यह कहा जा सके—उन पात्रों का विकास उनका ही स्वाभाविक विकास है, केवल उनका ही निजी विकासमात्र और कुछ नहीं एवं इससे अन्यथा भी कुछ नहीं।[१३३] प्रसिद्ध रूसी कथाकार एंटन चेखव ने कथा-चरित्र एवं अपनी मनोभावों में फर्क बताते हुए कहा था—"मेरी कहानियों के पात्र बहुत दुखी और उदास जान पड़ते हैं। यह मैं जान-बूझकर नहीं करता लिखते समय स्वतः ऐसा हो जाता है। मैं अपने को एक दुखी व्यक्ति नहीं मानता। पर कम-से-कम लिखते समय मैं अपने को हमेशा एक सुखद मनःस्थिति में पाता हूं। अक्सर शांत और सुखी लेखकों की कृतियां अवसादपूर्ण होती हैं। मैं एक ऐसा ही सुखी व्यक्ति हूं कम-से-कम मैंने अपनी जिन्दगी के प्रारम्भिक तीस वर्ष आराम से बिताये हैं।"[१३४]

एक खास युग के लेखक एक ढंग की चीज लिखते हैं।[१३५] युग चरित्र और कथाकार के गहरे संबंध का उदाहरण नोबल पुरस्कार प्राप्त पेस्टरनक का उपन्यास डाक्टर जिवागो है। इसमें लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व झांकता है। उपन्यास का नायक डा० जिवागो एक सजीला अभिजात्य और कुंठित चरित्र है। वह १९१७ में रूस की बोलशेविक क्रांति से मुंह चुराकर अपनी पत्नी टान्या और परिवार के साथ साइबेरिया भाग निकलता है। फिर जब वह मास्को वापस आता है तो क्रांतिजन्य परिवर्तनों को देखकर उसका दिल टूट जाता है। एक ट्राम में सफर करते समय उसके हृदय की गति रुकती है और वह मर जाता है। अमीर घराने के इस कलाकार का जन्म सन १८९० ई० में हुआ था। १९१९ की राज्यक्रांति से बचकर उसके पिता देश को छोड़कर भागे थे और उसी सिलसिले में उनका देहान्त हुआ था। डाक्टर जिवागो से उनके जीवन की घटनाओं का बड़ा साम्य है। उस समय पेस्टरनक की उम्र ६७ साल की थी जब जीवन और कार्य के प्रति व्यक्ति के सिद्धान्त काफी सुदृढ़ हो जाते हैं। वह अपने को समाजवादी समाज में खपा न सका। इसलिए डा० जिवागो के माध्यम से उस व्यवस्था के प्रति अपने प्रतिरोध को उसने व्यक्त किया है।[१३६] इसीलिए आधुनिक विचारकों ने ग्रंथकार का अध्ययन प्राणिजगत की विशाल पटभूमिका पर रखकर भी किया है।[१३७]

पश्चिम के कई आलोचकों का मत है कि कवि स्वयं अपने चरित्र को किसी न किसी पात्र के माध्यम से व्यक्त कर दिया करता है। प्रमाण के लिए आलोचक डेडले ने

---

१३३ आलोचना (उपन्यास अंक) पृ० १२२
१३४ कृति, मई १९५९, चेखव के पत्र निर्मल वर्मा, पृ० ४५
१३५ साहित्य का साथी, पृ० १५
१३६ नवभारत टाइम्स, दिल्ली, प्रेमचन्द भारद्वाज, १० नवम्बर ५८
१३७ साहित्य का साथी, पृ० १७६

शेक्सपीयर के जीवन की 'हैमलेट' से तुलना की है। ब्रेडले का कहना है कि शेक्सपीयर की तरह हैमलेट को भी अपने कई सम्बन्धियों की मृत्यु का दुख उठाना पड़ा। उसके पितृव्य स्वयं उसके पिता का वध करके हैमलेट के राज्याधिकार का भी अपहरण करना चाहते थे। शेक्सपीयर को भी थियेटर की नौकरी छूटने का हमेशा भय बना रहता था। ब्रेडले इस तरह इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सम्भवतः शेक्सपीयर ने अपने जीवन और व्यक्तित्व को ही हैमलेट के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।[138] हैमलेट को फ्रायड ने हिस्टीरिया ग्रस्त प्राणी कहा था और निष्कर्ष निकाला था—"इस प्रकार हिस्टीरिया पीड़ित व्यक्ति निस्सन्देह कल्पनाशील कलाकार है।"[139]

हमारे यहाँ भी कहा जाता है—'वाल्मीकि तुलसी भए" यानी वाल्मीकि ने तुलसी के रूप में अवतार लिया। इसका अर्थ सिर्फ यही है कि जिस तरह वाल्मीकि ने आदर्श राजा राम की आराध्यता की उसी भक्तिभाव से तुलसी ने भी राम को पूजा। दोनों ने अपनी श्रद्धा-भावना से परिपूरितकर राम के आदर्श चरित्र को जनमन के कल्याण के लिए हमारे सामने उपस्थित किया। तुलसी ने अपने महाकाव्य में हनुमान का रूप धारणकर अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट किया। उनके विचारों की साका रता और पवित्रता राम के उदात्त चरित्र के रूप में लोक-कल्याण के लिए प्रस्फुटित हुई। इसीलिए महाकवि को हनुमान का पुजारी और राम का भक्त कहा जाता है। उसी तरह सूर के व्यक्तित्व को कृष्ण भक्त उद्धव के रूप में देखा जा सकता है। इसलिए भक्तमाल में नाभादासजी ने तुलसी को वाल्मीकि का और सूर को उद्धव का अवतार माना है।[140]

यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि क्या कवि का व्यक्तित्व प्रतिनायक के रूप में भी अभिव्यक्त हो सकता है। यदि ऐसा हो तो क्या एक ही व्यक्ति में रामत्व और रावणत्व का कृष्णत्व और कंसत्व का समावेश संभव है। आलोचकों ने इसके उत्तर में कहा है कि महाकाव्यों ने जिस सत्य का साक्षात्कार किया उसकी अभिव्यक्ति राम और कृष्ण के माध्यम से हुई है। प्रतिनायक रावण और कंस तो कवि के आराध्य देव के बिम्बरूपों को प्रतिभासित करने के लिए हैं। वे कल्पना की तूलिका से रंजित वातावरण मात्र हैं जिस तरह चित्र में विद्युज्ज्योति दिखाने के लिए मेघाडम्बर की पृष्ठभूमि अनिवार्य है।[141]

उपन्यासकार अज्ञेय कहते हैं कि अपने उपन्यासों में मैं स्वयं हूं और उनमें अपने ही व्यक्तिविकास का विश्लेषणात्मक सिंहावलोकन है।" हरेक कृति का लेखक के व्यक्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। प्रेमचन्द के अधिकांश नायकों और पात्रों में इस प्रकार की स्पष्ट छाया परिलक्षित होती है।

'मांपे-की-नदी' के नायक में प्रेमचन्दजी ने बहुत हद तक अपने ही जीवन को

---

१३८ समीक्षा-शास्त्र पृ० ९८
१३९ आलोचना २६, पृ० ८५
१४० समीक्षा शास्त्र, पृ० ९८
१४१ वही, पृ० ९४

अंकित कर दिया है।[१४२] नायक ससुराल जाता है तो पत्नी पूछती है— 'सब रुपये उड़ा आये कि कुछ बचा भी है ? नायक का सारा प्रेमोत्साह शिथिल पड़ जाता है। उसके जी में आता है कि इसी वक्त उठकर चल दे। न कुशल-क्षेम न मीठी बातें सिर्फ रुपया और रुपया। वह अपनी कम आमदनी का रोना रोता है तो पत्नी कहती है—"तुम नाहक मर्द बने। अपने शौक-सिंगार कंघी चोटी से कुछ बचता ही नहीं। तुम दूसरों की फिक्र क्या करोगे ? नायक झुंझलाकर पूछता है— 'क्या इसी वक्त चला जाऊं ? देवीजी त्योरियां चढ़ाकर कहती है—"क्या मैं बुलाने गयी थी।" नायक ने प्रेम की बातें कीं तो जवाब मिला—"प्रेम अपने-आपसे करते होंगे। मुझसे नहीं। मैं रोकड़ की परवाह नहीं करती पर देखती हू कि ज्यों-ज्यों तुम्हारी हालत सुधर रही है तुम्हारा हृदय भी बदल रहा है। "मैं उपवास और फटे-चीथड़े सह सकती हूं। लेकिन यह नहीं हो सकता कि तुम चैन करो और मैं मैके में पड़ी भाग्य को रोया करूं। मेरा प्रेम इतना सहनशील नहीं।"

प्रेमचन्द उस समय एक स्कूल की नौकरी में १८) मासिक पर नियुक्त हुए थे। नायक की आर्थिक दशा उनकी अपनी आर्थिक हालत से मिलती-जुलती है। फर्क सिर्फ इतना-सा है कि कहानी का नायक बन-ठनकर अपने मित्र बाबू से घड़ी मांगकर ससुराल गया है। मुमकिन है कि लेखक ने ऐसा किया हो या न भी किया हो। और इस घटना के उपरान्त ही उनमें दिखावे के विरुद्ध भावना जगी हो। जब तुम वाकई गरीब हो तो गरीब कहलाने में शर्म क्यों ? और यों ही अमीर कहलाने से काम ?[१४३] इस कहानी से यह भी पता चलता है कि अपनी आर्थिक स्थिति के कारण प्रेमचन्दजी अपनी पत्नी को अपने पास न रख पाते थे जिससे दोनों के दिलों में गांठ पड़ती गयी और द्वेष बढ़ा। 'जीवन का शाप' कहानी का नायक कावसजी प्रेमचंद के जीवन-भावों को पेश करता है। 'घर-जमाई' 'नया विवाह' आदि भी उनके जीवन के चित्र हैं। प्रेमचंद जी की अपनी विमाता से पटती न थी। उन्होंने शिवरानी देवी से दूसरा विवाह भी किया था। उन्होंने १९२१ में स्कूल की नौकरी से इस्तीफा दिया था जिसका चित्रण उनकी 'इस्तीफा' नामक कहानी में है। इस्तीफे के बाद स्कूल छोड़ने के दृश्य का सजीव चित्र 'निर्मा' नामक कहानी में उपस्थित है—"मैं भी अपने आंसू न रोक सका। गाड़ी मन्दगति से चली। लड़के कई कदम तक उसके साथ दौड़े। मैं खिड़की के बाहर सिर निकाले खड़ा था। कुछ देर तक मुझे उनके हिलते हुए रूमाल नजर आये।"[१४४]

महान ग्रंथकार कल्पना और बुद्धि के प्रयोग से गढ़े जीवों में आस्था न रख अपने अनुभव के आधार पर सजीव चित्रण पेश करता है। प्रेमचंदजी का कहना था—"कल्पना से गढ़े हुए आदमियों में हमारा विश्वास नहीं है। उनके कार्यों और विचारों से हम प्रभावित नहीं होते। लेखक को अपने पात्रों की जुबान से खुद बोलना

---

१४२ प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व—हंसराज रहबर, पृ० ६९

१४३ वही, पृ० ७०

१४४ वही, पृ० ७८

चाहिए।[१४५] सेन्ट ब्यूए का कहना था— 'किसी ग्रंथ के अध्ययन के लिए रचनाकार के जीवन और उसकी जीवन-दृष्टि को समझना जरूरी है। इसी मत को विस्तृत करते हुए मी ग्रेकफोर्ड ने बताया कि ग्रंथकार के मनोविश्लेषण के लिए दो बातों पर विशेष ध्यान जाना चाहिए।[१४६]—यह कि किसी कृति में रचयिता का जीवन कहां तक व्यक्त हुआ है और यह कि लेखक के जीवन के मोटे-मोटे तत्त्व या क्रियाएं क्या थीं ? वह किस बात पर नाक भौं सिकोड़ता था, टीका-टिप्पणी या छोटे कसना था आदि तथा इसी प्रकार की छोटी-मोटी अन्य बातें। फ्रांसीसी आलोचक टेन का भी ऐसा ही मत है।[१४७]

इन आलोचकों का यह मत था कि कलाकार का व्यक्तित्व भी सभी अन्य लोगों की तरह छोटी-मोटी बातों के आधार पर बनता है। वह सिर्फ समाज या प्रकृति का ही चित्रकार नहीं। उसकी इच्छाएं वासनाएं भावनाएं और रुचियां भी उसकी कृतियों में चित्रित होती चलती हैं। अतएव इन्हीं बातों के आधार पर उसके पात्रों घटनाओं और आचार-विचार इन्हों का परीक्षण होना चाहिए।[१४८]

फ्रायड के अनुसार किसी कृति का 'हीरो' लेखक के 'इगो' (अहम्) के अति रिक्त कुछ नहीं। उसने कवियों की तुलना दिन के सुनहले प्रकाश में सपनाने वाले और उनकी कृतियों की तुलना दिवास्वप्नों से की है। प्रमाणस्वरूप, उसने दैवीशक्ति से युक्त और निरन्तर संकट में पड़नेवाले नायक का उससे बेदाग बच निकलना कृतियों में सभी स्त्रियों का नायक से प्रेम करना आदि बातें पेश की हैं। 'इगो' की यह केन्द्रीय स्थिति तथाकथित मनोवैज्ञानिक उपन्यासों और ऐसी कृतियों में भी सिद्ध है जिनके नायक आदि से अन्त तक निष्क्रिय दर्शकमात्र बने रहे हैं। जो कलाकार पौराणिक कथाओं चरित्रों की कथाओं अनुभूतियों आदि बनी-बनाई वस्तु का उपयोग अपनी कृतियों में करते हैं, वे एक हद तक स्वच्छन्दता बरतते हैं—विषय-वस्तु के चुनाव और पुनर्निर्माण में। फ्रायड ऐसी कहानियों को सम्पूर्ण राष्ट्रों की इच्छा-तृप्तियों के विकृत अवशेष और बाल्यमानवता के अतीत से बचे मानेवाले स्वप्न मानते हैं। दूसरे शब्दों में कृतियों में कृतिकार का 'इगो' और उसके स्रष्टा की आत्मकथा रहती है।[१४९] 'कलाकार प्रेमचन्द' में श्री मन्मथनाथ गुप्त ने कहा है कि चरित्रों का स्रष्टा लेखक यदि वस्तुवादी है तो वह जीवन के आधार पर उन्हें गढ़ता है *जैसा हम गेटे शरत आदि लेखकों के बारे में जानते हैं।* प्रेमचंदजी के भी कई पात्र उनके इर्द-गिर्द के लोग थे। जो कुछ भी हो जब एक बार कल्पित या जीवन से लिया गया चरित्र साकार रूप धारण कर लेता है तो लेखक की लेखनी को अपने साथ घसीट ले चलता है। महान उपन्यासकार थेकरे ने लेखक को परिचालित करनेवाले, चरित्रों की इस शक्ति को 'ओकल्ट' या गूढ़ बतलाया है।

---

१४५. साहित्य का साथी पृ० १४
१४६ समीक्षा शास्त्र पृ० २४
१४७. साहित्य का साथी, पृ० १६
१४८ वही, पृ० ११
१४९. आलोचना (२६), पृ० ८२

अध्याय २

चरित्र-विकास : सिद्धान्त पक्ष

नाटकों में वर्णित जिन चरित्रों का रूप धारण करके अभिनेता रंगमंच पर अभिनय करते हैं, उन्हें पात्र कहते हैं। इसके अंतर्गत वे सब मनुष्य, पशु-पक्षी, मानवीय भाव अथवा जड़ पदार्थ आते हैं जो नाटक में कार्य करते हैं। कभी देवता, भूत-प्रेत, राक्षस, किन्नर, गन्धर्व, देवदूत आदि अलौकिक शक्तियों का भी पात्र के रूप में प्रयोग होता है। इस दृष्टि से पात्रों को अलौकिक, मानव, पशु-पक्षी, जड़ पदार्थ और भाव आदि पांच भागों में बांटा जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन पात्रों को नरक्षेत्र, नरेतर बाह्य सृष्टि के और कहीं समस्त चराचर के क्षेत्र में माना है।[1]

नाट्यशास्त्र के आचार्य भरत मुनि के अनुसार मनुष्यों का स्वभाव तीन प्रकार का है—उत्तम, मध्यम और अधम।[2] उत्तम प्रकृति के मनुष्य सदाचारी, जितेन्द्रिय, ज्ञानवान, अनेक शास्त्रों के विद्वान, ऐश्वर्यवान, दीनों के रक्षक और प्रतिपालक, गंभीर, उदार, धीर और त्यागी होते हैं। मध्यम प्रकृति के मनुष्य व्यवहार-कुशल, शिल्पशास्त्र में प्रवीण, मिष्टभाषी और मधुर व्यवहार करनेवाले होते हैं। इन दोनों के विपरीत स्वभाववाले यानी दुष्ट, रुक्ष, क्रोधी, हिंसक, मित्रघाती, कामी, कृतघ्न, आलसी, घमंडी, उद्दंड, झगड़ालू, छिद्रान्वेषी, चोर और पापी अधम प्रकृति के मनुष्य माने गये हैं।

इसी प्रकार आचरण की दृष्टि से पुरुषों के समान स्त्रियों की भी प्रकृति तीन प्रकार की मानी गयी है।

नायक

नायक वही है जो बहुत से गुणों का नेता हो। साथ ही उसे विपत्ति और अभ्युदय में समान सुख का अनुभव करनेवाला होना चाहिए जो सामान्य जनों की तुलना में उसकी श्रेष्ठता के द्योतक हैं।

आचार्यों ने नायक के लिए कुछ खास किस्म के प्रतिबंध भी लगाये हैं जिनका पालन महाकाव्यों में आवश्यक था। किन्तु, महाकाव्य और उपन्यास के नायकों में उतना ही अंतर है जितना महाकाव्य और उपन्यास में।[3]

---

१ चिन्तामणि पृ० १४१

२. अभिनव नाट्य शास्त्र पृ० ११३

३ आकाशवाणी, इलाहाबाद से प्रसारित वार्ता दिनांक ९।१०।५८

उपन्यास और महाकाव्य के नायक

उपन्यास के नायकों के लिए ऐतिहासिक पुरुष, राजा अथवा राजवंश का होना आवश्यक नहीं। वह साधारण और निम्नवर्ग का अति दुर्बल व्यक्ति हो सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि वह पुरुष ही हो—स्त्री भी हो सकती है। उपन्यास के पूरे कथानक पर जिस पात्र का व्यक्तित्व छाया हो वही उस कृति का नायक है। उसी का समग्र जीवन उपन्यास की कथा का निर्माण करता है। यही नहीं कथानक और नायक सापेक्ष हो गये हैं। कथानक में घटनेवाली सभी घटनाएं, उसके समस्त कार्य व्यापार उपन्यासकार द्वारा वर्णित न होकर नायक के माध्यम से कहे जाते हैं।

नायक के भेद

नायक चार प्रकार के बताये गये हैं। स्वभाव के आधार पर उन्हें धीरोद्धत धीरललित, धीरोदात्त और धीरप्रशान्त कहा गया है।[४] देवता को धीरोदात्त, राजा को धीरललित सेनापति और मंत्री को धीरोद्धत तथा ब्राह्मण और वैश्य को धीरप्रशान्त बताया गया है। चारों नायकों के लिए चार प्रकार के विदूषक भी निर्धारित किये गये हैं। देवताओं के विदूषक लिंगी (संन्यासी या धर्मध्वजी), राजाओं के विदूषक ब्राह्मण, सेनापति तथा मंत्री के राजजीवी (राजपुरुष और ब्राह्मण) तथा वैश्य-नायकों के विदूषक उनके शिष्य होते हैं।[५]

भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णित पात्रों के प्रकार की सविस्तृत व्याख्या भावप्रकाश के दशम अधिकार में शारदातनय ने की है। उसमें भरत और शारदातनय दोनों के विचार उल्लिखित हैं।[६] नाटकों में विदूषक को इतना महत्त्व देते हुए शास्त्रकारों ने उसका विस्तृत वर्णन किया है और विदूषक को बौना पीली आँखों वाला हास्यप्रिय पीले बालों वाला टूटी दाढ़ी वाला और नाचने वाला बताया है।

प्रेम-व्यापार में मंत्रणा देनेवाला वेश्या से व्यवहार करने में कुशल, मिष्टभाषी सर्वप्रिय और सबको प्रसन्न करनेवाला सबका कहा माननेवाला बातूनी और चतुर व्यक्ति को विट कहा गया है। उसे माला और आभूषणों से अलंकृत अकारण क्रुद्ध और प्रसन्न होनेवाला अटपट और प्राकृत भाषा में बोलनेवाला भी बताया गया है।[७] ऐसे पात्र हिन्दी के लेखक श्री जी० पी० श्री वास्तव[८] और राधाकृष्ण[९] आदि के उपन्यासों में मिलते हैं।

---

४ साहित्यालोचन, पृ० २००

५. साहित्य दर्पण, पृ० १३८

६ वही

७ अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० ११८

८ रूपक रहस्य पृ० १०४

९. लतखोरीलाल—जी० पी० श्रीवास्तव, के नायक

१० 'फोगस' एवं 'फुटपाथ' उपन्यासों के नायक

कामनाहीन किन्तु ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न, कंचुक (अंगरखा) और उष्णीष (पगड़ी) तथा हाथों में बेंत धारण करनेवाला पात्र कंचुकी कहलाता है। स्त्रैण नपुंसक, कमजोर तथा जन्म और स्वभाव से कामवासनाहीन पात्र वर्षवर कहलाता है। जंगली फलमूल खानेवाले गांव-पहाड़ में रहनेवाले जिनकी स्त्रियां विचित्र हों असी प्रकार माया जानने वाले तथा लंबी ठोढ़ीवाले पात्र किरात कहे गये हैं। राजदरबार में इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कुबड़े ठिगने बौने, बहरे, नपुंसक बड़े दांतोंवाले तथा मोटे व्यक्ति भी पात्रों में आते थे। इनके अलावा सिपाहीन निर्गुण्ड राजा के पास रानियों को लानेवाला औपस्थापिक रनिवास की देखभाल करनेवाला अभ्यागार अनेक प्रकार के कौतुक दिखाकर सदा हंसानेवाले मूक या गूंगे[11] कई तरह के गुणों से युक्त समासद जिनमें वैतालिक बन्दी नांदी, मंगल-पाठक आदि भी कभी-कभी शामिल थे नाटकों के पात्र माने गये हैं। वैतालिक मुक्त श्लोकों का गायक बन्दी राजा के गुणों और पराक्रमों का सुनानेवाला मंगल-पाठ से राजाओं को प्रसन्न करनेवाला नांदी, राजा के लिए सुख की नींद सुप्रभात और स्नानादिक कर्मों की सूचना देनेवाले सूत तथा सुन्दर मागधी गीतों से राजा और पुरजन का अभिनंदन करनेवाले पात्र मागध कहलाते थे।[12]

प्रेम[13] में दृढ़ सुन्दर कलाओं का ज्ञाता, विलासयुक्त और कामशास्त्र का ज्ञाता व्यक्ति शृंगारप्रधान नाटकों का नायक माना गया है। उसी तरह वीर पराक्रमी गंभीर युद्ध के लिए सदा तैयार व्यक्ति वीररस प्रधान नाटकों का नायक, चिन्तित दीन, भ्रान्त अकर्मण्य और दुखी—करुण रस प्रधान नाटकों का नायक तथा चंचल हंसने-हंसाने की क्रिया में चतुर हास्यप्रधान नाटकों का नायक हर्ष और क्रोधयुक्त घमंडी और उत्साही रौद्ररस प्रधान नाटकों का नायक हीन मुद्रावाला किंकर्तव्य-विमूढ़ दीन पसीने-पसीने हो जानेवाला और डरपोक भयानक रसवाले नाटकों का नायक मदिरा और मांस में लगा मद में चूर्ण व्यक्ति वीभत्स रस के नाटकों का नायक, एवं सात्त्विक गुणों से युक्त व्यक्ति शांत रस के नाटकों का नायक माना गया है। इसके अलावा नायक का परम मित्र उसके दुःख में दुःखी उपनायक माने गये हैं। रामायण में सुग्रीव लक्ष्मण आदि ऐसे ही हैं। सब प्रकार के व्यसनों का प्रेमी, नीच और ढोंगी-घमंडी प्रतिनायक कहलाता है जैसे रावण आदि।[14]

चार तरह के नायकों के भी चार भेद होते हैं—अनुकूल दक्षिण शठ, और धृष्ट। अनुकूल नायक एक ही नायिका में अनुरक्त रहता है जैसे उत्तररामचरित में राम।[15] दक्षिण नायक की एक से अधिक नायिकाएं या पत्नियां होने के बावजूद ज्येष्ठ नायिका से सदय व्यवहार तथा अन्य नायिकाओं में समान प्रेम होता है। शठ नायक

---

११ रूपक रहस्य, पृ० १०५

१२ अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० १२४

१३ वही

१४ रूपक रहस्य, पृ ८८

१५. नवरस, पृ० २१२

एक ही पत्नी में प्रेम का प्रदर्शन करते हुए भी कई नायिकाओं से रतिविलास में लीन रहता है और उसे छिपाने का भी प्रयास करता है। धृष्ट नायक खुले आम रतिविलास और उसकी चर्चाओं में व्यस्त रहनेवाला निर्लज्ज होता है। ये चारों भेद एक ही नायक की उत्तरोत्तर वर्धमान अवस्थाओं के भी हो सकते हैं।[16] चार प्रकार के नायकों के चार-चार भेद होने से नायक के सोलह भेद हुए। आचार्य भरत ने इनके उत्तम मध्यम और अधम तीन-तीन भेद और माने हैं जिससे नायक के अड़तालीस भेद हुए। इन ४८ के भी दिव्य अदिव्य और दिव्यादिव्य तीन-तीन भेद और माने गये हैं। देवता दिव्य मनुष्य अदिव्य और मनुष्य का रूप धारण किये देवता दिव्यादिव्य माने गये हैं। इस प्रकार नायक के कुल मिलाकर १४४ भेद होते हैं।[17]

नायक के निकटतम सहायक को पीठमर्द कहा गया है। न्यूनाधिक मात्रा में नायक के सभी गुण उसमें होते हैं। वह कार्यकुशल और भक्त होता है। सुग्रीव को पीठमर्द कहा जा सकता है।[18] साहित्य दर्पणकार[19] के अनुसार नायक के सहायकों को शृंगार-सहाय अर्थचिन्ता-सहाय धर्मसहाय, दंडसहाय अंतःपुर सहाय और संवादसहाय या दूत आदि छः प्रकार के भेदों में विभाजित किया गया है।[20] इनके भी कई उपभेद माने गये हैं। विट विदूषक रक्षक, तमोली, मालाकार गंधी आदि शृंगार-सहाय माने गये हैं।[21] नाटकों के नायक राजा को अर्थ के लिए मंत्री और कोषाध्यक्ष पर निर्भर रहना पड़ता था। पर धीरललित नायक अर्थसिद्धि के लिए सलाहकारों पर निर्भर नहीं रहता और धीरशांत नायक को धन की विशेष चिन्ता नहीं होती थी। सामन्त और सैनिक दुष्टों को दमन करनेवाले और नायक के सुहृद मित्र होते थे। यज्ञ करने और करानेवाले ब्राह्मण पुरोहित तपस्वी योग धर्मसहाय होते थे। वर्षवर (हिजड़ा) गूँगे मूक किरात (जंगली) बौने, म्लेच्छ और शकार आदि अंतःपुर-सहाय होते थे। नीच कुलोत्पन्न मूर्ख घमंडी और ऐश्वर्यशाली तथा राजा की उपपत्नी का भाई शकार कहलाता था।[22] संवादसहाय अथवा दूत के भी साहित्य दर्पणकार ने निसृष्टार्थ मितार्थ और सन्देशहारक नामक तीन भेद बताये हैं।[23] इनमें भी पीठमर्द तथा धर्म सहाय उत्तम विट और विदूषक मध्यम तथा चेट और शकार आदि नायक के अधम श्रेणी के सहायक माने जाते हैं। दूत अपनी कार्य-कुशलता के अनुसार तीनों में से किसी भी श्रेणी में आ सकता है।

---

१६ नवरस, पृ २२२
१७ रूपक रहस्य पृ० १००
१८. वही पृ० १०५
१९. साहित्य दर्पण, पृ० ९८
२० रूपक रहस्य पृ० १०४
२१ वही
२२ वही
२३ साहित्य दर्पण पृ० ७०

नायक शोभा विलास माधुर्य, गांभीर्य स्थिरता तेज, साहित्य और औदार्य आदि आठ सात्विक और पौरुषेय गुणों में विभूषित माना गया है। तुलनात्मक रूप से प्रतिनायक धीरोद्धत लोभी निष्ठुर पापी व्यसनी माना गया है।[२८]

आवेष्टन और चरित्र-विकास

सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य पर समाज की प्रत्येक अवस्था और वातावरण का काफी प्रभाव पड़ता है। डा० देवराज ने इस समाजगत संबंध को 'आवेष्टन' कहा है। इस शब्द के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानवता के सब तरह के विचार विकार, संशय-संदेह, युग-युग मानवता का सम्पूर्ण इतिहास अनुभव और स्मृतियां शामिल हैं। इसमें राम-कृष्ण तथा बुद्ध-ईसा के विचार ही नहीं उनकी जीवनियां भी हमारे सांस्कृतिक आवेष्टन का महत्त्वपूर्ण अंग हैं।[२५] आवेष्टन की यह विविधता व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती है और इसके अध्ययन द्वारा ही मानव के जटिल व्यक्तित्व को समझा जा सकता है। यह आवेष्टन हर युग में बदलता रहता है। इसी लिए, प्रत्येक युग के चरित्रों में अंतर होता है। इसीलिए प्रत्येक युग के लेखकों के चारित्रिक विश्लेषण में भी अंतर होता है। आवेष्टन के कुछ भाग जैसे मौलिक प्रकृति नर-नारी की प्रणयलीला या मां-बालक का परस्पर संबंध आदि विशेष परिवर्तित नहीं होते। पर उनके द्वारा विकसित होनेवाला चरित्र बदलता रहता है। इसीलिए प्रत्येक युग के मनुष्य की ये लीलाएं बदलती रहती हैं।[२६] आवेष्टन का प्रभाव मानते हुए भी विदेशी मनोवैज्ञानिक वंश-परम्परा को चरित्र-विकास का आवश्यक तत्त्व मानते हैं।[२७] यह परम्परा उनकी प्राणिशास्त्रीय और शारीरिक मानी जाती है। किन्तु, इनपर धर्म परम्परा का प्रभाव नहीं माना जाता है।[२८] इसी आधार पर चरित्रों की परीक्षा हो सकती है। बाल्जाक्की के प्रसिद्ध उपन्यास 'ऋइम एंड पनिशमेंट' में इस समस्या को व्यापक रूप में पेश किया गया है और बताया गया है कि व्यक्ति पर संगति का बुरा या भला प्रभाव अवश्य पड़ता है।

मानव-स्वभाव को अच्छे या बुरे रूप में स्वीकार किया जा सकता है। एक कवि के शब्दों में "नथिंग इज गुड एंड बेड बट थिंकिंग मेक्स इट सो।" पाश्चात्य विचारक अरस्तू की भी यही राय है। इसीलिए मनुष्य के सभी कार्य देश काल और पात्र के अनुसार अच्छे या बुरे माने गये हैं। कुछ लोग प्रवादकारी भी होते हैं। किन्तु चरित्र के मूल्यांकन की मात्र एक कसौटी हो सकती है—दूसरे की भलाई करने

२४, साहित्य-दर्पण पृ० ६५
२५. साहित्य-चिन्ता, पृ० ६०
२६ वही
२७ समीक्षा शास्त्र, पृ० १२३
२८ वही पृ० १२०
"मनुष्य या तो उच्च श्रेणी के होंगे या नीच श्रणी के"

वाला अच्छा आदमी   दूसरे की बुराई या अहित करनेवाला बुरा आदमी। अच्छाई और बुराई के इस दृष्टिकोण से भी उत्तम, मध्यम और अधम की कल्पना की जा सकती है। इस विभाग संसार में ऐसे पात्र बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। साहित्याचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने स्वभाव के अनुसार मनुष्य की दस अवस्थाओं को बताया है। वे हैं, शिशु बालक कुमार, किशोर, युवा युवातियुवा, प्रौढ़ प्रौढ़ातिप्रौढ़ वृद्ध वृद्धातिवृद्ध।[१८] चरित्र की ये दस अवस्थाएं उसके सामाजिक संबंधों को स्पष्ट करती हैं। बचपन के संस्कार आयु-वृद्धि के साथ ही परिपक्व होते-होते वास्तविक स्वभाव का रूप धारणकर चरित्र के गुण या अवगुण बन जाते हैं।

आयु और चरित्र-विकास

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जब एक ही प्रकार की क्रिया की सदा एक-सी मानसिक-स्नायविक प्रतिक्रिया होने लगती है और वे प्रतिक्रियाएं एक निश्चित रास्ता अपना लेती हैं तो वे ही मनुष्य के स्वभाव और आचरण को प्रभावित करके मनुष्य को बदल देती हैं।[१९] ये परिवर्तन अवस्था के अनुसार भी होते रहते हैं जिनका वर्णन करण प्राचीन ग्रंथकारों स्मृतियों और आचार्यों द्वारा किया गया है।[२०]

मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के विकास की चार अवस्थाएं—शैशवावस्था बाल्यावस्था किशोरावस्था प्रौढ़ावस्था—मानी हैं।[२१] पंद्रह तक बाल्यावस्था, पंद्रह से तीस तक का कौमारावस्था तीस से पचास तक युवावस्था तथा उसके बाद वृद्धावस्था होती है। किन्तु स्वभाव और आचरण की दृष्टि से हमें अवस्था का विभाजन और भी विस्तृत रूप में करना चाहिए। इस दृष्टि से तीन वर्ष का बालक अबोधावस्था में रहता है और दूसरों के आदेश पर सभी काम निर्विघ्न भाव से करता है। तीन से पांच तक आते-आते सहसा उसमें अच्छे-बुरे, प्रिय-अप्रिय का ज्ञान उदित होने लगता है। पांच से आठ तक ज्ञानवृद्धि के साथ ही उसमें सांसारिक चेतना शील और संस्कार का विकास होता है। आठ से पंद्रह तक की किशोरावस्था में उसकी रुचि प्रवृत्ति और प्रकृति में दृढ़ता आती है। यह उसके जीवन की निर्माणावस्था और भविष्य की सूचक भी होती है। पंद्रह से तीस तक की युवावस्था में मनुष्य की महत्त्वाकांक्षाओं का विशेष रूप से विकास होने लगता है।[२२] वह आत्म-श्रृंगार, आत्म प्रदर्शन की ओर या सामाजिक भावना से प्रेरित होकर मित्र या साथी बनाने एवं कामभावना से प्रेरित होकर अपना प्रेमपात्र ढूंढने लगता है। इस अवस्था में युवकों में वासनाजन्य उच्छृंखलता भी आती है। इस अवस्था के पार करने के बाद यानी तीस से पचास तक वह या तो

---

२१ अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० १ ०
१० समीक्षाशास्त्र, पृ० ३४२
११ अभिनव नाट्यशास्त्र पृ० १३०
१२. बाल मनोविज्ञान, पृ० ५७३
१३ आधुनिक मनोविज्ञान, पृ० १७८

सद्गृहस्थ और सदाचारी मानव बनता है या यशोपार्जन और धनोपार्जन की लालसा उसे अनीति की ओर ले जाती है। इस अनीतिकर्म की चिंता पचास से पैंसठ तक चलती है जिसे प्रौढ़ावस्था कहते हैं।[14] इस उम्र में मनुष्य कुछ अधिक धार्मिक भी हो जाता है। पैंसठ से पचहत्तर तक की अति प्रौढ़ावस्था में मनुष्य का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा हो जाता है। उसे चारों ओर अनीति और अनियम के दर्शन होने लगते हैं। पचहत्तर के बाद वह वृद्ध हो जाता है। वृद्धावस्था[15] में वह सत्संगति की ओर झुकता है। नब्बे से सौ वर्ष तक वह अतिवृद्ध होकर बच्चे की तरह परावलंबी हो जाता है। उस समय वह केवल 'निर्वाण' की कामना करता है। शेक्सपीयर ने जैक्स के मुंह से इसका बड़ा मार्मिक चित्रण कराया है।

अवस्था के अनुसार पुरुषों का भेद किया गया है। शिशु अवस्था से बाल्यावस्था थोड़ी-सी तीव्र होती है। उसमें चेतना आने लगती है। उसके बाद कुमारावस्था में बालक को नियन्त्रण पसन्द नहीं आता। व्यक्तित्व का विकास होने के साथ ही उसमें अपनी इच्छा और उत्तरदायित्व को समझने की शक्ति आती है। किन्तु जो बालक अपने दायित्व को पूर्णत नहीं समझ पाता वह कुमार्ग पर भी चल निकलता है।[16] इसी अवस्था में यह दुर्दमित बालक बड़ों का अपमान करता दुर्व्यसनी होता दम्भी भिक्षुक, चोर घूसखोर या अभिमानी हो जाता है।[17] घर का वातावरण और बाहर में जैसी संगति होती है, वैसा ही स्वभाव और आचरण बनने लगता है।[18] इसी किशोरावस्था में उचित शिक्षा और संगति मिलने पर बालक सद्गृहस्थ और अच्छा आदमी बनता है। अभाव में कुटिल भीरु साहसहीन आलसी दम्भू आदि बन जाता है। मननशील कल्पनाशील और सद्गुणों से विभूषित बालक बड़े होकर अपनी सदिच्छाओं की पूर्ति के लिए बड़े-बड़े काम करते हैं और महापुरुष बनते हैं। ऐसे पात्रों के साथ कुल संस्कार, संगति और परिस्थिति का सम्मिश्रण कर उत्तम चरित्रों का सृजन किया जा सकता है और यही कारण है कि दुनिया में डिक्टेटर पैदा हो जाया करते हैं।[19]

बालक कुमार और किशोर तीनों अवस्थाओं में यद्यपि बहुत थोड़ा अन्तर है, पर इन्हीं थोड़े से वर्षों में मनुष्य की वृत्तियां प्रवृत्तियां इतनी जटिल और बहुमुखी हो जाती हैं कि इन्हीं के आधार पर सम्पूर्ण जीवन का अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु आकस्मिक परिस्थितियों के कारण मनुष्य को विवश होकर अपनी प्रवृत्तियों में परिवर्तन करना पड़ता है। उस समय बड़े-बड़े अकर्मण्यों को भी कर्मरत होते देखा गया है।[20]

---

१४ वही, पृ० १४०

१५. " "

१६ प्रसारिका, वर्ष ३ अंक ४ ५, जुलाई, दिसम्बर १९५५ पृ० ८९

१७ बाल मनोविकास पृ० १८०

१८. " " "

१९. हीनभाव, पृ० २१

तरुण पुरुष भी तीन प्रकार के होते हैं[४१]—अनुरक्त, विरक्त और उदासीन, बुद्धिजीवी अथवा आलसी। अनुरक्तों का भी दो तरह का वर्गीकरण किया गया है—लोकसंग्राही और स्वार्थी। स्वार्थियों में लोभी मूढ़ क्रोधी ईर्ष्यालु दम्भी आदि व्यक्ति होते हैं। लोकसंग्राही के अन्तर्गत अच्छे गुणों से विभूषित पुरुष आते हैं जो अपने मित्रों बन्धुओं धन देश और समाज के लिए सर्वस्व त्याग करने में नहीं हिचकते। इनमें भी अपना हित करते हुए दूसरे का हितसाधन करने वाले, अपना नुकसान उठाकर भी दूसरों का भला करने वाले तथा अपना कुछ भी ध्यान न कर सिर्फ परोपकार करनेवाले व्यक्ति होते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों को आदर्श माना गया है। महापुरुष कहा गया है। इसी तरह अनुरक्त स्वार्थियों में भी कई भेद और उपभेद हैं। साहसी और दुस्साहसी अनुरक्त लोभी विषयी और प्रचंड विषयी, अनुरक्त प्रतिस्पर्धी अनुरक्त ईर्ष्यालु आदि के भी विभिन्न तरह की प्रकृति और स्वभाव हुआ करते हैं जिनकी विस्तृत व्याख्या शास्त्रकारों द्वारा की गई है। उदाहरण के लिए समानवृत्ति के पुरुषों में चाहे वे राज नीति या सामाजिक, धार्मिक या व्यावसायिक या बुद्धिजीवी वर्ग के हों एक तरह की आपसी ईर्ष्या होती है। इस कोटि में पर्वते चित्रकार एक ही तरह का व्यापार करने वाले व्यापारी या एक ही तरह का विषय पढ़ानेवाले अध्यापक आदि आ सकते हैं।[४२] इसी तरह अनुरक्त अभिमानी, अनुरक्त क्रोधी अनुरक्त मूढ़ आदि के भी कई भेद उपभेद होते हैं। अनुरक्त मूढ़ों में एक कमी ऐसे लोगों को भी होती है जो आजकल सर्वत्र देखे जा सकते हैं। ये किसी की बात का बुरा नहीं मानते किसी बात पर अपनी सम्मति नहीं देते और सबों को सन्तुष्ट रखने के लिए सदा ठकुरसुहाती कहते रहते हैं। ऐसों पर किसी तरह विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इनका कोई अपना नहीं होता स्वार्थ के सिवा।[४३] महत्त्वकांक्षी पुरुषों की भी कई श्रेणियां होती हैं। इनमें स्रष्टा कर्त्ता और भोक्ता महत्त्वाकांक्षी मुख्य हैं। स्रष्टा महत्त्वाकांक्षी में भी दो उपश्रेणियां हैं जो मानव जीवन के लिए स्वस्थ साहित्य या हितकर वस्तुओं का आविष्कार करता है, वह सहायक स्रष्टा। जो अहितकर साहित्य या वस्तुओं का आविष्कार करता है वह विनाशक स्रष्टा कहा जाता है।[४४] लोकहित के लिए पत्नी का त्याग राज्य का त्याग ऐसे स्थानों पर जा पहुंचना जहां कोई जाने का साहस न कर सके आदि कर्त्ता महत्त्वाकांक्षियों के काम हैं। दिग्विजयी राजा लोग दुर्गम पर्वतों पर चढ़ने वाले साहसी अकेले ही शत्रुओं से युद्ध करने वाले शूरमा आदि भोक्ता महात्वाकांक्षी हैं जो सुन्दरतम स्त्री सुन्दर भवन परम स्वादिष्ट भोजन आदि संसार में जो जो सर्वश्रेष्ठ वस्तु है उसे पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। इनके भी कई उपभेद होते हैं। एक तो वे जिन्हें अपनी महत्त्वाकांक्षा की तृप्ति के लिए राजकीय या व्यक्तिगत सहायता प्राप्त

४१ अभिनव नाट्यशास्त्र पृ० १५५
४२ बोधसार पृ० २१
४३ वही
४४ मनोविज्ञान और जीवन, पृ० २६२

हो जाती है। बहुत से ऐसे भी हैं जो निरन्तर चाहते हैं कि हमारे बड़े समाप्त हों तो हमें अपने मन की आकांक्षा तृप्त करने का अवसर मिले।[४५] ये प्रथम कोटि के महत्वाकांक्षी होते हैं। दूसरों की सहायता पर निर्भर करनेवाले मध्यम कोटि के और अपने धैर्य तथा पराक्रम पर निर्भर रहनेवाले उत्तम कोटि के महत्वाकांक्षी माने गये हैं।

चरित्रों का नामकरण

अक्सर चरित्रों का नामकरण भी उनके चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालने वाला होता है। उदात्त चरित्रों के नाम प्रायः विक्रमसिंह, बीजगुप्त[४६] लक्ष्मीबाई[४७], अहिल्याबाई[४८] आदि रखे जाते हैं। ऐसे चरित्रों के नाम गोबर, होरी, धनिया[४९] नहीं रखे जाते। हास्य रसात्मक चरित्रों के पात्रों के नाम मोटेराम शास्त्री[५०] तथा क्रूर और दुष्ट चरित्रों के नाम दुर्योधनसिंह, भीमसिंह, मर्दनसिंह, पहाड़सिंह, चमत्कारसिंह, चारोपा राम एवं अकुरसाहब आदि रखे जाते हैं। कुछ दुष्ट चरित्रों को व्यंग्यात्मक रूप से पेश करने के लिए अच्छे नाम भी रखे जाते हैं। चरित्रों के व्यापक अध्ययन से उनके नामकरण उनके वर्ग और जातिगत गुणों, व्यवसाय, गाम्भीर्य या ओछापन का भी पता चलता है। पात्रों के नाम अधिक से अधिक यथार्थता की भ्रान्ति पैदा करने में सहायक होते हैं।[५१]

वर्ग चरित्र

विभिन्न देशों की परम्परा, जाति, वर्ग और वृत्ति के अनुसार भी मनुष्यों के स्वभाव का निर्माण होता है। अपने देश में ब्राह्मण क्षमाशील और तपस्वी, कभी-कभी क्रोधी और शाप देनेवाला भी, क्षत्रिय शूरवीर, पराक्रमी और क्रोधी, वैश्य कंजूस और लोभी तथा शूद्र दीन और डरपोक होते हैं।

देश के अनुसार अंग्रेज व्यापारी, रूसी मस्त जीव, फ्रांसीसी विलासप्रिय, जर्मन साहसी और लड़ाके, यहूदी अर्थपिशाच, जापानी परिश्रमी और अध्यवसायी, चीनी आलसी और सुस्त, इटालवी धर्मभीरु, यूनानी विनोदप्रिय, अमरीकी विलासी और धनलोलुप तथा मुसलमान धर्मान्ध और हिंसक होते हैं। मध्यवर्ग के लोग परिश्रमी एवं दरबारी तथा हीन श्रेणी के लोग दीन होते हैं। पेशे के अनुसार अध्यापक त्यागी, वकील और डाक्टर धनलोलुप, बीमा कम्पनी के एजेंट और नाई धूर्त, व्यापारी कपटी

---

४५ अभिनव नाट्य शास्त्र, पृ० १६१

४६ भगवतीचरण वर्मा—'चित्रलेखा'

४७ वृन्दावनलाल वर्मा—झाँसी की रानी

४८ वही—अहिल्याबाई

४९ प्रेमचन्द—गोदान

५० वही—मोटेराम शास्त्री

५१ कहानी का रचनाविधान, पृ० ११२

और झूठ बोलनेवाला तथा स्वर्णकार वंचक एवं चोर होता है। इस तरह देश जाति और वृत्ति के अनुसार भी मानव-स्वभाव का निर्माण होता है और कभी-कभी कुल का स्वभाव भी काम करता है।[५२]

सामूहिक चरित्र

कभी-कभी किसी नगर, देश राष्ट्र या धर्म पर सामूहिक विपत्ति आती है या सामूहिक रूप से मान-अपमान का प्रश्न उपस्थित हो जाता है उस समय लोगों के व्यक्तिगत स्वभाव बदलकर लोकावेग का रूप धारण कर लेते हैं।[५३] भारत के सभी लोगों का ऐसा विचार था कि अंग्रेजों ने इस देश को गुलाम बनाकर हमपर अत्याचार किया है। इसलिए उन्हें भारत से चला जाना चाहिए। इस निमित्त से जितने आंदोलन हुए उनमें लोकावेग स्वभाव ही काम कर रहा था[५४] जिसे मास साइकालोजी या 'दूर्द सेंटिमेंट' कहा जा सकता है। व्यक्तिगत भावना से अलग जाति भावना देश भावना राष्ट्र भावना कुल भावना और परिवार भावना का भी प्रधान स्थान है। इसे जब ठेस लगती है तो उसके निराकरण के लिए सामूहिक भावना का उदय होता है। यह भावना व्यष्टि से ऊपर समष्टि में समा जाती है और उसे ही लोकावेग भावना कहते हैं। शेक्सपीयर के कुछ नाटकों में और आधुनिक समय में अनेक कलाकारों ने उदाहरण के लिए, उपन्यासकार रेणु ने इसका सहारा लेकर लोकावेग के दृश्य प्राय: उपस्थित किये हैं।

द्वैत व्यक्तित्व

विद्वानों का कहना है कि प्राय: सभी श्रेणी के लोगों का चरित्र दुहरा होता है—यानी बाहर में कुछ और घर में कुछ दूसरा। एक ही व्यक्ति जो बाहर मद्य पान का विरोध करता है, स्त्री-सम्मान की दुहाई देता है—वही घर में शराब पीता है और स्त्री को पीटता है। उदारता और त्याग की बातें करने वाला व्यक्ति हर समय दूसरे के धन को अपहरण करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की विभिन्नता समाज धर्म और राष्ट्र की सेवा करने वाले अधिकांश व्यक्तियों में पायी जाती है।[५५] फ्रायड की राय में सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति में हर अवस्था में, यह बात पायी जाती है।[५६]

दुहरे आचरण वाले लोग दम्भी की श्रेणी में आते हैं और यह दम्भ दो तरह का होता है अयथार्थ या परिस्थितिवश अपने इष्टमित्रों बन्धु बान्धवों या गुरुजनों के

---

५२. अभिनव नाट्यशास्त्र पृ० १७०
५३ ग्रुप साइकलोजी एण्ड दी एनेलायसिस आफ दी इगो पृ० १७
५४ समाज की भूमिका, पृ० १९८
५५ समीक्षा शास्त्र पृ० १२९
५६ मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं, पृ० ९९

प्रति सच्ची श्रद्धा न रखते हुए भी हम जो शिष्ट आचरण एवं उसके प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हैं, वह दम्भ होते हुए भी वास्तव में किसीके लिए नुकसानदेह नहीं है। किन्तु दूसरे तरह का दम्भ कुटिलता से भरा है। ऐसी दम्भ-वृत्ति दूसरे को धोखा देकर ठग का सिर्फ अपना स्वार्थ साधने की होती है। ऐसे व्यक्ति बड़े स्फूर्तिमान चतुर बोलनेवाले तथा सहायता को तत्पर, सेवा-भाव से युक्त दैन्यमुद्रा धारण किये, उपदेश देनेवाले और ज्ञान बघारने वाले होते हैं। उनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण और चंचल होती है। वे कभी किसी बात पर या काम के बारे में 'नहीं' नहीं कहते।[27] सब समाजों में एवं सभी वर्गों में ऐसे दूसरे आचरणवाले व्यक्ति हर समय मिलते हैं। इनमें जो अधिक प्रभावशाली होते हैं उन्हें चतुर तथा साधारण लोगों को कायरों या पाखंडी कहा जाता है। ऐसे ही लोग राजनीति के क्षेत्र में कूटनीतिज्ञ कहलाते हैं।

विलियम जेम्स ने मनुष्य को कठोर और कोमल—दो तरह की प्रवृत्तिवाला बताया है। शिल्लेर ने उन्हें आदर्शवादी और यथार्थवादी—दो तरह की श्रेणी में बांटा है। अंग्रेज विद्वान जोर्डन ने उनके स्वभाव को आवेगात्मक और कम आवेगात्मक बताया है। फ्रेड्समेर ने उन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया है—दुर्बल सबल मस्त और निरर्थक। निरर्थक प्रकृतिवाले सदा किसी न किसी रोग से ग्रस्त रहते हैं। न वे किसीसे सन्तुष्ट न उनसे कोई सन्तुष्ट रहता है।[28] भारतीय आचार्यों ने उन्हें सभ्य और अपराधी—दो तरह की प्रकृति वाला बताया है। दोनों प्रकृतियों की सविस्तृत व्याख्या के बाद उन्होंने यह भी कहा है कि असाधारण परिस्थितियों में पड़कर साधारण मनुष्य भी असाधारण कार्य कर सकता है। इसी तरह काम-शास्त्रियों[29] ने भी पुरुषों की चार श्रेणियां बतायी हैं—रतिमंजरी में उन्हें शश, मृग वृष और अश्व कहा गया है और उनकी सांगोपांग व्याख्या की गई है। रसमंजरी में विस्तार के साथ पुरुष का लक्षण बताया गया है। सामुद्रिक शास्त्र[30] में पुरुषों के शुभ-अशुभ लक्षणों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। बृहत्संहिता[31] के अड़सठवें अध्याय में अनेक प्रकार के पुरुषों का वर्णन देकर उनका भाग्य निर्णय किया गया है। उन्हें उत्तम मध्यम और अधम—तीन श्रेणियों में बांटा भी गया है। साथ पृथ्वी जल तेज वायु, आकाश देवता नर, राक्षस पिशाच और पशु-पक्षी के स्वभाव के अनुसार विभाजित किया गया है। फिर भी बृहत्संहिताकार का यह विभाजन इतना स्पष्ट नहीं कि नाटकीय पात्रों के लिए यह कसौटी बन सके।

आज तक के लिखित आख्यान या नाट्य रचनाओं में आनेवाले पात्रों को तीन भागों में बांटा गया है—सुबुद्धि अबुद्धि और जड़। बुद्धि के आधार पर ही मनुष्य

---

२७ समीक्षाशास्त्र, पृ० ४११
२८ वही पृ० ४१०
२९. लोकशास्त्र, पृ० ३०
३० सामुद्रिक शास्त्रम्
३१ मि० बलदेवप्रसाद मिश्र

और पशु का विभाजन किया गया है। इसलिए सभी दिव्य और नर पात्र पहली श्रेणी में और पशुपक्षी आदि दूसरी श्रेणी में माने जाते हैं। प्राचीन नाटककारों न, जैसे कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतम म भ्रमर मृग और सिंह-शावक को नाटकीय पात्र बनाया है। श्री हर्ष ने रत्नावली में सारिका को पात्र बनाया है। फ्रेंस ने अपने प्रहसनों में चौपाये और मेढ़कों को पात्र बनाया है। इन सब पात्रों ने कथावस्तु में बसा ही योग दिया है जैसा मानव पात्र देते हैं।[६२] आजकल मनुष्य तथा पशु-पक्षी के अलावा जड़ पदार्थों का भी पात्र के रूप में प्रयोग किया जाने लगा है। अभिनव भरत रचित 'विज्ञान का दर्प' नामक नाटक में लौह निर्मित मानव आज्ञानुसार कार्य करता गीत गाता और तलवार पकड़ता है हालांकि यह प्रयोग कोई नया नहीं है। वैज्ञानिक और रहस्यात्मक रचनाओं में जड़ पदार्थों द्वारा मनुष्य का-सा आचरण प्रदर्शित हो गया है।[६३] राजशेखर ने अपने बालरामायण नाटक में सीता और उसकी बहन के रूप में दो पुतलियां पेश की हैं जिन्हें देखकर रावण को भी भ्रम हो जाता है। नाटकों में मृत प्रेत आयन का भी सजीव रूप में प्रयोग हुआ है जैसे शेक्सपीयर के मिड समर नाइट्स ड्रीम और हेमलेट में। अभिज्ञान शाकुंतल में वन-ज्योत्सना लता का भी पात्र के रूप में प्रयोग हुआ है जो शकुंतला और दुष्यन्त के मिलन में सहायक होती है।[६४]

सृष्टि भर के सब मनुष्य लिंग भेद के अनुसार पुल्लिंग स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग में बांटे गये हैं। उसी तरह मानव-जाति को चार रंग के लोगों – गोरे, काले पीले और लाल में विभक्त किया गया है। किन्तु, यह भेद अधिक व्यापक नहीं होते।[६५] शरीर भेद से भी मनुष्य चार प्रकार के होते हैं—पतले मोटे न बहुत पतले न बहुत मोटे। इनमें भी कई भेद किये जा सकते हैं। आकृति भेद से मनुष्य कुरूप सुरूप एव विरूप माने गये हैं। आचार्यों ने शरीर के विभिन्न अंगों के अनुसार इनकी विस्तृत व्याख्या की है। सब प्रकार के मनुष्यों की दो अवस्थाएं होती हैं—सरोगिता और निरोगिता।[६६] सृष्टि में उत्पन्न होने वाले सभी प्राणियों में सत्व रज और तम—तीन प्रकार के गुण माने गये हैं। इन तीनों तरह की प्रकृति वालों की पहचान आसानी से की जा सकती है। उत्तम मध्यम और अधम—तीन प्रकार की जो प्रकृति बतायी गई है, उसका आधार भी यही है।

विशिष्ट प्रकृति के लोग

मानव समाज में कुछ विशिष्ट प्रकृति के लोग भी होते हैं। अपने विशिष्ट स्वभाव विशेष परिस्थिति या व्यवसाय के कारण वे यह विशिष्ट आचरण कर पाते

---

६२ समीक्षा शास्त्र पृ० ३३१
६३ अभिनव नाट्यशास्त्र पृ० १४५
६४ अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० १४५
६५ वही
६६ वही

है। इनमें पहली श्रेणी है चिन्तामुक्त मस्त जीवों की जो अपने परिवार के लिए निकम्मे तथा समय के लिए उत्साहवर्धक होते हैं। ऐसे लोग लोकप्रिय और स्वाभिमानी भी होते हैं। स्वाभिमान पर आँच पहुँचे तो ये अपने बड़े-से-बड़े सहायकों और हितैषियों की भी अवहेलना कर जाते हैं। इनका रोष और तोष कभी जाना नहीं जा सकता। ये अव्यवस्थित चित्त के होते हैं।[६७]

दूसरे प्रकार के लोग अपने व्यवसाय की विशिष्टता के कारण विशिष्ट आचरण करते हैं। कवि कलाकार, वैज्ञानिक और दार्शनिक—इसी श्रेणी में आते हैं। खाना पीना भूलकर वे निरन्तर अपने कार्य में दत्तचित्त रहते हैं।[६८] इनकी मानसिक वृत्तियाँ वास्तविक जगत से ऊपर उठकर काल्पनिक लोक में लीन हो जाती हैं। इस लिए इनका स्वभाव तथा व्यवहार अटपटा और उदासीन हो जाता है। इनसे समाज को सिर्फ वैचारिक लाभ के अलावा और कुछ प्राप्त नहीं होता। करुण रस की रचना के लिए ये पात्र अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। इनमें भी कुछ बड़े व्यवहार-पटु होते हैं। किन्तु ये सब अनुरक्त लोभी, ईर्ष्यालु, अभिमानी महत्त्वाकांक्षी या भुक्त चरित्रों के अन्तर्गत आते हैं।

एक और भी विशिष्ट प्रकार के लोग होते हैं जो मानसिक पारिवारिक, सामाजिक या राजनीतिक परिस्थितियों के कारण विशिष्ट प्रकार का स्वभाव बनाने के लिए विवश हो जाते हैं।[६९] अपनी परिस्थितियों के कारण इनके मन में तीव्र आवेग विद्रोह तथा विनाश की भावना जग पड़ती है। ऐसे व्यक्तियों के कार्य का कोई निश्चय नहीं रहता। वे किसी भी समय कुछ भी कर सकते हैं। आवेग की अवस्था में वे आत्म विनाश से लेकर सर्वनाश तक कोई भी कार्य कर सकते हैं। हत्याकारी प्राणदण्ड पाये हुए अपराधी तथा उच्च वर्ग के दण्ड पाये अपराधी भी प्रायः इसी स्वभाव के होते हैं। इनकी सब क्रियाएं सदा चञ्चल और अस्थिर होती हैं। किन्तु, सहानुभूति मिलने पर ये अपने मनोभावों को भी प्रकट करने में नहीं हिचकते। ऐसे व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा चिकित्सा का भी आजकल आयोजन किया जा रहा है।[७०] कथाकार के लिए ऐसे चरित्र बड़े मनोरंजक होते हैं और अद्भुत रस की रचनाओं में बड़े सहायक होते हैं।

ऊपर जितने प्रकार की प्रकृतियों का वर्णन किया गया है, उनके अलावा भी विविध चरित्र मानव-समाज में प्राप्त होते हैं। वास्तव में मनुष्य ऐसा विचित्र प्राणी है कि उसकी रुचि और प्रकृति का ठीक-ठीक भेद बताना असम्भव है। एक कथाकार ने अपने उपन्यास में एक अति दुश्चरित्र और दुष्ट व्यक्ति को अपनी कथा का पात्र बनाकर इस प्रकार घटनाओं का समावेश किया है कि वह पात्र सभी कार्य सज्जन

---

६७ सामान्य मनोविज्ञान, पृ० २८७

६८. वही

६९. हीनभाव पृ० ४१

७० मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियायें पृ० २१९

व्यक्ति जैसा करता है। वह पात्र स्वयं अपने अच्छे कार्यों पर आश्चर्य प्रकट करता है और दूसरों को भी आश्चर्य होता है कि वह दुष्ट व्यक्ति सत्कार्यों की ओर कैसे प्रवृत्त हुआ। इसीलिए कथाकार को चरित्रों के चुनाव में अत्यन्त सावधानी से सूक्ष्म दृष्टि से अपने इर्द-गिर्द नजर आने वाले व्यक्तियों के आचरणों और वचनों का निरीक्षणकर देश-काल और स्थान के अनुसार उनकी प्रवृत्ति निर्धारित करनी चाहिए ताकि उन चरित्रों में स्वाभाविकता आ सके।[७१]

युवावस्था[७२] के बाद जो अति तरुणावस्था आती है, उसमें जो अविवाहित होते हैं, वे तो तरुणों जैसा ही आचरण करते हैं पर जो गृहस्थ होते हैं वे अपने जीवन यापन की समस्याओं और पारिवारिक समस्याओं में ही लीन हो जाते हैं। इस अवस्था में धनोपार्जन यशोपार्जन की प्रवृत्तियां ही मनुष्य के जीवन का मुख्य कार्य बन जाता है। इसी के लिए वह अनेक धन्धे चाटुकारिता या अन्य तरीकों का सहारा लेता है। यशोपार्जन के आकांक्षी इस अवस्था में सभा-समितियों के द्वारा लोक-सेवा का स्वांग रचते हैं, धर्मशाला स्कूल अस्पताल आदि खोलते-खुलवाते हैं। इन्हीं में ऐसे भी होते हैं जो बगैर किसी छल-कपट के धनोपार्जन करने में लगे रहते हैं किसीकी चाटुकारिता नहीं करते और स्वाभाविक रूप से यशोपार्जन के भागी बनते हैं। जो युवावस्था में उद्दण्ड होते हैं उनकी उच्छृंखलता इस उम्र में कम हो जाती है। कुटिल ईर्ष्यालु, अहंकारी, अभिमानी और विषयी लोगों में भी सुधार हो जाता है और वे अधिक समन्वयवादी हो जाते हैं। जो मस्त मौजी विरक्त दुस्साहसी होते हैं उनकी ये प्रवृत्तियां और भी बढ़ जाती हैं। प्रायश्चित पश्चात्ताप और रक्तदाह द्वारा दिखा देने वाले पात्रों के रूप में एवं करुण भयानक रौद्र वीर और अद्भुत रसों के निर्वाह में ये पात्र अपनी परिपक्वावस्था के कारण अधिक उपयुक्त होते हैं।[७३]

प्रौढ़ावस्था में मनुष्य की इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं। उसमें बुरे कामों के लिए पश्चात्ताप धर्म तथा सन्त-समागम में श्रद्धा नवीन समाज से चिढ़ उपदेशवृत्ति चिड़चिड़ापन और खीझ बढ़ जाती है। अपनी ही बनाई दृष्टि में वह अपने को अनावश्यक और अनुपयुक्त समझने लगता है।[७४] ऐसे पात्रों का प्रयोग नवीन और प्राचीन का वैषम्य दिखाने रूढ़ि और सुधार का संघर्ष चित्रित करने तथा हास्य एवं करुण रस के चित्रण के लिए मजे में किया जा सकता है। कभी-कभी इन अति प्रौढ़ पात्रों में भी वीरता की भावना भरी हुई दिखाई पड़ती है। पर बातों तक ही सीमित रहने के कारण वह भाव रस तक नहीं पहुंच पाता।[७५] राजपूत इतिहास पर कथा लिखने वाले कथाकारों ने उत्साहपूर्ण प्रेरणा के लिए ऐसे पात्रों की रचना की है।[७६]

७१ आधुनिक मनोविज्ञान पृ० १७६
७२ वही
७३ शोध निबन्ध, पृ० ४५
७४ आधुनिक मनोविज्ञान पृ० १८०
७५ रूपक रहस्य पृ० १०४
७६ वृन्दावनलाल वर्मा

वृद्धावस्था के किसी राजा महाराजा महापुरुष या सुशील व्यक्ति को किसी संकट में डालकर करुण रस के परिपाक में उसका सुन्दर प्रयोग किया गया है। पर अतिवृद्धावस्था के पात्र जिनकी एकमात्र यही अभिलाषा रहती है कि कब भगवान उठा लें करुण रस के अवलम्बन के लिए अधिक उपयुक्त होते हैं।[७७]

चरित्रों का विभाजन

भारतीय नाट्य परम्परा में पात्रों की तीन श्रेणियां मानी गई हैं—दैवी, दानवी मानवी। प्रथम दोनों कोटियां तो हमारी दुनिया से परे की चीज हैं—एक आकाश-कुसुम है तो दूसरा गूलर का फूल। दोनों अवास्तविक अविश्वसनीय और अप्राप्य। कुशल नाटककार के चित्रण की कसौटी मनुष्य ही है जो हमारी सहानुभूति हास्य और अश्रु का अधिकारी है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चरित्रों का विभाजन चार श्रेणियों में किया है—(क) आदर्श स्वभाव के रूप में (ख) जाति स्वभाव के रूप में (ग) व्यक्ति स्वभाव के रूप में (घ) सामान्य स्वभाव के रूप में। मनुष्य के चरित्र-संगठन पर रति शोक जुगुप्सा आदि प्रत्येक भावों का प्रभाव पड़ता है। इसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मनुष्य के चरित्र में कुछ चीजें सद्गुण और कुछ दुर्गुण कहे जाते हैं जो लोकनीति के अनुसार उस भाव की लक्ष्यपूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं।[७८] इस आधार पर चरित्र-निर्माण का अध्ययन किया जा सकता है जिसका मनोवैज्ञानिक शैंड ने भी समर्थन किया है।

उपन्यास में किसी विशिष्ट श्रेणी या वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले तथा स्वयं अपने-आपका प्रतिनिधत्व करने वाले—प्रायः दो तरह के चरित्र उपस्थित किये जाते हैं। उदाहरण के लिए गोदान का होरी अपने-आपका प्रतिनिधि है। ऐसे पात्र व्यक्तित्व-प्रधान होते हैं। इनमें जन-साधारण से भिन्न कुछ विलक्षण चारित्रिक विशेषताएं होती हैं। उसत का श्रीकान्त अज्ञेय का शेखर भी ऐसे ही पात्र हैं जो अपनी वैयक्तिक विशेषताओं के कारण सामान्य पात्रों से सर्वथा पृथक हैं।[७९]

इसी तरह जातीय अथवा जातिवाचक या अपनी श्रेणी वर्ग और समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों में सामान्यतः अपने समाज अथवा वर्ग का प्रतिनिधि गुण अधिक मात्रा में होता है यद्यपि वैयक्तिकता एक ऐसा गुण है जो न्यूनाधिक मात्रा में हर पात्र में पायी जाती है।[८०] 'गिरती दीवारें' का चेतन और 'गोदान' की धनिया जाति-पात्र हैं।

'अतीत' का जयन्त और 'मनुष्य के रूप' की शोभा व्यक्तिवाचक पात्रों के उदाहरण हैं।

---

७७. रूपक रहस्य पृ० १००
७८. जायसी ग्रंथावली पृ० १४६
७९. साहित्य विवेचन, पृ० १६१
८० समीक्षा शास्त्र पृ० १५६

(१) जातीय या वैयक्तिक पात्रों के अलावा दूसरी तरह के पात्र वे हैं जिन्हें (२) स्थिर या गतिशील कह सकते हैं। स्थिर या अपरिवर्तनशील पात्रों की समान परिस्थितियों में समान प्रतिक्रियाएं होती हैं। गतिशील पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होती हैं अथवा यूं कहिये कि इन पात्रों का क्रमेण विकास होता रहता है।[८१]

विलक्षण चरित्र

चरित्र स्वयं अपनी संवेदनाओं के सहारे नहीं चलते। वे कथाकार की संवेद नाओं के वाहक बनकर सामान्य चरित्रों से भिन्न प्रतिक्रियाएं व्यक्त करते रहते हैं।[८२] ऐसे चरित्र आदर्श और यथार्थ दोनों के आधार पर गढ़े जा सकते हैं। जैनेन्द्र के हरि प्रसन्न, सुनीता एवं श्रीकान्त विलक्षण पात्र हैं। अज्ञेय का शेखर घोर इडियोसिनक्रेटिक है। श्रीकान्त का आदर्शवाद अतिरंजित-सा है। ऐसे चरित्र अधिकांशतः राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक चरित्र होते हैं। शेक्सपियर की लेडी मैकबेथ भी वैसी ही है।[८३] जैनेन्द्र का मत है कि महान पात्र प्रायः ऐसे ही हुआ करते हैं।[८४] प्रत्येक कथाकार अपनी रचनाओं में संसार के सम्बन्ध में अपनी विलक्षण धारणाएं व्यक्त करता है— 'एवी नावेलिस्ट विथ इन हिज ओन पर्सनल एडियोसिनक्रेटिक विजन आफ दी वर्ल्ड।'[८५]

विकृत चरित्र

यशपाल का 'झूठा सच' रमानन्द सागर के 'और इंसान मर गया' मंटो की कहानी 'टोबाटेकसिंह' अज्ञेय की कहानियां 'शरणार्थी' कृश्नचंदर की कहानियां 'पेशावर एक्सप्रेस' आदि रचनाओं में बहुत से विकृत चरित्र आये हैं। ये चरित्र बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार बनते बिगड़ते रहते हैं—मिट्टी के घरौंदों की तरह। पेस्टरनक का डा० जिवागो भी वैसा ही एक व्यक्ति है जो जीवन के झमेलों-उलझनों के साथ मिट जाता है। इस परिवर्तन की परम्परा टाल्सटाय, दास्तावस्की, गोर्की ईलिया एहरेनबर्ग से लेकर पेस्टरनक तक चलती रही है। जीवन के अणु—अणु के वैविध्यपूर्ण परिवर्तन का चित्रण किसी साहित्य को अमर बना देता है। इसीलिए इनकी कथा-चरित्र अमर हैं।[८६]

फोरेस्टर आदि आलोचकों ने पात्रों के जिन वर्गीकरणों को औपन्यासिक चरित्र के विश्लेषण का आधार बनाया है, उसके अतिरिक्त भी हर पात्र की

---

८१ समीक्षा शास्त्र पृ० १४१

८२ दी इगलिश नावेल पृ० १४

८३ मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं, पृ० ७७

८४ साहित्य का श्रेय और प्रेय पृ० १८१

८५ दी इंगलिश नावेल पृ० १४

८६ दी राइटर एण्ड हिज क्राफ्ट

चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर यह वर्गीकरण सम्भव है। बोरिस पैस्टरनक का डा० जिवागो इसका एक उदाहरण है। इसी अद्भुत और विचित्र चरित्रप्रधान कृति के कारण उन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।[८७] इसी अप्रतिम चरित्र के कारण कुछ आलोचक इस उपन्यास को 'हिरोइक नावेल'[८८] मानते हैं।

कुछ चरित्र समवेतचरित्र (कोरस कैरेक्टर) होते हैं। बहुधा इनके मतों में समानता एवं संवेदना मनोभाव वेशभूषा आदि में समवेत समानता होती है।[८९] टाइप और स्टीरियोटाइप के पात्रों में भेद यह है कि टाइप में जाति का सामान्यस्वरूप और स्टीरियोटाइप की इतनी आवृत्ति हुई रहती है कि भावों कम हो जाता है।[९०] सेवक इसका उदाहरण है। परन्तु बीज का उदाहरण सुनीता का हरिप्रसन्न है।

महापुरुष

महापुरुष वे कहलाते हैं जो अपने से पूर्व के महापुरुषों द्वारा स्थापित नैतिकता के आदर्शों पर चलते हुए वीरतापूर्वक उच्च सामन्तवादी या स्वेच्छाचारी संस्कृति की स्थापना करते हैं। राम कृष्ण भीम अर्जुन आदि सभी इनके पूर्वजों में आते हैं। इनमें अहंवृत्ति संकल्पशक्ति और जीवन की समस्याओं से संघर्ष करने की अदम्य शक्ति होती है। १९वीं और २०वीं सदी के साहित्य में यह भावना अनेक रूपों में मिलती है। पर अब तो उनके द्वारा स्थापित उच्च आदर्शों से हटकर प्रबन्धात्मक चलचित्र उपन्यास और धारावाहिक चलचित्रों के लोकप्रिय नायकों के लिए भी इसका प्रयोग होने लगा है।[९१]

टाइप एव व्यक्ति चरित्र

टाइप चरित्र में पूरे वर्ग के गुण-अवगुण की विशेषताएं रहती हैं। जैसे गोदान का होरी सम्पूर्ण किसानों का प्रतिनिधित्व करता-सा दिखाई पड़ता है। ऐसे चरित्र अपनी जाति धर्म और समाज का प्रतिनिधित्व करते दिखाई पड़ते हैं। जैसे प्रसादजी के पात्र। चन्द्रगुप्त नाटक का चाणक्य बार-बार अपने को ब्राह्मण बताता हुआ, ब्राह्मणत्व की सत्ता का बखान करता है। गुप्तजी की यशोधरा भी भगवान बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण का तरह-तरह से पश्चात्ताप करती हुई इसी वर्ग भावना को व्यक्त करती है। इंडिविजुअल कैरेक्टर अपनी वैयक्तिक विशेषताओं द्वारा मन पर स्थायी प्रभाव डाल जाता है। ऐसे चरित्र अपने क्रिया-कलापों द्वारा अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपने मानसिक गठन और चिंतन में अन्य लोगों से विशिष्ट होते हैं।

---

८७ १९५८ ई०
८८. इलस्ट्रेटेड वीकली अक्टूबर १९ १९५८, पृ० ४७
८९, प्रोज फिक्शन पृ० ४०
९० वही पृ० ११
९१ समीक्षा शास्त्र पृ० ७१

शेक्सपीयर के मरचेंट आफ वेनिस का शाइलाक टाइप और इंडिविजुअल दोनों है। उसी तरह होरी भी टाइप और इंडिविजुअल दोनों है।

टाइप और व्यक्ति की चर्चा करते हुए उपन्यासकार जैनेन्द्र का कहना है कि टाइप और व्यक्ति चरित्रों का बटवारा नितान्त स्थूल वर्गीकरण है।[१२] उपन्यास के पात्रों को इस तराजू पर तोलना अवैज्ञानिक है। हर व्यक्ति के चरित्र को चाहे वह किसी भी समूह का क्यों न हो टाइप बनाया जा सकता है मनुष्य जाति का एक ही समूह है और उसमें विविधता की गुंजाइश नहीं है। कोई भी व्यक्ति सिर्फ बाहरी बातों से ही इंडिविजुअल नहीं बनता और न टाइप।[१३] चरित्र की गहराई लिये हुए ही इंडिविजुअल पात्र विशिष्ट होंगे अगर किसी चरित्र में ऐसी कोई बात है जो समूह में होती ही नहीं तो वह हमें चमत्कृत भले ही कर दे पर हृदय में स्पन्दन नहीं भर सकता।[१४]

गौण एवं मुख्य चरित्र

गौण एवं मुख्य चरित्रों में फर्क यह रहता है कि गौण पात्र कहानी के बिखरे तंतुओं को जोड़ते हैं, वे मुख्य पात्र की श्रेष्ठता को दिखाने में सहायक होते हैं और कथा की स्वाभाविकता की रक्षा करते हैं। लघु उपन्यासों और छोटी कहानियों में गौण पात्रों को अवश्य कम महत्त्व है, किन्तु बृहत् उपन्यासों में चरित्र के व्यापक भ्रम व को उभारने के लिए उचित रूप में उनका समावेश आवश्यक है। आधुनिक उपन्यासों में गौण पात्रों के समावेश तथा मुख्य और गौण पात्रों में अंतर की प्रवृत्ति घटती जा रही है। उदाहरण के लिए 'नदी के द्वीप' में भुवन चन्द्रमाधव, रेखा, गौरा—सभी मुख्य और गौण पात्रों की भूमिका में आते हैं जिससे उपन्यास की स्वाभाविकता नष्ट होती है। गौण पात्रों की सृष्टि समह-व ग हो सकती है। यह भी आवश्यक नहीं कि गौण पात्रों का पूरी तरह इतिवृत्त बताया ही जाय। किन्तु मुख्य पात्रों के लिए यह जरूरी है। उन पर सारी कथा का दारोमदार निर्भर रहता है उनसे कथा का घनिष्ठ संबंध रहता है।[१५] इसलिए उसकी सृष्टि में लेखक को अत्यन्त सतर्क रहना पड़ता है।

यह भी आवश्यक नहीं कि कथा की प्रत्येक घटना के साथ वह उपस्थित ही रहे। शेक्सपीयर का 'जूलियस सीजर' इसका एक उदाहरण है। सीजर की हत्या तो नाटक के प्रारंभ में ही हो जाती है किन्तु उसकी अनुपस्थिति में भी उसके विचारों और कार्यों का असर बना रहता है। वह नाटक पर अन्त तक छाया रहता है। इसीलिए ब्रूटस कैसियस एंटनी के साथ ही वह भी नाटक का मुख्य पात्र बना रहता है।

१२. साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० १८८
१३. लिटरेचर एंड आर्ट, पृ० ११
१४. साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० १७४
१५. उपन्यास के मूल तत्त्व, पृ० ३१

सुसस्कृत व्यक्ति कौन होता है ?

चेखव ने अपने छोटे भाई को पत्र लिखा था—"तुम योग्य व्यक्ति हो किन्तु तुम में एक चीज का अभाव है—संस्कृति। सुसंस्कृत व्यक्ति के क्या गुण होते हैं? वह सहिष्णु, समझदार और विनम्र होता है। यदि भोजन पकाकर बना हो तो वह थाली पटक कर मुँह नहीं फुलाता या यदि कोई अजनबी उसके घर आ जाय तो उसे देख आँखें नहीं तरेरता। वह दूसरों के सामने बनता नहीं सस्ती और छिछली बातों के आधार पर दूसरों की सहानुभूति हासिल करने की कोशिश नहीं करता, डींगें नहीं मारता। सही माने में जो व्यक्ति गुण-सम्पन्न होते हैं, वे भीड़ में अपने को छिपाये रखते हैं और अपनी योग्यता के प्रदर्शन से कतराते हैं। सुसंस्कृत व्यक्ति बनने के लिए पिकविक पेपर या फास्ट के मोनोलाग कंठस्थ कर लेना ही काफी नहीं है।"[९६]

पात्रों के आचार-व्यवहार रहन-सहन कथोपकथन आदि संबंधी कोई अयुक्तिकर या बेठिकाने की बात न कही जाय इसी दृष्टि से पात्रों का वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण को नायक अथवा नायिका भेद कहा गया है। पुरुष की अपेक्षा नारी का स्वभाव कुछ अधिक दुर्बोध[९७] और दुर्गम्य होने के कारण आचार्यों ने नायिका भेद का अधिक सांगोपांग वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में शृंगार रस के एक उपांग के रूप में इसकी संक्षिप्त विवेचना की गयी है, किन्तु ब्रजभाषा के कवियों ने इसे एक स्वतंत्र विषय मानकर इतना अधिक विस्तार किया है कि ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद स्वयं एक शास्त्र बन गया है।[९८] काव्यशास्त्र के साथ ही नायिका भेद की परंपरा भी प्रारंभ हुई। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र (प्रथम शताब्दी) में जो संस्कृत में रीतिशास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ है इसका सांगोपांग वर्णन है। इसी से इसका महत्त्व स्वयंसिद्ध है। हिन्दी के आचार्यों ने नाट्यशास्त्र और दशरूपक से सामान्य रूप में तथा 'साहित्यदर्पण' और 'रसमंजरी' से विशेष रूप में इसे ग्रहण किया है।[९९] परन्तु भरत मुनि ने नायिका भेद का उस क्रम से वर्णन नहीं किया है जैसे कि ब्रजभाषा के आचार्यों ने। भरत मुनि से ब्रजभाषा के आचार्यों के वर्णन में भेद होना भी स्वाभाविक ही है क्योंकि वे इस विषय के प्रवर्तक थे और नायिकाओं का उनका वर्णन अभिनय से ही संबंधित था। फिर भी उनकी नायिका भेद की विवेचना के अन्तर्गत वर्तमान नायिका भेद की सभी नायिकाएं किसी-न-किसी रूप में आ ही जाती हैं। अतः भरत मुनि इस विषय के प्रवर्तक तथा उनका नाट्यशास्त्र इसका सर्वप्रथम उद्गम-स्थल है। नायिका भेद तो काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत एक मनोवैज्ञानिक विवेचन है जिसका उल्लेख नारी-मन के विकारों के अध्ययन के लिए आवश्यक था जिससे दृश्य और श्रव्य काव्यों में पात्रों के चरित्र चित्रण में

---

९६ कृति मई १९५८, पृ० ४५

९७ दी टाइम्स ग्राफ इंडिया दिनांक रविवार जून १९६१ 'इंटरव्यू ग्राफ प्रो० युंग'

९८ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० ३

९९. रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, पृ० २६४

कोई अस्वाभाविक बात न आ सके। किन्तु नायिका भेद की उत्पत्ति के इस मूल तत्त्व को भुलाकर ब्रजभाषा के अनेक कवि नायिकाओं की संख्यावृद्धि के चक्कर में ही पड़े रहे। रसलीन ने इस संख्या को बढ़ाकर ११५२ तक कर दिया।[१००] वास्तव में देखा जाय तो नायिका भेद के ये कविगण संख्यावृद्धि के प्रपंच में पड़कर अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक गये थे।[१०१] आधुनिक कथा-साहित्य इस परंपरागत वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करता क्योंकि इस मार्ग से जीवन की समस्याओं की तह तक नहीं पहुंचा जा सकता। नायिका भेद में हमें विभिन्न आचारों की संसृष्टि मिलती है जो अधिकांश में जीवन के बाह्य रूपों पर आश्रित है।[१०२] किन्तु कथा-साहित्य पुरुष और प्रकृति की नित्य और नूतन लीला से संबंधित है। इस लीला के रहस्य को समझ लेने से जीवन की और मनुष्य की सामाजिक समस्याओं का हल निकल सकता है। अतः उपन्यासों एवं कहानियों में उसके यथार्थ को समझने का प्रयास होता है।

नायिका के ये भेद और प्रभेद मनोविज्ञान की दृष्टि से भी युक्तिसंगत या पुष्ट नहीं कहे जा सकते हालांकि ये सर्वथा असंगत फिर भी नहीं कहे जा सकते। इस वर्गीकरण में चरित्र-चित्रण एवं शील निरूपण का अत्यन्त स्थूल प्रयत्न मिलता है। स्थूल इसलिए कि यह सर्वथा वर्गगत ही है, व्यक्तिगत नहीं। किन्तु मानव प्रकृति की एकता प्रायः दुर्लभ है। ऊपर से एक दिखने वाली परिस्थिति में भी कितनी ही आंतरिक गुत्थियां हैं जिन्हें हम समझ नहीं पाते। इसीलिए मानव-मन का वर्गगत विश्लेषण वैज्ञानिक और व्यावहारिक नहीं है अपितु व्यक्तिगत विश्लेषण ही व्यावहारिक है। इसके अतिरिक्त इस विभाजन में एक और स्पष्ट दोष यह भी है कि यह प्रेम अथवा कामवृत्ति के बाह्यरूपों पर आधारित है साथ ही उसे स्वतः परिमित भी मानकर चला है।[१०३]

नायिका की परिभाषा

जिस रमणी को देखते ही चित्त में शृंगार-रस का संचार हो उसे नायिका कहते हैं।[१०४] बीसवीं सदी के महान मनोवैज्ञानिक डा० युग ने लिखा है—"टु मी एवट पर्टिकुलरली ब्यूटीफुल वीमेन इज ए सोर्स आफ टेरर। ए ब्यूटीफुल वुमन इज एज ए रूल। ए टैरिबुल डिसएप्वाइंटमेंट।[१०५]

नायक की ही भांति त्याग, कृतित्व सुशीलता लक्ष्मी रूप-यौवन चातुर्य, विदग्धता तथा और शील आदि गुणों से युक्त स्त्री काव्य की नायिका होती है। शृंगार की आलम्बन नायिका होती है। शृंगार की आलम्बन नायिका का स्वरूप ऐसा ही

---

१०० वही पृ० २६१
१०१ अवन्तिका (काव्यालोचनांक), पृ० १४२ सन् १९५४ जनवरी
१०२ रीतिकाव्य की भूमिका पृ० १३७
१०३ रीति काव्य की भूमिका, पृ० १४०
१०४ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० ११९
१०५ दी टाइम्स आफ इंडिया जून २५, १९६१, पृ० १०

होना चाहिए कि वह सबके रतिभाव की आलंबन हो सके। इसीलिए उसमें उपर्युक्त गुण आवश्यक हैं जो उसके अन्तर्बाह्य को आकर्षक रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार काव्य में स्थूलतः वाणी अथवा कर्म द्वारा मर्यादा-उल्लंघन की आशंका नहीं रहती।[१०६]

कविवर हरिऔध तक आते-आते नायिका भेद की यह परंपरा लुप्त-सी हो गयी। हरिऔध[१०७] ने अपने रसकलस में नायिकाओं के चार भेद किये हैं—पद्मिनी, चित्रिणी शंखिनी और हस्तिनी। प्रकृति संबंधी भेद बताते हुए उत्तमा के उन्होंने आठ भेद किये हैं—पति प्रेमिका परिवार प्रेमिका जाति-प्रेमिका देश प्रेमिका जन्मभूमि प्रेमिका निजतानुरागिनी, लोक-सेविका और धर्म-प्रेमिका। मध्यमा के भी दो भेद बताये हैं—अन्य-संभोग-दुःखिता और गर्व-गर्विता। शेष वर्ग-संबंधी और स्वभाव-संबंधी भेद वे ही हैं जो अन्य आचार्यों ने किये हैं। सखा के भेदों में भी उन्होंने पीठमर्द विट और चेट की कल्पना की है। इस प्रकार कामशास्त्रीय आचार्यों ने अपनी स्वतंत्र विवेचना के अनुसार जिस प्रकार पुरुषों का भेदो-विभाजन किया है, उसी प्रकार स्त्रियों का भी किया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण[१०८] में उत्तमा मध्यमा और अधमा—तीन प्रकार की स्त्रियाँ बतायी गयी हैं जिन्हें क्रमशः साध्वी भोग्या और कुलटा भी कहा जाता है।

उत्तमा वह है जो किसी भी हालत में परपुरुष का संसर्ग न करे पति के साथ ही देवता द्विज और अतिथियों की सेवा करे और व्रत उपवास आदि नियमों का पालन करे। बड़ों के डर से परपुरुष संसर्ग न करने वाली पति की कम सेवा करने वाली नायिका मध्यमा निकृष्ट नीच कुलोत्पन्न मुखरा, कर्कशा कलहप्रिय और परपुरुष के साथ रहने वाली स्त्री अधमा नायिका मानी जाती है।

कोकशास्त्र[१०९] में रतिक्रीड़ा की दृष्टि से स्त्रियों के पद्मिनी चित्रिणी शंखिनी और हस्तिनी चार भेद किये गये हैं और अवस्था के अनुसार भी इन्हें बाला तरुणी, प्रौढ़ा और वृद्धा में बांटा गया है। सामुद्रिक शास्त्र में भी विभिन्न अंगों के अनुसार उनका भाग्य-निर्णय किया गया है। मत्स्यपुराण में भी स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षण बताये गये हैं। बहुत-से आचार्यों ने पुरुष-स्त्री की प्रकृति में विशेष भेद बताये हैं।[११०] किन्तु ये भेद विभिन्न देशों के सामाजिक आचार-व्यवहार के आधार पर अलग अलग हैं। हमारे यहां उसके लिए यही नियम था कि— 'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने पुत्रः रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।

[यानी कौमार्यावस्था में पिता युवावस्था में पति वृद्धावस्था में बेटे द्वारा रक्षित स्त्री कभी अपने घर नहीं छोड़ी जा सकती][१११]

---

१०६ रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १३७
१०७ रस कलस
१०८. पृ० २४३
१०९. पृ० १६
११० समाज की भूमिका, पृ० ए७
१११ मनु और स्त्रियां, पृ० १७१

स्त्रियां प्रायः चार प्रकार की होती हैं—सुशीला, कर्कशा प्रमत्ता और दुहरे स्वभाववाली। ये भेद भी सिर्फ युवतियों और प्रौढ़ाओं के स्वभाव के ही हैं। अन्य अवस्थाओं में उनकी वृत्ति अलग-अलग होती है और वे प्रायः पुरुषों के समान ही आचरण करती हैं। रसमंजरी के लेखक ने सोलह वर्ष तक की स्त्रियों को बाला तीस तक तरुणी पचास तक प्रौढ़ा और उसके बाद की अवस्था वाली को वृद्धा बताया है।[113] किन्तु वय के अनुसार स्त्रियों के विभाजन, शिशु, बाला कुमारी किशोरी युवती, प्रौढ़ा और वृद्धा में भी किया जा सकता है।[114] शिशु अवस्था में बालिका को पुरुष-बच्चे की तरह ही अपनी कुछ भी प्रेरणा नहीं होती। उसमें रंगीन पदार्थ और खाद्य के लिए उत्सुकता अपरिचित से संकोच—बस इतने ही भाव दिखाई पड़ते हैं।[115]

शिशु-अवस्था के पश्चात् दूसरी अवस्था है बालिका की[116] जिसमें वह गुड़िया खेलने लगती है। उसमें स्फूर्ति, चंचलता आती है और वह शृंगार के साधनों जैसे फूल वस्त्र आभूषण आदि से स्नेह करने लगती है। ये उसके खेलने-खाने के दिन होते हैं। 'मेरा-तेरा' की भावना भी प्रबल होने लगती है। वह अपने को माता समझकर गुड़ियों से प्यार करती है उसे साड़ी पहनाकर दुलहिन बनाती है और उसका कल्पनाशील मस्तिष्क उन रूपों को ग्रहण करने का स्वप्न देखा करता है।[117] आठ से दस बरस तक की अवस्था की कन्या कुमारी कहलाती है। उसमें शृंगारप्रियता समान वय के सुन्दर या दुखी बालकों के प्रति वासनाहीन आकर्षण, अपने मन की बातें छिपाने की भावना दूसरों की बातें सुनने और कहने की उत्कंठा और सखियों से गाढ़ा स्नेह आदि उत्पन्न होने लगता है। तेरहवां वर्ष आते-आते वह किशोरी हो जाती है।[18] उसकी चंचलता में वृद्धि मेले-तमाशे में रुचि एकान्तप्रियता तथा मन की वृत्ति किसी एक की ओर आकर्षित होने लगती है। उसका स्वभाव हंसमुख अगल्भ और स्नेहपूर्ण हो जाता है। इसी लिए हमारे देश में इसी अवस्था में विवाह का भी विधान है ताकि उसकी वृत्ति एक ओर आकर्षित हो सके। पन्द्रह वर्ष से तीस तक वह युवती कहलाती है। इसमें स्त्रियां शृंगार-प्रिय विलासिनी ईर्ष्यालु, मानिनी अपने सौभाग्य पर इतरानेवाली साहसी और वाक्चतुरा हो जाती हैं। उनमें अपने रूप पर गर्व असत्य बोलना मन की बात छिपाने और आभूषण-प्रियता आदि की भावना बढ़ने लगती है। वे सुसराल में पीहर और पीहर में सुसराल का अपमान नहीं सहतीं अपने रूप-यौवन की निंदा नहीं सुनना चाहतीं और अपने गुणहीन तथा असुन्दर बच्चों की निंदा नहीं सुनना चाहती हैं आदि।

ऊपर कहा ही जा चुका है कि स्त्रियां सुशीला कर्कशा प्रमत्ता और दुहरे

---

११२ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, पृ० ११८
११३ रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, पृ० २६१
११४ समाज की भूमिका पृ० २६
११५ रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, पृ० २६१
११६ समाज की भूमिका, पृ० ३०
११७ रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन पृ० २६१

चरित्र वाली[११८]—चार प्रकार की होती हैं।

सुशीला स्त्री सभी तरह से सुशीला ही होती है। ऐसी ही स्त्रियां यदि सौभाग्य वती हों तो पूरे परिवार, कुटुंब समाज और पुत्र-पौत्रों से सम्मानित होती हैं। ऐसी स्त्रियों के जीवन में प्रायः संघर्ष भावों का जमघट, आवेश आवेग प्रतीक्षा आशा-निराशा के कारण उल्लास और विषाद की धूप-छांह आदि नहीं होते। इसीलिए कथा कार के लिए ये बहुत आकर्षण की चीज नहीं हैं। हां कभी-कभी उन्हें विषम परि स्थितियों में डालकर, सुपथ से कुपथ की ओर जाने को विवशकर सामाजिक निष्ठुरता का शिकार बनाकर करुण रस का आलंबन बनाया जा सकता है। इस दृष्टि से भी सुशीला नारियां दो प्रकार की हुईं—एक वे जो हर हालत में अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं दूसरी वे जो मान लीजिये कि अपने पति या पुत्र की रक्षा के निमित्त अपना सतीत्व भी उत्सर्ग कर डालती हैं। जैनेन्द्र की सुशीला सुनीता यही दूसरे प्रकार की स्त्री है जो अपने पति श्रीकान्त के इशारे पर और हरिप्रसन्न की तुष्टि के लिए अपने सतीत्व तक को उत्सर्ग करने को तैयार हो जाती है।

कर्कशाओं को झगड़े झगड़ा करने में आनन्द होता है। वे असहनशील असंयमी, अत्यन्त ईर्ष्यालु, छिद्रान्वेषिणी दूसरों के सौभाग्य और उत्कर्ष से दुखी और अपकर्ष पर सुखी होने वाली होती हैं। किन्तु ये प्रायः आचरण की अच्छी होती हैं। इनमें जो कुलटा होती हैं ये प्रायः बिल्कुल निर्लज्ज बन जाती हैं। इन्हीं कर्कशाओं में जो अधिक ईर्ष्यालु या महत्त्वाकांक्षिणी होती हैं वे अपने प्रतिपक्षी या विरोधी की हत्या करने या आत्महत्या तक करने से नहीं चूकतीं। इसीलिए सभी नाटकों में ऐसी ही स्त्रियों की योजना प्रायः की जाती है। शेक्सपीयर की 'लेडी मैकबेथ' भी ऐसी ही एक स्त्री है। क्योंकि ऐसी ही स्त्रियों में जब विरोध भावना जगती है तो वे स्वयं इतनी भयंकर हो उठती हैं कि अपने सगे संबंधियों से भी बड़े-बड़े पाप करा डालती हैं।[११९]

अमर्षा स्त्रियों को अपने पिता या पति के धन राजपद या अपने रूप-गुण का बड़ा अहंकार होता है। ये दूसरों का अपमान करने नीचा दिखाने और अपने धन-वैभव का आतंक जमाने में सुख पाने वाली विलासिनी अपनी प्रशंसा सुनने को अत्यन्त उत्सुक आत्मगौरव और आत्मप्रवंचना में लीन रहनेवाली होती हैं। झूठे अहंकार के कारण या वैभव में कमी आने पर कभी-कभी यह प्राण त्यागने पर भी उतारू हो जाती हैं। इन तीनों के अतिरिक्त अधिकांश स्त्रियां दुहरे चरित्र की होती हैं। इसीलिए उन के बारे में कहा गया है— 'स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः' यानी स्त्रियों के चरित्र और पुरुषों के भाग्य को विधाता भी नहीं जानता मनुष्य तो क्या पहचाने। और, चाणक्य ने भी कहा है— 'स्त्रियों तथा राजपुरुषों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।" उपन्यासों में ऐसे दुहरे चरित्रवाली स्त्रियां कुतूहल उत्पन्न करने

---

११८. अभिनव नाट्य शास्त्र पृ० १६६

११९. राजेन्द्र यादव के 'कुलटा' उपन्यास की नायिका

में बड़ी सहायक होती है।[120]

तीस से चालीस की अवस्था की स्त्रियां प्रौढ़ा कहलाती हैं। ये अति ईर्ष्यालु युवतियों का साज शृंगार देखकर चिढ़नेवाली छिद्रान्वेषिणी तथा अपने बच्चों के प्रति अधिक ममता तथा दूसरे बच्चों से बैर करनेवाली होती हैं।[121] इस अवस्था को पार करने के बाद स्त्री सिर्फ वृद्धा रह जाती है जो पूजा-पाठ करनेवाली, ईश्वर-भक्ति में लीन धर्मभीरु आदि बन जाती है। उसका स्नेह समूचे परिवार पर फैलने लगता है। वह समवयस्कों से मेल जोल बढ़ाती है, नये युग की आलोचना करती है। जीवन के प्रति निराशा असंतोष या चिड़चिड़ापन व्यक्त करने लगती है। किन्तु कुछ राजनीतिक उपन्यासों जैसे गोर्की की 'मां' में वृद्धा माता का गौरवपूर्ण स्थान दिखाकर, अपने पुत्र को भी बलिदान करनेवाली दिखाकर भव्य चित्रण किया गया है और ऐसी भव्य माताओं का गौरवपूर्ण चित्रण होना उचित भी है।

वर्तमान युग में स्त्रियों में विशिष्ट जागृति हुई है। वे अब हर क्षेत्र में पुरुषों से होड़ करने लगी हैं। ऐसी नारियों को ठीक वैसा ही समझना चाहिए जैसे 'महत्वाकांक्षी और साहसी पुरुष होते हैं। इनके अलावा सौत विधवा अयुक्ता पुंश्चली, अपमानिता ताड़िता पीड़िता तथा कामार्त्ता स्त्रियों का स्वभाव रूखा व्यग्रतायुक्त और उदास होता है।[122] ऐसी स्त्रियां किसी भी समय कुछ भी कर सकती हैं तथा ईर्ष्यावश नीच से नीच कर्म या हत्या आत्महत्या तक पर उतर आती हैं। किन्तु, उच्च कुल और संस्कार में पली हुई ऐसी स्त्रियां भी स्थिर होकर अपने को वश में रखती हैं और किसी का अहित नहीं करतीं।[123]

स्वाभाविक तौर पर सभी प्रकार के अच्छे गुणों से युक्त स्त्री उत्तमा बहुत अच्छे गुण न हों पर अवगुण भी न हों तो वैसी स्त्रियां मध्यमा दुर्गुणों से युक्त स्त्रियां अधमा कहलाती हैं।

राजा के अन्तःपुर में कई प्रकार की स्त्रियां पायी जाती थीं—महादेवी देवी स्वामिनी आश्रिता रखैलिन शिल्पकारिणी नर्तकी अंगरक्षिका सेविका राजा-रानी अथवा प्रेमी-प्रेमसी के बीच सन्धि करानेवाली संदेशवाहिका प्रसाधसेविका द्वाररक्षिका कुमारी वृद्धा और मंत्रणा करनेवाली आयुक्तिका।

अच्छे गुणों से युक्त और सदा पति का कल्याण चाहनेवाली उम्र में सबसे बड़ी पटरानी को महादेवी कहा जाता था। अन्य रानियां देवी कहलाती थीं।[124] उच्च राज सेवकों की अन्तःपुर में पालित कन्याएं जो अपने शील स्वभाव के कारण राजा की प्रिया होती थीं तथा इन्हीं सद्गुणों के कारण जिन्हें ऊंचा पद प्राप्त होता था वे स्वा

---

१२० प्रो० युंग के विचार; टाइम्स आफ इंडिया, जून २५, १९६१, पृ० १०
१२१ अभिनव नाट्य शास्त्र पृ० १९६
१२२ वही
१२३ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० ११५
१२४ वही, पृ० ८४

मिनी कहलाती थीं। इसी तरह रनिवास में रहनेवाली अन्य स्त्रियों के भी अलग-अलग काम निश्चित थे।[125]

रानियों की प्रकृति तीन तरह की बताई गई है।[126] आचार्यों ने रानियों तथा रनिवास में रहनेवाली अन्य स्त्रियों के भी विभिन्न स्वभाव, कार्य और प्रकृति का वर्णन किया है।[127]

नायक की प्रिया अथवा पत्नी को नायिका कहा गया है। किन्तु आधुनिक शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार स्त्रियों में से जिसका कथा-प्रवाह में मुख्य भाग हो वही नायिका है चाहे वह नायक की प्रिया या पत्नी हो या न हो। नायिका में भी नायक के सामान्य गुणों का होना आवश्यक है।

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नायिकाओं के चार भेद बताये हैं—दिव्या कुलस्त्री और गणिका। परन्तु आगे चलकर अन्य शास्त्रकारों ने यह विवेचन दूसरे ही ढंग से किया है। नायिका का स्वकीया परकीया और सामान्या में विभाजन—सर्वमान्य है। अपने 'दशरूपक' में धनंजय ने भी इसीको स्वीकार किया है। स्वकीया अपनी और परकीया पराई स्त्री को कहा गया है। सामान्या किसी की स्त्री नहीं होती। इसका दूसरा नाम गणिका या वेश्या भी है।[128]

स्वकीया पतिव्रता चरित्रवती और अच्छे गुणों से युक्त होती है। उसके भी तीन भेद किये गये हैं—मुग्धा मध्या और प्रगल्भा। मध्या और प्रगल्भा के धीरा धीराधीरा और अधीरा—ये तीन-तीन भेद और होते हैं।[129] इस प्रकार मध्या और प्रगल्भा के छ भेद हुए। इन छ-छ भेदों के भी ज्येष्ठा और कनिष्ठा दो-दो भेद और होते हैं। इस प्रकार इन दोनों के बारह-बारह भेद होते हैं। मुग्धा के अन्य भेद नहीं होते।

परकीया नायिका दो प्रकार की होती है—ऊढ़ा और अनूढ़ा। परकीया नायिका के मुख्य छ भेद होते हैं—गुप्ता विदग्धा लक्षिता कुलटा अनुशयना और मुदिता।

सामान्या यानी गणिका नायिका के भी अन्य भेद नहीं होते।

ये सब भेद मिलकर कुल सोलह भेद होते हैं।

इनके अतिरिक्त नायिका के व्यवहार के अनुसार आठ भेद और होते हैं।[130] स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा विरहोत्कंठिता खंडिता कलहांतरिता विप्रलब्धा प्रोषित-पतिका और अभिसारिका। अभिसारिका नायिका का अभिसरण स्थान प्रायः खेत बगीचा टूटा मंदिर दूती का घर, निर्जन स्थान जंगल श्मशान या नदी-तट बताये गये हैं।[131]

---

१२५. वही, पृ० १६५
१२६ वही
१२७ वही
१२८. रूपक रहस्य, पृ० १०६
१२९. नवरस, पृ० १७२
१३० वही पृ० १८
१३१ नवरस पृ० २७२

स्वाधीनपतिका और वासकसज्जा की विशेषता क्रीड़ा उज्ज्वलता और हर्ष है। अन्य छः नायिकाओं की विशेषता है चिन्ता, निःश्वास खेद अश्रु विवर्णता ग्लानि एवं भूषणों का अभाव।[132]

नायिका की दासी सखी धोबिन धाई, नौकरानियां पड़ोसिन भिक्षुकी शिल्पिनी आदि दूतिका कही जाती हैं। कभी-कभी नायिका स्वयं भी दूती बन जाती है। इन दूतियों में वे ही गुण आवश्यक हैं जो नायक के सहायकों में होते हैं। दूतियों में कला कौशल उत्साह स्वामिभक्ति दूसरे का अभिप्राय समझने की शक्ति तीव्र स्मरण शक्ति मधुरभाषिता मर्म विज्ञान का ज्ञान वाग्मिता आदि गुण होने चाहिए।[133]

पाश्चात्य मत

पाश्चात्य समीक्षकों ने छः तत्त्वों की अनिवार्यता स्वीकार की है।[134]—वस्तु चरित्र संवाद वातावरण शैली और उद्देश्य। किन्तु भारतीय मतानुसार कथा के भी नाटकों की तरह, तीन तत्त्व माने जा सकते हैं—वस्तु नेता और रस।[135] दोनों ही मतों में 'नेता' या चरित्र को कथा में अत्यधिक महत्त्व प्राप्त है। भारतीय साहित्यशास्त्र में 'नेता' या प्रधान चरित्र के विकास पर ही सम्पूर्ण कथा चलती है। किन्तु आधुनिक समय में प्रधान एवं गौण दोनों ही तरह के पात्रों को कथाकृति में समान अधिकार मिलता जा रहा है। ऐसी कथाकृतियों में गौण पात्र भी नेता बनने का अधिकार रखते हैं।[136] कथा और पात्र एक दूसरे पर आश्रित हैं। इसलिए कभी पात्र कथा के माध्यम से आगे बढ़ते हैं कभी कथा पात्र के माध्यम से आगे बढ़ती है। पहली स्थिति में प्रायः कथा आत्मकथा बन कर रह जाती है।[137] इसीलिए कृति की सफलता के लिए पात्र और कथा का संतुलन आवश्यक है, बल्कि कथा से अधिक पात्र-गठन पर ध्यान देना चाहिए।[138] अच्छी कथा का आधार चरित्र विकास ही माना गया है।[139] साथ ही समाज के वास्तविक या सत्य चरित्र ही कथा के पात्र बनने के अधिकारी नहीं हैं। संसार की वास्तविकता कलाकार की मनोवृत्ति के अनुकूल बनकर साहित्य में अभिव्यक्त होती है।[140] इसीलिए कथाकार दुनिया के सत्य में कुछ जोड़ घटाकर

---

१३२ वही, पृ० २०८
१३३ वही पृ० २०७
१३४ समीक्षा शास्त्र पृ० १९४
१३५. वही
१३६ हेनरी जेम्स
१३७ आस्पेक्ट्स आफ दी नावेल, पृ० ४४
१३८. 'स्टोरी इज दी लास्ट पार्ट'—ड्राइडन
१३९. 'दी फाउन्डेशन आफ ए गुड फिक्शन इज कैरेक्टर क्रीएटिंग एंड नथिंग एल्स'—ए० बैनेट
१४० आस्पेक्ट्स आफ दी नावेल, पृ० ११

अपनी रचनाएं करता है। वास्तव में तो कला एक सृजन है जो वास्तविक जीवन से कुछ भिन्न है और उसके अपने नियम एवं सीमाएं भी हैं। वास्तविक जीवन में व्यक्तिगत का सिर्फ बाह्य परिचय मिल पाता है। उसके अन्तर की गोपनीय बातें फिर भी गोपनीय ही रह जाती हैं। कई तो उन्हें अपने अंतर में लिए ही मर भी जाते हैं। इस विचित्रता का उद्घाटन आज की कथाओं में हुआ है यद्यपि यह हमारी दुनिया की वास्तविकता से भिन्न वास्तविकता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक कृतियों में ऐसे चित्रों का सफल अंकन हुआ है।[141]

नायक-नायिका भेद भी मानवीय मनोविज्ञान स्वभाव और प्रकृति के आधार पर निश्चित किया गया है। जेम्स और मैकडूगल मानते हैं कि 'मनुष्य अपनी सहज वृत्ति (इन्सटिंक्ट) की प्रेरणा के बल पर ही सभी प्रकार के काम करता है। कभी-कभी उसमें ऐसे गुण आ जाते हैं जिससे वह समग्र समाज का प्रतिनिधि या नितान्त वैयक्तिक बन जाता है।'[142] अथवा जाति धर्म या लिंग के अनुसार कार्य करता है। आंचलिक कथाओं के पात्रों में इस स्वाभाविक' का अच्छा परिचय मिलता है। अमीर और गरीब, ग्रामीण और शहरी ब्राह्मण और शूद्र आदि चरित्रों में अंतर स्वाभाविक ही है।

अरस्तू और चरित्र

ई० पूर्व चौथी सदी में हुए यूनान के महान विचारक अरस्तू ने पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को काफी प्रभावित किया। राजनीति और साहित्य-संबंधी उनकी मान्यताओं को आज भी समान रूप से आदर प्राप्त है। उनके साहित्य-संबंधी विचार 'काव्यशास्त्र' (पेरिपोइतिकेस) नामक पुस्तक में उपलब्ध है।[143] यद्यपि उन्होंने नाटक महाकाव्य ट्रेजेडी और कामेडी के अन्तर्गत आये चरित्रों की ही व्याख्या की है किन्तु यह व्याख्या काफी व्यापक है और साहित्य के सभी अंगों पर समान रूप से लागू होने वाली है। अरस्तू ने चरित्र उसे ही कहा है जिसके बल पर हम अभिकर्ताओं में कुछ गुणों का आरोप करते हैं।[144] चरित्र उसे कहते हैं जो किसी व्यक्ति की रुचि-विरुचि का प्रदर्शन करता हुआ नैतिक प्रयोजन को व्यक्त करे।[145]

डा नगेन्द्र ने अपने अनुवाद की भूमिका में अरस्तू की मान्यताओं और स्थापनाओं पर पाश्चात्य विद्वानों की रायों का सम्यक विश्लेषण करने के बाद प्रोफेसर बुचर के मतों को ही माना है। प्रो० बुचर का कहना है कि अरस्तू ने व्यक्ति की नैतिकता पर अधिक बल देने के बावजूद विशिष्ट व्यक्तित्व की महत्ता की निष्ठा को भी नहीं भुलाया है। अरस्तू का मूल नैतिकता का गुण या मूल्यों के विघटन नहीं संवरण का

---

१४१ वही
१४२ समीक्षा शास्त्र पृ० २६०
१४३ वही
१४४ अरस्तू का काव्य-शास्त्र पृ० २०
१४५ वही

युग था, उस युग में नैतिक चरित्रों का स्थिरीकरण हो चुका था। इसीलिए अरस्तू ने आदर्श चरित्रों की सदैव कल्पना की। उनकी विचारधारा भारत के आर्ष महाकाव्यात्मक चरित्रों की याद दिलाती है। भारत में भी ऐसे ही महत् चरित्रों के चित्रण को मान्यता मिली हुई थी।[१४६]

डा० नगेन्द्र के अनुसार अरस्तू ने चरित्र के संबंध में छ बुनियादी सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। पहली और सबसे महत्त्व की बात उसका 'भद्र' होना माना गया है उसका उद्देश्य भी भद्र माना गया है। भद्रता का यह गुण प्रत्येक वर्ग में संभव है—स्त्री में और दास में भी यद्यपि स्त्री को कुछ निम्न और दास को निकृष्ट प्राणी माना गया है।[१४७]

दूसरी महत्त्व की बात है चरित्र का औचित्य। अरस्तू मानते हैं कि पुरुष में एक विशेष प्रकार का शौर्य होता है। परन्तु नारी-चरित्र में शौर्य या नैतिक-विवेक शून्य चातुर्य का समावेश अनुचित हुआ।[१४८] किन्तु, आधुनिक मतानुसार नारी और पुरुष चरित्र में सेक्स और लिंग के अनुसार अन्तर जानना घातक है।[१४९]। वस्तुतः, नारी और पुरुष-चरित्र में अब कोई अन्तर नहीं रहा। अब नारी केवल गृहस्वामिनी नहीं रही। समाज की नाना कार्य प्रणालियों में उसका अब समान हिस्सा अधिकार और सहयोग है। यूरोप की नारी तो भारतीय नारी की अपेक्षा पुरुष के अधिक निकट है।[१५०] 'नारी और 'दास' कहकर चरित्र की जिस सीमा का उल्लेख अरस्तू ने किया है उसे वह स्वयं बहुत दूर तक नहीं मानते क्योंकि उन्होंने भद्रता का आरोप सामान्य सभी चरित्रों पर किया है। अरस्तू के अनुसार यह भी सत्य है कि कुछ चरित्रों में वर्गगत चरित्रों का संस्कार बड़ा प्रबल होता है। किन्तु, यह जरूरी नहीं कि उन्हीं संस्कारों से उस वर्ग के सभी चरित्र परिचालित होते हैं। अरस्तू के अनुसार भद्र पुरुषों का विभ्रम और पतन समाज के मन में सहानुभूति पैदा करता है। अतः प्रभाव की दृष्टि से अरस्तू की मान्यता समीचीन है। इसीलिए नायक की व्याख्या में अरस्तू इसी सहानुभूति और करुणा का ध्यान रखते हैं। 'अब इन दो सीमान्तों के बीच का चरित्र रह जाता है ऐसा व्यक्ति जो अत्यन्त सच्चरित्र और न्यायपरायण तो नहीं है फिर भी जो अपने दुर्गुण या पाप के कारण नहीं वरन् किसी कमजोरी या भूल के कारण दुर्भाग्य का शिकार हो जाता है।'[१५१]

नायक के इस विवेचन द्वारा अरस्तू भारतीय मत के करीब पहुंच जाते हैं हालांकि अत्यन्त करीब नहीं।[१५२] भारतीय मत से अरस्तू के मत की तुलना करने के

---

१४६ 'त्रासदी में मानव का अभ्यंतर चित्रण होता है'—अरस्तू
१४७ अरस्तू का काव्य-शास्त्र, पृ० ३९
१४८ वही पृ० ४०
१४९ यद्यपि बीसवीं शताब्दी का महान मनोवैज्ञानिक डॉ० युग इस मत से बिलकुल भिन्न धारणा रखता है
१५० समाज की भूमिका, पृ ३०
१५१ अरस्तू का काव्य-शास्त्र पृ० ३३
१५२ वही

में जीवन के विविध कार्य-व्यापारों का उल्लेख रहता है जो एक स्थान पर जुड़कर चरित्र के विकास में सहायक होते हैं। डा० नगेन्द्र ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए यह स्वीकार किया है कि यूरोप का परवर्ती नाट्य साहित्य और नाट्य सिद्धान्त कथानक की अपेक्षा चरित्रचित्रण को ही अधिक महत्त्व देता है। मार्लो शेक्सपीयर ड्राइडन मोलियर गेटे, इब्सन मेटरलिंक आदि के नाटकों में चरित्र चित्रण को ही प्रधानता प्राप्त है। साथ ही आर्चर, निकोल आदि के नाट्यालोचन संबंधी ग्रंथों में भी चरित्र को ही प्रधानता दी गयी है।[150] पर इसकी व्याख्या करते हुए डा० नगेन्द्र ने 'प्रसाद' की तरह प्रत्येक घटना को 'मानव-आत्मा की अभिव्यक्ति माना है।" मानव आत्मा की यह अभिव्यक्ति ही रस है। इसी तथ्य की स्वीकृति या आलेख का नाम चरित्र है। इस सन्दर्भ में चरित्र चित्रण के लिए डा नगेन्द्र ने आत्मतत्त्व मानवतत्त्व आदि शब्दों का प्रयोग किया है जो उनकी मौलिक चिंता का प्रमाण है।[151]

फोरेस्टर का वर्गीकरण

किन्तु, अंग्रेजी के आधुनिक समीक्षक ई० एम० फोर्स्टर का कहना है कि अरस्तु के उपर्युक्त कथाबात पुराने हैं। वे आधुनिक उपन्यासों नहीं नाटकों को दृष्टि में रखकर व्यक्त किये गये थे। उसने ओडेसी पढ़ा था यूलिसिस नहीं। नाटकों में आदमी के सभी दुःख-सुख घटनाओं का रूप ले लेते हैं। पर उपन्यासों में लेखक को चरित्रों के संबंध में अपनी राय देने चरित्रों के द्वारा या आपसी वार्तालाप द्वारा भी अपने मंतव्य व्यक्त करने एवं चरित्रों के गुप्त जीवन का रहस्योद्घाटन करने की स्वतंत्रता रहती है जिसका कोई बाहरी प्रमाण सहज में नहीं प्राप्त हो सकता है।[152] उपन्यास का यह भी कार्य है कि वह गुप्त जीवन का रहस्योद्घाटन करे।[153]

फोर्स्टर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक आस्पेक्ट्स आफ द नावेल[154] के लोक (पीपुल) नामक अध्याय में चरित्रों को दो वर्गों में बांटा है—सपाट और गोल अर्थात् सरल और गूढ़। कुछ विचारकों ने इन्हें विकसित और पूर्वनिश्चित चरित्र भी कहा है। १७वीं शताब्दी में इन सपाट चरित्रों को हास्य चरित्र (ह्यूमरस) कभी-कभी वर्ग चरित्र एवं अनुकृति भी कहा जाता था।[155]

सपाट या फ्लैट चरित्र अपरिवर्तनशील एवं गूढ़ या राउंड चरित्र परिवर्तनशील होते हैं।

सपाट चरित्र कथा में एक खास रूप लेकर आते हैं और अन्त तक वैसे ही बने

---

१५० अरस्तु का काव्यशास्त्र पृ० १७
१५१ वही पृ० १८
१५२ आस्पेक्ट्स आफ दी नावेल, पृ० ८१
१५३ वही, पृ० ४५
१५४ वही पृ० ६५
१५५ वही

रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन, प्रतिक्रिया या भावनाओं का आलोड़न प्रत्यालोड़न नहीं होता। उनमें एक खास किस्म की सनक (मेनरिज़्म) होती है और ऐसे चरित्रों का निर्माण किसी एक ही विचार के आधार पर होता है।"[१५६]

फोर्स्टर ने आगे कहा है कि ऐसे चरित्र केवल एक पंक्ति में व्यक्त किये जा सकते हैं "मैं कभी भी मिस्टर मिकाबर को वीरान नहीं करूंगी।" मिकाबर की पत्नी यह कहती है और वह अपने पति को कभी वीरान नहीं करती।"[१५७]

सपाट या फ्लैट चरित्रों की विशेषता यह है कि वे शीघ्र पहचाने और याद रखे जा सकते हैं। इसके लिए उनके परम्परागत चरित्र-विकास की परीक्षा आवश्यक नहीं। साथ ही सपाट चरित्र विदूषक के रूप में ही अच्छे लगते हैं। गम्भीर और करुण सपाट चरित्र तो बड़े (बोर) ही लगते हैं।

गूढ़ चरित्रों में यह क्षमता है कि वे हास्य को छोड़कर अन्य सभी रुचियाएं पाठक के अन्दर पैदा करते हैं। उन्हें स्पष्ट रूप से समझना उनकी प्रतिक्रियाओं के बारे में कोई पूर्वनिश्चित धारणाएं बनाना कठिन है क्योंकि उनके बाह्य और आंतरिक रूप में अन्तर होता है। भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' में योगी कुमारगिरि और चित्रलेखा के चरित्र गूढ़ चरित्रों के ही उदाहरण हैं। उनके प्रारम्भ और अंतिम प्रतिक्रियाओं में बड़ा अन्तर आ जाता है। कुछ ऐसी बातें भी मिलती हैं जो समाप्त होते-होते भी समाप्त नहीं होतीं और जिसकी थाह कभी मिल नहीं पाती इसीलिए वे चौंका देनेवाले होते हैं। फिर भी इन राउंड चरित्रों की प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय होना आवश्यक है। [द टेस्ट आफ ए राउंड कैरेक्टर इज़ व्हेदर इट इज़ केपेबुल आफ सरप्राइज़िंग इन ए कन्विन्सिंग मैनर]।[१५८]

चरित्र और मनोविज्ञान

मनुष्य का चरित्र मन की क्रियाओं के द्वारा निर्मित होता है। अतः चरित्र विकास के अध्ययन में मनोविज्ञान का बहुत महत्त्व है। आधुनिक मनोविज्ञान ने मन की खोज में चमत्कारिक उन्नति की है। इन खोजों के परिणामस्वरूप मनोविश्लेषण नामक एक नया विज्ञान ही तैयार हो गया है। ऐसी खोजें करनेवाले मनोवैज्ञानिक का नाम सिगमंड फ्रायड है। वे स्वयं एक प्रतिष्ठित डाक्टर थे। अन्य बातों के अलावा, फ्रायड का यह भी कहना है कि मनुष्य की कुछ शारीरिक बीमारियों का कारण मानसिक होता है और उसकी कुछ मानसिक बीमारियां भी उसके अप्रिय अनुभवों के कारण होती हैं।"[१५९]

नवीन मनोविज्ञान की यह स्थापना है कि मन की तीन अवस्थाएं होती हैं—चेतन मन अवचेतन (चेतनोन्मुख) मन और अचेतन मन।

---

१५६ वही

१५७ वही

१५८. वही, पृ० ७५

१५९ मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं, पृ० ११

चेतनावस्था में मन की समस्त क्रियाओं का हमें अहंकार (ईगो) रहता है। हमारे समस्त विचार भी चेतन मन में ही आकर प्रकाशित होते हैं। पर चेतन मन में आकर प्रकाशित होने के पहले ये विचार इच्छाएं, भावनाएं, स्मृतियां वेदनाएं आदि अवचेतन मन में संगृहीत होती हैं और चेतना पर आने को तत्पर रहती हैं। चेतनोन्मुख मन के परे अचेतन मन है। जिस अवस्था में मन के विचार भावनाएं आदि न हमें ज्ञात रहती हैं और न प्रयत्न से ही चेतना के स्तर पर आती हैं। उन्हें चेतना में लाने अथवा अचेतन मन में उनकी उपस्थिति जानने के लिए ही इस विशेष विज्ञान की आवश्यकता होती है।

चरित्र की मनोवैज्ञानिक परिभाषा

चरित्र एक बहुत ही व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के सभी संस्कार आ जाते हैं। किन्तु मनुष्य का चरित्र इन सभी संस्कारों का पुंजमात्र नहीं है। मनुष्य में चरित्र वहीं होता है जहां तक वह इन संस्कारों में अपनी दुनिया बना लेता है। चरित्र वान व्यक्ति की सभी क्रियाएं एक सिद्धान्त द्वारा परिचालित होती हैं। एक ही लक्ष्य की प्राप्ति की ओर जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपनी शारीरिक और मानसिक क्रियाओं को केन्द्रित करता है, वह उतना ही बड़ा चरित्रवान कहा जाता है।[१७०] अनेक तरह की आदतें इकट्ठी होकर चरित्र कहलाती हैं। इस तरह चरित्र-निर्माण में इच्छा शक्ति ही काम करती है।

स्थायीभाव और चरित्र

मैग्डूगल का कहना है कि मनुष्य का चरित्र उसके स्थायी भावों का समुच्चय मात्र है। जिसके स्थायीभाव जैसे होते हैं उसका चरित्र भी वैसा ही रहता है। जिस व्यक्ति के मन में उच्च आदर्शों के प्रति श्रद्धास्पद भाव नहीं रहते, उसके व्यक्तित्व को सुगठित तथा चरित्र को सुन्दर नहीं कहा जा सकता। मानव-मन के ये स्थायीभाव अनेक विचारों के जनक एवं मनुष्य की अनेक क्रियाओं को संचालित करनेवाले होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मन में सुन्दर स्थायीभावों के रहने से अधिक महत्व की वस्तु जीवन में और कुछ नहीं है।[१७१]

चरित्र के क्रमिक विकास को बताते हुए मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्ति जैसा बार-बार करता है वह उसका अभ्यास बन जाता है और इसी अभ्यास के अनुरूप मनुष्य का चरित्र बनता है। ये अभ्यास ही हमारे नैतिक जीवन के आधार हैं। अच्छे अभ्यास से अच्छा और बुरे अभ्यास से बुरा चरित्र बनता है। एक ही प्रकार की विभिन्न परिस्थितियों में जब मनुष्य एक-सा ही आचरण करता है तब वह उसका चरित्र समझा जाता है। एक लेखक ने इसका उदाहरण पेश करते हुए कहा है कि प्राय: किसी

---

१७० सरल मनोविज्ञान पृ० ५०१

१७१ वही, पृ० २७४

सुन्दर स्त्री को देखकर प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर आकर्षित होता है और उसे पाना चाहता है। सिर्फ लोकनिंदा, राजदण्ड या समाज के भय से ही वह ऐसा नहीं कर पाता। पर यदि स्वयं वह स्त्री किसीके सम्मुख अपने को समर्पण करे तो उसे ग्रहण करन में भी वह कोई संकोच नहीं करता। ऐसे व्यक्ति का कोई चरित्र नहीं होता। किन्तु जो व्यक्ति एकान्त में स्वयं आत्मसमर्पण करनेवाली स्त्री को माता या बहन कहकर सम्बोधित करे, वह अवश्य ही चरित्रवान है। यह चरित्र उसकी इच्छा-शक्ति की साधना का परिणाम है। जब मनुष्य अपने भावों की गति को स्वयं अपनी इच्छा से और किसी दण्ड, भय या प्रेरणा से परिचालित नहीं करता तो उसकी यह गति के नियमन की शक्ति ही इच्छा-शक्ति कहलाती है। जितनी प्रबल और दृढ़ यह इच्छा शक्ति होगी उतनी ही चरित्र में विशिष्टता आयगी। ऐसा व्यक्ति या तो परम दुष्ट होगा या परम साधु ही। इच्छा-शक्ति से हीन व्यक्ति सदा अव्यवस्थित और परमुखा पेक्षी होगा। किन्तु एक विषय या प्रसंग में किसी व्यक्ति की दृढ़ता से उसका चरित्र नहीं आंका जा सकता। अधिक से अधिक परिस्थितियों में भी जो व्यक्ति अपनी इच्छा-शक्ति को स्वाधीन रखता है उसीसे उसका चरित्र पहचाना जा सकता है। अतः मनुष्य के चरित्र की पहिचान का साधन है उसकी इच्छा-शक्ति। ड्राटर ने मनुष्य को स्थिर चित्तवालों और अस्थिर चित्तवालों में विभाजित किया है। स्थिर चित्त वाले जिस समाज या दल में रहते हैं उससे सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक विषय में उनका स्थिर मत होता है। अस्थिर चित्तवाले सदा मत बदलते रहते हैं और अनुभव के आधार पर अपनी मनोवृत्ति और प्रकृति भी बदलते रहते हैं।[१०२]

आस्टवाल्ड ने मनुष्य को दो भागों में बाँटा है—कल्पनाशील (रोमान्टिक टाइप) और संस्कारशील (क्लासिकल टाइप)।[१०३] कल्पनाशील प्रकृति का व्यक्ति तेजी से सोचता है और बहुधन्धी होता है। वह निरन्तर लोकप्रिय बनने में लगा रहता है। संस्कारशील धीरे-धीरे सोचता है और एक ही काम में लगा रहता है। वह लोकप्रियता की चिन्ता नहीं करता और एकान्त-प्रेमी होता है।

चरित्र और व्यक्तित्व

आमतौर पर चरित्र और व्यक्तित्व में कोई विभेद नहीं माना जाता जब कि असल में चरित्र और व्यक्तित्व आपस में विरोधी हैं। हर्बर्ट रीड के अनुसार मानव में अन्तर्भूत प्रकृति को ही चरित्र की संज्ञा दी जाती है।[१०४] चरित्र में आत्मनियमन नियमों में अपने को आबद्ध करने और प्राकृतिक वृत्तियों को नियमों के अनुकूल बदल देने की भावना है। किन्तु रीड के अनुसार चरित्र की वृद्धि के साथ ही व्यक्ति के अनुभवों का विकास रुक जाता है, प्रेरणा का आविर्भाव समाप्त हो जाता है। इसी-

---

१०२ अभिनव नाट्य शास्त्र, पृ० १४१

१०३ वही

१०४ समीक्षाशास्त्र पृ० १२

लिए दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं।

रीड महोदय ने यह भी सिद्ध किया है कि फ्रायड का ईगो ही व्यक्तित्व है जिसका वास्तविक अर्थ है उसका विकास। आदर्श व्यक्तित्व वाला प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक नये विचारों का भावनाओं का समन्वय करता चलता है।[१७५]

इस तरह व्यक्तित्व और चरित्र में अंतर है। चरित्र से भिन्न उसका व्यक्तित्व चारित्र्य कहलाता है जो चरित्र की विशेषता को व्यक्त करता है। किन्तु चरित्र से केवल जीवन चरित्र आत्मकथा या जीवनवृत्त का बोध होता है। एक आलोचक ने चरित्र की परिभाषा यों की है— 'नियामक सिद्धान्तों के अनुसार मानव की स्वभाव जन्य वासनाओं का दमन करके सद्भावों और भावनाओं को स्थायित्व प्रदान करना चरित्र कहलाता है।'[१७६]

व्यक्तित्व शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है जो किसी व्यक्ति में हैं और जिनपर उसे अभिमान होता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की संवेदनाएं प्रवृत्तियां उद्वेग, प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पना स्मृति बुद्धि-विवेक आदि मानसिक शक्तियां एवं शारीरिक बनावट अवस्था और दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध आदि सारी बातें आ जाती हैं। "बुद्धि का विकास एकान्त में होता है, किन्तु चरित्र-निर्माण संसार के प्रवाह में होता है।"[१७७]

मनुष्य का व्यक्तित्व उसकी प्रौढ़ावस्था में ही सम्पूर्णतः बनता और विकसित होता है। हम प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहते हैं। जो हम एक वर्ष पूर्व थे वह आज नहीं हैं। यदि हम अपने आपकी दस वर्ष की अवस्था से तुलना करें तो हम कठिनता से अपने को पहचानेंगे।[१७८] सुविकसित व्यक्तित्व के लिए अपने अनुभवों को सूत्रीभूत करना भी आवश्यक है। आदर्श व्यक्तित्व वही है जिसमें सभी अनुभवों का संगठन भी एक ही सत्ता द्वारा हो और व्यक्तित्व का कोई भी अंग इस संगठन के बाहर न हो।

यदि मनुष्य के विभिन्न अनुभवों के विभिन्न संस्कारों में विरोध हो जाता है, उसकी विभिन्न शक्तियों में एकता नहीं होती तो उसे हम व्यक्ति-विच्छेद की संज्ञा दे सकते हैं। यह एक दुखप्रद मानसिक परिस्थिति है जिससे मनुष्य का सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है।

व्यक्तित्व के अंग

व्यक्तित्व के प्रधान अंग हैं व्यक्ति का रूप बुद्धि उद्वेगात्मक जीवन चरित्र तथा मानसिक दृढ़ता एवं सामाजिक जीवन।

व्यक्ति के रूप के अन्तर्गत उसके शरीर की बनावट उसकी सजधज आती है।[१७९]

---

१७५. विनोबा भावे
१७६ समीक्षा शास्त्र पृ० ११
१७७ वही, पृ० ११
१७८. सरल मनोविज्ञान पृ० ११२
१७९ सरल मनोविज्ञान, पृ० १११

बुद्धि और चरित्र

बुद्धि के गुण जन्मजात हैं और चरित्र के गुण अर्जित किये जाते हैं। एक प्रखर बुद्धिवाला व्यक्ति दुश्चरित्र और सामान्य बुद्धिवाला चरित्रवान हो सकता है। संसार के बहुत-से संत-महात्मा प्रखरबुद्धि के नहीं थे पर वे सुव्रती थे। बहुत-से प्रतिभावान व्यक्ति (सुपरनारमल) दुराचारी और व्यभिचारी पाये जाते हैं। वे अपनी प्रतिभा का उपयोग संसार के कल्याण में न कर, उसके विनाश में करते हैं।[१८०]

इस सिलसिले में एक विचित्र स्थिति देखी जाती है। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों ने जेलखाने के कैदियों की बुद्धि का परीक्षण करके ८० प्रतिशत कैदियों को मन्दबुद्धि का पाया। स्पष्ट है कि बुद्धि की कमी चरित्रनिर्माण में कमी का कारण बन जाती है।[१८१]

किन्तु प्रखर बुद्धि का व्यक्ति आगे-पीछे सोचकर मर्यादा या नियमन के अन्दर रहकर, अपने सभी क्रिया-कलाप उच्च हेतु से निर्धारित कर सकता है अवांछनीय रास्ते को छोड़कर कल्याण का मार्ग अपना सकता है।

व्यक्तित्व का तीसरा प्रधान अंग उद्विग्नता है जिसे मनोविज्ञान ने जन्मजात गुण माना है। यह किसीमें कम किसीमें अधिक होता है कोई स्वभाव से ही प्रसन्न और कोई दुखी होता है। इसकी दृष्टि से भी मनोवैज्ञानिकों ने चार प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं—प्रफुल्ल उदास क्रोधी चंचल जिसका पहले ही वर्णन किया जा चुका है।[१८२]

सामाजिकता की दृष्टि से भी देखा जाय तो सामाजिक जीवन में सुयोग्य व्यवहार के लिए बुद्धि से काम लेना आवश्यक है। जिस मनुष्य की जैसी बुद्धि होती है वह अपने सामाजिक व्यवहार में वैसा ही सफल होता है।

भावेषात्मक लालसा के अनुसार युंग ने मनुष्यों के दो भेद किये हैं जो मनुष्य की सभी क्रियाओं को प्रेरित करते हैं—अन्तर्मुख और बहिर्मुख।[१८३] इन दोनों प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों को उसने फिर चार चार प्रकृतियां बताई हैं—विचारात्मक अनुभवात्मक, भावेगात्मक और अन्त:प्रेरणात्मक।

इनमें से जो बहिर्मुखी विचारात्मक प्रकृति के होते हैं वे नीतिवादी आचारवादी होते हैं। बहिर्मुखी अनुभवात्मक प्रकृति का व्यक्ति यह मानता है कि जिससे उसे सुख शान्ति सहारा मिले वही ठीक है। शेष सब बेकार है। बहिर्मुखी भावेगात्मक व्यक्ति 'यावज्जीवं सुखं जीवेत्' 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' एवं 'खाओ पियो मौज करो' का सिद्धान्त मानते हैं। बहिर्मुखी अन्त:प्रेरणात्मक प्रकृति वाले भावी संभावनाओं के लिए अपनी अन्त:प्रेरणा का सहारा लेते हैं। ऐसे लोग कहा करते हैं— 'मेरा मन कहता

---

१८० मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं, पृ० २११

१८१ वही

१८२ सरल मनोविज्ञान पृ० २८७

१८३ सामान्य मनोविज्ञान, पृ० १८६

लिए दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं।

रीव महोदय ने यह भी सिद्ध किया है कि फ्रायड का ईगो ही व्यक्तित्व है जिसका वास्तविक अर्थ है उसका विकास। आदर्श व्यक्तित्व वाला प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक नये विचारों का भावनाओं का समन्वय करता चलता है।[१७५]

इस तरह व्यक्तित्व और चरित्र में अंतर है। चरित्र से भिन्न उसका व्यक्तित्व चारित्र्य कहलाता है जो चरित्र की विशेषता को व्यक्त करता है। किन्तु, चरित्र से केवल जीवन चरित्र, आत्मकथा या जीवनवृत्त का बोध होता है। एक आलोचक ने चरित्र की परिभाषा यों की है— 'नियामक सिद्धान्तों के अनुसार मानव की स्वभाव जन्य वासनाओं का दमन करके सद्भावों और भावनाओं को स्थापित्व प्रदान करना चरित्र कहलाता है।[१७६]

व्यक्तित्व शब्द से उन सभी बातों का बोध होता है जो किसी व्यक्ति में हैं और जिनपर उसे अभिमान होता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की संवेदनाएं प्रवृत्तियां उद्वेग प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पना स्मृति बुद्धि-विवेक आदि मानसिक शक्तियां एवं शारीरिक बनावट अवस्था और दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध आदि सारी बातें आ जाती हैं। 'बुद्धि का विकास एकान्त में होता है, किन्तु चरित्र-निर्माण संसार के प्रवाह में होता है।'[१७७]

मनुष्य का व्यक्तित्व उसकी प्रौढ़ावस्था में ही सम्पूर्णत: बनता और विकसित होता है। हम प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहते हैं। जो हम एक वर्ष पूर्व थे वह आज नहीं हैं। यदि हम अपने-आपकी दस वर्ष की अवस्था से तुलना करें तो हम कठिनता से अपने को पहचानेंगे।[१७८] सुविकसित व्यक्तित्व के लिए अपने अनुभवों को सूत्रीभूत करना भी आवश्यक है। आदर्श व्यक्तित्व वही है जिसमें सभी अनुभवों का संगठन भी एक ही सत्ता द्वारा हो और व्यक्तित्व का कोई भी अंश इस संगठन के बाहर न हो।

यदि मनुष्य के विभिन्न अनुभवों के विभिन्न संस्कारों में विरोध हो जाता है, उसकी विभिन्न शक्तियों में एकता नहीं होती तो उसे हम व्यक्ति विच्छेद की संज्ञा दे सकते हैं। यह एक दुखद मानसिक परिस्थिति है जिससे मनुष्य का सर्वस्व ही नष्ट हो जाता है।

व्यक्तित्व के अंग

व्यक्तित्व के प्रधान अंग हैं व्यक्ति का रूप बुद्धि उद्वेगात्मक जीवन चरित्र तथा मानसिक दृढ़ता एवं सामाजिक जीवन।

व्यक्ति के रूप के अन्तर्गत उसके शरीर की बनावट उसकी सजधज आती है।[१७९]

---

१७५. विनोबा भावे
१७६ समीक्षा शास्त्र पृ० ३३
१७७ वही, पृ० ३३
१७८ सरल मनोविज्ञान, पृ० ३३२
१७९ सरल मनोविज्ञान, पृ० ३३३

बुद्धि और चरित्र

बुद्धि के गुण जन्मजात हैं और चरित्र के गुण अर्जित किये जाते हैं। एक प्रखर बुद्धिवाला व्यक्ति दुश्चरित्र और सामान्य बुद्धिवाला चरित्रवान हो सकता है। संसार के बहुत-से संत-महात्मा प्रखरबुद्धि के नहीं थे पर वे गुणवती थे। बहुत-से प्रतिभावान व्यक्ति (सुपरनारमल) दुराचारी और व्यभिचारी पाये जाते हैं। वे अपनी प्रतिभा का उपयोग संसार के कल्याण में न कर, उसके विनाश में करते हैं।[180]

इस सिलसिले में एक विचित्र स्थिति देखी जाती है। अमेरिका के मनोवैज्ञानिकों ने जेलखाने के कैदियों की बुद्धि का परीक्षण करके ८० प्रतिशत कैदियों को मन्दबुद्धि का पाया। स्पष्ट है कि बुद्धि की कमी चरित्रनिर्माण में कमी का कारण बन जाती है।[181]

किन्तु प्रखर बुद्धि का व्यक्ति आगे-पीछे सोचकर, मर्यादा या नियंत्रण के अन्दर रहकर, अपने सभी क्रिया-कलाप उच्च हेतु से निर्धारित कर सकता है अवांछनीय रास्ते को छोड़कर कल्याण का मार्ग अपना सकता है।

व्यक्तित्व का तीसरा प्रधान अंग उद्विग्नता है जिसे मनोविज्ञान ने जन्मजात गुण माना है। यह किसीमें कम किसीमें अधिक होता है कोई स्वभाव से ही प्रसन्न और कोई दुखी होता है। इसकी दृष्टि से भी मनोवैज्ञानिकों ने चार प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं—प्रफुल्ल उदास क्रोधी चंचल जिसका पहले ही वर्णन किया जा चुका है।[182]

सामाजिकता की दृष्टि से भी देखा जाय तो सामाजिक जीवन में सुयोग्य व्यवहार के लिए बुद्धि से काम लेना आवश्यक है। जिस मनुष्य की जैसी बुद्धि होती है वह अपने सामाजिक व्यवहार में वैसा ही सफल होता है।

भावनात्मक वासना के अनुसार युग ने मनुष्यों के दो भेद किये हैं जो मनुष्य की सभी क्रियाओं को प्रेरित करते हैं—अन्तर्मुख और बहिर्मुख।[183] इन दोनों प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों की उसने फिर चार चार प्रकृतियां बताई हैं—विचारात्मक अनुभवात्मक, भावनात्मक और अन्तःप्रेरणात्मक।

इनमें से जो बहिर्मुखी विचारात्मक प्रकृति के होते हैं वे नीतिवादी आचारवादी होते हैं। बहिर्मुखी अनुभवात्मक प्रकृति का व्यक्ति यह मानता है कि जिससे उसे सुख शान्ति सहारा मिले वही ठीक है। शेष सब अग्राह्य है। बहिर्मुखी भावनात्मक व्यक्ति 'परान्नं दुर्लभं लोके' 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत' एवं 'खाओ पियो मौज करो' का सिद्धान्त मानते हैं। बहिर्मुखी अन्तःप्रेरणात्मक प्रकृति वाले भावी संभावनाओं के लिए अपनी अन्तःप्रेरणा का सहारा लेते हैं। ऐसे लोग कहा करते हैं—"मेरा मन कहता

---

१८० मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं, पृ० २११

१८१ वही

१८२ सरल मनोविज्ञान पृ० ५८७

१८३ सामान्य मनोविज्ञान, पृ० २८६

है कि ऐसा होगा ही। यह प्रकृति स्त्रियों में विशेष रूप से पायी जाती है। पुरुषों में व्यापारी, ठेकेदार, सट्टेबाज और राजनीतिज्ञ इसी प्रकार के होते हैं।

अन्तर्मुखी विचारात्मक प्रकृतिवाले अपने विचारों के आधार पर मन ही मन मनन करते रहते हैं। दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं सिद्धान्तवादी राजनीतिज्ञ प्रायः इसी प्रकृति के होते हैं जो सदा चिन्तनशील, कुछ-न-कुछ भूले हुए, मैले कपड़े पहननेवाले और लोगों से कतराने वाले होते हैं।[१८४] अन्तर्मुखी अनुभवात्मक प्रकृतिवाले अपने मन की बात छिपानेवाले मौनी दूसरों से सहानुभूति दिखानेवाले, आत्मविज्ञापन से दूर और समन्वयात्मक प्रकृति के होते हैं। स्त्रियां प्रायः इसी स्वभाव की होने के कारण ईर्ष्यालु होती हैं। ईर्ष्या का विशिष्ट रूप स्त्री-जाति में पुरुषों के श्रेष्ठ सामाजिक पद के प्रति देखा जाता है।[१८५] अन्तर्मुखी आवेगात्मक प्रकृति का व्यक्ति प्राप्य या इष्ट वस्तु के साथ अपने आवेगों का संतुलन नहीं रख पाता। कलाकार, कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ आदि इसी श्रेणी में आते हैं और अपने मन की मस्ती के अनुसार संसार से अपना व्यवहार रखते हैं। अन्तर्मुखी प्रेरणात्मक प्रकृतिवाले सदा आदर्शवादी विचारों में मग्न रहते हैं। कल्पना के पुल बांधनेवाले सनकी व्यक्ति, भविष्यवक्ता, पैगम्बर, रहस्यमयी आध्यात्मिक प्रकृतिवाले, विचित्र रहस्यात्मक दृश्यों और वस्तुओं की कल्पना करने वाले, असाधारण प्रतिभाशील व्यक्ति, पथभ्रष्ट महापुरुष, सरल बुद्धिमान तथा लोकहितकारी व्यक्ति जो सदा उपेक्षित वस्तुओं का पक्ष लेकर चिल्लाने वाले होते हैं, इसी श्रेणी में आते हैं।[१८६]

वंशानुक्रम और वातावरण

आधुनिक मनोविज्ञान इस बात को मानता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी कुल-परम्परा से कुछ संस्कार ग्रहण करता है जो शारीरिक और मानसिक दोनों ही तरह के होते हैं। इस तरह मनुष्य का चरित्र कुल-संस्कारों और बाहरी संगति से मिलकर बनता है—चाहे वह अच्छा बने या बुरा। बाल्यावस्था में ही प्रत्येक मनुष्य की कुछ इच्छाएं होती हैं। उनकी पूर्ति होती है तो मनुष्य अच्छा बनता है अपूर्ण रहने से उनकी पूर्ति के लिए मनुष्य अपराध या अनीति की ओर जाता है। इसी तरह बालकाल से आगे तक मनुष्य का चरित्र-निर्माण होता चलता है जिसमें वंशानुक्रम और परिवेश दोनों का महत्वपूर्ण योग रहता है। व्यक्ति के स्थायी भावों यथा शील, सच्चाई आदि का सम्बन्ध वंशानुक्रम से है और अन्य क्रिया-प्रतिक्रियाओं का सम्बन्ध परिवेश से। यदि वह परिवेश आदर्श न हो तो बहुधा वह चरित्र के विनाश का कारण हो जाता है।[१८७] आदर्श परिवेश चरित्र निर्माण में सहायक भी होता है।

१८४ वही, पृ० २८७
१८५. मन के भेद पृ० ७१
१८६ सरल मनोविज्ञान पृ० १४५
१८७ बाल मनोविकास पृ० १२

वंशानुक्रम के अनुसार शरीर की बनावट भी व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में बड़ी सहायक होती है।[१८८] उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि फ्रांस के विख्यात वीर नैपोलियन के ह्रास का कारण उसकी शारीरिक विकृति ही थी। किन्तु, मनुष्य यदि सामाजिक जीव है तो उसके ऊपर परिवेश का ही एकमात्र प्रभाव मानना पड़ेगा यद्यपि वंशानुक्रम का भी प्रभाव तो पड़ता ही है। अच्छे परिवेश के बिना अच्छा आदमी बनना कठिन है।

भाषा पर भी परिवेश का ही प्रभाव प्रधान रूप से पड़ता है। ऐसा देखा भी गया है कि जंगल में रहकर आदमी का बच्चा भी पशुओं की भाषा सीख लेता है।

जीवविज्ञान के अनुसार भी 'हेरिडिटी' का प्रभाव चरित्र पर पड़ता है यद्यपि परिवेश भी उसमें अवश्य व्यक्त होता है। विकासवादी डारविन ने भी इसे स्वीकार किया है। यह उसी तरह की बात है जैसे कोई आदमी यदि नदी के किनारे बैठे तो उसपर जल और आकाश में उड़नेवाली चिड़िया का प्रभाव पड़ेगा ही जिसे थियोरी आफ नेचरल सेलेक्शन कहा जाता है।[१८९]

भारतीय कर्मवाद के अनुसार संसार के सभी प्राणी पिछले जन्म का संस्कार लेकर उत्पन्न होते हैं और अपने पिछले जन्म के कर्मानुसार सुख और दुख भोगते हैं। किन्तु साथ ही यह भी माना गया है कि मनुष्य यदि चाहे तो ज्ञान द्वारा अपने सभी द्वन्द्व भावों को समाप्तकर समबुद्धि या स्थितप्रज्ञ हो सकता है। तभी वह कर्म-बंधन से मुक्त हो जाता है। इस ज्ञान की प्राप्ति गुरु और सत्संगति से होती है। कुछ अच्छी प्रकृति के लोग भी कुसंगति में पड़कर दुर्जन हो जाते हैं।

पाश्चात्य सभ्यता कर्मवाद को नहीं मानती। वह कुल-परम्परा के प्रभाव को मानकर भी उसे सांस्कारिक नहीं बल्कि प्राणि-शास्त्रीय और शारीरिक मानती है। किन्तु, यह सिद्धान्त भ्रमात्मक सिद्ध हो चुका है। अ यथा इसे किस तरह समझा जाय या समझाया जाय कि महापुरुषों के पुत्र प्रायः निकम्मे होते हैं और एक ही पिता माता के कई पुत्र भिन्न-भिन्न स्वभाव और प्रकृति क होते हैं। अतः इसका कोई अमूर्त और अप्रत्यक्ष कारण अवश्य है। और, कर्मवाद क द्वारा ही इस प्रश्न का हल मिलना सम्भव है। पिछले जन्म के संस्कारों को मानकर ही हम अत्यन्त छोटी अवस्था में अपूर्व प्रतिभा का परिचय देनेवाले लोगों की प्रतिभा का रहस्य समझ सकते हैं।

परन्तु, यूरोपीय आचार्यों ने संगति क प्रभाव के सिद्धान्त को अवश्य स्वीकार किया है। इसलिए मनुष्य के स्वभाव को परखने के लिए उसकी प्रकृति और संगति पर विचार करना जरूरी है। सत्संगति से मनुष्य के भाव और विचार परिष्कृत होते हैं। कुसंगति से उनमें विकार आता है, बुद्धि अविवेकी हृदय कठोर और मन दुष्कर्मों की ओर प्रेरित होता है।[१९०]

---

१८८ हीनभाव पृ० १६

१८९. पटना रेडियो से प्रसारित वार्ता, २८-११ ५६

१९० मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ, पृ० १६

सम्बन्धित सामाजिक जीवन और चरित्र विकास

मानव सामाजिक जीव है और कला सामाजिक प्रक्रिया है, समाज-सम्बन्ध तो निश्चय रूप में है। प्रेरणा और स्फूर्ति की विभिन्न-स्वरूपता के कारण व्यक्तित्व-निरूपक वृत्तियों का संस्कार, विकास और प्रतिफलन होता है। रस-शास्त्री की दृष्टि में ये स्थायी भाव हैं। चूँकि मनुष्य का जीवन आकुल-उद्वेलित व्यथित-संकुचित है इसलिए इन विषमताओं और विवशताओं की संकुचित सीमाओं को अतिक्रमण करने की इच्छा हर आदमी में होती है। वैयक्तिक व्यक्तित्व उनके विरोध और इनके पारस्परिक और सामूहिक संघर्ष को निराकृत करने में है।

व्यक्तित्व का निर्धारण कुछ हो जाने मात्र अथवा उपयोग में नहीं बल्कि कुछ बनाने में है जिसमें कुछ मिटाना पड़ता है और कुछ संवारना भी। मानव और मानवता की विविध धारणाओं के आधार पर मानवीय मानव-कल्याणवादी और मानववादी पात्रों का उपन्यासों में स्वरूप-निर्माण होता है और इस तरह विविध मानव चरित्रों को उपस्थितकर उनका सजीव चित्रणकर लेखक कृति की पुष्टि होती है। अतः औपन्यासिक पात्रों की पात्रता का आधार है अपने वृत्त और सीमा में सबलता सजीवता विकासोन्मुख गति और कुछ बनने और बनाने की खास प्रक्रिया।[१११] औपन्यासिक पात्रों की पात्रता के क्रमविकास के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि मूल वृत्तियों को सामाजिक पारिवारिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के कारण संकोच, विकास विस्तार और सीमा मिलती है एवं भौतिक समस्याओं के घेरे के भीतर चक्कर काटनेवाला व्यक्तित्व विभिन्न रूप धारणकर सम्मुख उपस्थित होता है। जीवनक्रम में वृत्तियों का विकास सीमित रूप से होता है। इसीलिए उपन्यासों में और खासकर एक ही उपन्यासकार की रचनाओं में विभिन्न रूपान्तरों के साथ मौलिक अन्तर की सम्भावनाएं कम हो जाती हैं।[११२]

शील और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान की भाषा में शील को द्रव्य[११३] कहा जाता है। ईमानदारी, शिल्प नैपुण्य अध्यवसाय क्रोध आदि व्यक्तित्व के अंशों को शीलगुण कहते हैं। शीलगुण थोड़ा-बहुत स्थायी गुण है जो कई प्रवृत्तियों को मिलाकर बनता है।

इस प्रश्न पर बड़ा विवाद है कि शीलगुण स्थायी है या नहीं। इस बारे में हम यही कह सकते हैं कि शीलगुण ऐसे स्थायी नहीं होते कि उनमें विकास-क्षमता हो ही नहीं। पर इस अर्थ में वे स्थायी भी कहे जा सकते हैं कि अनुभव और ज्ञान में वृद्धि के साथ ही मनुष्य के आचरणों में सामंजस्य और दृढ़ता आ जाती है।

शील-गुण एक दूसरे से स्वतंत्र हैं या आपस में सम्बद्ध ? इस बारे में भी यही

---

१११ आलोचना (उपन्यास विशेषांक), पृ० १४६

११२. वही

११३ बाल मनोविज्ञान, पृ० १६६

कहा जा सकता है कि अनुभव और ज्ञानवृद्धि के साथ कुछ शील-गुणों का संगठित हो जाना अनिवार्य है[११४]—बाकी नहीं भी हो सकते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का शील निरूपण सिद्धान्त

आचार्य शुक्ल[११५] की राय में शील हृदय की वह स्थायी स्थिति है जो सदाचार की प्रेरणा आपसे आप करती है। इस शील दशा की प्राप्ति भक्ति द्वारा होती है। काव्य के क्षेत्र में यह मनोविकास अपने क्षणिक रूप में ही न दिखाई देकर जीवन व्यापी रूप में दिखाई पड़ते हैं। स्थायित्व की इसी प्रतिष्ठा द्वारा शीलनिरूपण और पात्रों का चरित्र चित्रण होता है, जिस क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर हिन्दी का और कोई पुराना कवि नहीं आ सका। चारण-काल की प्रबन्ध रचनाओं में चरित्र-चित्रण को प्रधानता नहीं है। उसी तरह जायसी आदि मुसलमान कवियों ने सिर्फ प्रेमपथ का निर्देश किया है। इन आख्यानों में हम मनोविकारों के इतने भिन्न-भिन्न स्वरूप नहीं पाते जिन्हें किसी व्यक्ति या समुदाय विशेष का लक्षण कहा जा सके।

शील के लिए सात्विक हृदय चाहिए। शीलनिरूपण के लिए किसी पात्र में शीलगुणों को अभिव्यक्त करना आवश्यक है। धीर, गम्भीर और सुशील अन्तःकरण की यह बड़ी विशेषता होती है कि वह दूसरे में बुरे भाव का जल्द आरोप नहीं करे।[११६] काव्य में चरित नायक में सौन्दर्य के साथ शील की प्रतिष्ठा कर दी गई। शील को सौन्दर्य का पूरक मान लिया गया और इसी आधार पर धीरोदात्त धीरललित धीरशांत और धीरोद्धत नायकों एवं अपरिमित सौन्दर्य तथा अलौकिक शील से सम्पन्न नायिकाओं की सृष्टि की गई।[११७]

सात्विक, राजस और तामस—इन तीन प्रकृतियों के आधार पर गोस्वामीजी के चरित्रों का यदि विभाजन किया जाय तो हम उन्हें आदर्श और सामान्य में बाँट सकते हैं। आदर्श चित्रण में हम शुरू से अन्त तक सात्विक या तामस वृत्ति का निर्वाह पायेंगे। राजस को सामान्य चित्रण के भीतर लिया जा सकता है। इस दृष्टि से सीता राम, भरत हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के अन्तर्गत एवं दशरथ लक्ष्मण, विभीषण सुग्रीव कैकेयी आदि सामान्य के अन्तर्गत आते हैं। आदर्श चरित्रों से प्रकृति भेद सूचक अनेकरूपता नहीं मिलती। सीता, राम भरत हनुमान सात्विक आदर्श और रावण तामस आदर्श का उदाहरण है। साथ ही गोस्वामीजी ने समुदाय विशेष के शील और प्रवृत्ति के चित्रण पर भी ध्यान दिया है।[११८]

---

११४ वही पृ० ९००
११५. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १८०
११६ वही
११७ समीक्षा शास्त्र पृ० १८६
११८. गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ११८

आचार्य जगदीश पाण्डेय का वर्गीकरण

क्रियाशीलता की दृष्टि से हम शील को निम्नलिखित श्रेणियों में बांट सकते हैं— (क) उदग्रशील—इस श्रेणी का व्यक्ति द्वन्द्वों के बीच स्वयं अपनी राह बनाने वाला आक्रामक विरोध-संघर्ष, अपनी ज्वाला से स्वयं जलनेवाला और कृति-फल भोक्ता होता है, ऐसा व्यक्ति मृत्युपर्यन्त अपनी सहिष्णुता, सांसारिक उत्साह, स्वाभिमान और तपस्या से श्रोता पाठक या द्रष्टा के हृदय पर विराट आश्चर्य का अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। दुखान्त नाटकों की वीर नायकों की गरिमा इसी में है। (ख) छत्र या छाया से शील पड़नेवाले चरित्रों में 'आत्मविस्फोट' का अवसर होने देता है, रामायण के लक्ष्मण हैं, सुग्रीव हैं और बहुत अंश तक हनुमान भी हैं।[199] (ग) काष्ठशील—हथियार तेज करने के लिए शिलापट्टिका की जैसे जरूरत होती है, वैसे राम के लिए प्रतिनायक रावण शिलापट्टिका का काम करता है।[200] (घ) छिपिका रूप शील[201]—वह है जो पात्र के अपने कर्मों वचनों से निर्मित न होकर अन्य पात्रों की श्रद्धा के आधार पर अपनी आकृति प्राप्त करता है, यथा जूलियस सीजर, ईर्ष्यालु केसियस एण्टनी तथा और जनता की प्रतिक्रियाओं से बनता है। उसका अपना योगदान केवल कपट—औदास्य का है।

उत्तम शीलरचना भूगोल की सीमाबद्ध आकृति नहीं वरन इतिहास की नूतन कृति प्रतीत होती है जिसमें शाश्वत से तात्विक विच्छेद नहीं होता।

शील की सिद्धान्त शृंखला को हम शील-निदान कह सकते हैं।[202]

(क) सजीवता—शील की सजीवता प्रभावशालिता में है प्रभावोत्पादकता में नहीं। सजीव शील में मोह, उपादान या आसक्ति और घृणा की विभिन्नता पाई जायगी।

(ख) लक्षण शील किसी वर्ग मत वाद धर्म जाति या वासना की किसी ऐकान्तिक विशेषता द्वारा निर्धारित होते हैं। इस शील से युक्त पात्र वहां है जिस पद पर है, जिस वासना के अधिकार से विवश है जिस वर्ग में जिस परिस्थिति और जिस मतवाद में है उसी के कारण उसमें वह शील है।[203]

आज के संघर्षशील युग की देन है शील[204] जहां पारिवारिक सम्बन्ध भी हार्दिक न होकर व्यावहारिक हो गये हैं।

स्वलक्षण शील की अभिव्यक्ति में एक संयम है। उसका गुण पौरुषात्मक है। वह दूसरों का छिद्रान्वेषण न कर उसे आत्मसात करना चाहेगा। ऐसे शील की अभि-

---

१९९. शील निरूपण पृ० ४
२०० वही पृ० ५
२०१ वही पृ० ६
२०२ वही, पृ० ७
२०३ वही पृ० १२
२०४ वही पृ० १३

वादिता भी नैसर्गिक होती है।[205]

(घ) मूलवन्मूल[206] शील व्यष्टि में समष्टि निवेदन का स्थापित नियम है।

(ङ) पिठरपाक विकास—पिठरपाक दर्शन का शब्द है—कच्चे घड़े को आग में पकाकर उसके गुण को परिवर्तित करने का सिद्धान्त।

वनवास की आग में राम के चरित्र का कच्चा घड़ा रख दिया जाता है। वनवास में उन्हें सीता-वियोग, लक्ष्मण की मूर्च्छा और रावण से युद्ध करना पड़ता है। यदि वे वनवास के समय अपने कर्तव्य से मुकर जाते तो शील की दृष्टि से वे अन्य राम दीख पड़ते।[207]

(च) निसर्ग प्रवाह—जहाँ मानवीय प्रवृत्ति या निवृत्ति सामान्य नैसर्गिकता का अतिक्रमण कर जाय वहाँ निसर्ग प्रवाह का बोध पाता है। शरत बाबू की किरनमाला और सावित्री जो विधवा हैं—प्रेम का मानसिक सुख तो लेती चलती हैं किन्तु संभोग की कामुकता से कभी आकुल नहीं होतीं। वेश्या राजकुमारी की अद्वितीय निष्ठा में भी कहीं प्रवाह दमन या आत्मप्रवंचना नहीं है।[208]

(छ) संश्लिष्ट विविधताशील[209]—बेन जानसन के नाटकों में यदि पति एक बार पत्नी के सतीत्व के प्रति सशंक हो जाता है तो प्रत्येक परिस्थिति और दृश्य में भय और शंका से भरता रहता है।

(ज) विकल्प-विशिष्टशील[210]—इस शील की अभिव्यक्ति नहीं होती व्यंजित होती है। विकल्प विशिष्ट शीलों का व्यापार वाणी (स्वागत या संभाषण) तक सीमित रहता है।

(झ) शील रूपप्रधान[211] न होकर जहाँ संस्कार प्रधान होता है वहाँ वासनाओं के अतिरिक्त संस्कार भी व्यक्तित्व के सूक्ष्म निर्णायक हो जाते हैं। संस्कारप्रधान शील स्मृतिप्रधान शील है। स्मृति में ही अमरत्व, मनुष्य का शाश्वत व्यक्तित्व है। अशिक्षित ग्रामीण जहाँ अट्टहास करता है, वहाँ सुसंस्कृत व्यक्ति सिर्फ थोड़ा-सा मुस्कराकर अपने को अभिव्यक्त कर लेता है। 'जहाँ कठिन कंकरीली भूमि पर व्यक्तित्व का पोषण होता है वहाँ यदि शील में कुछ कठिनाई आ जाय तो यह उस मिट्टी में साहचर्य की भुन-भुन से बसी आनेवाली स्मृति, या अपने ही जीवनकाल के बीते कालों की स्मृति से निर्मित होगी।[212]

---

२०५. वही, पृ० १९
२०६ " "
२०७. शील निरूपण, पृ० ३५
२०८. वही, पृ० १९
२०९. वही, पृ० ११
२१०. वही पृ० [illegible]
२११ वही, पृ० १४
२१२. वही, पृ० १६

(ग) मन भेद अथवा कथित अन्तर्द्वन्द्वशील का सुन्दर नमूना अन्तर्द्वन्द्व के द्वन्द्व या संचित दशा में ही पाया जा सकता है। द्वन्द्व एक ही साथ भय और आशा की स्थिति है जिसमें बराबर तनाव बना रहता है। प्रेक्षक यह निश्चय नहीं कर पाता कि *सामने खड़ी परिस्थिति में व्यक्ति कौन-सा मार्ग अपनाएगा। अनिश्चय की यह* स्थिति तृष्णा की स्थिति है जो कभी जीर्ण होती ही नहीं।[२१३]

चरित्र के सम्बन्ध में प्रयोगवादी धारणा

फ्रांस के प्रयोगवादी कथाकार श्री एलेन रिस्सेल ने अपने निबन्ध 'रिफ्लेक्शन्स आन सम आस्पेक्ट्स आफ ट्रेडिशनल नावेल' में उपन्यासों के सम्बन्ध में कुछ खास विचार प्रस्तुत किये हैं। उनका कहना है कि 'पात्र' शब्द का अर्थ महज 'वह' नहीं होता जो अनाम और पारदर्शी हो। उसका एक नाम होना चाहिए, बल्कि सम्भव हो तो दो नाम होने चाहिएं। उसकी व्यक्तिगत विशेषताएं ही उसके कार्यों की जननी होनी चाहिए जिसके आधार पर पाठक उसे घृणा या प्यार करेगा।

रिस्सेल का यह भी कहना है कि पात्र को अविस्मरणीय होना चाहिए और *व्यापक मानवता के कारण उसका चरित्र जीवनमय भी होना चाहिए।* विस्मय रस की सृष्टि के लिए लेखक कभी-कभी किसी मनाव बच्चे ऐय्याश या सनकी को भी उपस्थित कर सकता है। लेकिन इसपर उसे बहुत दूर नहीं ले जाया जा सकता क्योंकि अन्ततः यह तो अधःपतन का ही पथ है।[२१४]

इसलिए, आज भी उपन्यास-लेखन का एकमात्र लक्ष्य यही हो सकता है कि साहित्य के इतिहास ने व्यक्ति-चित्रों का जो संग्रहालय इकट्ठा कर रखा है, उसमें कुछ आधुनिक मूर्तियों को और जोड़ दिया जाय।[२१५]

चरित्र-विकास और मनोविज्ञान

चरित्र-विकास की अनेक प्रणालियां अब तक स्वीकार की जा चुकी हैं और आगे भी बहुत-सी नवीन प्रणालियों का उदय हो सकता है।

पात्रों के सामान्यतः अन्तरंग और बहिरंग—दो तरह के रूप चित्रित किये जाते हैं। अन्तरंग में मन में उठनेवाले भाव कार्य का कारण और उद्देश्य भावों का संघर्ष और उसके कारण तथा परिस्थितियां मन की भीतरी दशा और उसके बाह्य प्रकटीकरण का रूप कथनी और करनी का अन्तर, स्वप्नों के कारण और उनका विश्लेषण आदि अनेक बातें हो सकती हैं जिन्हें पाठक जान या समझ लिया चाहता है।

बहिरंग चित्रण का सम्बन्ध पात्रों की आकृति वेशभूषा अवस्था नाम क्रिया, अनुभव आदि से होता है।

---

२१३ वही पृ० ४१

२१४ ज्ञानोदय, जनवरी '६१ पृ० ११६

अन्तरंग चित्रण के लिए मनोविज्ञान का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। मनोविज्ञान की नवीन खोजों का प्रभाव चरित्र-चित्रण के शिल्प पर भी पड़ा है। हिन्दी उपन्यासों में इस आधार पर किये गये चरित्रांकन की पद्धतियों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। उनमें से कुछ को निम्नलिखित शीर्षक दिये जा सकते हैं :—

(१) अन्तःप्रेरणाओं का चित्रण (मोटिवेशन)
(२) अन्तर्द्वन्द्व (इन्टरनल कनफ्लिक्ट)
(३) अन्तर्विवाद (इन्टीरियर मोनोलाग)
(४) मनोविश्लेषण (साइको एनेलिसिस)
(५) मुक्त आसंग (फ्री एसोसियेशन)
(६) व्यवस्था विश्लेषण (एनेलिसिस ऐजिस्ट्रेंस)
(७) स्वप्न विश्लेषण (ड्रीम एनेलिसिस)
(८) मिथ्याभार प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण—(हेल्यूसिनेशन एनेलिसिस)
(९) सम्मोह विश्लेषण (हिप्नो ऐनेलिसिस)
(१०) विश्लेषण (ऐनेलिसिस आफ रिफ्लक्शन)
(११) पूर्व वृत्तात्मक प्रणाली (केस हिस्ट्री मथड)
(१२) शब्द सहस्मृति परीक्षा (वर्ड एसोसियेशन टेस्ट)[२१६]

२१६. साहित्य सन्देश, नवम्बर १९६०, पृ० १९८

अध्याय ३

चरित्रों का क्रम-विकास : प्रेमचन्द युग

प्रारम्भिक युग

कथा-सरित्सागर की भूमिका में श्री पेंजर ने सोमदेव के इस ग्रन्थ की प्रशंसा में लिखा है—"भारतवर्ष कथा-साहित्य की जन्मभूमि है। इस ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद सी० एच० टानी ने किया है। भूमिका में आगे कहा गया है—"ऋग्वेदकालीन कथाएं, रक्तपान करनेवाले वैतालों की कहानियां, सुन्दर काव्यमयी प्रेम-कहानियां और देवता मनुष्य एवं असुरों के युद्ध की कहानियां भी इस संग्रह में हैं।[1]

इस तरह वेद उपनिषद् पुराण जातक, रामायण महाभारत आदि में अगणित कथाएं तथा बहुविविध चरित्र भरे पड़े हैं। महाभारत तो मानवता का महान महाकाव्यात्मक उपन्यास ही है जहां द्रौपदी, कुन्ती कर्ण जैसे आश्चर्यजनक और रहस्यात्मक चरित्र भरे पड़े हैं। ऐसे चरित्र आज के उपन्यासों में भी चित्रित नहीं हो सके हैं। किन्तु इन ग्रन्थों में चरित्र-विकास को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। संवाद-सूक्तों का सहारा अवश्य लिया गया है जो भारतीय साहित्य के अनेक अंगों के उद्गम स्थल हैं। संवाद-सूक्तों के अलावा सामान्य स्तुतिपरक सूक्तों में भी भिन्न-भिन्न देवताओं के विषय में अनेक मनोरंजक और शिक्षाप्रद आख्यान प्राप्त होते हैं।[2] उदाहरण के लिए एक कहानी है 'जबर-ज्वाला' जिसका आधार है ऋग्वेद १–२४१०, ऐतरेय ब्राह्मण ७-१ नीतिमंजरी पृष्ठ २० २१। इस कथानक में उल्लिखित इक्ष्वाकु-नरेश राजा हरिश्चन्द्र वे ही हैं जिनके जीवन की अंतिम झांकी विश्वनाथ की अमरपुरी में दिखलाई पड़ी थी। आज भी पुण्यसलिला भागीरथी उनकी सत्यवादिता की मनोरम कहानी भावुक जनों के कानों में सुनाती हुई प्रवाहित होती है।[3] एक दूसरी कहानी है विक्रमोर्वशी। पुरूरवा और उर्वशी की यह कहानी वेद तथा पुराणों में खूब प्रसिद्ध है। कालिदास ने इसी कहानी को नाटकीय रूप प्रदान किया और इसे नितान्त प्रेममय रूप में चित्रित किया। यद्यपि वैदिक काल में इसका रूप कुछ दूसरा ही था। वैदिक कहानी में त्रेता अग्नि

---

१ कथा सरित्सागर, भूमिका, पृ० २१

२ वैदिक कहानियां, पृ० ६

३ वही, पृ० ७

४ वही, पृ० ८

की स्थापना करनेवाले पुरूरवा का परोपकारी और मानव-कल्याणकारी रूप चित्रित है। पुरूरवा सूर्य है और उर्वशी उषा जिनका परस्पर संयोग क्षणिक काल के लिए होता है। वियुक्त उषा की खोज में सूर्य दिन भर उसके पीछे घूमा करता है। इस रहस्यमय आख्यान को कविवर कालिदास ने प्रणय का रूप प्रदान किया।[5] इन प्रारंभिक कथाओं के पात्र प्राय: ऋषि मुनि ब्रह्मचारी, राजा तथा पुरोहित के रूप में ही मिलते हैं।[6] किन्तु इन पात्रों में व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव तथा विस्तृत परिचय भी नहीं रहता था। आगे चलकर वेदव्यास वाल्मीकि जैसे महान कवियों ने वेद उपनिषद, निरुक्त संहिता ब्राह्मण ग्रन्थ आदि के आधार पर महाभारत और रामायण आदि ग्रंथों की रचना की। इन्हीं ग्रन्थों में सर्वप्रथम जीवित पात्रों वास्तविक पात्रों की सृष्टि हुई जिन्हें मात्र वर्ग चरित्र या व्यक्ति-चरित्र नहीं माना जा सकता। इनमें धर्म और दर्शन गौण होकर पात्रों को प्रमुखता मिली। प्रमुख पात्रों का परिचय देने के लिए अलग-अलग सर्ग और पर्व बने जैसे शकुन्तलोपाख्यान रामोपाख्यान, सावित्री उपाख्यान नलोपोपाख्यान कर्णपर्व, द्रोणपर्व, शल्यपर्व आदि। इन चरित्र-ग्रंथों से प्रेरणा लेकर ही तुलसी ने भी रामचरितमानस की रचना की। आधुनिक कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा—"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।"

पुराणों में रामायण और महाभारत की कथाओं का व्याख्यात्मक परिचय पहले संगृहीत था। पुराणों के पांच लक्षणों में वंशानुरूप चरित्र-वर्णन को भी स्थान प्राप्त है। जैसे ब्रह्मपुराण में कृष्णचरित्र पद्मपुराण के भूमिखंड में ध्रुव चरित आदि। इन महान चरित्रों को केवल औपन्यासिक कल्पना ही नहीं माना जा सकता। तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार इन चरित्रों में बहुत कुछ सत्य का आभास किया जा सकता है।

पुराणों के चरित्र-विकास अत्यन्त नहीं हो पाये हैं। कथाओं और अन्तरकथाओं का आश्चर्यजनक मेल मिलाकर पात्रों की वंशावली और पारिवारिक संबंधों को जोड़ा गया जो कथाकार के उर्वर मस्तिष्क के परिचायक हैं। किन्तु, रामायण और महाभारत में पात्रों का बाह्य और आन्तरिक चरित्र-विकास संतुलित रूप में उपस्थित किया गया है। वेदों और उपनिषदों की शैली का अनुगमनकर पुराणों में भी पुत्र, गुरु-पुत्रादि की पूजाविधि नवग्रह मंत्र दुर्गापूजा विधि बलराम प्रशंसा सहस्रनाम विधि स्त्रीधर्म आदि[7] रूपकों को शामिल किया गया जिससे चरित्र-विकास दब गया। कालक्रम से इन पौराणिक कथाओं ने लघुकथाओं का रूप ले लिया, जिन्हें संस्कृत के कथा ग्रंथों में विकसित रूप प्रदानकर सजीव और मनोरंजक बनाया गया। इन कथाओं में मनुष्य की

---

५. वैदिक कहानियां, पृ० ११
६. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास पृ० ८
७. हि० क० की शि० का वि०, पृ० ५
८. हिन्दुत्व, पृ० १६२
९. वही, १८९

तरह बोलने और समझने वाले पशु-पक्षियों पेड़-पौधों का प्रयोग चरित्र-विकास की व्यापक दृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कथा सरित्सागर में तो राजतंत्र और षड्यंत्र जादू-टोना छल-कपट, हत्या और युद्ध बैताल पिशाच यक्ष, प्रेत से लेकर पशु-पक्षी भिखमंगे साधु, पियक्कड़, कुमारी वेश्या विट और कुट्टनी—इन सभी की कहानियां एकत्र हो गयी हैं।[१०] विदेशी साहित्य में 'इसोप्स फैबुल्स' में भी ऐसे ही पात्रों को स्थान मिला है। इन भारतीय कथाओं की खास खूबी यह भी है कि मानव-संवेदना से इनका कहीं भी विलगाव नहीं हुआ है यद्यपि मानव-जीवन की सम्यक अभिव्यक्ति इनके द्वारा नहीं हो सकी है। यह उनका उद्देश्य भी नहीं था जैसे कि पंचतन्त्र के रचयिता ने शुरू में ही यह कहा भी है कि इस ग्रंथ का उद्देश्य राजकुमारों को शिक्षा देना एवं उन्हें पटु बनाना है।[११] संस्कृत साहित्य के अन्य गद्यकारों में दंडी सुबंधु बाणभट्ट हर्ष आदि आते हैं जिनकी रचनाओं को उपन्यास माना जा सकता है यद्यपि इन पर भी पौराणिक चरित्र काव्यों[१२] का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है तथा चरित्र-विकास की शैली का भी प्रभाव है। सातवीं शताब्दी के लगभग दंडी ने दशकुमारचरित की रचना की। सुबन्धु ने वासवदत्ता की रचना की जिसकी कथा बृहत्कथा से ली गयी। इससे स्पष्ट है कि सुबंधु ने वासवदत्ता को लोककथा का साहित्यिक रूप दिया जिसकी शैली में पर्याप्त कथा भाव है।[१३]

बाणभट्ट की कादम्बरी और हर्षचरित में औपन्यासिक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कादम्बरी की कथा की बीज-बिन्दु लोककथा (बृहत्कथा) से ही प्राप्त है।[१४]

इन रचनाओं का व्यापक प्रभाव हिन्दी के आदिकालीन अपभ्रंश काव्यों पर पड़ा और रासो काव्य एवं चरित्र काव्यों की एक पुष्ट परम्परा हिन्दी में उसीसे प्रारंभ होती है। लेकिन चरित्र विकास की दृष्टि से हिन्दी के ये चरित्र-काव्य संस्कृत महाकाव्यों के जितने निकट हैं, उतने संस्कृत कथा-ग्रंथों के निकट नहीं। इन्होंने कादंबरी आदि की परंपरा को ग्रहण नहीं कर पुराण-शैली को ही विकसित किया जिसका साहित्यिक रूप कालिदास के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य रघुवंश और कुमारसंभव भारवि के किरातार्जुनीय एवं माघ के शिशुपाल वध आदि में प्राप्त होता है। प्रधान रूप से ये काव्य ऐतिहासिक ही होते थे जिनमें कल्पना का सहारा बहुत कम लिया जाता था। इसीलिए इनमें विविध चरित्रों का चित्र पूर्णरूपेण नहीं मिलता जिन्हें मानव-चरित्र कहा जाता है और न आज के परिवर्तित जीवन-मूल्यों की रक्षा ही इन महाकाव्यों, चरित्र-काव्यों और कथा कहानियों द्वारा संभव है। इनका सत्य उसी युग के लिए उपयुक्त है। इसीलिए वे आज

१० कथा सरित्सागर, पृ० २९
११ कुछ विचार, पृ० २९
१२. भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा पृ० ४८
१३ कथा सरित्सागर, भूमिका, पृ० ७
१४ वही, पृ० ६

ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में ही पढ़े जाते हैं।

चरित तत्सम शब्द है। इसका पुराना तद्भव रूप 'चरित' बहुत समय से प्रसिद्ध था। बोलचाल की भाषा में नये सिरे से चरित बोला जाने लगा था और पद्य लिखते समय भी कवि लोग इसका व्यवहार कर देते थे।[15]

प्राकृत अपभ्रंश साहित्य में चरितकथा-काव्यों की भरमार है। विद्यापति की कीर्तिलता उस युग के गुणानुवादमूलक चरितकाव्यों में सबसे अधिक प्रामाणिक है। स्वयंभू पुष्पदंत, धनपाल आदि प्रतिभाशाली जैन कवियों ने भी ऐसे ही चरितकाव्यों का सृजन किया।[16] हिन्दी साहित्य के आदिकाल में यह परम्परा खूब आगे बढ़ी। राजाओं के गुणानुवाद के अलावा भगवान का गुणकथन भी कविचंद जैसे कवियों ने 'दशावतार चरित' जैसे पदों द्वारा किया। कीर्तिलता के कवि विद्यापति ने भी पाठकों को पुराण का प्रलोभन दिया—"पुरुष कहाणी हौं कहौं जसु पत्थावै पुन्नु।"[17]

इन चरितकाव्यों की शैली करीब-करीब एक ही है। कुल मिलाकर इन्हें ऐतिहासिक रोमांस की संज्ञा दी जा सकती है। बीसलदेव रासो आल्हा ऊदल की यशोगाथाओं ढोला मारूरा दूहा हीर रांझा, सिंहासन बत्तीसी आदि रचनाओं में काल्पनिक प्रेमचरित्रों और ऐतिहासिक-सामाजिक चरित्रों के आधार पर रोमांचक जीवन-चरित्र गढ़े गये। पर इनमें चरित्र चित्रण को वैसा स्थान नहीं दिया गया है, वीरोल्लास ही प्रधान है।[18]

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल या मध्यकाल में चरित्रप्रधान प्रेमाख्यान काव्यों की रचना हुई जिनमें चरित्र-वर्णन को प्रमुखता मिली। किन्तु दोनों प्रकार के आख्यानों में मनोविकारों के इतने भिन्न-भिन्न प्रकृतिस्थ स्वरूप नहीं दिखाई पड़ते जिन्हें हम किसी व्यक्ति या समुदाय का या समुदायविशेष का स्वरूप कह सकें।[19] इसी काल में जायसी का पद्मावत मंझन की मधुमालती, उसमान की चित्रावली नूर मुहम्मद की इन्द्रावती और दुखहरन की पुष्पावती आदि चरितकाव्यों की रचना हुई। शैली और चरित्रकथन की दृष्टि से तुलसी का रामचरितमानस केशव की रामचन्द्रिका आदि ग्रंथों के द्वारा इसी परंपरा का विकास हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चरित्र-विकास (शील-निरूपण) के क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास को पहला प्रयोगकर्त्ता कवि माना है। [गोस्वामीजी को छोड़कर हिन्दी का और कोई पुराना कवि इस क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ता[20]]

हिन्दी के प्रारंभिक ब्रजभाषा गद्य वार्ता-साहित्य को हिन्दी की प्रारंभिक कहानियां कहा जा सकता है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता'

---

१५. हिन्दी साहित्य का आदिकाल पृ० २१
१६ वही
१७ आदिकाल, पृ० १२
१८. त्रिवेणी पृ० १५१
१९. त्रिवेणी पृ० १५२
२० वही

आदि ग्रंथों में अधिक से अधिक कथातत्व के दर्शन होते हैं। इनमें एक छोटी-सी कथा वस्तु, एक घटना और इन दोनों का आरोह अवरोह तथा इनके विकास की एकसूत्रता भी है। लेकिन फिर भी इन कथाओं का ध्येय यही है कि वैष्णव धर्म सर्वोत्कृष्ट है और ठाकुरजी परम महान हैं।[21] उदाहरण के लिए 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में "श्री गुसाईंजी के सेवक दो प्रेत उद्धरे तिनकी वार्ता" है। कथा के अन्त में कहा गया है— 'भगवत्सेवा के आगे सब धर्म तुच्छ हैं। यासुं अधिको कोई धर्म नहीं है।
सो वे दोनों प्रेत श्री गुसाईंजी की कृपा तें भगवल्लीला में गये ।। वार्ता संपूर्ण वैष्णव ।।'[22]
११६।

वेद से लेकर वार्ता-साहित्य की प्रमुखता रही है जिसे कभी विलास, गाथा चरित, रासो कहानी, कथा आदि में अभिव्यक्त किया गया। इनमें नायक पात्र चरित्र हीरो-हीरोइन को प्रधान अंग माना गया और कथा गौण रही। रामायण-महाभारत के बाद चरित्र-विकास (कैरेक्टर पेन्टिंग) को प्रधानता मिली।

आधुनिक युग यानी १७-१८वीं शताब्दी के प्रारम्भ होने पर यह परम्परा समाप्त होती दीख पड़ती है। तब 'कथा' शब्द बहुत व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होने लगा।[23]

वैदिक काल में कथाएं देवताओं की स्तुति और यज्ञ कर्मों के बीच छिपी रहीं। उनका ध्येय भी विशुद्ध धार्मिक था। उपनिषद काल में कथाएं आत्मज्ञान और आध्यात्म चर्चा से भरी रहीं। पौराणिक काल तक आते-आते उनमें जीवन की सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्ति होने लगी। धर्म समाज राजनीति का समावेश होने लगा। इस प्रभाव का उदाहरण सम्पूर्ण परवर्ती संस्कृत कथा साहित्य में मिलता है। पाली साहित्य में कथाएं अपेक्षाकृत छोटी होकर धर्मप्रचार में उपयुक्त हुईं। प्राकृत और अपभ्रंश में कथाएं जीवन के लौकिक और यथार्थ धरातल पर आयीं। इसी समय प्रेमाख्यान और मनोरंजक कथाओं की सृष्टि हुई। कथा के इस विकास का चरम उत्कर्ष चारणकाल और भाषाकाल में हुआ एवं मध्ययुग के प्रेमाख्यानों और वार्ताओं में उनका पर्यवसान हुआ।[24] हिन्दी साहित्य का प्रारंभ १८०० ई० के लगभग होता है। भारतेन्दु से पूर्व का १८०० से १८५८ ई० कथा-साहित्य मुख्यतः पौराणिक आख्यानों पर आधारित है। इस समय के तीन महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं—श्री लल्लूलाल का 'प्रेमसागर', सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' और इंशाअल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी'।[25]

पहले दोनों ग्रंथ पौराणिक आधार पर रचित हैं। पर 'रानी केतकी की कहानी' मौलिक रचना मानी[26] जाती है जिसमें प्रायः सभी पात्र उच्च मध्यवर्गीय हैं। डा०

---

२१ हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० ३२
२२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृ० २१०
२३ आदिकाल पृ० ५९
२४ भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा, पृ० ४१
२५ हि० क० की शि० का वि०, पृ० ३५
२६ " " पृ० ३७

हजारीप्रसाद द्विवेदी 'इसे मुस्लिम परंपरा की अंतिम कहानी' मानते हैं।[२७]

इसमें रीतिकालीन नायक-नायिकाओं की तरह चरित्र चित्रण किया गया है जिनका व्यक्तित्व दबा-दबाया-सा प्रतीत होता है। रानी केतकी और कुंवर उदैभान का प्रेम, फिर दोनों राज्यों में लड़ाई, जादू-टोने का करिश्मा अन्त में दोनों की शादी।[२८] लेखक इंशाअल्ला खां ने इस लंबी कथा को 'कहानी' कहा है। इसी कारण हिन्दी के कुछ आलोचकों ने इसे हिन्दी की पहली कहानी माना है। लेकिन यह पूर्णत अवसानिक धारणा है। फिर भी इतना निश्चित है कि हमारे आलोच्यकाल में कथा की दिशा में इसका मूल्य सबसे अधिक है।[२९] इसके बाद १८२७ तक गतिरोध रहा। 'भारतेन्दु से पूर्व तक का हिन्दी कथासाहित्य उपन्यास और कहानी किसी भी क्षेत्र में नहीं आ सकता, क्योंकि न इसमें उपन्यास-कहानी की शिल्पविधि थी और न कोई भाव विशेष।'[३०]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस विकास को ही प्रारंभिक विकास माना है।[११] परन्तु, श्री शिवदानसिंह इस विकास को कोई महत्त्व नहीं देते। उनका कहना है कि इस कहानी को प्रारंभ-बिन्दु बनाकर हिन्दी कहानी के उत्थान और प्रत्यावर्तन की बातें व्यर्थ हैं खासकर तब जबकि पूरी १९वीं सदी में केवल एक-दो कहानियां लिखी गईं—एक 'राजा भोज का सपना', दूसरी, 'अद्भुत अपूर्व सपना'। इसी समय में अनेक उपन्यास लिखे गये, लेकिन आधुनिक कहानियों का प्रारंभ २०वीं शताब्दी में ही आकर हुआ।[१२]

भारतेन्दु-युग

इसी समय में 'हमीर-हठ' 'राजसिंह', 'महामय' 'सुलोचना' आदि कई आख्यान प्राप्त होते हैं। किन्तु, वर्तमान कहानियों के मुकाबले में इनका मूल्य बहुत कम है। इन कहानियों में पात्रों की स्थिति और चारित्रिक विकास की व्याख्या अधिक और घटनाओं के क्रमिक विकास का वर्णन कम मिलता है। एक कहानी 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' इसका उदाहरण है।[१३] चरित्र-विकास की दृष्टि से १९वीं शताब्दी अर्थात् प्रारंभिक काल की कहानियां काफी पीछे थीं।[१४] इंशाअल्ला खां के उच्चवर्गीय पात्रों में विश्वसनीयता और मांसलता का नितान्त अभाव है। लल्लूलाल के 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पच्चीसी' के पात्र पौराणिक हैं। उनमें संवाद नाटकीय प्रभाव से शून्य और घटनाओं

२७ हिन्दी साहित्य
२८ हि० क० की शि० वि० का वि०, पृ० ३७
२९. वही, पृ० ३८
३० वही, पृ० ३९
११ हिन्दी पुस्तक साहित्य पृ० ३४
१२. हिन्दी गद्य साहित्य, पृ० ८०
१३ हि० क० का वि० अ०, पृ० ८९
१४ हि० क० का वि० अ०, पृ० ८९

की प्रधानता है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के पात्रों में भी चारित्रिक विशेषताओं के दर्शन नहीं होते ।[15]

भारतेन्दु युग में मुख्यतः दो प्रकार के पात्रों का सृजन हुआ—चमत्कारिक और सामयिक। इस युग में चरित्रों का किंचितमात्र ही विकास हुआ। तोता-मैना गुल बकावली छबीली भटियारिन हातिमताई आदि में आये चरित्र कल्पित और विचित्र भी हैं। यह युग कथा-विकास से अधिक समस्यामूलक नाटकों की रचना के लिए प्रसिद्ध है। और यह युग बहुतेरे सुधारवादी आंदोलनों और समस्याओं का युग था भी। अंग्रेजों के प्रभाव से नई सभ्यता और शिक्षा का विकास हो रहा था। १८८८ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद से देश में राष्ट्रीय जागरण की लहर फैल रही थी और इसी सिलसिले में विदेशी साहित्य से भी हिन्दी का संबंध बढ़ा। इस युग में विशेष रूप से नाटक और उपन्यास रचे गये कहानियां कम यद्यपि आधुनिक उपन्यासों का विकास यूरोप में हुआ न कि भारत में ।[16] युग-जीवन की जरूरतों से प्रेरित यूरोप के सांस्कृतिक जागरण काल में साहित्य और कला के क्षेत्र की क्रियाशीलता इतनी वैविध्यपूर्ण और समृद्ध न होती तो संभव है कि उपन्यास-कला को पूर्ण प्रौढ़ता और उत्कर्ष प्राप्त होने में और भी अधिक समय लगता। वहां भी तो उसमें कई शताब्दियां लग ही गयी ।[17]

परन्तु, फिर भी हिन्दी उपन्यासों का विकास केवल पाश्चात्य उपन्यासों की प्रेरणा से ही नहीं हुआ। हिन्दी से पहले बंगला में उपन्यासों की रचना होने लगी थी। उन्हें हिन्दी में अनुवादित किया गया और स्वतंत्र रचनाओं की भी सृष्टि हुई। प्रेमचन्द के आगमन तक यही सिलसिला जारी रहा। इस बीच आचार, धर्मनीति और समाज सुधार की भावनाओं से ओतप्रोत उपदेशात्मक एवं मनोरंजन के लिए तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास लिखे जाते रहे। इसलिए ऐसे उपन्यास साहित्य की स्थायी सम्पदा नहीं बन सके। मुंशी प्रेमचन्द ने ही सर्वप्रथम हिन्दी उपन्यासों को प्रौढ़ता और गरिमा प्रदान की जो बंकिम रवीन्द्र और शरत ने बंगाली उपन्यासों को या महान पाश्चात्य उपन्यासकारों ने यूरोपीय उपन्यासों को प्रदान की। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की परंपरा का प्रारंभ प्रेमचन्द से ही होता है ।[18]

रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति आलोचक लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा-गुरु' को हिन्दी का प्रथम और नये ढंग का उपन्यास मानते हैं। इसका प्रकाशन १८८२ ई० में हुआ था। पर डा० माताप्रसाद गुप्त ने १८७१ में प्रकाशित 'मनोहर उपन्यास' को प्रथम मौलिक रचना माना है। इसके संपादक सदानन्द मिश्र एवं शंभुनाथ मिश्र हैं और लेखक का नाम अज्ञात है ।[19] जीवन के अंतिम दिनों में भारतेन्दुजी का

---

१५ वही
१६ हिन्दी गद्य साहित्य पृ० ४८
१७ वही
१८. वही, पृ० ५८
१९. हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ३४

ध्यान उपन्यासों की ओर गया था। उन्होंने कई आख्यायिकाएं भी लिखना प्रारंभ किया था जिन्हें वे पूरा नहीं कर पाये। फिर भी उनके उत्साह दिलाने पर कई लेखकों ने कितने ही ग्रंथों का अनुवाद किया था। श्री गोस्वामी राधाचरणजी ने 'दीप निर्वाण' तथा सरोजिनी एवं बाबू गदाधरसिंह ने कादंबरी तथा दुर्गेशनंदिनी का अनुवाद किया था।[४०] मधुमती स्वर्णलता चन्द्रप्रभा, पूर्णप्रकाश राधारानी, सौन्दर्यमयी आदि भी इसी प्रकार अनूदित हुईं।[४१] इसके पश्चात नूतन चरित्र नूतन ब्रह्मचारी सौ अजान एक सुजान, निस्सहाय हिन्दू विधवा विपत्ति, चपला सवंभलता कामिनी नये बाबू, सास पतोहू बड़ा भाई, धूर्त रसिकलाल आदि कई उपन्यास लिखे गये। इन सामाजिक ऐतिहासिक उपन्यासों के अलावा बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा चन्द्रकान्ता एवं चन्द्रकान्ता सन्तति नामक प्रसिद्ध ऐयारी और तिलिस्मी उपन्यासों की रचना हुई। इन ग्रंथों की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि १६१५ तक हिन्दी में ऐसे ही उपन्यासों की बाढ़ रही। देवकीप्रसाद शर्मा जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी किशोरीलाल गोस्वामी हरेकृष्ण जौहर और चन्द्रशेखर पाठक आदि ने ऐयारी उपन्यासों का तांता बांध दिया। गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा जंगबहादुरसिंह, शेरसिंह शिवनारायण त्रिवेदी आदि कई अन्य लेखकों ने जासूसी के अतिरिक्त रोमांचकारी कथानकों की खानापूरी की।[४२]

इस साहित्यिक नवजागरण का आभास हिन्दी के प्रथम उपन्यास परीक्षा-गुरु से ही मिल जाता है। इसके प्रकाशन के पूर्व हिन्दी भाषाभाषी जनता संस्कृत अरबी फारसी के रोमानी विस्मयजनक आदर्शमूलक और बनावटी साहस छल-छद्म से भरे दास्तानों से ही अपना मनोरंजन कर रही थी।[४३]

पर अंग्रेजी साहित्य से परिचित होने के बाद हिन्दी के लेखक नये युग की आकांक्षाओं और सामाजिक परिस्थितियों को समग्र रूप में व्यक्त करने के लिए काव्य की शास्त्रीय रूढ़ियों से मुक्त एक नये साहित्य रूप की ओर झुके। इस प्रयत्न में पहली सफलता परीक्षा-गुरु के लेखक श्रीनिवास दास को मिली। यह लाला श्रीनिवास दास (१८०८ ४४) भारतेन्दुमंडल के एक प्रतिभाशाली सदस्य थे।

लाला श्रीनिवासदास[४४]

फिर भी आधुनिक दृष्टि से 'परीक्षा-गुरु' की संविधानिक योजना में अनेक दोष दिखाई पड़ते हैं। लंबे-लंबे संवाद और दृष्टान्त, मूलकथा से बिल्कुल स्वतंत्र विवरण और उपदेशों से कथाप्रवाह में बाधा हुई है। पर यथार्थ जीवन के आधार पर एक सोद्देश्य और प्रभावशील कथा का नियोजन उन्हें नाटकीय ढंग से विकसित करना और

४० आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० १७८
४१ वही
४२ हिन्दी गद्य साहित्य, पृ० ६६
४३ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १४
४४ परीक्षा-गुरु

चरित्रों में मानवीयता के कारण वे हमारे जाने-पहचाने जीते-जागते मनुष्य के रूप में पाठकों के सामने आते हैं।[४५] एक नये मध्यमवर्गीय व्यापारी की स्थिति का चित्रण करते हुए इस उपन्यास में नई और पुरानी पीढ़ी का वैषम्य भी सांकेतिक रूप में दिखाया गया है। इसका नायक मदनमोहन नवशिक्षित मध्यवर्ग की कमजोरियों का मूर्तिमान रूप है और पुराने मध्यमवर्ग की संस्कृति में पले उसके पिता का रूप दूसरा ही था।[४६] लेखक ने लिखा है—"मदनमोहन का पिता पुरानी चाल का आदमी था। वह लोगों को झूठी तड़क-भड़क दिखाने के लिए फिजूलखर्ची नहीं करता था। काम-धंधे के कारण हाकिमों और रईसों से मिलने का उसे समय नहीं मिल सकता था। क्योंकि पुरानी रूढ़ि के अनुसार देशोन्नति का भार केवल राजपुरुषों पर समझा जाता था।"[४७] इस उपन्यास का एक पात्र ब्रजकिशोर कहता है—"हिन्दुस्तान की भूमि में उन्नति के सब साधन हैं फिर भी अकर्मण्यता के कारण देशवासी उन्नति नहीं कर पाते हैं।"

इस तरह परीक्षा-गुरु का चित्रपट काफी चौड़ा है और उसपर तत्कालीन नागरिक समाज की सभी प्रमुख प्रवृत्तियां अंकित हैं। केवल औपन्यासिकता की दृष्टि से भी यह अपने ढंग की अकेली कृति है।[४८]

लेखक ने पुस्तक की भूमिका में ही तत्कालीन कथाओं के चरित्र विकास की संक्षिप्त चर्चा करते हुए अपने पात्रों के बारे में कहा है मदनमोहन ब्रजकिशोर चुन्नीलाल, शिंभूदयाल कौन हैं इनका स्वभाव कैसा है हालत क्या है सब भेद मौके पर खुलता चला जायगा।"[४९] तात्पर्य यह कि परीक्षा-गुरु के पात्रों को अपेक्षित स्वतंत्रता मिली वे मात्र लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं थे। लेखक ने ब्रजकिशोर के मन का विश्लेषण करते हुए लिखा "इस समय मुझसे मदनमोहन की कुछ सहायता न हो सकी तो मैंने संसार में जन्म लेकर क्या किया।"[५०]

नूतन ब्रह्मचारी और सौ अजान एक सुजान—श्री बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित दो नैतिक उपन्यास हैं। इनमें प्रबन्ध-कल्पना का टकसालीपन या उपन्यासकला की विशेषताएं तो नहीं मिलतीं किन्तु वे सुन्दर शिक्षाओं से भरे हुए हैं। इनमें उपमा आदि अलंकारों से लदी हुई भाषा का बाहुल्य है और प्राकृतिक वर्णन भरे पड़े हैं। पात्रों का चरित्र चित्रण अच्छा हुआ है। कहा जाता है कि भट्टजी के पात्र वैसे ही हैं जैसे उन्होंने वास्तविक जीवन में पाये थे। 'सौ अजान एक सुजान' के चन्दू और पंचानन के चरित्र में भट्टजी के चरित्र की झलक दिखाई पड़ती है।[५१]

---

४५. आलोचना (११), पृ० १२६
४६ वही
४७ परीक्षा-गुरु
४८. आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ६८
४९. परीक्षा-गुरु (निवेदन)
५० वही पृ० १५०
५१ आलोचना (११) पृ० ७४

इस समय संस्कृत कथा-आख्यायिकाओं के ढंग पर भी उपन्यास लिखने के कुछ प्रयोग हुए। इसके उदाहरण हैं ठा० जगमोहनसिंह का श्यामा स्वप्न (१८८८ ई०) और पंडित अंबिकादत्त व्यास का आश्चर्य वृत्तान्त (१८९३ ई०)। प्रथम कृति भावप्रधान, अलंकृत, चित्रात्मक वर्णनों से युक्त और सरस शृंगारी कविताओं से भरी है। दूसरी कृति प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की उच्चता की भावनाओं, विस्मयकारी विवरण और सामाजिक धारणाओं से युक्त है। इसका एक पात्र मंगेश है जो पुरातत्व का ज्ञाता है और विलायती रंग में रंगे हिन्दू धर्म-विमुख, प्रत्येक भारतीय वस्तु के उपहासकर्ता बंगाली महाशय की भर्त्सना भी करता है। यह बंगाली पात्र अपने डरपोक स्वभाव के कारण पाठकों के हास्य-विनोद का भी साधन है।[52]

किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२)

लंबी अवधि तक हिन्दी की सेवा करने वाले श्री किशोरीलाल गोस्वामी के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है— 'इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र वासनाओं के रूप-रंग चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा-बहुत चरित्र-चित्रण भी पाया जाता है।'[53] संवत १९५५ में इन्होंने 'उपन्यास' मासिकपत्र का प्रकाशन किया और ६५ छोटे-बड़े उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये। अतः साहित्य की दृष्टि से इन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए।[54] इनके अधिकांश उपन्यासों के नाम प्रायः नायिका और कभी-कभी नायक के नाम पर रखे गये हैं।[55] इन्होंने एक भी दुखान्त सामाजिक उपन्यास नहीं लिखा। कई दुखान्त बंगला उपन्यासों का अनुवाद करते समय इन्होंने उन्हें सुखान्त बना डाला। इन्हें यह सह्य नहीं कि धर्मनिष्ठ और सच्चरित्र पात्र के जीवन का अन्त दुखमय हो।[56]

इनकी रचनाओं में जीवन और समाज के कतिपय यथार्थ चित्र संवादों की पहले के उपन्यासकारों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक योजना एवं हृदय और रूप वर्णन की कला निखरे हुए रूप में प्रस्तुत की गयी है। इनके अधिकतर पात्र एक-से हैं यद्यपि उनकी कुछ अपनी वैयक्तिक विशेषताएं अवश्य परिलक्षित होती हैं।[57] पात्रानुसार भाषा रखने के फेर में इनके ऐतिहासिक उपन्यासों की भाषा कृत्रिम और विचित्र-सी हो गई है।[58] पात्रों के विषय में अपना मन्तव्य प्रकाशित करने और उपदेश देने की

५२ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ७०
५३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४९९
५४ वही पृ० ५००
५५ चपला त्रिवेणी लवंगलता तारा, हीराबाई, लीलावती आदि
५६ आलोचना (१३), पृ० ७४
५७ वही
५८ वही, पृ० ७६

उतावली के कारण इनके उपन्यासों में प्रायः कथा-प्रवाह रुक-रुक जाता है।[59] इनके अधिकांश पात्र मध्यम वर्गीय हैं और उनका चित्रण रोमांटिक प्रेम-पद्धति पर हुआ है। इस तरह उनके पात्रों पर रीतिकाल के नायक-नायिका भेद की गहरी छाप है।[60]

देवकीनंदन खत्री

देवकीनंदन खत्री ने १८८१ ई० में हिन्दी तिलिस्मी और ऐयारी उपन्यासों की परंपरा चलाई। मनोरम मायाजाल की सृष्टि और सीधी-सादी भाषा के कारण इनकी रचनाओं का बड़ा प्रचार हुआ और कहा जाता है कि इन तिलिस्मों की सैर करने के लिए ही बहुत-से लोगों ने हिन्दी भाषा सीखी। इस दृष्टि से इन रचनाओं का महत्व उचित ही माना जाता है।[61]

इन रचनाओं का कथानक प्रायः एक-सा होता है। किसी सुन्दरी राजकुमारी पर मोहित कोई प्रेमी राजकुमार, उसके अतिचतुर ऐयार जिनके पास दीवार लाँघने की कमन्द बेहोश करने की बटी होश में लाने के लिए 'लखलखा' नाम की दिव्योपधि बराबर रहती है। फिर उस प्रेमी राजकुमार का दुष्ट प्रतिस्पर्धी राजकुमारी को तिलिस्म में कैद करता है। अन्त में जादू का वह हैरत अंगेज तिलिस्म टूटता है और दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। पर इन रचनाओं में न तो बाह्य जीवन की वास्तविकताओं और न तो मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं का ही प्रदर्शन हो सका है।[62] खत्री जी इन रचनाओं के लिए फारसी के तिलिस्म 'होशरुबा' के ऋणी हैं। पर अपनी स्वतंत्र कल्पना के आधार पर उन्होंने अपनी रचनाओं को मौलिक बना डाला है।[63] चन्द्रकान्ता का आकार बहुत-कुछ अर्धपौराणिक वीर काव्य के नायकों के समान है। उसके ऐयार उसी तरह अपने खोये हुए स्वामियों और साथियों का पता लगाते हैं[64] जिस तरह ऊदल ने आल्हा को बंदीगृह से मुक्त कराया था आल्हा-ऊदल ने मिलकर अपने बेटे भतीजे इन्दल को अपनी वीरता और कौशल से प्राप्त किया।

भावना और शैली की दृष्टि से तिलिस्मी उपन्यास चारण काव्यों के अनुगामी जान पड़ते हैं। किन्तु लोकप्रिय होने के बावजूद उनमें मानवी भावनाओं और मनोविकारों के लिए विशेष स्थान नहीं था।[65] इनमें सिर्फ घटना-वैचित्र्य की सृष्टि कर उत्सुकता की तृप्ति का एकमात्र उद्देश्य था। मानवता के मानसिक उत्थान में ऐसी

---

५९. वही
६० वही पृ० ११६
६१ आलोचना (११), पृ० ७०
६२ आलोचना (१३) पृ० ७१
६३ वही, पृ० ७२
६४ वही
६५. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २७६
६६ वही, पृ० २७७

रचनाएं कोई योगदान नहीं प्रदान करतीं। इसीलिए साहित्य में इनका कोई स्थान नहीं है।[६७]

वास्तविक जीवन में तो सज्जन से भी सज्जन पुरुष सदैव सुखी नहीं रहते। उन पर भी भाग्य का कोप बराबर प्रकट होता रहता है। पर श्री खत्री और गोस्वामी ने वृत्तान्त के प्रभी पाठकों से अन्तिम पृष्ठ फाड़ डालने को कह दिया है। यह मानव चरित्र के प्रति अन्याय है और लेखक जीवन के सत्य से दूर हट गये हैं।[६८] यह पात्रों के चरित्र का विश्लेषणकर उनके मानसिक पक्ष पर प्रकाश नहीं डालता और न मानव स्वभाव गत त्रुटियां दिखाकर अपनी रचना को अधिक स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न ही करता है।[६९] किन्तु, खत्री जी का ऐयार भूतनाथ कोई साधारण पात्र नहीं है। पतनशील सामंत वाद के अट्टाईस पात्रों की घटनाओं के घटाटोप से मनु की तरह यह पात्र उभरकर पाठकों के समक्ष आता है और लेखक को भी अपनी स्वतंत्र आत्मकथा लिखने पर बाध्य कर देता है। यह भूतनाथ मध्यवर्ग का प्रतीक है। दुष्टों और महात्माओं के सपाट चरित्रों के बीच यही एक आदमी है जो वह बन जाता है, जो वह बनना नहीं चाहता। उस समय का यह पहला पात्र है जिसके अंदर द्वन्द्व है, कचोट है।[७०]

गोपालराम गहमरी (१८८४ ई०)

गहमरी जासूसी उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं जो पूर्ण रूप से इंगलैंड और यूरोप के देन हैं। यहां भी चरित्र-विकास की दृष्टि से इन जासूसी उपन्यासों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। किन्तु गहमरीजी के अधिक पात्र सामाजिक हैं और उन्होंने अधिक तर सामाजिक उपन्यासों की ही रचना की। इन पात्रों का थोड़ा चरित्र-विकास भी दिखाया गया है जो सिर्फ घटनाओं पर बल देने वाले हैं।[७१]

अनुवाद

इसी काल में बंगला, मराठी, गुजराती अंग्रेजी आदि से कई ग्रंथों के अनुवाद हुए। भारतेन्दु ने मराठी से पूर्ण प्रकाश चन्द्रप्रभा का अनुवाद किया। अमला वृत्तान्त-माला के नाम से 'फ्रूट्स आफ आनेस्टी' का अनुवाद हुआ। इसके पहले ठग वृत्तान्तमाला (१८८९ ई०) और पुलिस वृत्तान्तमाला (१८९० ई०) में प्रकाशित हो चुके थे। ठग और मिर्जा मिट्ठू खां पुलिस-कान्सटेबल स्वयं अपनी-अपनी कथाएं कहकर पुण्य-पाप के उदाहरण पाठकों के सामने रखते हैं। इन रचनाओं को उपन्यास न कहकर यदि कथा-

---

६७ हिन्दी उपन्यास, पृ० ७२

६८ आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १८६

६९ वही, पृ० १८७

७० आलोचना (१४) पृ० २७

७१ हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० ११

वार्ता कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा।[72]

निष्कर्ष

इस युग में सभी प्रकार के पात्रों का विकास हुआ, (१) ऐतिहासिक चरित्र—गोस्वामी के औपन्यासिक चरित्र, (२) सामाजिक पात्र—परिक्षागुरु आदि के पात्र (३) हेतु प्रवेश पात्र—श्री खत्री आदि के पात्र हैं। प्रथम वर्ग के पात्र अंग्रेज लेखक स्काट की शैली पर लिखे गये। दूसरी श्रेणी के पात्र उपदेश देने या उपदेश ग्रहण करने के लिए विकसित किये गये। उनका आदर्श व्यक्तिगत चारित्रिक सुधार है। ऐयारी तिलिस्मी जासूसी उपन्यासों के पात्र कानन डायल और रेनाल्ड्स आदि के ढंग पर निर्मित किये गये। कुल मिलाकर इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना-वैचित्र्य रहा रससंचार भावाभिभूति या चरित्र-चित्रण नहीं।[73] इस युग में अधिकांशतः मध्यमवर्गीय एवं उच्चवर्गीय पात्रों का विकास हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी और लाला श्रीनिवासदास के अधिकांश पात्र मध्यमवर्गीय हैं।[74] श्री खत्री के अधिकांश पात्र उच्चवर्गीय हैं। इन हिन्दी उपन्यासों पर १९वीं सदी के उत्तरार्ध में हुए विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक आंदोलनों का किसी-न किसी रूप में प्रभाव परिलक्षित होता है।[75] चरित्र-विकास के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों के पात्र गतिशील हैं, पर उनका न तो विकास हो पाया है और न उनका पूरा रूप सामने आ पाया है।[76] लेखकों के कठिन आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण पात्रों के चरित्र-चित्रण में बाधा हुई है। इसीलिए प्रेमचन्द तक आते-आते चरित्रों के विकास में ऐसा रूपात्मक परिवर्तन हो गया कि पहले के कथा चरित्रों से इन नये चरित्रों का संबंध जोड़ने में लोग संकोच करने लगे। मानव चरित्रों के सूक्ष्म उद्घाटन और सामाजिक वास्तविकता के चित्रण और मार्मिक चित्रण के द्वारा प्रेमचन्द ने हिन्दी के कथा चरित्रों में क्रांति उपस्थित कर दी।[77] उनकी कृतियों में निम्न और मध्यम श्रेणी के गृहस्थों के जीवन का बहुत सच्चा स्वरूप मिलता है।[78]

प्रेमचन्द से पूर्व यानी बीसवीं सदी के प्रारंभ में विभिन्न लेखकों द्वारा बहुत-से ऐतिहासिक सामाजिक और प्रेमाख्यानक उपन्यास लिखे गये थे। पर उनमें श्री व्रजनन्दन सहाय का ऐतिहासिक उपन्यास 'लाल चीन' एवं मिश्र बंधुओं का 'वीरमणि' उपन्यास कला आदि की दृष्टि से अकिंचित महत्त्व के हैं। बाकी रचनाओं का स्तर

७२ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४८७
७३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४८८
७४ आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १८१
७५. आलोचना (उपन्यास अंक) पृ० ७८
७६ वही पृ० ८०
७७ आलोचना (११)
७८ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५१७

बहुत साधारण है। फिर १९१८ में प्रेमचन्द का 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ जिसने हिन्दी उपन्यासों को आधुनिक स्तर पर ला दिया।[79] इस रचना के प्रकाशन से पहले दर्जनों लेखकों द्वारा लिखी गयी रचनाएं बीते युग की वस्तु-सी लगती हैं जिनका आज कोई साहित्यिक मूल्य नहीं रहा है।[80] इन कृतियों के चरित्रों में अश्लीलता का प्रभाव और नायिका भेद वाले चरित्र-चित्रण की प्रधानता है।[81]

ऐयारी-तिलस्मी उपन्यासों में वास्तविक जीवन से अलग सिर्फ हैरत अंगेज पात्रों की सृष्टि हुई।[82] जासूसी उपन्यास तो अंग्रेजी उपन्यासों के आधार पर लिखे ही गये।[83] इसलिए इन उपन्यासों के पात्र अवास्तविक हैं।

१९०३ से १९२२ ई० तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने युग के कथा-साहित्य को हर दृष्टि से प्रभावित किया। इस युग में सैकड़ों लेखक और बहुसंख्यक रचनाएं प्रकाश में आयीं।[84] मासिक सरस्वती का नाम कहानी की शिल्प-विधि के आरम्भ और विकास के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल[85] के अनुसार द्विवेदी-युग में कहानी के विकास में मुख्यतः सात प्रकार के प्रयत्न हुए। पहला है शेक्सपीयर के नाटकों की इतिवृत्ति पर आधारित रचनाओं की सृष्टि। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'टेम्पेस्ट' के आधार पर इन्दुमती की रचना की जिसे डा० श्रीकृष्णलाल हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानते हैं।[86] पर राय कृष्णदास जी बंगमहिला की 'दुलाई वाली' को सर्वप्रथम मौलिक कहानी मानते हैं।[87] इसके विपरीत डा० रामरतन भटनागर इन्दु में प्रकाशित श्री जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' नामक कहानी को प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं।[88] सरस्वती के प्रारंभिक वर्षों में लिखी विभिन्न कहानियों में चरित्र-विकास को एक निश्चित दिशा मिली। चरित्र-विकास की दृष्टि से भी रामचन्द्र शुक्ल कृत 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रथम मौलिक कहानी है जिसमें कहानी के सभी तत्त्व प्राप्त होते हैं।[89]

द्विवेदी-युग में गुलेरी, प्रेमचन्द और प्रसाद का अभ्युदय हिन्दी की पचास वर्षों

---

७९. हिन्दी गद्य साहित्य पृ० २४
८० वही
८१ वही पृ० ३२
८२ आ० हि० क० शि० और मनो०, पृ० ७१
८३ "रेनाल्ड्स का कुछ प्रभाव पं० किशोरीलाल गोस्वामी आदि पर कभी-कभी लक्षित होता है।" आलोचना (११) पृ० ७८
८४ महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ० १२६
८५. हि० क० का शि० का वि०, पृ० ४७
८६. आ० हि० सा० का वि० पृ० ३२२
८७ इक्कीस कहानियाँ, पृ० ३०
८८ हिन्दी कहानी पृ० ८४
८९. हि० क० की शि० का वि० पृ० ४७

से की जानेवाली अनन्य साधना के फलस्वरूप हुआ। वस्तुतः हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि की निश्चित प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हुई और समष्टि रूप से एक नये युग के विकास का द्वार खुला।[90] इसी आधार पर हम हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि के विकास और उद्गम युग का समुचित अध्ययन प्रस्तुत कर सकते हैं।[91]

विकास क्रम की दृष्टि से प्रेमचन्द और प्रसाद के पहले श्री चन्द्रधर शर्मा का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उनकी कहानी 'उसने कहा था' को महाकथा या 'एपिक' की संज्ञा दी है।[92] उनकी दूसरी कहानियाँ 'सुखमय जीवन' के जयदेवशरण एवं 'बुद्धू का कांटा' के रघुनाथ के चरित्र पूर्ण वैयक्तिक होते हुए भी पूर्ण सामाजिक हो गये हैं।[93] किन्तु, जयदेवशरण के चरित्र में वह गम्भीरता नहीं है जो रघुनाथ में है। इस दृष्टि से रघुनाथ और भगवती के चरित्रों की सृष्टि अधिक गम्भीरता और मानवीय धरातल से हुई है।[94] उनकी कहानी 'उसने कहा था' के नायक लहनासिंह के चरित्र के मुख्यतः चार विकास हैं।[95] इस कहानी में चरित्र-विकास, चरित्र-विश्लेषण और व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा का निर्वाह पूर्ण कलात्मक ढंग से हुआ है।[96] इस कहानी की मनोवैज्ञानिक परिणति होती है जो उस युग में एक गौरव की बात थी।[97] यथार्थ का निर्वाह करते हुए भी गुलेरीजी ने आदर्श को पूर्णतया निबाहा है।[98] इसीलिए डा० नगेन्द्र ने लिखा है— 'नीति और सदाचार के साथ ही वे सेक्स के नाम पर बिदकनेवाले आदमियों में से नहीं थे।[99] कहानी के आरम्भिक अंश में बाल-मनोविज्ञान का चित्रण भी मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही हुआ है।[100] प्रौढ़ अवस्था में लहना और सूबेदारनी के बीच का प्रेम कर्तव्य का रूप ग्रहण कर लेता है जिसकी चरम परिणति आत्मोत्सर्ग में होती है।[101] असफल प्रेम की निराशा उसके मन को और भी कोमल सरल तथा संवेदनशील बना देती है।[102] तब यह प्रश्न अवश्य उठता है कि लहनासिंह का आत्मबलिदान एक निराश व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रिया तो नहीं है

---

९० वही पृ ६३
९१ आ० हि० सा० का इतिहास, पृ० १२६
९२ आधुनिक साहित्य, पृ० ११८
९३ गुलेरीजी की अमर कहानियाँ, पृ० ८४
९४ हि० क० की शि० वि० का वि० पृ० ८४
९५ आ० हि० सा० का वि० पृ० ११२
९६ हि० क० की शि० वि० का वि०, पृ० ८६
९७ गुलेरी जी की अमर कहानियाँ पृ० ५१
९८. प्रतिनिधि, पृ० १८
९९. विचार और अनुभूति, पृ० ४७
१०० गुलेरीजी की अमर कहानियाँ, पृ० ११
१०१ हिन्दी कहानी पृ० ११८
१०२ आलोचना अक्तूबर १९५८, पृ० १४८

पर यह सम्भव नहीं है। लेखक ने इसे उल्लेख भी किया है कि सुबेदारनी ने उससे अपने पति और पुत्र की प्राण रक्षा की भीख माँगी थी जिससे इस प्रश्न का पूर्ण निराकरण हो जाता है।[103]

डा० नगेन्द्र ने गुलेरीजी के पात्रों को जिन्दादिल और विनोदी माना है।[104]

जयशंकर प्रसाद

यों तो प्रसादजी ने सभी पात्रों का चित्रण अन्तर्द्वन्द्व और घटनाओं के घात प्रतिघात के आधार पर मनोवैज्ञानिक प्रणाली में किया गया है। पर उन्हें नारी-पात्रों के चित्रांकन में अधिक सफलता मिली है। उनके आदर्शपूर्ण पात्र व्यष्टि को समष्टि के लिए बलिदान करनेवाले हैं जिन्हें हम सतोगुणी पात्र भी कह सकते हैं।[105] उनके चरित्रों को नायिका-भेद की प्रणाली के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। 'बिसाती' आदि कहानियाँ परकीया नायिका के प्रेम की झाँकी दिखाती हैं। 'समुद्र संतरण' नामक कहानी मुग्धा नायिका के प्रेम की झाँकी दिखाती है।[106] नारी चरित्र और उनका विश्लेषण ही मुख्य रूप से प्रसाद की कला का केन्द्र बिन्दु है। ये नारियाँ अपने अप्रतिम रूप आकर्षण और अनुपम व्यक्तित्व द्वारा कहानियों का सूत्र-संचालन करती हुई अपने अन्तर में घात प्रतिघात अन्तर्द्वन्द्व विद्रोह और उत्सर्ग के तत्त्व छिपाये रहती हैं।[107] पुरुष पात्र प्रायः नारी-पात्रों के व्यक्तित्व की परिधि में घूमते हुए पाये जाते हैं और इसीलिए उनका चित्रण अपेक्षाकृत गौण और संक्षिप्त हो गया है। किन्तु, उनके नारी-पात्र पुरुष को पतन की ओर ले जानेवाले नहीं हैं वरन् पुरुषों को अपने कर्तव्य का ज्ञान कराते हुए उनमें जीवन फूँकनेवाले हैं।[108]

डा० लक्ष्मीनारायणलाल ने[109] उनके नारी पात्रों को दो पक्षों में बाँटा है— करुण और भावुक। 'ममता' कहानी की मुख्य स्त्री-पात्र ममता करुणा की प्रतिमूर्ति ही है। वह विधवा है और बाद में उसके एकमात्र सहायक पिता की हत्या हो जाती है। भिक्षुणी होकर, महल छोड़ वह झोंपड़ी में शरण लेती है और अन्त में अपूर्व करुणा से भर जाती है।[110] फिर भी इनके नारी-पात्र स्थान-स्थान पर कर्मप्रधान हैं। वे कभी प्रतिहिंसा के लिए क्रियाशील हुई हैं कहीं 'चूड़ीवाली' की अपूर्व साधिका बनकर अपनी

---

१०३ प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० ९०
१०४ विचार और अनुभूति पृ० ५०
१०५ जयशंकर प्रसाद पृ० ६७८
१०६ प्रसाद की कहानियाँ पृ०, १८७
१०७ शिल्प विधि पृ० ७७
१०८ वही, पृ० १८९
१०९ वही पृ० २०४
११० प्रसाद की कहानियाँ, पृ० २०२

तपस्या से पुरुष को पाती है।[१११] स्त्री चरित्रों की अवतारणा में उन्होंने विभिन्न देश काल की स्त्रियों को लिया है और सर्वत्र स्त्रीत्व को एक ही धरातल से देखा है, समन्वयवादी दृष्टि से देखा है जो भारतीय स्त्री के सौन्दर्य का ही एक रूप है।[११२]

उनके नारी चरित्रों के विकास में बौद्ध-दर्शन का भी काफी प्रभाव पड़ा है और इसीलिए उनमें प्रेम दया क्षमा करुणा और उत्सर्ग की भावना की प्रचुर मात्रा में मिलकर उन्हें भावना प्रतिमा बना डाला है।[११३] आकाशदीप की चम्पा पुरस्कार की 'मधूलिका' शालवती' की शालवती आदि लोक-मंगल की भावना से अभिभूत प्रेम की अमर देवियां भी हैं।[११४]

पुरुष चरित्र

उनके पुरुष चरित्रों में भी प्रेम त्याग भावुकता आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता है उनका मनोभावन। 'चूड़ी' का प्रेमी भावुक 'बेला' का उपासक मोसी 'बेला' का रामेश्वर 'चम्पा' का बुद्धगुप्त और 'शालवती' का अमन ऐसे ही अद्भुत और अनोखे चरित्र हैं।[११५] चारित्रिक दृढ़ता संवेदनशीलता और उनके व्यक्तित्व में निहित विद्रोह, दर्प और करुणा की एक अन्तर्मुखी भावधारा आदि उनकी चारित्रिक विशेषताएं हैं। काल्पनिक चरित्रों में भी प्रसादजी ने मानवीय संवेदना और शील की इस कलात्मक ढंग से प्रतिष्ठा की है कि वे बरबस हमें आकर्षित कर लेते हैं। इस आकर्षण का रहस्य यह है कि प्रसादजी अपने इन पात्रों में किसी न किसी भांति एक भावमंडल उपस्थित कर देते हैं जिसमें करुणा की एक अदृश्य रेखा खिंची हुई रहती है।[११६]

प्रारम्भिक कहानियों के स्त्री-पुरुष चरित्रों में दो वर्ग हैं। काल्पनिक रहस्यवादी और प्रतीकात्मक कहानियों के पात्र अधिक छायावादी ढंग के हो जाने से उनकी व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है। लेकिन यथार्थ और कल्पना के संयोग से रचे गये चरित्रों में व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के अतिरिक्त उनके मनोभावों के भी उदाहरण मिलते हैं।[११७] इस तरह इन प्रारम्भिक कहानियों में चरित्र अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व[११८] में नहीं मिलते—वे सर्वथा एकांगी हैं।[११९]

---

१११ शिल्पविधि पृ० २०५
११२ आंधी
११३ प्रसाद की कहानियां, पृ० ८८
११४ वही, पृ० १६५
११५ शिल्पविधि, पृ० १६१
११६ प्रसाद की कहानियां, पृ० १८७
११७ शिल्पविधि, पृ० १६२
११८ प्रसाद की कहानियां पृ० १८८
११९. शिल्पविधि पृ० २०६

बाद की कहानियों में स्त्री-पुरुष चरित्रों के निर्माण में समान रूप से जोर दिया गया।[१२०]

चरित्र-चित्रण के लिए प्रसादजी ने मुख्यतः नाटकीय[१२१] शैली को अपनाया यानी घटना और कथोपकथन के माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण।[१२२]

औपन्यासिक चरित्र

प्रसादजी के औपन्यासिक चरित्र बहुत व्यापक हैं और उनके द्वारा समाज का चित्र उपस्थित किया गया है। किन्तु, प्रसादजी उतनी सजीवता के साथ वर्गों के प्रतीकों का निर्माण नहीं कर पाये हैं। उन पात्रों में वैयक्तिक विभूतियां अवश्य होती हैं जिनके द्वारा ही हम उन्हें जानते-पहचानते हैं।[१२३]

'कंकाल' उनका प्रथम विचार-प्रधान उपन्यास है। 'कंकाल' की अपेक्षा 'तितली' उनकी अधिक कलात्मक कृति है। स्वस्थ शिक्षिता किसान-बालिका तितली के चित्रण द्वारा उन्होंने ग्रामीण जीवन में नया उत्साह और ग्राम-निर्माण के लिए सम्मिलित और सहयोगी खेती के आदर्श उपस्थित किये हैं।[१२४] ग्राम्य-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास महत्त्वपूर्ण है—चरित्र-विकास की दृष्टि से नहीं।[१२५] सन् ३० के बाद हिन्दी कथा साहित्य में जिस यथार्थवाद की नयी लहर आई, 'तितली' उसी की देन है यद्यपि इसमें सूत्रवत् संचालित पात्र और नियति के करिश्मों द्वारा उनके भाग्य-परिवर्तन भी बार-बार दिखाये गये हैं।[१२६] 'तितली' में भी भारत और ब्रिटेन में जनसाधारण को सतानेवालों की भी झांकी दिखाई गई है। एक ओर बिजली से गरम कमरों में जाते ही कपड़े उतार देने की आवश्यकता दूसरी ओर पाले एवं बरफ में रात भर ठिठुरकर रातें बिताने वाले दरिद्र।[१२७] भारत और ब्रिटेन में गरीबों को सतानेवाले एक ही हैं—यह चेतना हिन्दी कथा साहित्य में यहीं पहली बार प्रकट हुई।[१२८]

प्रसादजी ने इस उपन्यास में गांव में होनेवाले वर्ग-संघर्ष जमींदारों-महाजनों का अत्याचार और इससे मरनेवाले असहाय किसानों का चित्रण किया है। 'कर्मभूमि' के महन्त की तरह यहां भी एक महन्त है जो भक्तों की भेंट और किसानों का सूद समान भाव से ग्रहण करते हैं।[१२९]

---

१२० वही, पृ० २१९
१२१ वही
१२२ वही
१२३ हिन्दी उपन्यास पृ० १६०
१२४ आधुनिक साहित्य पृ० ४१
१२५ जयशंकर प्रसाद पृ० ११६
१२६ हिन्दी उपन्यास, पृ० १६२
१२७ तितली पृ० १८
१२८ लोकजीवन और साहित्य, पृ० ४८
१२९ तितली, पृ० १७८

'तितली' में पूंजीवादी समाज में पशुओं-सा जीवन बितानेवाले कोयला मजदूरों के जीवन की एक संक्षिप्त झांकी भी मिलती है।[११०]

'कंकाल' के पात्रों में थोड़ी दार्शनिक विचित्रता है। पर 'तितली' के सभी पात्र स्वाभाविक से लगते हैं। चरित्र-चित्रण कथावस्तु का विकास और उसका नाटकीय निर्वाह भी 'तितली' की विशेषता है। उसमें ग्राम के भारतीय नर-नारी का यथार्थ चित्रण मिलता है।[१११] 'कंकाल' यथार्थवाद की ओर उन्मुख है तो 'तितली' पूर्णतः आदर्शवादी कृति है। 'कंकाल' की भांति 'तितली' दुखान्त नहीं है। उसमें अच्छे कर्मों का अच्छा और बुरे का बुरा परिणाम दिखाकर भारतीय कर्मफलवाद की पुष्टि की गई है। उपन्यास का लक्ष्य नारीत्व और पत्नीत्व की गरिमा का प्रदर्शन है।[११२] प्रसादजी का एक अपूर्ण उपन्यास उनकी मृत्यु के बाद प्राप्त हुआ। इस ऐतिहासिक उपन्यास का नाम था इरावती। यदि यह पूरा होता तो ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान होता।[११३] प्रसादजी के उपन्यास मनुष्य को कर्मठता और साहस का संदेश देते हैं। इन उपन्यासों में मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करने नया समाज गढ़ने और ग्राम की विडम्बनाओं और विभीषिकाओं का अन्त करने के लिए आतुर दिखाई पड़ता है। तितली ऐसी ही एक कर्मठ नारी है। उसके विषय में उपन्यास का एक प्रमुख पात्र इन्द्रदेव कहता है—"यही तो हम लोग पढ़े थे न ? मनुष्य गिरता है। उसका अन्तिम पक्ष दुर्बल है—संभव है कि वह इसीलिए मर जाता है। परन्तु जितने समय तक वह अपने अस्तित्व का प्रदर्शन कर सके उतने क्षण तक क्या जिया नहीं ? उसके जन्म लेने का उद्देश्य सफल हो गया।[११४]

प्रेमचन्द

कथाकार प्रेमचन्द पहले उपन्यासकार थे जिन्होंने स्वयं चरित्र प्रधान उपन्यास लिखे और दूसरों से भी वैसे उपन्यास लिखने को कहा।[११५] उनके प्रतिनिधि मानव चरित्र हर वर्ग और हर क्षेत्र के हैं। इनमें शोषित-पीड़ित किसान, उन्हें सतानेवाले जमींदार-नवाब महाजन-साहूकार, हरिजन दस्तकार मक्कार पंडे-पुरोहित राजनीतिक कार्यकर्ता सरकारी अफसर और उनकी जी-हुजूरी करनेवाले सभी तरह के लोग मौजूद हैं। इस चरित्र-चित्रण में उन्होंने जोर-जबर्दस्ती से काम नहीं लिया है। उनके पात्र अपने जीवन की परिस्थितियों के अनुसार स्वाभाविक तरीके से अपनी-अपनी भूमिकाएं अदा करते हैं और प्रत्येक संवेदनशील हृदय में सहानुभूति और आक्रोश

---

११० लोकजीवन और साहित्य पृ० ५१
१११ आधुनिक कथा साहित्य, पृ० ७६
११२ हिन्दी उपन्यास पृ० १२६
११३ हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० ६८
११४ तितली पृ० १४०
११५. प्रेमचन्द : एक विवेचना, पृ० ७४

बनाते हैं।[११६]

जीवन की विषमताओं ने उन्हें भाग्यवादी बना दिया था। वे कहते थे कि "भगवान की जो इच्छा होती है वही होता है।" लेकिन यह भाग्यवादिता वैसी ही है जैसी "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" सूरदास कहता है— तुम जीते मैं हारा। फिर खेलेंगे जरे बारा दम ले लेने दो। हार-हारकर तुम्हीं से खेलेंगे। एक न एक दिन हमारी जीत होगी।" यह जीवन की लड़ाई में हारे हुए एक ऐसे व्यक्ति के उद्‌गार हैं जो पराजय को परिणाम नहीं मानता महज एक घटना मानता है और जिसकी आशा का सम्बन्ध कभी टूटता भी नहीं।[११७] प्रेमचन्दजी ने सन् १८८१ की कुलीनपरीन नेतागीरी से लेकर सन् १९११ तक के राष्ट्रीय आन्दोलन और साम्यवाद के उदय की हलचलें देखी थीं। इस व्यस्त और विविध प्रवृत्तियों से आक्रान्त युग की परिस्थितियों की जो प्रतिक्रिया प्रेमचन्द में हुई वैसी उनके समकालीन किसी अन्य साहित्यकार में नहीं। साथ ही जिस सजगता और महान उद्देश्य के लिए प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी उठाई उतनी सजगता भी अन्यत्र नहीं मिलती।[११८] उनके जीवन क्रम को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है—पहला १६ वर्ष की आयु तक दूसरा ४१ वर्ष की आयु तक तीसरा क्रम तो मृत्युपर्यन्त मानना चाहिए। इसी समय में उन्होंने जीवन और युग से निरन्तर युद्ध करते हुए साहित्य के अनमोल रत्न प्रस्तुत किये।[११९] इस युग में भारत की अर्थव्यवस्था खेती पर निर्भर थी। शहरों का अस्तित्व उनके राजनैतिक धार्मिक अथवा व्यावसायिक महत्त्व पर निर्भर था।[१२०] बाद में साम्राज्यवाद की छत्र छाया में भारतीय पूंजीवाद का विकास हुआ जिसे प्रेमचन्द ने महाजनी सभ्यता की संज्ञा दी है। मंगलसूत्र' की रचना के समय प्रेमचन्द ने 'महाजनी सभ्यता' पर एक लेख लिखते हुए कहा है—" 'सारे कामों की गरज पैसा है। मनुष्य समाज दो भागों में बंट गया है। बड़ा हिस्सा मरने और कमानेवालों का है। छोटा हिस्सा इस बड़े समुदाय को अपने वश में किये है। पहले का अस्तित्व अपने मालिकों के लिए पसीना बहाने खून गिराने और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से विदा हो जाने के लिए है।[१२१]

प्रेमचन्द के साहित्य में ऊपर लिखे तीनों युगों के मर्मस्पर्शी चित्रण मिलते हैं 'पंच-परमेश्वर' जैसी कहानियां भारतीय ग्राम-व्यवस्था के गौरव को प्रदर्शित करती हैं। 'रंगभूमि' में औद्योगिक सभ्यता के आगमन की सूचना है। 'गोदान' में पूंजीवादी व्यवस्था के सारे_कलंक प्रकट हुए हैं। 'मंगलसूत्र' में साम्यवाद के आगमन की सूचना

---

११६ हिन्दी उपन्यास पृ० ३७
११७ प्रेमचन्द एक अध्ययन पृ० ३७
११८ प्रेमचन्द एक विवेचना, पृ० १४
११९. प्रेमचन्द एक अध्ययन पृ० ६०
१२० प्रेमचन्द : एक विवेचना, पृ० १६
१२१ प्रेमचन्द, पृ० १७

है। फिर भी प्रेमचन्द मध्यवित्त वर्ग के व्यक्ति थे इसलिए स्वभाव से समझौतावादी। इसीलिए उन्होंने सब कुछ सही ढंग से देखने के बाद भी, उसके हलके रूप में क्रांति को ठंडे पानी में शीतल करके पैदा किया। वे सबल सूरदास प्रेमशंकर की सृष्टि तो कर पाये। पर बलराज के यौवन की एक मात्र झलक दिखाकर ही रह गये वे गोबर को नई चेतना की बेचैनी तो दे पाये, लेकिन नये युग की क्रांति का वाहक उसे नहीं बना पाये।[१४२]

महाजनी सभ्यता का उनका विश्लेषण साम्यवादी जैसा लगता है। पर उनकी पकड़ बौद्धिक न होकर भावात्मक है। उन्होंने अपने साहित्य में बुद्धि पर भावुकता को तरजीह दी है। एक मुलाकात में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है— 'मैं गांधीवादी नहीं हूं। केवल महात्माजी के 'चेन्ज आफ हार्ट' (हृदय-परिवर्तन) में विश्वास करता हूं।'[१४३]

अंग्रेजी राज ने यहां की समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिये। परिणामस्वरूप गांवों में जमींदार, किसान, खेत-मजदूर, दुकानदार और साहूकारों का स्तर बना। शहरों में उद्योगपति व्यवसायी मजदूर, छोटे सौदागर और दुकानदार एवं पेशेवर लोगों की सृष्टि हुई, जिनसे शिक्षित मध्यवर्ग बना है।[१४४] मध्यवर्ग और सर्वहारा वर्ग का जन्म उद्योगों के साथ हुआ और औद्योगिक विकास के साथ ही इनकी संख्या और ताकत बढ़ी।[१४५]

कांग्रेस के जन्म के साथ ही राष्ट्रीय चेतना को बल देनेवाले विभिन्न तरह के समाज-सुधार के आन्दोलन हुए। इन सुधारकों को परम्परावादी निहित स्वार्थों, सामाजिक अज्ञान अन्धविश्वास एवं प्रगति की राह में रोड़े बिछानेवाले शासन से यानी तीनों मोर्चों पर लड़ना पड़ा।[१४६] इन प्रभावों ने प्रेमचन्द के पात्रों को जीवित रूप प्रदान किया और क्रमशः उनमें भी परिवर्तन आता चला गया।[१४७]

राजनीतिक क्षेत्र में गांधीजी के पदार्पण के साथ ही प्रेमचन्दजी के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। उन्होंने अपनी जमी हुई नौकरी छोड़ी। लेकिन वे गांधीजी के अन्ध अनुयायी न बन सके। 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने असहयोग और सत्याग्रह के सिद्धांतों पर अपना दुःख-दुबहा जाहिर किया है। गांधी-इरविन समझौते के विरुद्ध 'कर्मभूमि' में उन्होंने तीखा व्यंग्य किया है। 'गोदान' में भी सामाजिक परिवर्तन के लिए उनकी आतुरता स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। 'मंगलसूत्र' तो उनके मानसिक विद्रोह का प्रतीक ही है। जीवन के अंतिम दिनों में वे रूस में साम्यवादी शासन की प्रशंसा करने लगे थे।

---

१४२ समस्या मूलक उपन्यासकार : प्रेमचन्द पृ० ९१
१४३ प्रेमचन्द युग
१४४ प्रेमचन्द : एक अध्ययन पृ० १११
१४५. वही
१४६ वही पृ० ११२
१४७ प्रेमचन्द एक विवेचना पृ० ४१

उन्होंने आशा व्यक्त की कि भारत भी जीवन के उस आदर्श को अवश्य ग्रहण करेगा।[148]

रवीन्द्रनाथ और शरत की तरह वे साहित्य में 'फेमिनिटी' के कायल नहीं थे। द्विवेदी-युग की कठोर आदर्शवादिता के परिणामस्वरूप उन्होंने अपने पात्रों को आदर्शवादी बनाया है।[149] चरित्रों के विकास के सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि मानव चरित्र न बिल्कुल श्याम होता है, न सफेद। उसमें दोनों का विचित्र मिश्रण होता है। इसीलिए प्रेमचन्द मनुष्य के मनोविकारों के सच्चे इतिहासकार बन सके। उन्होंने अमीर-गरीब, जमींदार किसान हुक्काम और प्रजा की वास्तविक शारीरिक एवं मानसिक स्थिति का सच्चा रूप दिखाया है।[150] उन्होंने शुरू से ही यथार्थवादी पात्रों के निर्माण की चेष्टा की है जिसकी चरम परिणति 'गोदान' में आकर हुई है। प्रेमचन्द ने अपनी प्रत्येक कृति में एक आदर्श पात्र की कल्पना की है। परन्तु, 'गबन और उसके बाद के उपन्यासों में ऐसा स्पष्टतया नहीं मिलता। यों 'निर्मला' में भी कोई आदर्श पात्र नहीं है। 'गोदान के मेहता को चाहें तो आदर्श पात्र कह सकते हैं। यह पात्र १९१०-१२ की आदर्श नेतागिरी पर एक तीखा व्यंग है।[151] उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में घटना-बाहुल्य दिखाई पड़ता है। पर बाद के सभी उपन्यास चरित्र-प्रधान हैं और चरित्र विकास के लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक प्रणाली का सहारा लिया है। चरित्र-चित्रण के लिए उन्होंने प्रतीकात्मक पद्धति और व्यंग्यात्मक शैली का सहारा लिया है। किन्तु व्यंग का प्रयोग सिर्फ उन्हीं पात्रों पर हुआ है जो उनकी आदर्श धारणाओं के प्रतिकूल रहते हैं।[152] 'बड़े घर की बेटी' 'बड़े भाई साहब' नाम की कहानियां एवं गोदान के कई पात्रों के परिचय में इसी व्यंग का प्रयोग हुआ है। इस संबंध में वे एकदम निरपेक्ष नहीं रह पाते। अपने पात्रों को अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने की पूरी सुविधा और स्वतन्त्रता तो वे अवश्य देते हैं पर, कथात्मक तटस्थता के बावजूद अपने विचारों को व्यक्त करने में वे पीछे नहीं रहते।[153] उनका कहना था कि 'सीधे-सादे मनुष्यों की सीधी सादी बातें लिखा करो। उनके आनेवाले दिनों और रातों के सुखद काव्य की रचना करो। जीवन का विकास जैसा सरल होता है, वैसी ही सरल तुम्हारी कथा होनी चाहिए।'[154] चरित्रों के बारे में उनकी राय थी कि 'वे ऐसे हों जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकायें, वासनाओं के पंजे में न फंसें, जो शत्रुओं का संहार करके विजय-नाद

---

१४८. प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० ३७
१४९. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० ७
१५० प्रेमचंद एक अध्ययन, पृ० ८
१५१ प्रेमचंद : एक विवेचना पृ० १६
१५२ प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० १८
१५३ प्रेमचंद एक अध्ययन, पृ० २६३
१५४ साहित्य का उद्देश्य, पृ० १४२

है। फिर भी प्रेमचन्द मध्यवित्त वर्ग के व्यक्ति थे इसलिए स्वभाव से समझौतावादी। इसीलिए उन्होंने सब कुछ सही ढंग से देखने के बाद भी उसके हलके रूप में क्रांति को ठंडे पानी में शीतल करके पेश किया। वे सक्षम सूरदास प्रेमशंकर की सृष्टि तो कर पाये। पर बलराज के जीवन की एक मात्र झलक दिखाकर ही रह गये वे गोबर को नई चेतना की बेचैनी तो दे पाये लेकिन नये युग की क्रांति का वाहक उसे नहीं बना पाये।[१४२]

महाजनी सभ्यता का उनका विश्लेषण साम्यवादी जैसा लगता है। पर उनकी पकड़ बौद्धिक न होकर भावात्मक है। उन्होंने अपने साहित्य में बुद्धि पर भावुकता को तरजीह दी है। एक मुलाकात में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—"मैं गांधीवादी नहीं हूं। केवल महात्माजी के 'चेन्ज आफ हार्ट' (हृदय-परिवर्तन) में विश्वास करता हूं।"[१४३]

अंग्रेजी राज ने यहां की समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन कर दिये। परिणामस्वरूप गांवों में जमींदार, किसान खेत-मजदूर दुकानदार और साहूकारों का स्तर बना। शहरों में उद्योगपति व्यवसायी, मजदूर, छोटे सौदागर और दुकानदार एवं पेशेवर लोगों की सृष्टि हुई, जिनसे शिक्षित मध्यवर्ग बना है।[१४४] मध्यवर्ग और सर्वहारा वर्ग का जन्म उद्योगों के साथ हुआ और औद्योगिक विकास के साथ ही इनकी संख्या और ताकत बढ़ी।[१४५]

कांग्रेस के जन्म के साथ ही राष्ट्रीय चेतना को बल देनेवाले विभिन्न तरह के समाज-सुधार के आन्दोलन हुए। इन सुधारकों को परम्परावादी निहित स्वार्थी सामाजिक अज्ञान-अन्धविश्वास एवं प्रगति की राह में रोड़े बिछानेवाले शासन से यानी तीनों मोर्चों पर लड़ना पड़ा।[१४६] इन प्रभावों ने प्रेमचन्द के पात्रों को जीवित रूप प्रदान किया और क्रमशः उनमें भी परिवर्तन लाता चला गया।[१४७]

राजनीतिक क्षेत्र में गांधीजी के पदार्पण के साथ ही प्रेमचन्दजी के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। उन्होंने अपनी लगी हुई नौकरी छोड़ी। लेकिन वे गांधीजी के अन्ध अनुयायी न बन सके। 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने असहयोग और सत्याग्रह के सिद्धांतों पर अपना शक-शुबहा जाहिर किया है। गांधी-इरविन समझौते के विरुद्ध 'कर्मभूमि' में उन्होंने तीखा व्यंग्य किया है। 'गोदान' में भी सामाजिक परिवर्तन के लिए उनकी आतुरता स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। 'मंगलसूत्र' तो उनके मानसिक विद्रोह का प्रतीक ही है। जीवन के अंतिम दिनों में वे रूस में साम्यवादी शासन की प्रशंसा करने लगे थे।

---

१४२ समस्या मूलक उपन्यासकार : प्रेमचन्द, पृ० ९५
१४३ प्रेमचन्द युग
१४४ प्रेमचन्द : एक अध्ययन, पृ० १११
१४५ वही
१४६ वही, पृ० ११२
१४७ प्रेमचन्द एक विवेचना पृ० ४१

में आदर्श की वेदी पर यथार्थ की बलि चढ़ा दी गयी।[१११]

प्रेमचन्द के युग-चरित्र

मार्क्स एंगेल्स ने अपने घोषणापत्र[११२] में लिखा था कि मनुष्य-समाज के अब तक का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है और आधुनिक पूंजीवादी समाज में यह वर्ग-विरोध मौजूद है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम वर्ग-संघर्ष के चित्रण बखूबी देख सकते हैं।[११३] 'कर्मभूमि' का नायक अमरकान्त अपने घर से भागकर जिस गांव में जा टिकता है, वहां वर्ग-संघर्ष का यह स्पष्ट चित्र उभरकर सामने आता है। 'प्रेमाश्रम' में गौस खाँ का अत्याचार, ताल्लुकदारों के मैनेजरों का अत्याचार और उनकी लम्पटता का सच्चा चित्रण हुआ है। गोदान में तो इस संघर्ष का नग्न चित्र उपस्थित है। साथ ही प्रेमचन्द ने यह भी दिखलाया है कि अपने किसानों के सामने शेर बनने का नाटक करनेवाले जमींदार हुक्कामों के सामने बिल्कुल भीगी बिल्ली बन जाते हैं।[११४] 'कायाकल्प' में भी रियाया पर अत्याचार करनेवाले राजा विशालसिंह के साथ मैजिस्ट्रेट लोग कुत्तों जैसा व्यवहार करते हैं। पर अत्याचारों के प्रति थोड़ा-सा असंतोष व्यक्त करने पर राजा साहब की मदद में पुलिस आती है और चमारों पर गोली चला देती है। मन्दिर प्रवेश की मांग करने पर हरिजनों पर गोली भी चलती है। इन बातों से स्पष्ट है कि शोषकों के अलावा शासन भी प्रगति की राह में रोड़े अटकाने को हर समय तैयार है। प्रेमचन्द के एक 'गोदान' से ही यह साफ हो जाता है कि किसानों का खून चूसनेवाले कौन-कौन तत्व समाज में पल रहे हैं।[११५]

किसान वर्ग

प्रेमाश्रम जमींदारी-शोषण का और गोदान महाजनी शोषण का श्रेष्ठ चित्र उपस्थित करता है। कर्मभूमि में सन् २९ में मंदी के मारे किसानों एवं उनके समान धर्मी आंदोलन का सजीव चित्रण है। राजशक्ति ने भी उच्च वर्ग की ओर से शांति-रक्षा के नाम पर रियाया के दमन में अपनी क्रूरता और बर्बरता का नग्न प्रदर्शन किया है।[११६] इसीलिए चरित्र विकास की दृष्टि से 'कर्मभूमि' का प्रेमचन्द के उपन्यासों में श्रेष्ठ स्थान है। किसानों के इस सरल और दुखी संसार में नवीन सभ्यता आकर पुराने ढब में बँधे बिजली गाज देती है और किसान छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर बिखर

---

१११ साहित्य संदेश अगस्त सन् १९५४
११२ कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ० १५
११३ प्रेमचंद पृ० १४
११४ प्रेमचंद : एक विवेचना, पृ० ७०
११५. कथाकार प्रेमचंद, पृ० ११७
११६ प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० १००

करते हुए निकलें।[125] इसी आदर्श की पुष्टि के लिए उन्होंने संसार की वास्तविकता में से अपने पात्रों को चुना। 'रंगभूमि' का बीजांकुर उन्हें अपने गाँव के एक अंधे भिखारी से मिला।[126] सोफिया के चरित्र निर्माण की प्रेरणा उन्हें मिसेज एनीबेसेंट से मिली। कुछ विद्वानों की राय है कि 'कर्मभूमि' के नायक अमरकान्त की प्रेरणा का स्रोत पंडित पंत ही हैं। फिर भी प्रेमचन्द की कला का मूल उद्देश्य चरित्र-चित्रण नहीं है। *घटनाओं और पात्रों के संयोजन में समाज-सुधार और समाज के आगे बढ़ाने की भावना से प्रेरित है।*[127] उन्हीं सामाजिक समस्याओं को तीव्रता प्रदान करने के लिए चरित्रों और परिस्थितियों की योजना की है। गोदान को छोड़कर प्रेमचन्द ने कहीं भी वास्तविक दृष्टि से उल्लेखनीय पात्र की सृष्टि नहीं की। आदर्शवाद के जाल में फँसे रहने के कारण ही उन्होंने सूरदास प्रेमशंकर अमरकान्त चक्रधर आदि की सृष्टि की जो गरीबों की सेवा करनेवाले एवं मानव से अधिक देवता जैसे लगते हैं। सिर्फ होरी ही इसका अपवाद है और इसीलिए वह एक अमर सृष्टि है।

उपन्यासों के नायकत्व के लिए उन्होंने धीरोदात्त पात्रों को नहीं ढूंढा। बल्कि निम्नवर्ग के उन नर-नारियों को लिया जिनके चरित्र में सौन्दर्य, ईमानदारी विकास एवं मानसिक संवेदना उपलब्ध हुई।[128]

निष्कर्ष

डा० महेन्द्र भटनागर का मत है कि जहाँ प्रेमचन्द समस्याओं को उपस्थित उद्घाटित करने और उनका हल निकालने में अन्यतम हैं वहाँ प्रथम श्रेणी के अन्य उपन्यासकार चरित्रांकन की कला में अद्वितीय हैं। इस दृष्टि से वे विश्वविख्यात उपन्यासकारों की प्रथम श्रेणी में नहीं आते। चरित्र-चित्रण में वे उपन्यास से अधिक कहानियों में सफल हुए हैं।[129] व्यक्ति से अधिक टाइप बनाकर पेश करने के कारण उनके पात्रों में उतनी सजीवता नहीं आ पाती जितनी उदाहरणार्थ शरत के चरित्रों में मिलती है। किसी व्यक्ति के चरित्र को आकस्मिक तौर पर बदल डालने[130] घटनाओं के घटाटोप में चरित्रों को क्षीना बना डालने, समस्याओं के नीचे चरित्र-चित्रण को दबा डालने, यथार्थ से शुरू कर आदर्श पर पहुंचने के लिए कई पात्रों की हत्या तक कर डालने आदि के आरोप उन पर लगाये जाते हैं। उदाहरणार्थ यह कहा जाता है कि 'रंगभूमि' का सूरदास अतिशयोक्ति के सहारे और प्रेमचन्द की कलम के बल पर खड़ा है। प्रथम

---

१२५. कुछ विचार, पृ० ९४
१२६ वही पृ० ४७
१२७ प्रेमचंद एक विवेचना पृ० ११६
१२८. प्रेमचंद चिन्तन और कला पृ० ११७
१२९. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, पृ० २१२
१३० कथाकार प्रेमचंद, पृ० ७११

में आदर्श की वेदी पर यथार्थ की बलि चढ़ा दी गयी।[१५१]

प्रेमचन्द के वर्ग-चरित्र

मार्क्स एंगेल्स ने अपने घोषणापत्र[१५२] में लिखा था कि मनुष्य-समाज के अब तक का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है और आधुनिक पूँजीवादी समाज में वह वर्ग-विरोध मौजूद है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम वर्ग-संघर्ष के चित्रण बखूबी देख सकते हैं।[१५३] 'कर्मभूमि' का नायक अमरकान्त अपने घर से भागकर जिस गाँव में जा टिकता है, वहाँ वर्ग-संघर्ष का यह स्पष्ट चित्र उभरकर सामने आता है। 'प्रेमाश्रम' में गौस खाँ का अत्याचार, ताल्लुकदारों के मैनेजरों का अत्याचार और उनकी सम्पन्नता का सच्चा चित्रण हुआ है। गोदान में तो इस संघर्ष का नग्न चित्र उपस्थित है। साथ ही प्रेमचन्द ने यह भी दिखलाया है कि अपने किसानों के सामने शेर बनने का नाटक करनेवाले जमींदार हुक्कामों के सामने बिल्कुल भीगी बिल्ली बन जाते हैं।[१५४] 'कायाकल्प' में भी रियाया पर अत्याचार करनेवाले राजा विशालसिंह के साथ मैजिस्ट्रेट लोग कुत्तों जैसा व्यवहार करते हैं। पर अत्याचारों के प्रति थोड़ा-सा असंतोष व्यक्त करने पर राजा साहब की मदद में पुलिस आती है और चमारों पर गोली चला देती है। मन्दिर-प्रवेश की माँग करने पर हरिजनों पर गोली भी चलती है। इन बातों से स्पष्ट है कि शोषकों के पक्षपाती शासन भी प्रगति की राह में रोड़े अटकाने को हर समय तैयार है। प्रेमचन्द के एक 'गोदान' से ही यह साफ हो जाता है कि किसानों का खून चूसनेवाले कौन-कौन तत्त्व समाज में पल रहे हैं।[१५५]

किसान वर्ग

प्रेमाश्रम जमींदारी-शोषण का और गोदान महाजनी शोषण का श्रेष्ठ चित्र उपस्थित करता है। कर्मभूमि में सन् ३१ में मंदी के मारे किसानों एवं उनके लगान बन्दी आंदोलन का सजीव चित्रण है। राजशक्ति ने भी उच्च वर्ग की ओर से शांति-रक्षा के नाम पर रियाया के दमन में अपनी क्रूरता और बर्बरता का नग्न प्रदर्शन किया है।[१५६] इसीलिए चरित्र विकास की दृष्टि से 'कर्मभूमि' का प्रेमचन्द के उपन्यासों में श्रेष्ठ स्थान है। किसानों के इस सरल और दुःखी संसार में नवीन सभ्यता आकर पुराने चक्र में बँधे जिनको त्रास देती है और किसान छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर बिखर

---

१५१ साहित्य संदेश अगस्त सन् १९५४
१५२. कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ० ३५
१५३ प्रेमचंद, पृ० १४
१५४ प्रेमचंद : एक विवेचना, पृ० ७०
१५५. कथाकार प्रेमचंद, पृ० ६६७
१५६ प्रेमचंद : एक विवेचना पृ० १००

करते हुए निकलें।[१२५] इसी आदर्श की पुष्टि के लिए उन्होंने संसार की वास्तविकता में से अपने पात्रों को चुना। रंगभूमि का बीजांकुर उन्हें अपने गाँव के एक अंधे भिखारी से मिला।[१२६] सोफिया के चरित्र-निर्माण की प्रेरणा उन्हें मिसेज एनीबेसेंट से मिली। कुछ विद्वानों की राय है कि 'कर्मभूमि' के नायक अमरकान्त की प्रेरणा का स्रोत पंडित पंत जी हैं। फिर भी प्रेमचन्द की कथा का मूल उद्देश्य चरित्र-चित्रण नहीं है। घटनाओं और पात्रों के संयोजन में समाज-सुधार और समाज के आगे बढ़ाने की भावना से प्रेरित है।[१२७] उन्हीं सामाजिक समस्याओं को तीव्रता प्रदान करने के लिए चरित्रों और परिस्थितियों की योजना की है। गोदान को छोड़कर प्रेमचन्द ने कहीं भी वास्तविक दृष्टि से विश्लेषणीय पात्र की सृष्टि नहीं की। आदर्शवाद के जाल में फँसे रहने के कारण ही उन्होंने सूरदास प्रेमशंकर अमरकान्त चक्रधर आदि की सृष्टि की जो गरीबों की सेवा करनेवाले एवं मानव से अधिक देवता जैसे लगते हैं। सिर्फ होरी ही इसका अपवाद है और इसीलिए वह एक अमर सृष्टि है।

उपन्यासों के नायकत्व के लिए उन्होंने धीरोदात्त पात्रों को नहीं ढूंढा। बल्कि निम्नवर्ग के उन नर-नारियों को लिया जिनके चरित्र में सौन्दर्य, ईमानदारी विकास एवं मानसिक संवेदना उपलब्ध हुई।[१२८]

निष्कर्ष

डा० महेन्द्र भटनागर का मत है कि जहाँ प्रेमचन्द समस्याओं को उपस्थित, उद्घाटित करने और उनका हल निकालने में अन्यतम हैं, वहाँ प्रथम श्रेणी के अन्य उपन्यासकार चरित्रांकन की कला में अद्वितीय हैं। इस दृष्टि से वे विश्वविख्यात उपन्यासकारों की प्रथम श्रेणी में नहीं आते। चरित्र चित्रण में वे उपन्यास से अधिक कहानियों में सफल हुए हैं।[१२९] व्यक्ति से अधिक टाइप बनाकर पेश करने के कारण उनके पात्रों में उतनी सजीवता नहीं आ पाती जितनी उदाहरणार्थ शरत के चरित्रों में मिलती है। किसी व्यक्ति के चरित्र को आकस्मिक तौर पर बदल डालने[१३०] घटनाओं के घटाटोप में चरित्रों को बौना बना डालने, समस्याओं के नीचे चरित्र चित्रण को दबा डालने यथार्थ से शुरू कर आदर्श पर पहुँचने के लिए कई पात्रों की हत्या तक कर डालने आदि के आरोप उन पर लगाये जाते हैं। उदाहरणार्थ यह कहा जाता है कि 'रंगभूमि' का सूरदास अतिशयोक्ति के सहारे और प्रेमचन्द की कलम के बल पर खड़ा है। गबन

१२५. कुछ विचार, पृ० ९४
१२६. वही पृ० ४७
१२७. प्रेमचंद एक विवेचना पृ० १२१
१२८. प्रेमचंद चिन्तन और कला, पृ० २१७
१२९. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, पृ० २१२
१३०. कथाकार प्रेमचंद, पृ० ७१५

में आदर्श की वेदी पर यथार्थ की बलि चढ़ा दी गयी।[१९१]

प्रेमचन्द के वर्ग-चरित्र

मार्क्स एंगिल्स ने अपने घोषणापत्र[१९२] में लिखा था कि मनुष्य-समाज के अब तक का इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है और आधुनिक पूंजीवादी समाज में वह वर्ग-विरोध मौजूद है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम वर्ग-संघर्ष के चित्रण बखूबी देख सकते हैं।[१९३] 'कर्मभूमि' का नायक अमरकान्त अपने घर से भागकर जिस गांव में जा टिकता है, वहां वर्ग-संघर्ष का यह स्पष्ट चित्र उभरकर सामने आता है। 'प्रेमाश्रम' में गौस खाँ का अत्याचार, ताल्लुकदारों के मैनेजरों का अत्याचार और उनकी लम्पटता का सच्चा चित्रण हुआ है। गोदान में तो इस संघर्ष का नग्न चित्र उपस्थित है। साथ ही प्रेमचन्द ने यह भी दिखलाया है कि अपने किसानों के सामने शेर बनने का नाटक करनेवाले जमींदार हुक्कामों के सामने बिल्कुल भीगी बिल्ली बन जाते हैं।[१९४] 'कायाकल्प' में भी रियाया पर अत्याचार करनेवाले राजा विशालसिंह के साथ मैजिस्ट्रेट लोग कुत्तों जैसा व्यवहार करते हैं। पर अत्याचारों के प्रति थोड़ा-सा असंतोष व्यक्त करने पर राजा साहब की मदद में पुलिस आती है और चमारों पर गोली चला देती है। मन्दिर प्रवेश की मांग करने पर हरिजनों पर गोली भी चलती है। इन बातों से स्पष्ट है कि शोषकों के अलावा शासन भी प्रगति की राह में रोड़े अटकाने को हर समय तैयार है। प्रेमचन्द के एक 'गोदान' से ही यह साफ हो जाता है कि किसानों का खून चूसनेवाले कौन-कौन तत्त्व समाज में पल रहे हैं।[१९५]

किसान वर्ग

प्रेमाश्रम जमींदारी-शोषण का और गोदान महाजनी-शोषण का श्रेष्ठ चित्र उपस्थित करता है। कर्मभूमि में सन् २९ में मंदी के मारे किसानों एवं उनके लगान बन्दी आंदोलन का सजीव चित्रण है। राजशक्ति ने भी उच्च वर्ग की ओर से शांति रक्षा के नाम पर रियाया के दमन में अपनी क्रूरता और बर्बरता का नग्न प्रदर्शन किया है।[१९६] इसीलिए चरित्र विकास की दृष्टि से 'कर्मभूमि' का प्रेमचन्द के उपन्यासों में श्रेष्ठ स्थान है। किसानों के इस सरल और दुःखी संसार में नवीन सभ्यता आकर पुराने चमन में जैसे बिजली डाल देती है और किसान छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर बिखर

---

१९१ साहित्य संदेश, अगस्त सन् १९५४
१९२ कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ० ६५
१९३ प्रेमचंद, पृ० १४
१९४ प्रेमचंद : एक विवेचना पृ० ७०
१९५. कथाकार प्रेमचंद, पृ० ११७
१९६ प्रेमचंद एक विवेचना पृ० १००

पाते हैं।[167] इसी तरह गोदान एक भारतीय किसान की जीवन-कथा है।[168] जिसका भविष्य वर्तमान से कहीं अधिक अंधकारपूर्ण और भयंकर है। यहां हिन्दी-साहित्य में पहली बार एक भारतीय किसान का चित्रण एक व्यक्ति के रूप में किया गया है। रंगभूमि का सूरदास वास्तव में किसान नहीं है। उसके पास थोड़ी-सी बंजर जमीन है और वह पेशे से भिखारी है। पर होरी पेशे और व्यक्ति दोनों दृष्टियों से ठेठ किसान है।

नारी वर्ग

प्रेमचन्द ने नारी को भी सिर्फ प्रेरक शक्ति के रूप में ही नहीं बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधे लगाकर काम करनेवाले साथी के रूप में देखा है। उन्होंने नारी-हृदय की उन शाश्वत भावनाओं के आधार पर अपनी रचनाएं कीं जिनकी युगों से उपेक्षा होती आयी थी।[169] इसीलिए प्रेमचन्द की नारी पारिवारिक तथा सामाजिक संघर्षों के बीच और भी निखरी है। प्रेमचन्द नारी की स्वतन्त्रता के समर्थक होने के साथ ही संयम और मर्यादा के भी समर्थक थे। इसीलिए गबन में जालपा के चरित्र का विकास उस समय से होता है जब वह रमानाथ को मुक्त कराने के लिए घर से बाहर आकर संघर्ष करती है। रंगभूमि में सोफी भी इसी का उदाहरण है। उनकी सुमन और निर्मला विनाशकारी दहेज-प्रथा की शिकार बनीं। कायाकल्प की रोहिणी बहुविवाह-प्रथा के विरुद्ध विद्रोह करती है। प्रेमचन्द नारी के स्वावलंबन के समर्थक थे। धनी परिवार की सुखदा अहिल्या और मालती इसके उदाहरण हैं। पर रतन और जोहरा ऐसी हैं जो इच्छा रखते हुए भी स्वावलंबी नहीं हो पातीं। सुखदा की ही भांति गोदान की गोविन्दी भी तलाक के प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक सोचती है। पर अन्त में प्रेम के बल पर ही ये अपने पतियों के साथ एकता के सूत्र में बंधती हैं। गायत्री एवं पूर्णा के चरित्र में उन्होंने इन्द्रिय-दमन के विकृत परिणामों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। 'सेवासदन' में उन्होंने वेश्यावृत्ति की समस्या का सविस्तार चित्रण किया है। गोदान में भी इस समस्या पर वाद-विवाद होता है। प्रेमचन्द के सभी वेश्या-पात्रों ने दैनिक जीवन में नैतिकता के महत्व को बराबर माना है। सुमन और जोहरा वेश्यावृत्ति को त्यागकर सम्मानित जीवन बिताने लगती हैं।[170]

नारी का प्रेयसी, मातृत्व एवं अर्धांगिनी का रूप प्रेमचन्द के उपन्यासों में अधिक निखरा है।[171] गोदान में मेहता गोविन्दी से कहता है—"नारी केवल माता है और

---

१६७. प्रेमचंद, पृ० २१

१६८. प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० १०७

१६९. प्रेमचंद : चिन्तन और कला पृ० ९०६

१७० वही पृ० २११

१७१ प्रेमचंद उनकी कृतियां और कला, पृ० १६०

इसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है।[172] प्रेमश्री के रूप में सोफिया निरंजन, मनोरमा मुनिया सिलिया मालती और गायत्री का अच्छा चित्रण हुआ है। खूबी यह भी है कि इनका प्रेम स्वार्थ पर नहीं वरन् बलिदान और कष्ट सहन पर आधारित है। पाश्चात्य सभ्यता की नकल करनेवाली तितली बनकर फुदकने वाली गोदान की मालती की मिस्टर मेहता द्वारा उन्होंने कटु आलोचना की है। पत्नी के रूप में गोविन्दी और धनिया (गोदान), कुसुम सुखदा एवं मुन्नी (कर्मभूमि) जालपा (गबन) सुधा एवं निर्मला (निर्मला) अहिल्या (कायाकल्प), विद्या (प्रेमाश्रम) सुमित्रा एवं पूर्णा (प्रतिज्ञा) और सुमन (सेवासदन) का उत्तम चित्रण हुआ है। मातृत्व के गौरव से सम्पन्न रानी जाह्नवी देवी, झुनिया, सुभद्रा एवं सुशीला, धनिया विद्या और निर्मला विशेष उल्लेखनीय हैं।[173]

प्रेमचन्द ने उच्च मध्यम और निम्न, सभी वर्गों की स्त्रियों का चित्रण किया है। गोदान की धनिया समस्त निम्नवर्गीय नारियों का प्रतिनिधित्व करती है।[174] कुसुम मध्यवर्गीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। उच्चवर्ग की स्त्रियों में विलासिता, क्रोध और क्रूरता पायी जाती है हालांकि जाह्नवी देवी और सोफिया इसके अपवाद हैं। कायाकल्प में देवप्रिया और प्रेमाश्रम में गायत्री के चरित्र इसी तरह के हैं।[175] प्रेमचन्द ने यह भी दिखाया है कि निम्नवर्ग की नारियों में ईमानदारी क्षमा, दया तथा सम्मानपूर्ण जीवन बिताने की भावना जबर्दस्त रूप में विद्यमान है। पर समाज व्यवस्था उन्हें उठने नहीं देती।[176] प्रेमचन्द के साहित्य में सिर्फ जीवन का सृजन करने वाली ही नहीं प्रत्युत जीवन को नेतृत्व प्रदान करने वाली स्त्रियों के भी दर्शन होते हैं जो नारी के नये रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं।[177] इस दृष्टि से प्रेमचन्द के नारी-पात्रों में साहस, स्पष्टवादिता और कर्मपरायणता पुरुष-पात्रों से अधिक है।[178]

धार्मिक वर्ग-चरित्र

प्रेमचन्द ने जनता के शोषण में अभिवृद्धि करनेवाले धर्म के ठेकेदारों का भी पर्दाफाश किया है जिन्हें लेनिन ने गुलामी के 'सफेदपोश वकील' की संज्ञा दी थी।[179] प्रेमाश्रम में सैयद ईजाद हुसेन के यतीमखाने का हाल सुनिये—"तकदीर पर तो जिन्दगी का दारोमदार है। न किसीके गुलाम न किसीके नौकर। दुनिया में कामयाबी

---

१७२. गोदान, पृ० ४३१
१७३ प्रेमचन्द, पृ० ६८
१७४ वही पृ० ८०
१७५ प्रेमचंद पृ० ८१
१७६ प्रेमचंद : चिंतन और कला, पृ० २६०
१७७ वही, पृ० ८१
१७८. दीन निरूपण पृ० ५७
१७९. प्रेमचंद पृ० २१

का गुस्सा तो प्रलयंकारी है। आदमी जरा सिरहवार हो बस उसकी चांदी है। दौलत उसकी लौंडी है।" सार्वजनिक और धार्मिक संस्थाओं के संस्थापकों का यह कच्चा चिट्ठा है। प्रेमचन्द की रचनाओं में सर्वत्र धर्मध्वजियों के ढोंग और उनकी क्रूरता और पाखंड पर तीखा व्यंग है। सेवासदन का सूत्रपात ही बांकेबिहारीजी के पंडों द्वारा एक विद्रोही किसान की हत्या से होता है।[180] प्रेमाश्रम का ज्ञानशंकर धर्म का ढोंग रचकर ही गायत्री का सतीत्व नष्ट करने को तैयार होता है। जूट मिल के मजदूरों पर जुल्म ढानेवाले 'गबन' के सेठ करोड़ीमल भी जाड़े में कम्बल बांटनेवाले एक 'धर्मप्राण' जीव हैं जो घी में चर्बी मिलाकर लाखों का मुनाफा कमाते हैं। कर्मभूमि के समरकान्त जैसे शिक्षित और वयोवृद्ध व्यक्ति ठाकुरद्वारे में घुसने पर हरिजनों पर लात-जूते और गोलियां तक चलवा देने में नहीं हिचकते। लेकिन खुद तो वे सलीम के साथ बैठकर भोजन भी करते हैं। ज्ञानशंकर और गायत्री भी ऐसे ही पात्र हैं।[181]

अछूत वर्ग

समालोचकों ने प्रेमचन्द को गांधी युग का लेखक कहा है। किन्तु, 'कर्मभूमि' से पता चलता है कि प्रेमचन्द अछूतों के लिए गांधीजी से अधिक दर्द रखते हैं।[182] उन्होंने मानवता की पुकार सुनी है न कि चुनाव की जरूरतों की पुकार। उन्होंने हरिजनों की समस्या का शोषण की प्राचीनतम परम्परा का अन्त करने के लिए विवेचन और चित्रण किया।[183] हनुमान-पूजी जानेवाले किन्तु पहिनने वालों से नफरत करने वाले मन्दिर के भगवान के बारे में प्रेमचंद ने जो शब्द कहे हैं वे 'क्लासिकल' और अमर हैं।[184]

मध्यम वर्ग

प्रेमचन्द की अधिकतर कृतियों का संबंध मध्यम वर्ग से है और उन्होंने इस वर्ग की समस्याओं पर सुन्दरता से प्रकाश डाला है। 'सेवासदन' (१९१४) उनकी प्रथम कृति है जो मध्यम वर्ग के जीवन को चित्रित करती है। इसी विषयवस्तु का निर्वाह करनेवाली 'गबन' उनकी अंतिम कृति है जहां उनकी कला को प्रौढ़ता और शिल्प-विधान की पूर्णता प्राप्त हुई है।[185]

शोषक-शोषित चरित्र बनाम महाजनी सभ्यता का चारित्रिक विश्लेषण

सेवासदन में महाजनी सभ्यता पर तीखी चोटें करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा

---

१८० प्रेमचंद, पृ० ४९
१८१ प्रेमचंद, पृ० ५१
१८२ प्रेमचंद (दीक्षित) पृ० ८८
१८३ वही, पृ० ८९
१८४ वही १११
१८५. प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० ९२

है—"जिस समाज में अत्याचारी जमींदार रिश्वती कर्मचारी अन्यायी महाजन स्वार्थी बन्धु, आदर और सम्मान के पात्र हों वहां सत्यमण्डी क्यों न आबाद हों? इस महाजनी सभ्यता को पश्चिमी शिक्षा ने और भी शक्ति प्रदान की है। इसी शिक्षा के परिणाम स्वरूप, जागीरदारी सभ्यता के कारिन्दों के बीच से झांककर ऐसे व्यक्ति भी आते हैं जो अपनी रियाया के प्रति कोई भी रियायत नहीं करते।[186] धनी वर्ग के लड़के यही शिक्षा पाकर 'कर्मभूमि' के सलीम और 'प्रेमाश्रम' के ज्वालासिंह जैसे अफसर बनते हैं। रंगभूमि का जान सेवक एक नये व्यापारी वर्ग यानी नये पूंजीपतियों के प्रतीक हैं। एक तरफ जनता का शोषण दूसरी ओर प्रवचन—यही उसकी शक्ल है। 'गोदान' का गोबर नये विद्रोही मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि है। 'रंगभूमि' में मजदूरों द्वारा मिल में लगायी गई आग सर्वहारा वर्ग के प्रारम्भिक दिनों के उसके चरित्र को व्यक्त करने वाले हैं जिसकी चर्चा मार्क्स-एंगेल्स के कम्यूनिस्ट घोषणापत्र में आज से सौ साल पहले की गई थी। यह सर्वहारा वर्ग अपने प्रारम्भिक दिनों में मध्ययुग के कारीगरों की खोई हुई हैसियत फिर से कायम करने की बलपूर्वक कोशिश करता है।[187]

समाज की प्रत्येक शृंखला में हर स्तर पर जोंक की तरह लोगों का खून चूसने वाले महाजनों का चित्र हमें प्रेमचन्द की कृतियों में सर्वत्र प्राप्त होता है। 'प्रेमाश्रम' जमींदारी शोषण का चित्र खींचता है और 'गोदान' महाजनी शोषण की विशद गाथा है।[188] 'गोदान' में एक जगह किसानों के ऋण का एक दृश्य है। दस रुपया कर्ज चाहने वाले किसान को सिर्फ पांच मिले और पांच रुपये नजराना दस्तूरी वगैरह में कट गए। किसान ने रुपये लौटाते हुए कहता है—अब यह पांचों भी मेरी ओर से रख लीजिए। एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक बड़ी का, एक छोटी के पान खाने को एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया-कर्म के लिए।[189]

प्रेमाश्रम का प्रारम्भ ही हाकिम के दौरे से होता है। चपरासी, पटवारी और कारिन्दों का सच्चा चित्रण, नालिश और कुर्की ऊपर से टैक्स बढ़ती आदि के चित्र जमींदार और हुक्कामों की मिलीभगत के सजीव दृश्य हैं। कारिंदे गौसखां का दरबार इजाफा लगान की खबर से और भी सजने लगता है। फिर भी इक्के-दुक्के विद्रोही किसान तो हैं ही। मनोहर भी उनमें एक है।[190] आदर्शवादी बलराज भी अफसरों के चपरासियों के जुल्म की कहानी सुनाने वाला और किसानों के लिए डिप्टी ज्वालासिंह के पास फरियाद करने वाला एक विद्रोही है। 'कर्मभूमि' में किसानों के माल-मवेशी को 'कुड़क' कराने वाले सिविलियन अफसर मिस्टर घोष की क्रूरता का भी सजीव चित्रण है।

---

१८६ प्रेमचंद, पृ० ९९
१८७ कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पृ० ४५
१८८ प्रेमचंद, पृ० ९८
१८९. हिंदी उपन्यास में वर्ग भावना पृ० ११९
१९० प्रेमचन्द, पृ० ७२

राजे-महाराजे

'कायाकल्प' में इस वर्ग के दोषों का विस्तार से वर्णन हुआ है।[१५१] इस उपन्यास का नायक विशालसिंह इस व्यवस्था का प्रतिनिधि पात्र है। राजा ने तीन शादियां की थीं। उनकी सबसे बड़ी रानी वसुमती कहती है—"ऐसे ही न्यायशील होते तो सन्तान का मुंह देखने को न तरसते।" विशालसिंह तीसरी पत्नी रोहिणी से अधिक प्रेम करते थे जो अपने हृदय में "द्वेष को पालती थी जैसे चिड़िया अपने अंडे को सेती है।" साथ ही रानी देवप्रिया का चित्र भी है जिसकी काम चेष्टाएं वृद्धावस्था में भी तीव्र हो उठती हैं। 'रंगभूमि' में भी तालुकदारों जमींदारों और राजाओं का विलासमय वातावरण समुपस्थित है। कुंवर भरतसिंह राजा महेन्द्रप्रतापसिंह कुंवर विनयसिंह, जसवन्त नगर के राजा आदि अपनी सत्ता के लिए विदेशी शासन पर निर्भर हैं। जन भाव का बाना धारणकर तास्सुबेदारी देश-सेवा करने वाले राजा भी जो अवसर आते ही अपने असली रूप में प्रकट हो जाते हैं।[१५२]

मैकडूगल का कहना है कि जब व्यक्ति वर्गों के रूप में परिवर्तित हो जाता है, उस समय उसके व्यक्तिगत विचार सामूहिक विचारों में बदल जाते हैं।[१५३]

समूह-चरित्र

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में समूह के मनोविज्ञान में गहरी पैठ का परिचय दिया है। राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों का जुलूस और जन-कोलाहल आदि के दृश्य उनकी कृतियों में बड़े सजीव हो उठे हैं। डा० ईर्फानअली ने निर्दोष आदमियों के विरुद्ध बढ़कर उन्हें सजाएं दिलाई थीं। उन्हें अपने बीच पाकर जनता घेर लेती है। बड़ी मुश्किल से अमरकान्त उनकी जान बचाते हैं।

'रियासत का दीवान' नामक कहानी में जनसमूह का अंधविश्वास दिखाया गया है।[१५४] 'कर्मभूमि' में गोरों द्वारा बलात्कार का प्रतिरोध करने वाली मुन्नी भिखारिन के मुकदमे का दृश्य है जहां उसके विरुद्ध झूठा बयान देने वाले डाक्टर को जनता की सौ-सौ धिक्कारें मिलती हैं। समूह में डींग हांकने की प्रतिमा बड़ी जबर्दस्त होती है। 'कर्मभूमि' में उसका भी अच्छा चित्रण हुआ है।[१५५] पढ़े-लिखे सलीम और अमरकान्त भी समूह की मनोवृत्ति से प्रभावित होकर मुन्नी भिखारिन को सजा देने वाले जज के मुंह पर ठीक फैसले के वक्त जूता लगाने के प्रस्ताव से सहमत हो जाते हैं। वही जनता उसकी रिहाई पर प्रसन्न होकर तरह-तरह से अपना उत्साह प्रकट करती है।

'जुलूस' नामक कहानी में समूह की टीका-टिप्पणी सुनने लायक है। साथ ही

---

१५१ प्रेमचन्द और उनका युग पृ० ७९

१५२ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ० ८८

१५३ ग्रुप साइकोलाजी एंड दी एनैलायसिस आफ दी इगो, पृ० १७

१५४ प्रेमचन्द पृ० १११

१५५ वही पृ० ११४

अविचलित भाव से साथियों की मार सहनेवाली भीड़ की दृढ़ता का परिचय है तो आदर्श और सिद्धान्त के नाम पर अपने स्वभाव के प्रतिकूल अहिंसक बनी रहती है। प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति विभिन्न वर्गों की सहानुभूति और सहयोग का विश्लेषण किया है और आन्दोलन की असफलता के लिए देश के नेतृत्व को दोषी ठहराया है।[१९६]

जमींदार वर्ग

गोदान के रायसाहब जमींदार वर्ग के सुन्दर प्रतिनिधि हैं। प्रेमाश्रम में जमींदार वर्ग के विभिन्न-विचित्र नमूने पेश किये गये हैं। जमींदार ज्ञानशंकर प्रेमचन्द की तमाम रचनाओं में सबसे दुष्ट पात्र है। विदेशी सभ्यता के सम्पर्क में आई धूर्त और स्वार्थी जमींदारी प्रथा का कच्चा चिट्ठा उसके चरित्र में प्राप्त होता है।[१९७] ज्ञानशंकर के ससुर कमलानन्द और कर्मभूमि के महन्त आशाराम गिरी एक दूसरी तरह के जमींदार हैं जो भूमि की रक्षा के लिए धर्म का ढोंग करने में कुशल हैं। देश की नई राजनीतिक परिस्थिति में गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले समाज के इन लुटेरों का उनके साहित्य में विशद रूप से वर्णन हुआ है। प्रेमचन्द ने यह बताया है कि किसान वर्ग समाज का सबसे निकृष्ट और पीड़ित वर्ग है और उनपर सबसे पहले जमींदारों का शासन है। इस जमींदार वर्ग के महत्त्व से उदासीन रहना जो सबसे अधिक भयानक हो चुका है, सामाजिक परिवर्तन को असफल बनाना होगा।[१९८]

प्रेमचन्द के औपन्यासिक चरित्र

'वरदान' (१९०४) प्रेमचन्द की प्रारम्भिक रचना है। मध्यवर्ग के जीवन को पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित करते हुए इसमें प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष का चित्रण है। किन्तु, इसकी चरित्र-सृष्टि सबल नहीं है और न प्रभाव-क्षमता ही है। कुछ पात्रों के चरित्रांकन में मनोवैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके उसमें अपेक्षाकृत कलात्मकता और स्वाभाविकता अवश्य आई गई है। पर इस पद्धति का पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो सका है। आत्महत्या और आत्मत्याग द्वारा पात्रों की समस्या का समाधान त्रुटिपूर्ण लगता है और लेखक की कलात्मकता की असमर्थता प्रकट करता है।[१९९]

'प्रतिज्ञा' पूर्व-प्रकाशित 'प्रेमा' का संशोधित रूप है। इसमें भी मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि में विधवा-विवाह की समस्या है। इसमें नई चेतना एवं रूढ़िवादी विचारों का संघर्ष चित्रित किया गया है। किन्तु, इस उपन्यास के पात्रों में गतिशीलता का अभाव है। सिद्धान्तवाद और आदर्शवाद के चक्कर में पड़कर पात्र निर्जीव हो गये हैं। दीना

---

१९६ प्रेमचन्द (दीक्षित) पृ० १९७
१९७ प्रेमचन्द और उनका युग पृ० ५२
१९८ प्रेमचन्द, पृ ६९
१९९. प्रेमचन्द की उपन्यास कला, पृ० १७९

नाम का चरित्र अवश्य सजीव बन सका है। पर उपन्यास में उसे समुचित स्थान प्राप्त है। धूर्त और पाखंडी कमलाप्रसाद के आकस्मिक चरित्र-परिवर्तन पर पाठक को विश्वास करने का जी नहीं चाहता।[200]

सेवासदन प्रेमचन्द का प्रथम विशिष्ट उपन्यास है और कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण। यह कृति भी मध्यवर्ग की समस्याओं और जीवन से संबंधित है। यह भी उद्देश्यनिष्ठ उपन्यास है। किन्तु इसमें सबल चरित्रों की सृष्टि हुई है। चरित्र-विकास में परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दिखाया गया है। उपन्यास में सुमन और सुमन की समस्या ही मुख्य चीज है। शेष-चरित्र अपेक्षाकृत प्रभावहीन और उपेक्षित हैं जिसका मुख्य कारण समस्याओं का चित्रण है।[201] मानव-प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण संयत और स्वाभाविक है। इसलिए पहले की कृतियों की अपेक्षा सेवासदन अधिक कलात्मक है।[202]

प्रेमाश्रम (१९१८) प्रेमचन्द की उपन्यास-कला की प्रगति का सूचक है। इसमें ग्राम्य जीवन और उसकी समस्याओं का सफल चित्रण है। साथ ही जमीन के प्रश्न पर भी विचार किया गया है जो एक राष्ट्रीय प्रश्न है।[203] इस कृति में पहली बार लेखक ने व्यापक समाज-संबंधों पर अपनी दृष्टि दौड़ाई है जिससे उपन्यास में कई वर्गों के पात्रों को लाया गया है। इन वर्गों के पात्रों की चरित्र-व्याख्या में लेखक को अच्छी सफलता मिली है।[204] पर इन पात्रों पर परिस्थितियों का प्रभाव साधारण रूप से दिखाया गया है। ज्ञानशंकर के चरित्र में व्यापकत्व भी मिलता है, किन्तु, उसकी मनोवृत्तियां हर परिस्थिति में समान रहती हैं जो खलने वाली हैं। प्रेमशंकर भी एक दृढ़ आदर्शवादी पात्र है जो मनुष्य से अधिक देवता है। कमलानन्द एक असामान्य पात्र है। लेखक की आदर्शवादिता के कारण इस उपन्यास में हृदय-परिवर्तन के कई उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे चरित्रों की किसी प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते और वे अविश्वसनीय से लगते हैं। ईजाद हुसेन ईर्फानअली और प्रियनाथ आदि ऐसे ही पात्र हैं। गायत्री विद्या श्रद्धा, शीलमणि आदि स्त्री-पात्रों के चरित्र आर्मिक हैं। मनोहर बलराज, कादिर डपटसिंह आदि ग्रामीण पात्रों के चरित्र सजीव और स्वाभाविक हैं।

प्रेमाश्रम की सबसे बड़ी कलात्मक त्रुटि है उसमें कई आत्महत्याओं की योजना। यह पात्रों के साथ अन्याय है और उन्हें सम्हाल पाने में लेखक की असमर्थता सिद्ध करता है। लगता है जैसे प्रेमचन्दजी के ऐसे पात्र लेखक की सुविधा के लिए मर जाते हैं—जैसे 'गबन' में जोहरा की मृत्यु रंगभूमि में सूरदास और विनय की मृत्यु।[205]

२०० हिन्दी उपन्यास (धवन), पृ० ९१
२०१ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० ३३
२०२ प्रेमचन्द एक विवेचना, पृ० ४४
२०३ प्रेमचन्द एक विवेचना, पृ० ४५
२०४ हिन्दी उपन्यास में वर्ग भावना, पृ० १२९
२०५ प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प, पृ० ५४
२०६ प्रेमचन्द की उपन्यास कला, पृ० १८०

'निर्मला' (१९२१) में दहेज प्रथा और अनमेल विवाह की समस्याओं को लिया गया है। इन समस्याओं के नीचे पात्रों का अपना व्यक्तित्व दब-सा जाता है। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व भी नहीं दीखता। किन्तु निर्मला का चरित्र विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होते हुए विकसित होता है हालांकि इस चित्रांकन में भी लेखक ने मनोवैज्ञानिक प्रणाली का कम से कम उपयोग किया है। निर्मला के चरित्र द्वारा प्रेमचन्द ने नारी-मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से निर्मला की गणना प्रेमचन्द के विशिष्ट चरित्रों में है।[२०७]

'रंगभूमि' (१९२४) प्रेमचन्द का सबसे बड़ा उपन्यास है। इसमें भारतीय समाज के सब वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्र मिलते हैं। धर्म की दृष्टि से हिन्दू, मुसलमान और ईसाई पात्र भी यहां इकट्ठे मिलते हैं। उन पात्रों में धर्मगत और वर्गगत संस्कारों का कुशलतापूर्वक चित्रण किया गया है फिर भी सोफिया और सूरदास इसके प्रमुख हैं। उनमें वैयक्तिकता है[२०८] और इसीलिए वे उपन्यास की आकर्षण शक्ति के स्तम्भ हैं। सामान्य चरित्रों का भी इस उपन्यास में सफल चित्रण हुआ है। रंगभूमि के ग्रामीण पात्र भैरों सुभागी जमुनी, बजरंगी, नायकराम, ठाकुरदीन आदि का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक लगता है। पर यहां भी पात्रों की स्थायी व्यवस्था न होने के कारण सोफिया और विनय आत्महत्या करते हैं। प्रभुसेवक को ही लीजिए। बड़े विस्तार से उसकी चरित्र-व्याख्या के बाद लेखक उससे छुटकारा पाने के लिए उसे विलायत भेज देता है। प्रेमचन्द की उपन्यास कला की यह न्यूनता खटकनेवाली है। वैसे, रंगभूमि में अनावश्यक पात्रों की भी कमी नहीं है।[२०९]

कायाकल्प (१९२८) में प्रेमचन्द की उपन्यास-कला ने विचित्र पलटा खाया है। इस कृति में पूर्वजन्म और अध्यात्म का सहारा लेकर इस कृति को चमत्कारपूर्ण बनाने का प्रयत्न हुआ है। इसमें भूमिपति मध्य और निम्नवर्ग के पात्रों की योजना की गई है। किन्तु इसमें मध्यवर्ग का प्राधान्य है और प्रायः बहुत से प्रधान पात्र इसी वर्ग से सम्बन्धित हैं। मुंशी वज्रधर मध्यवर्ग का एक 'टिपिकल' पात्र है और इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने में प्रेमचन्द के साहित्य में वह एक अनुपम पात्र है। किन्तु आदर्शवाद के चक्कर में पड़कर चक्रधर का चरित्र यांत्रिक हो उठा है। मनोवेगों के अभाव में उसे एक सजीव पात्र नहीं कहा जा सकता। पूर्वार्ध की तुलना में उसके चरित्र का उत्तरार्ध तो और भी प्रभावहीन हो गया है। सामान्य पात्रों में सौंघी का चरित्र बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है। गौण पात्रों में वह प्रमुख पात्र है। 'कायाकल्प' के स्त्री-पात्रों के चरित्रांकन में पुरुष-पात्रों की अपेक्षा लेखक को अधिक सफलता मिली है। राजा विशालसिंह की रानियों—वसुमती और रोहिणी के चरित्र भी उल्लेखनीय हैं। मनोरमा की मनोव्यथा और अतृप्त आकांक्षाओं का मार्मिक चित्रण

---

२०७ प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प पृ० ७२

२०८ प्रेमचन्द की उपन्यास कला, पृ० ५१

२०९. प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन पृ० ८२

हुआ है। चक्रधर की माँ निर्मला के संक्षिप्त चरित्र में भी प्रेम और परम्परा का द्वन्द्व सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है।[२१०]

'गबन' में सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा व्यक्ति की समस्या को प्रधानता मिली है। रामनाथ का मिथ्या प्रदर्शन और जालपा का आभूषण प्रेम उपन्यास की कथा का आधार है। नारी-पात्रों में जालपा एक नये ढंग की नारी है।[२११] इसके प्रमुख पात्र मध्यमवर्ग से आते हैं। पुलिस विभाग के अधिकारियों के चित्रण में बड़ी स्वाभाविकता है। अपराधग्रस्त व्यक्ति के मनोभावों के चित्रण की दृष्टि से रामनाथ का चरित्र उल्लेखनीय है। 'गबन' की पात्र सृष्टि कलात्मक है। उसमें अनावश्यक पात्र नहीं है। सिर्फ जोहरा की योजना में त्रुटि है। किन्तु, इस त्रुटि की परम्परा उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों से ही प्राप्त होती है।

'कर्मभूमि' (१९३२) में भारतीय जीवन और समाज को प्रभावित करनेवाली आर्थिक राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियों का चित्रण है। इसमें भी सभी वर्गों के पात्र आये हैं। चरित्र विकास की दृष्टि से कर्मभूमि प्रेमचन्द के श्रेष्ठ उपन्यासों में है। सजीवता और स्वाभाविकता की दृष्टि से सलीम का चरित्र उल्लेखनीय है। अमरकांत भी अन्य आदर्शवादी पात्रों की अपेक्षा अधिक सजीव है। गौण पात्रों में पठानिन सलोनी कालेखां आदि के चरित्र अच्छे बन पड़े हैं। कर्मक्षेत्र में भी 'कर्मभूमि' की नारियां पुरुष-पात्रों से होड़ करती प्रतीत होती हैं। नारी-पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवं चित्रण पुरुष-पात्रों की अपेक्षा अधिक सजीव हो सका है।[२१२]

'गोदान' (१९३६) प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस कृति का उद्देश्य ग्रामीण जीवन का चित्रण करना है। सामाजिक कैनवास की सम्पूर्णता के लिए नगरों की समस्या भी सम्बद्ध है।[२१३] जमींदार, महाजन और किसान इस ग्रामीण व्यवस्था के मुख्य अंग हैं। जमींदारों-महाजनों के शोषण और लूट का यथार्थ चित्रण यहाँ उपस्थित है। यह उच्च मध्यम और निम्नवर्ग के पात्रों के माध्यम से किया गया है।[२१४] उच्चवर्ग में खन्ना जैसे पूंजीपति और रायसाहब जैसे जमींदार मध्यम वर्ग में मेहता मालती और ओंकारनाथ जैसे चरित्र एवं निम्नवर्ग में होरी गोबर सिलिया, शोभा हीरा भूरे आदि व्यक्ति आते हैं। गोदान के अधिकांश पात्र शोषक और शोषित वर्ग में बँटे हैं। शोषितों में किसान और मजदूर दोनों हैं। गोदान की पात्र-योजना में यथार्थवादी पद्धति अपनायी गई है। यहाँ मेहता जैसे बौद्धिक आदर्शवादी पात्र भी हैं किन्तु मेहता यथार्थवाद से नाता नहीं तोड़ते। इसलिए वे प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासों के आदर्शवादी पात्रों जैसे निर्जीव नहीं हैं। इस दृष्टि से उन्हें आदर्शवादी पात्र नहीं

---

२१० प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प, पृ० १०६

२११ प्रेमचन्द और उनका युग पृ० ९८

२१२ प्रेमचन्द उपन्यासकला, पृ० ११६

२१३ आलोचना (इतिहास विशेषांक), पृ० ११४

२१४ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० ११९

भी कहा जा सकता है। अन्य पात्र तो यथार्थवादी हैं ही। उपन्यास के अन्य गौण पात्रों में—खासकर ग्रामीण चरित्रों में—स्वाभाविकता और सजीवता की कमी नहीं है। इस स्वाभाविकता का आधार यथार्थवादी चरित्र चित्रण ही है। भुनिया गोबर धुनिया, सिलिया पटेश्वरी झिंगुरीसिंह आदि ऐसे ही पात्र हैं।

'मंगलसूत्र' प्रेमचन्द का अन्तिम अपूर्ण उपन्यास है। इसमें मध्यवर्ग के नागरिक पात्र प्रमुख हैं। 'मंगलसूत्र' के नायक देवकुमार एक आदर्शवादी साहित्यिक हैं। बड़ा लड़का सन्तकुमार पिता के आदर्शवाद को पसंद नहीं करता। छोटा लड़का साधुकुमार पिता के आदर्शों का समर्थक है। किन्तु, बदलते हुए जमाने के चक्कर में देवकुमार का आदर्शवाद टिक नहीं पाता। वे स्वयं मानसिक कशमकश में पड़ जाते हैं।[215] नायक के सम्बन्ध में स्वयं लेखक ने लिखा है— 'पंडित देवकुमार को धमकियों से झुकाना असम्भव था।[216] देवकुमार एक प्रगतिशील व्यक्ति हैं। वे शोषकों से समझौते के विरुद्ध हैं।'[217]

'गोदान' की तुलना अक्सर टालस्टाय के उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' से की जाती है। इसमें अनेक जीवन्त पात्रों की सृष्टिकर लेखक ने पूरे रूसी समाज की वैविध्यपूर्ण प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है। किन्तु इसमें किसी ऐसे चरित्र की सृष्टि नहीं की गई है जो ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाला हो।

'गोदान' में भी भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक पात्रों की सृष्टि की गयी है।[218] गांव के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करने के उद्देश्य से प्रतिनिधि पात्रों की योजना की गई है। किसानों का प्रतिनिधित्व होरी करता है। सिलिया और उसका परिवार सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। पंडित दातादीन ठाकुर झिंगुरीसिंह कारकुन नोखेराम पटवारीलाल पटेश्वरी मंगरू साहु दुलारी आदि महाजनों और उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ग्रामीण समाज के स्वार्थ और नैतिक खोखलेपन का उद्घाटन करने के लिए भी कई पात्रों की सृष्टि की गयी है।

जमींदारों का प्रतिनिधित्व रायसाहब करते हैं। बैंकर खन्ना व्यापारी वर्ग का शहरी चार सौ बीस का नमूना घूसखोर सम्पादक का ओंकारनाथ, मेहता प्राध्यापक वर्ग का एवं मिर्जा खुर्शीद शहरी मस्तानों के प्रतिनिधि हैं। गोविन्दी ने भारतीय नारीत्व का एवं मीनाक्षी ने नारी के शौर्य का प्रतिनिधित्व किया है। विवाह सम्बन्धी बदली हुई धारणाओं का प्रतिनिधित्व किया है मालती की बहन सरोजिनी और रायसाहब के पुत्र रुद्रपाल ने जो रजिस्ट्री द्वारा विवाह करके विलायत चले जाते हैं। इस तरह 'युद्ध और शांति' की तरह विभिन्न प्रवृत्तियों से युक्त चरित्र-चित्रण द्वारा

---

२१५ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० १२४
२१६ मंगलसूत्र, पृ० १८
२१७ प्रेमचन्द (दीक्षित) पृ० १७४
२१८. प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० १४६

'गोदान' भी उपन्यास के साधारण स्तर से ऊपर उठ जाता है।[२१८]

प्रेमचन्द के औपन्यासिक नायक

प्रेमचन्द के नायक स्त्री और पुरुष दोनों ही हैं जो लेखक की विभिन्न प्रवृत्तियों के परिचायक हैं। उनके नायकों की तीन प्रमुख कोटियां दिखाई पड़ती हैं—एक वे जो लेखक के विचारों का प्रतिबिम्बित्व करते हैं दूसरे वे जिनमें प्रारम्भ से ही नेतृत्व करने की क्षमता है तीसरे वे जिनका निर्माण परिस्थितियों द्वारा होता चलता है। इन कोटियों में आनेवाले पात्रों के अलावा भी कई ऐसे नायक हैं जिनमें एक से अधिक गुण विद्यमान हैं। नारी-नायकों का निर्माण प्रायः सामाजिक समस्याओं को उपस्थित करने के लिए ही किया गया है। 'सेवासदन' की सुमन पुरुषों द्वारा शासित समाज की थोथी मर्यादा और अहंकार पर गहरी चोट करती है। निर्मला' दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह और आर्थिक पराधीनता से त्रस्त समाज का जीवित चित्र उपस्थित करता है। निर्मला स्वयं अनमेल वृद्ध विवाह की शिकार नारी की एक करुण प्रतिमा है।[२१९] सुमन का वास्तविक विकास गबन की जालपा में होता है। उसकी सृष्टि प्राचीन और नवीन मान्यताओं के आधार पर हुई है जिसका चरम विकास 'गोदान' की मालती है।

यद्यपि प्रेमाश्रम के नायक प्रेमशंकर हैं किन्तु, ज्ञानशंकर की दृढ़ता उनके अन्य पात्रों में नहीं मिलती। 'रंगभूमि' का नायक सूरदास सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपना सानी नहीं रखता। सहज स्वाभाविक मानवोचित गुणों-अवगुणों के कारण वह हमारे विश्वास का पात्र बन जाता है।

गोदान के होरी में नायक के सभी गुण हैं। किन्तु, उसमें परिस्थितियों को अपने अनुसार चलाने की शक्ति कहां। वह एक साधारण और दबा-पिसा किसान है जिसकी मृत्यु भी कारुणिक है। होरी से अधिक जीवन्त तो उसकी पत्नी धनिया जान पड़ती है। मालती १९ १६ के नारी-जागरण की प्रतिनिधि है, पर विश्वसनीय नहीं।

प्रेमचन्द के नायकों में आदर्श से यथार्थ की ओर एक क्रमिक विकास पाया जाता है। गांधीवादी आदर्शवाद से प्रारम्भकर गोदान और मंगलसूत्र तक आते-आते वे पूर्णतया यथार्थवादी हो जाते हैं। किन्तु होरी के यथार्थ जीवन-विकास के बाद भी उनके नायकों की प्रेरणा का आधार भारतीयता ही है और उसी के आधार पर उनका जीवन-व्यापार चलता रहता है।[२२०] सूरदास से होरी तक उनके नायक आदर्श से यथार्थ की ओर निरन्तर उन्मुख रहते दीखते हैं।[२२१] 'गोदान' कष्ट और भूख की दिल दहलानेवाली कहानी है। होरी मानवीय और दैवी दोनों प्रकार की ताकतों का शिकार

२१९. समालोचक, अप्रैल १९५९, पृ० ४७
२२० प्रेमचन्द : एक विवेचना, पृ० ५७
२२१ त्रिभुवनसिंह, आकाशवाणी इलाहाबाद दिनांक ६ १०-५८
२२२ हिन्दी उपन्यास (शिवनारायण) पृ० २०६

हो जाता है।[२२३]

गोदान का गोबर उनके पात्रों के विकास की चरम सीमा है। वह नई पीढ़ी के असंतोष का प्रतीक है। वह शोषकों की दुनिया को मिटाने की बात सोचता है। गाँव से वह शहर भागता है। किन्तु प्रेमचन्द उसके चरित्र का क्रांतिकारी विकास करने में असमर्थ होते हैं। उन्होंने महाजनी सभ्यता की विकृति के चित्रण में ही उसे खपा डाला। यह महाजनी सभ्यता ह्रासोन्मुख जमींदारी सभ्यता को तेजी से निगलती जा रही है। किसान यदि गाँव के छोटे महाजनों का शिकार है तो जमींदार बैंकों और बड़े महाजनों का कर्जदार। इसीलिए शब्दों में ही सही पर यह जमींदार भी पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध करता दीखता है।[२२४]

प्रेमचन्द की कहानियों के चरित्र

प्रेमचन्द के पात्र साधारण समाज के जीव हैं। उनमें महानता चमत्कार, अमानवीयता और परामानवीयता (अमानुषत्व और सुपरमैनत्व) नहीं मिलती। किन्तु, उनमें सहज स्वाभाविक और व्यावहारिक सद्गुणों का परागम मिलता है। पात्रों की उपरोक्त उपलब्धियों का प्रदर्शन वे वैषम्य (कन्ट्रास्ट) दिखाने या पूर्व अवस्था को पश्चात अवस्था का जवाब देने की प्रणाली को अपनाकर करते हैं।[२२५] उन पात्रों में एक स्वस्थ व्यापारशीलता मिलती है। इसीलिए रूपरेखा में आचार में और मानसिक गति में उनके पात्र यथार्थ-से लगते हैं। उनमें यदि आदर्श है तो वह भी व्यावहारिक आदर्श है। पंच परमेश्वर, बड़े घर की बेटी नमक का दारोगा, सज्जनता का दंड बाल फीता परीक्षा आदि कहानियां इसके उदाहरण हैं। प्रेम संबंधी कहानियों के उनके पात्र भी स्वस्थ प्रेम के पोषक हैं, प्रेम के रोगी नहीं। यह लेखक की विशेषता है। उनकी कहानियों में अनेकों अमर चित्रों और चरित्रों के दर्शन होते हैं। ब्याज की शतरंज के खिलाड़ी कफन के बाप-बेटे के चरित्र और चित्र इसके उदाहरण हैं।[२२६]

चरित्र विकास और चरित्र-कल्पना के क्षेत्र में उनकी दृष्टि बड़ी व्यापक और शिल्प-विधि अत्यन्त सुतुल है। उनके पात्र सभी धर्मों सभी वर्गों और समाज के सभी स्तरों से आते हैं। उनमें अच्छे-बुरे सभी तरह के लोग आते हैं। यहां तक कि पशु पक्षी आदि भी उनके चरित्रों की सीमा के भीतर आ जाते हैं जैसे 'पूस की रात' में जबरा एवं 'आत्माराम' में तोता। फिर भी संवेदनात्मक दृष्टिकोण से प्रेमचन्द मध्यवर्गी के कथाकार हैं। किन्तु, उनके पात्र कभी चरित्र की जटिलताएं या मानसिक

---

२२३ प्रेमचंद एक विवेचना, पृ० १७

२२४ प्रेमचंद : चिंतन और कला, पृ० ८४

२२५. प्रेमचंद : उनकी कहानी कला, पृ० ८६

२२६ वही पृ० २०२

दृष्टि से स्वीकार नहीं करते ।[illegible] उनकी कहानियों में सर्वत्र आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व के बीच आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई है ।[illegible]

किसी कहानी में चरित्र को सम्पूर्ण रूप में देखने के लिए उसके मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों को देखना आवश्यक है । असल में तो इस अमूर्त रूप की प्रतिष्ठा द्वारा ही कहानी में उत्कृष्टता आती है । और प्रेमचन्दजी अपनी कहानियों में स्त्री पुरुष चरित्रों के दोनों ही रूपों को उपस्थित करने में सफल हुए हैं ।[illegible]

ऐतिहासिक दृष्टि से इनकी कहानियों में चरित्रों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—प्रथम काल १९१० से १९२० ई० तक द्वितीय काल १९२० से १९३० ई० तक और तृतीय काल १९३० से १९३६ तक मानना चाहिए । इन तीनों कालों के चरित्रों में कलात्मक और भावात्मक दृष्टि से स्पष्ट अंतर है । प्रथम काल में चरित्रों की सिर्फ व्याख्या हुई है द्वितीय काल में उनका विकास आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर हुआ है । और तृतीय काल में कथाकार ने चरित्रों की ओर सिर्फ इशारा भर कर दिया है ।[illegible]

अच्छाइयाँ तथा बुराइयाँ हमारे सामने स्पष्ट हो जाती हैं।[214] शतरंज के खिलाड़ी के मीर और मिर्जा साहब बूढ़ी काकी सुभागी कैलाशी चौधरी, दफ्तरी आत्माराम, मैकू आदि ऐसे ही चरित्र हैं। इन चरित्रों के कृत्य या क्रिया-कलाप नहीं वरन् उनके मनोभावों के दर्शन हमें मिलते हैं। बूढ़ी काकी के मनोभावों को देखिये— 'एक पूड़ी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न कड़ाह के पास ही चलकर बैठूं। पूड़ियां छन छनकर तैरती होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी।"[215] कहीं-कहीं खामोश पात्र भी सामने आते हैं और बिना कुछ बोले या कहे अपने मनोभावों का पूरा नक्शा हमें दे जाते हैं—' दफ्तरी ने सलाम किया और उल्टे पांव लौटा उसका इस तरह लौटना कितना सारपूर्ण था। इसमें लज्जा थी संतोष था पछतावा था। उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला। लेकिन उसका चेहरा कह रहा था मुझे विश्वास था कि आप यही उत्तर देंगे इसमें मुझे जरा भी संदेह न था।" इस काल की ऐसी ही कहानियों में स्त्री और पुरुष स्वयं अपने मनोभावों का विश्लेषण कर जाते हैं।[216] 'प्रेम का स्वांग' में भी स्त्री के मनोभावों का इसी तरह चित्रण है। इस काल के पात्रों की मानवीय पूर्णता का अधिक स्पष्टीकरण हुआ है। इन चरित्रों में इनके अलग-अलग निजत्व की स्थापना और आंतरिक तथा बाह्य दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है। इसीलिए इन चरित्रों में अधिक सजीवता और मानवीय तत्त्व मिलते हैं जिससे ये कहानियां अधिक वैज्ञानिक हैं।[217] इस तरह प्रेमचन्द ने अपनी प्रारंभिक कहानियों में आधार विकास काल की कहानियों में चरित्र एवं उनके मनोभाव तथा अन्तिम काल या उत्कर्ष काल में उनकी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का चित्रण किया। उत्कर्ष काल तक आते आते चरित्रों की आदर्शवादी मान्यताएं और उपदेशात्मकता पीछे छूट गयी और वे कहानी के चरित्रों की भांति अपने सच्चे रूप में हमारे सामने आये[218] इसीलिए उत्कर्ष काल की कफन 'मनोवृत्ति नशा' और 'जादू' आदि कहानियों का पूरा कथानक चरित्रों के मनोभावों पर आधारित है।

आलोचकों ने उनपर आरोप लगाये हैं कि उनके पात्रों में गहराई नहीं है और समस्याओं की पृष्ठभूमि में उन्होंने अपने चरित्रों को नहीं देखा है। पर ऐसी बात नहीं। प्रेमचन्द ने फ्रायड के सिद्धान्तों को देखा परखा और फिर रद्द कर दिया। मिस पद्मा' का चरित्र-चित्रण इसका एक उदाहरण है— 'भोग में उसे कोई नैतिक बाधा नहीं थी इसे वह केवल देह की एक भूख समझती थी।[219] किन्तु प्रेमचन्द ने इस विकार और कुंठा को महत्त्व नहीं दिया। वे निश्छल प्रेम के समर्थक थे।

---

२१४ शिल्पविधि, पृ० ६६
२१५. प्रेमपचीसी पृ० १११
२१६ प्रेमचंद उनकी कहानी कला, पृ० १४८
२१७ प्रेमचंद—उनकी कहानी कला पृ० १४८
२१८. आलोचना (१४), पृ० ३
२१९. प्रेमचंद, जीवन और कृतित्व पृ० १७१

गुत्थियां उपस्थित नहीं करते।[227] उनकी कहानियों में सर्वथा आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व के बीच आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई है।[228]

किसी कहानी में चरित्र को सम्पूर्ण रूप में देखने के लिए उसके मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों रूपों को देखना आवश्यक है। असल में तो इस अमूर्त्त रूप की प्रतिष्ठा द्वारा ही कहानी में उत्कृष्टता आती है। और प्रेमचन्दजी अपनी कहानियों में स्त्री पुरुष चरित्रों के दोनों ही रूपों को उपस्थित करने में सफल हुए हैं।[229]

ऐतिहासिक दृष्टि से इनकी कहानियों में चरित्रों को तीन भागों में बांटा जा सकता है—प्रथम काल १९०७ से १९२० ई० तक, द्वितीय काल १९२० से १९३० ई० तक और तृतीय काल १९३० से १९३६ तक मानना चाहिए। इन तीनों कालों के चरित्रों में कलात्मक और भावात्मक दृष्टि से स्पष्ट अंतर है। प्रथम काल में चरित्रों की सिर्फ व्याख्या हुई है द्वितीय काल में उनका विकास आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर हुआ है। और तृतीय काल में कथाकार ने चरित्रों की ओर सिर्फ इशारा भर कर दिया है।[230]

प्रारंभिक काल में कहानियों की भूमिका से चरित्र-विकास प्रारंभ होता है जैसे 'पंच परमेश्वर' का प्रारंभ।[231] पहले पराग्राफ के बाद भी उनका जी न भरा तो एक दूसरे पारा में उन्होंने जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की मित्रता का विशद वर्णन किया है।[232] इस तरह शुरू में ही अपने पात्रों का वह पूर्ण परिचय दे डालते हैं और पाठकों को उनके विषय में कुछ सोचना नहीं पड़ता है। यही स्थिति शेख उपदेश मर्यादा की वेदी पाप का अग्निकांड आदि कहानियों के पात्रों के परिचय में भी है। इस तरह प्रथम काल की कहानियों के पात्र[233] आचरण प्रधान हैं न कि चरित्र प्रधान। रानी सारंधा परीक्षा सज्जनता का दंड नमक का दारोगा आदि ऐसी ही कहानियां हैं। इनमें पात्रों के आंतरिक पक्ष का परिचय बिल्कुल नहीं मिलता—सिर्फ उनके चरित्र का बाह्य पक्ष दीखता है। इसी कारण उनके पात्रों की मानवीय पूर्णता स्पष्ट नहीं हो पाती।

द्वितीय काल की कहानियों के पात्रों में उनका चरित्र विकास अधिक स्पष्ट है। यहां हम पात्रों का चरित्र और उनके व्यक्तित्व के निखरे हुए स्वरूप का दर्शन करते हैं। इस काल में चरित्र विश्लेषण या व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा की आधारशिला व्यक्ति है, उसकी दुर्बलताएं और आंतरिकता है। उनके द्वन्द्व संघर्ष और उनकी समस्त

---

२२७ प्रेमचंद : उनकी कहानी कला, पृ० ८१
२२८ त्रिस्पर्विणि पृ० ७१
२२९ प्रेमचन्द उनकी कहानी कला, पृ० ८१
२३० त्रिस्पर्विणि, पृ० ११
२३१ मानसरोवर पृ० ४४
२३२ वही
२३३ प्रेमचन्द : उनकी कहानी कला पृ० ८४

अच्छाइयाँ तथा बुराइयाँ हमारे सामने स्पष्ट हो जाती हैं।[214] शतरंज के खिलाड़ी के मीर और मिर्जा साहब बूढ़ी काकी सुभागी कैलाशी चौधरी दफ्तरी आत्माराम मधू आदि ऐसे ही चरित्र हैं। इन चरित्रों के कृत्य या क्रिया-कलाप नहीं वरन् उनके मनोभावों के दर्शन हमें मिलते हैं। बूढ़ी काकी के मनोभावों को देखिये— 'एक पूड़ी मिलती तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न कड़ाह के पास ही चलकर बैठूं। पूड़ियाँ छन छनकर तैरती होंगी। कड़ाह से गरम-गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी।"[215] कहीं-कहीं खामोश पात्र भी सामने आते हैं और बिना कुछ बोले या कहे अपने मनोभावों का पूरा नक्शा हमें दे जाते हैं—'दफ्तरी ने सलाम किया और उल्टे पाँव लौटा 'उसका इस तरह लौटना कितना सारपूर्ण था। इसमें लज्जा थी संतोष था पछतावा था। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। लेकिन उसका चेहरा कह रहा था मुझे विश्वास था कि आप यही उत्तर देंगे, इसमें मुझे जरा भी संदेह न था।" इस काल की ऐसी ही कहानियों में स्त्री और पुरुष स्वयं अपने मनोभावों का विश्लेषण कर जाते हैं।[216] 'प्रेम का स्वांग' में भी स्त्री के मनोभावों का इसी तरह चित्रण है। इस काल के पात्रों की मानवीय पूर्णता का अधिक स्पष्टीकरण हुआ है। इन चरित्रों में इनके अलग अलग निजत्व की स्थापना और आंतरिक तथा बाह्य दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है। इसीलिए इन चरित्रों में अधिक सजीवता और मानवीय तत्त्व मिलते हैं जिससे ये कहानियाँ अधिक वैज्ञानिक हैं।[217] इस तरह प्रेमचन्द ने अपनी प्रारंभिक कहानियों में आचार, विकास काल की कहानियों में चरित्र एवं उनके मनोभाव तथा अन्तिम काल या उत्कर्ष काल में उनकी मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों का चित्रण किया। उत्कर्ष काल तक आते-आते चरित्रों की आदर्शवादी मान्यताएं और उपदेशात्मकता पीछे छूट गयीं और वे कहानी के चरित्रों की भाँति अपने सच्चे रूप में हमारे सामने आये[218] इसीलिए उत्कर्ष काल की कफन 'मनोवृत्ति तथा' और 'जादू' आदि कहानियों का पूरा कथानक चरित्रों के मनोभावों पर आधारित है।

आलोचकों ने उनपर आरोप लगाये हैं कि उनके पात्रों में गहराई नहीं है और समस्याओं की पृष्ठभूमि में उन्होंने अपने चरित्रों को नहीं देखा है। पर ऐसी बात नहीं। प्रेमचन्द ने फ्रायड के सिद्धान्तों को देखा परखा और फिर रद्द कर दिया। मिस पद्मा' का चरित्र-चित्रण इसका एक उदाहरण है—"भोग में उसे कोई नैतिक बाधा नहीं थी इसे वह केवल देह की एक भूख समझती थी।"[219] किन्तु, प्रेमचन्द ने इस विकार और कुंठा को महत्त्व नहीं दिया। वे निश्छल प्रेम के समर्थक थे।

---

२१४ शिल्पविधि, पृ० ९९
२१५. प्रेमपचीसी, पृ० १११
२१६. प्रेमचन्द उनकी कहानी कला पृ० १४७
२१७ प्रेमचंद—उनकी कहानी कला पृ० १४८
२१८ आलोचना (१४), पृ० १
२१९. प्रेमचंद जीवन और कृतित्व पृ० १७१

स्त्री-पुरुष के प्रेम से संबंध रखने वाली कहानियाँ उन्होंने बहुत ही कम लिखीं। प्रेमभाव का क्षेत्र (व्यक्तिगत धरातल से) उनके भाव-जगत में अत्यंत सीमित है।[२४०] नर-नारी के प्रेम—उनका यौन प्रेम शरत की भाँति प्रेम के दीवानों की विकृत मनःस्थिति का चित्रण उनकी कथा के विषय नहीं बन पाये हैं।[२४१] जहाँ उन्होंने ऐसे चित्र खींचे भी हैं, वहाँ उनके बीच से कोई और संदेश झाँकता दिखाई देता है। उनके प्रेम में वासना की दुर्गंध नहीं है। वे प्रेम की चरम परिणति विवाह को मानते हैं।[२४२]

कहानियों के स्त्री-चरित्र

प्रारंभिक काल की कहानियों में प्रेमचन्द ने स्त्री-पात्रों को सामूहिक रूप से आदर्शवादी और मर्यादावादी के रूप में चित्रित किया है। वे परंपरागत मान्यताओं और लोकनिंदा से सहमी हुई हैं। 'मर्यादा की वेदी' की प्रभा कहती है— जिस तरह यहाँ जीवन काट रही हूँ वह मैं ही जानती हूँ। जिस दम जी ऊबेगा छाती में कटार मारकर मर जाऊँगी। लेकिन इसी भवन में। इस घर से बाहर कदापि पैर न रखूंगी।" यह नारी इस बर्बर समाज और उसकी मान्यताओं के डरसे स्वयं अपने को नष्ट करने वाली मर्यादावादिनी है।[२४३] बड़े घर की बेटी की आनंदी सौत की गोदावरी पंच-परमेश्वर की खाला रानी सारंधा पाप का अग्निकुंड की राजनन्दिनी अमावस्या की रात्रि की गिरिजा और ममता की माँ आदि ऐसे ही स्त्री-चरित्र हैं। ऐसे लगता है कि स्त्री-चरित्र की इन मान्यताओं के पीछे भारतीय स्त्रियों की आदर्श संयुक्त परिवार में आस्था की परंपरागत भावना है। लेखक की स्त्री चरित्रों के बारे में शिवं-सुन्दरम् की भावना भी इनमें निहित है।[२४४]

विकास काल की कथाओं में स्त्रियों का रूप उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के माध्यम से प्रस्तुत होता है। यहीं इस काल के चरित्रों की पहचान और उनकी विशेषता है।[२४५] इस काल की स्त्रियाँ अधिक मुखर और स्पष्टवादिनी हैं। यहाँ तक आते आते उनमें क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाता है। 'शंखनाद' में स्त्री कहती है—"अब समझाने बुझाने से काम नहीं चलेगा सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया।" आभूषण में स्त्री के स्वरों में क्रांति और स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा है—"मुझ में जीव है चेतना है जड़ क्योंकर बन जाऊं मैं अपने को अपमानित नहीं समझती पग पग पर शंका को घोर अपमान समझती हूँ कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता फिरे यह असह्य है। पुरुष क्यों स्त्री का भाग्यविधाता है, स्त्री

---

२४० शिल्पविधि, पृ० ७४

२४१ प्रेमचन्द उनकी कहानी कला, पृ० २३०

२४२ शिल्पविधि, पृ० ७५

२४३ प्रेमचंद : उनकी कहानी कला पृ० १२०

२४४ प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन पृ० १२६

२४५ शिल्पविधि, पृ० १११

क्यों नित्य पुरुषों का आश्रय चाहे, क्यों उनका मुंह ताके।" 'बड़े के स्वांग' की वृन्दा पुरुष के खोखलेपन पर कुपित होकर सोचती है—"यह घर अब मुझे कारागार लगता है, किन्तु मैं निरुद्ध नहीं हूं।"[246] ईश्वरी न्याय विध्वंस नैराश्यलीला शंखनाद और शांति आदि कहानियां ऐसी ही हैं। इस विकास काल में स्त्रियों का चरित्र बहुत निखरा है। वे अब यथार्थ भावभूमि पर खड़ी होकर अपनी असलियत को पहचानने की कोशिश करती हैं।[247] फलतः उनके चरित्र में स्त्री-सुलभ लोच नहीं है। उत्कर्षकाल की स्त्रियों में दोनों रूप समान मिलते हैं। मिस पद्मा का स्त्री-चरित्र अति आधुनिक दृष्टिकोण से चित्रित किया गया है।[248] दूसरी ओर कुसुम है जो अपने पति को 'देवता एवं राजा' कहकर उपेक्षा न करने की प्रार्थना करती है।[249] अन्त में तंग आकर कहती है—"ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है। जो आदमी इतना दम्भी स्वार्थी और नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह नहीं होगा।"[250] इस प्रकार प्रारंभिक काल के स्त्री-चरित्र पूर्ण आदर्शवादी एवं विकास काल में वे एकपक्षीय हो जाती हैं यानी क्रांतिकारी हैं तो अंत तक वैसी ही बनी रहती हैं।[251] उत्कर्षकाल में ये ही स्त्री चरित्र नारी-मनोविज्ञान और मनोभावों के प्रतिनिधि हैं। उनका चरित्र स्वाभाविक और यथार्थ है और वे मानव-सुलभ तमाम उतार-चढ़ाव परिस्थितियों और मनोभावों से अनुप्राणित हैं।

पुरुष-चरित्र

पुरुष चरित्रों के विषय में भी प्रेमचन्द की मान्यताएं वही हैं जो स्त्री चरित्रों में। उनमें केवल इतना ही अंतर है कि स्त्री चरित्रों में असंतोष एवं क्रांति की भावना पुरुषों से अधिक है वे आदर्शवादी से अधिक यथार्थवादी हैं। यह तो हुई प्रारंभिक काल की कहानियों में पुरुष पात्रों की स्थिति। द्वितीय काल की कहानियों में समाज के सभी प्रमुख या साधारण चरित्र लिये गये हैं। उनमें चमार, धोबी माली बादशाह, नवाब ताल्लुकेदार और अंग्रेज तक आ गये हैं।[252] नौकरी पेशे के सभी पुरुष चरित्र भी इनमें शामिल हैं। बाद की कहानियों में पेशे को छोड़कर व्यक्ति और उसका चरित्र अधिक उभरा है। 'लाल फीता' 'ईश्वरीय न्याय' और 'बैंक का दिवाला' आदि कहानियां इसी कोटि में आती हैं।[253] प्रेमचन्द ने इन पात्रों के द्वारा

---

२४६ प्रेमचंद—उनकी कहानी कला पृ० ११०
२४७ वही पृ० ११२
२४८. वही, पृ० १०२
२४९. मानसरोवर, पृ० १२
२५० वही पृ० २४
२५१ नवनिधि, पृ० १०५
२५२ प्रेमचन्द उनकी कहानी कला पृ० १४९
२५३ नवनिधि ० ११२

स्त्री-पुरुष के प्रेम से संबंध रखने वाली कहानियाँ उन्होंने बहुत ही कम लिखीं। प्रेमभाव का क्षेत्र (व्यक्तिगत धरातल से) उनके भाव-जगत में अत्यंत सीमित है।[240] नर-नारी के प्रेम—उनका कोल-प्रेम शरत की भाँति प्रेम के दीवानों की विह्वल मनःस्थिति का चित्रण उनकी कथा के विषय नहीं बन पाये हैं।[241] जहाँ उन्होंने ऐसे चित्र खींचे भी हैं वहाँ उनके बीच से कोई और संदेश झाँकता दिखाई देता है। उनके प्रेम में वासना की दुर्गंध नहीं है। वे प्रेम की चरम परिणति विवाह को मानते हैं।[242]

कहानियों के स्त्री-चरित्र

प्रारंभिक काल की कहानियों में प्रेमचन्द ने स्त्री-पात्रों को सामूहिक रूप से आदर्शवादी और मर्यादावादी के रूप में चित्रित किया है। ये परंपरागत मान्यताओं और लोकनिंदा से सहमी हुई हैं। 'मर्यादा की वेदी' की प्रभा कहती है—'जिस तरह यहाँ जीवन काट रही हूँ वह मैं ही जानती हूँ। विष खा लूँगी या छाती में कटार मारकर मर जाऊँगी। लेकिन इसी भवन में। इस घर से बाहर कदापि पैर न रखूँगी।'' यह नारी इस बर्बर समाज और उसकी मान्यताओं के बदले स्वयं अपने को नष्ट करने वाली मर्यादावादिनी है।[243] बड़े घर की बेटी की आनंदी सौत की मोहावरी, पंच-परमेश्वर की खाला रानी सारंधा, पाप का अग्निकुंड की राजनन्दिनी अमावस्या की रात्रि की गिरिजा और ममता की माँ आदि ऐसे ही स्त्री-चरित्र हैं। ऐसे लगता है कि स्त्री-चरित्र की इन मान्यताओं के पीछे भारतीय स्त्रियों की आदर्श संयुक्त परिवार में आस्था की परंपरागत भावना है। लेखक की स्त्री चरित्रों के बारे में शिवं-सुन्दरम् की भावना भी इनमें निहित है।[244]

विकास काल की कथाओं में स्त्रियों का रूप उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के माध्यम से प्रस्तुत होता है। यही इस काल के चरित्रों की पहचान और उनकी विशेषता है।[245] इस काल की स्त्रियाँ अधिक मुखर और स्पष्टवादिनी हैं। यहाँ तक आते आते उनमें क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाता है। 'शंखनाद' में स्त्री कहती है—"अब समझाने बुझाने से काम नहीं चलेगा सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया।" आभूषण में स्त्री के स्वरों में क्रांति और स्वतंत्र व्यक्तित्व की घोषणा है—'मुझ में जीव है, चेतना है वह क्योंकर जड़ बन जाऊं मैं अपने को अभागिन नहीं समझती पग पग पर शंका की और अपमान समझती हूँ कोई चरवाहे की भाँति मेरे पीछे लाठी लिए घूमता फिरे यह असह्य है। पुरुष क्यों स्त्री का भाग्यविधाता है, स्त्री

---

२४० शिल्पविधि, पृ० ७४

२४१ प्रेमचन्द उनकी कहानी कला, पृ० २१०

२४२ शिल्पविधि, पृ० ७५

२४३ प्रेमचंद : उनकी कहानी कला, पृ० १२०

२४४ प्रेमचंद साहित्यिक विवेचन पृ० १२६

२४५ शिल्पविधि, पृ० १११

क्यों नित्य पुरुषों का आश्रय चाहे, क्यों उनका मुंह ताके।' 'घर के स्वामी' की वृन्दा पुरुष के खोखलेपन पर कुपित होकर सोचती है—"यह घर अब मुझे कारागार लगता है किन्तु मैं निराश नहीं हूं।"[246] 'ईश्वरी न्याय' 'विध्वंस' 'नैराश्यलीला' 'शंखनाद' और 'शांति' आदि कहानियां ऐसी ही हैं। इस विकास काल में स्त्रियों का चरित्र बहुत निखरा है। वे अब यथार्थ भावभूमि पर खड़ी होकर अपनी असलियत को पहचानने की कोशिश करती हैं।[247] फलतः उनके चरित्र में स्त्री-सुलभ दोष नहीं है। उत्कर्षकाल की स्त्रियों में दोनों रूप समान मिलते हैं। मिस पद्मा का स्त्री-चरित्र अति आधुनिक दृष्टिकोण से चित्रित किया गया है।[248] दूसरी ओर कुसुम है जो अपने पति को 'देवता, गुरु राजा' कहकर उपेक्षा न करने की प्रार्थना करती है।[249] अन्त में तंग आकर कहती है—"ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है। जो आदमी इतना दंभी, स्वार्थी और नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह नहीं होगा।"[250] इस प्रकार प्रारंभिक काल के स्त्री चरित्र पूर्ण आदर्शवादी एवं विकास काल में वे एकपक्षीय हो जाती हैं यानी क्रांतिकारी हैं तो अंत तक वैसी ही बनी रहती हैं।[251] उत्कर्षकाल में ये ही स्त्री-चरित्र नारी-मनोविज्ञान और मनोभावों के प्रतिनिधि हैं। उनका चरित्र स्वाभाविक और यथार्थ है और वे मानव सुलभ तमाम उतार-चढ़ाव परिस्थितियों और मनोभावों से अनुप्राणित हैं।

पुरुष-चरित्र

पुरुष चरित्रों के चित्रण में भी प्रेमचन्द की मान्यताएं वही हैं जो स्त्री-चरित्रों में। उनमें केवल इतना ही अंतर है कि स्त्री-चरित्रों में असंतोष एवं क्रांति की भावना पुरुषों से अधिक है, वे आदर्शवादी से अधिक यथार्थवादी हैं। यह तो हुई प्रारंभिक काल की कहानियों में पुरुष पात्रों की स्थिति। द्वितीय काल की कहानियों में समाज के सभी प्रमुख या साधारण चरित्र लिये गये हैं। उनमें चमार, धोबी माली बादशाह, नवाब ताल्लुकेदार और अंग्रेज तक आ गये हैं।[252] नौकरी पेशे के सभी पुरुष चरित्र भी इनमें शामिल हैं। बाद की कहानियों में पेशे को छोड़कर व्यक्ति और उसका चरित्र अधिक उभरा है। 'लाल फीता', 'ईश्वरीय न्याय' और 'बैंक का दिवाला' आदि कहानियां इसी कोटि में आती हैं।[253] प्रेमचन्द ने इन पात्रों के द्वारा

---

२४६ प्रेमचंद—उनकी कहानी कला, पृ० ११०
२४७ वही पृ० ११२
२४८. वही, पृ० १८२
२४९. मानसरोवर, पृ० १२
२५० वही पृ० २४
२५१ शिल्पविधि, पृ० १०८
२५२ प्रेमचन्द उनकी कहानी कला पृ० १४९
२५३ शिल्पविधि ० ११२

जनता के महान शिक्षक का काम किया और उसकी चेतना को निखारा।[224] प्रारंभिक कहानियों के पुरुष चरित्र सपाट और एकांगी हैं। विकास काल में आदर्शवाद के प्रति प्रेम रहने के कारण यथार्थवाद की ओर उनका झुकाव होते हुए भी उनका स्पष्ट और सच्चा रूप सामने नहीं आ सका है। उत्कर्ष काल में आकर उसी पुरुष चरित्र का स्पष्ट रूप सामने आता है। कफन के लिये मांगे गये पैसों से शराब पीकर दोनों बाप बेटे मौज में आ जाते हैं और कहते हैं—"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढकने को चिथड़ा न मिले उसे मरने पर नया कफन चाहिए, कफन तो लाश के साथ जल ही जाता है। पुरुष-चरित्र की यह स्वाभाविकता 'मुक्ती-डंडा' 'गांव की कबर' 'पूस की रात' आदि कहानियों में स्पष्ट है। इन पात्रों में अपनापन है और वे हमारे जीवन के सर्वथ हैं। पर ये सभी पात्र पतनोन्मुख, अनैतिक और जर्जरित हैं।"[225]

बाल-चरित्र

प्रेमचन्द की कहानियों में बालकों की मनोदशा का भी अच्छा चित्रण हुआ। पंच-परमेश्वर जैसी प्रारंभिक कहानियों में भी वे उपस्थित हैं। पंचायत की तैयारी के समय के वातावरण का एक चित्र देखिये— 'लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली-गलौच करते और कोई रोते थे।" यह खेल के समय बालकों की मनोदशा का चित्रण है और सामूहिक एवं समारोह के अवसर की प्रवृत्तियों का सहज सुन्दर रूप है। दूसरी अवस्था या विकास काल की कहानियों में उन्होंने बालकों को भी कहानी का पात्र बनाया है।[226] 'विमाता' का मुन्नी भी ऐसा ही एक बालिका है। 'बूढ़ी काकी' में बालिका लाडली भी एसी ही पात्र है। 'दुर्गा का मंदिर', 'मुन्नू', 'दांतनाद' महातीर्थ 'सचाई का उपहार' आदि कहानियों में बालक-पात्रों का सफल चित्रण हुआ है।[227] महातीर्थ में वह मुख्य पात्र है। 'सचाई का उपहार' और 'चोरी' नामक कहानियों में पाठशाला जानेवाले बच्चों के मनोविज्ञान का चित्रण हुआ है। रामलीला कजाकी और ईदगाह का संबंध बालक वर तथा परिस्थिति से है। ईदगाह बाल-मनोविज्ञान की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इस तरह 'सचाई के उपहार' की पाठशाला प्रेरणा से प्रारंभकर बाल-चरित्र के विविध रूपों को दिखाते हुए वे कजाकी बालक और ईदगाह के हामिद तक पहुंचे हैं। इन कहानियों में उन्होंने भारतीय घर, भारतीय शिक्षा और माता पिता की उत्तरदायित्वहीनता का सच्चा चित्र खींचा है।[228] अवसर बाल-चरित्रों का विकास दूसरे चरित्रों या पात्रों की विशेषताओं के प्रदर्शन में भी किया गया है।

---

२२४ प्रेमचन्द और उनका युग, पृ० १६२
२२५. प्रेमचन्द उनकी कहानी कला पृ० १०१
२२६ वही २०२
२२७ प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन, पृ० १६६
२२८. प्रेमचन्द उनकी कहानी कला, पृ० २२६

विश्म्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

प्रेमचन्द परम्परा के साहित्यिकों में भी कौशिक का नाम सर्वप्रथम है। 'माँ' तथा 'भिखारिणी' नामक उनके दोनों सामाजिक उपन्यासों में यथार्थ तथा आदर्श का सम्मिश्रण है जो समकालीन आर्यसमाज आदि सामाजिक तथा सांस्कृतिक आंदोलनों की सुधारवादी प्रवृत्ति के अनुरूप है।[२८९] कौशिकजी ने अपनी कृतियों में पात्रों के चरित्रांकन में अपनी ओर से कुछ कहने की कोशिश नहीं की। उन्होंने अपने पात्रों को स्वतंत्र रूप से विकसित होने को छोड़ दिया। उनके पात्र घटनाओं और समस्याओं के बीच से स्वतंत्र रूप से विकसित हुए हैं और यही उनकी सबसे बड़ी सफलता है। इस तरह का विकास प्रयासपूर्ण न होकर स्वाभाविक और यथार्थवादी हुआ है। उन्होंने उपन्यास रचना की इस सर्वश्रेष्ठ प्रणाली को अपनाते हुए समाज का चित्रण किया है और अपने पात्रों के रूप में समाज के विभिन्न वर्गों का स्पष्टीकरण किया है। ये पात्र अपनी परिस्थितियों का निर्माण भी करते हैं और उनसे निर्मित भी होते हैं। वे सिर्फ परिस्थितियों के पीछे दौड़ते नहीं नजर आते। लेखक ने ठाकुर अर्जुनसिंह के रूप में पुराने जमींदार समाज का चित्र उपस्थित किया है। यशोदा के रूप में उन्होंने एक महान चरित्र का निर्माण किया है। भिखारिणी जस्सो भी एक महान चरित्र है। रामनाथ ब्रजकिशोर, श्यामनाथ विश्वनाथ गोकुलप्रसाद ब्रजमोहन लाल आदि किसी न किसी वर्ग विशेष के प्रतिनिधि के रूप में सफल चरित्र हैं।[२९०] वर्णन-शैली और कला-कुशलता की दृष्टि से कौशिकजी को हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त है।[२९१] प्रेमचन्दजी के पात्रों की तरह कौशिकजी की कहानियों के नायकों का चरित्र भी घटना-विशेष से टकराकर सहसा परिवर्तित हो जाता है। उनकी अति सफल कहानी 'ताई' इसका उदाहरण है। इस तरह चरित्र का नाटकीय विकास दिखाना कौशिकजी की विशेषता है। कौशिकजी की अनेक कहानियों का उद्देश्य किसी मोहक प्रसंग का नाटकीय ढंग से सविस्तर-विवरण उपस्थित करना रहता है। 'रक्षा-बन्धन' नाम की कहानी इसका उदाहरण है। कौशिकजी प्रायः कथोपकथनों से कहानी का आरंभ करते हैं जिसमें पात्रों के कुछ पारस्परिक संबंधों का उद्घाटन होता है। तत्पश्चात वे पात्रों का परिचय भी दे डालते हैं। इसलिए ऐसे परिचयात्मक वाक्य बिल्कुल फिजूल से भी लगते हैं। जैसे "पाठक समझ गये होंगे कि घनश्याम कौन है' —बिल्कुल फिजूल है।[२९२] उनके पात्र जीवन के सीधे-सादे मनोविज्ञान पर चलते पाये हैं। कौशिकजी ने भाषाओं के द्वारा भी पात्रों का परिचय दिया है। जैसे बच्चों का परिचय उनकी भाषा के जरिये—रेलगाड़ी (रेलगाड़ी), बड़ी (बड़ी) पूल

---

२८९. हिन्दी उपन्यास पृ० ५६

२९० हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० ७९

२९१ वही, पृ० ८१

२९२ प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० १०

(दूर)। वे प्रायः पात्रों के आचरणों की भी सफाई देते रहते हैं जो उनकी कथा का एक दोष है।

शिवपूजन सहाय

श्री शिवपूजन सहाय का उपन्यास 'देहाती दुनिया' को आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने भारतीय भाषाओं में प्रथम महान आंचलिक उपन्यास माना है।[२१३] इनकी कहानियों में चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विकास देखने को मिलता है। 'मुंडी मैना' इसका एक उदाहरण है।[२१४]

सुदर्शन

सुदर्शनजी ने अपनी कहानियों में दो विरोधी भाव धाराओं का विश्लेषण किया है जैसे 'हार की जीत'। इस कहानी के बाबा भारती एक विरागी साधु हैं। पर उनमें गृस्पृहता और घोड़े के प्रति मानव सुलभ आसक्ति का अन्तर्द्वन्द्व चलता है जिसका लेखक ने सफल चित्रण किया है।

राजा राधिकारमण सिंह

राजा राधिकारमण सिंह के पात्रों को हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं। पहले स्त्री पात्र हैं जो अत्याचार पीड़िता हैं। ये प्रायः एक ही सांचे में ढली मिलती हैं। 'संस्कार की चिनगी' 'पुरुष और नारी' की सुधा 'राम रहीम' की बेला, 'सूरदास' की धनिया आदि नारियां समान गुणों से परिपूर्ण हैं। वे अत्याचारों को सहती हुई सुंदर भविष्य के लिए संघर्ष करती हैं। पर ये स्त्री-पात्र यह कहती हुई लगती हैं कि अब समय के अनुसार सतीत्व की परिभाषा में परिवर्तन की जरूरत है। पुरुष पात्रों में दो श्रेणियां मिलती हैं—एक आदर्शवादी दूसरे वासनाओं के गुलाम। वासनाओं के ये पुतले सामन्ती व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं। राम-रहीम के नवाब साहब ऐसे ही एक पात्र हैं। तीसरे वर्ग में विभिन्न तरह के पात्र हैं जिनका कथा में गौण स्थान है। ऐसे पात्र सात्विक और दुष्ट दोनों ही तरह के हैं।

इन सभी प्रकार के पात्रों का राजा साहब की कृतियों में सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है। उनके पात्रों में वैयक्तिक विशेषताएं प्रचुर मात्रा में मिलती हैं और उनका उत्थान-पतन भी अत्यधिक स्वाभाविक ढंग से होता चलता है। वे अपने पात्रों को बार बार कसौटी पर कसते हैं जिसके लिए वे मनोवैज्ञानिक प्रणाली का सहारा लेते हैं। अन्तिम निष्कर्ष तक वे पाठकों के अत्यंत परिचित हो जाते हैं।

कहानियों में उनके पात्रों की वैयक्तिक विशेषताएं और भी उभरी हैं।

वे जो कुछ भी अपने पात्रों के बारे में कहना चाहते हैं, कथोपकथन के माध्यम से

---

२१३ साहित्य, अप्रैल, १९५७, पृ० ६२

२१४ प्रतिनिधि कहानियां, पृ० १७

कहते हैं अपनी ओर से कुछ नहीं कहते। इस कथोपकथन के द्वारा ही उनके पात्रों का सारा चरित्र पाठकों की आँखों के सामने आ जाता है। यह उनकी खास विशेषता है जिससे चरित्रांकन में उन्हें असाधारण सफलता मिली है। उनके पात्र अधिक सजीव और स्वाभाविक बन पाये हैं। इसका एक कारण यह भी है कि उनके पात्र साधारण जन हैं। जैनेन्द्र की तरह उन्होंने असाधारण पात्रों को अपने चरित्र-चित्रण के लिए नहीं चुना है जिससे उनमें अस्वाभाविकता नहीं पायी है।[265]

उनकी भाषा मुहावरेदार और उर्दू मिश्रित है जो पाठक को अद्भुत आनन्द प्रदान करती है।

चतुरसेन शास्त्री

आचार्य चतुरसेन शास्त्री 'उग्र' एवं ऋषभचरण जैन आदि हिन्दी साहित्य के प्रकृतिवादी कथाकार हैं। इनकी रचनाओं में ऐसे नर-पशुओं का चित्रण हुआ है जो समाज के कीड़े हैं और इन लेखकों ने पुरुष और स्त्रियों के बाह्य सौन्दर्य के चित्रण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है।[266] श्री शास्त्री पर प्रसादजी का काफी प्रभाव पड़ा है। दुखवा मैं कासू कहूँ मोरी सजनी नूरजहाँ का कौशल सिंहगढ़ विजय बसन्त पूर्णाहुति संका आदि इनकी अमर कहानियाँ हैं। इनके अधिकांश औपन्यासिक चरित्र भी प्रकृतिवादी और ऐतिहासिक हैं जिनका क्रमिक चरित्र विकास भी नहीं हो पाता है। समस्याओं और घटनाओं को लेकर वे अवश्य चल पड़ते हैं पर अन्त तक उन्हें नहीं निभा पाते और न एक संघटित कथा का निर्माण कर पाते हैं। इनके पात्र अवश्य सजीव हैं परन्तु वे उपन्यासों की घटनाओं से अलग-अलग से प्रतीत होते हैं। कहीं-कहीं ये पात्र आवश्यकता से अधिक यथार्थवादी और कहीं-कहीं अत्यधिक काल्पनिक हो उठते हैं। उन्होंने साधारण पात्रों की साधारण समस्याओं का चित्रण नहीं किया है। वैशाली की नगर-वधू में कुछ सबल पात्रों का निर्माण अवश्य हो पाया है। किन्तु उनके अधिकांश पात्र निर्जीव और अस्वाभाविक दीख पड़ते हैं।[267]

राय कृष्णदास

राय कृष्णदास के चरित्र अत्यधिक भावुक एवं कल्पना के धरातल पर चित्रित हुए हैं। उनके विकास में मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व सफलता से चित्रित हुआ है। 'गहुला' और 'प्रसन्नता की प्राप्ति' आदि इनकी कहानियों में इसी प्रकार की विशेषताओं के दर्शन होते हैं।

---

२६५. राजा राधिकारमणसिंह व्यक्तित्व और कला पृ० १०२

२६६ डा० हि० सा० का विकास पृ० ३२६

२६७ हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० ९५

"उग्र"

उग्रजी के उपन्यासों का प्रधान विषय व्यक्ति और समाज है। इन दोनों के ही चित्रण में उन्होंने कटु व्यंग का सहारा लिया है। समाज की दुर्बलताओं की खिल्ली उड़ाना ही उग्रजी के विचार से समाज-सुधार का मार्ग है।[268] उग्रजी ने यथार्थ के नाम पर वेश्यालय मदिरालय और इसी प्रकार के वर्जित एवं घृणित वर्ग में जाकर चरित्रों को परखा और अध्ययन किया। इसीलिए बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे विद्वानों ने इस तरह के साहित्य को 'घासलेटी' की संज्ञा दी।[269] वे पात्रों के बाह्य चित्रण में जैसे सफल रहे वैसे मानसिक चित्रण में नहीं। उन्होंने मनुष्य के अंतर के चित्रण पर ध्यान नहीं दिया। इनके पात्रों में व्यक्तिगत विशेषताओं की अपेक्षा वर्गगत विशेषताएं अधिक मिलती हैं। उग्रजी ने इन वर्गगत चरित्रों का सफल चित्रण किया है। यह उनकी विशेषता है कि उन्होंने समाज के जिस अंश का चित्रण किया है, उससे वे स्वयं पूर्ण परिचित हैं।[270]

चतुरसेन शास्त्री उग्र एवं ऋषभचरण आदि ने अंग्रजी के रोमांचकारी उपन्यास लन्दन रहस्य आदि से प्रेरणा ली। फलस्वरूप इनके उपन्यासों का अश्लील होना स्वाभाविक है।[271] चाकलेट चन्द हसीनों के खतूत दिल्ली का दलाल शराबी बीवाबी आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

वाचस्पति पाठक

प्रेमचन्द और प्रसाद की विशेषताओं को लेकर ही इनकी कहानियों का विकास हुआ है। इनकी प्राय सभी कहानियां चरित्र-प्रधान हैं। सूरदास कल्पना कागज की टोपी एवं फेरीवाली आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं। इन्होंने प्राय उपेक्षित दुखी और कारुणिक चरित्रों को ही अपनी रचनाओं का विषय बनाया है।

विनोदशंकर व्यास

व्यासजी की कहानियां चरित्र प्रधान होती हैं। इनकी कहानियों में चारित्रिक द्वन्द्व की तीव्रता मुख्य रूप से दिखलायी गयी है। *'कल्पनाओं के राजा'* नामक कहानी में नायक के मानसिक द्वन्द्व का सफल चित्रण है। इन्होंने अपनी कहानियों में प्राय विशिष्ट चरित्रों का चित्रण किया है जो कल्पनात्मक एवं मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण है।[272]

---

२६८. 'चाकलेट' की भूमिका, पृ० ४
२६९. दृष्टिकोण पृ० ४
२७० *हिन्दी उपन्यास*, पृ० २००
२७१ तिरपिटि, पृ० २३६
२७२ वही पृ० २१६

जी० पी० श्रीवास्तव

श्रीवास्तवजी हास्यरस के लेखक हैं। पर उनके चरित्र अप्रासंगिक अस्वाभाविक एवं अशिष्ट प्रतीत होते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में 'लतखोरीलाल' जैसे हास्यास्पद चरित्रों की सृष्टि की। किन्तु, इस हास्य में सुरुचि-संस्कार, उक्ति वचिम्य एवं बुद्धि-विलास नहीं है। सिर्फ मूर्खतापूर्ण और हास्यास्पद कार्यों द्वारा हास्य रस की सृष्टि का प्रयास किया गया है। फिर भी उन्हें अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई जिससे उस समय की सामाजिक चेतना के स्तर का भी पता चलता है।

अमृतलाल नागर

अमृतलाल नागर ने भी 'सेठ बांकेमल' नामक हास्यरस के उपन्यास की रचना की है। इसमें प्राचीन संस्कृति के प्रेमी एवं वर्तमान की सभी बातों को अमंगल मानने वाले सेठ बांकेमल एवं चौबेजी—ये दो प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास की भाषा भी चरित्र विकास में सहायक है।

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि 'निराला' की रचनाओं में हास्य और व्यंग्य चरित्रों का सुन्दर चित्रण हुआ है। 'कुल्लीभाट' एवं 'बिल्लेसुर बकरिहा' नामक उनके दो उपन्यासों में ये चरित्र उभरकर आये हैं। 'कुल्लीभाट' में चरित्र-विकास स्वाभाविक ढंग से हुआ है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' का नायक पग-पग पर ठोकरें खाता है पर साहस का त्याग नहीं करता। बिल्लेसुर का चित्रण तटस्थ ढंग से हुआ है।

निरालाजी के प्रथम कहानी-संग्रह की 'सुकुल की बीबी' कहानी भी एक सामाजिक एवं व्यंग्य-प्रधान कहानी है। इसमें संस्मरण शैली अपनायी गयी है। इसमें निरालाजी की कहानी-कला अपरिपक्वावस्था में है। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' में एक ऐसी असती स्त्री का चित्रण हुआ है जो अपने पति को प्रसन्न रखने एवं प्रेमी को रिझाने के लिए पतिव्रत धर्म पर निबन्ध लिखती है। यह एक सफल चित्रण है। 'चतुरी चमार' उनकी एक प्रगतिशील कहानी है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' की तरह इसमें भी संस्मरणात्मक शैली का उपयोग किया गया है। इसके अलावा अप्सरा अलका एवं प्रभावती—ये तीन उपन्यास एवं सखी और लिली नाम के कहानी संग्रह भी हैं। इन पुस्तकों में स्त्री-चरित्रों के चित्रण को प्रधानता मिली है। यहाँ हम निरालाजी को स्त्री-स्वातन्त्र्य के प्रबल समर्थक के रूप में पाते हैं। पर वे स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृङ्खलता के समर्थक नहीं हैं। इन कृतियों में नारी के प्रेमपूर्ण शिक्षित और संस्कृत रूप को दिखाने का प्रयास किया गया है।

निरालाजी ने इन कृतियों में भारतीय परिवार की पवित्रता का समर्थन किया है। उन्होंने समाज में होने वाले—खासकर स्त्रियों पर—अत्याचारों का वास्तविक चित्रण किया है। साथ ही आदर्श चरित्रों की सृष्टिकर अत्याचारों से लोहा लेने की

भावना का भी समर्थन किया है। जमींदार की चरित्र भ्रष्टता की शिकार 'भवका' की शोभा का प्रतिरोध इसका उदाहरण है। 'भवका' के पंडित और विनय जमींदारों और सरकारी अफसरों के विरुद्ध गाँवों में जाकर जनता को संगठित करते हैं। 'निरुपमा' में भी यही भावना है। उसका 'कुमार' एक सशक्त चरित्र है। अप्सरा में निरालाजी ने आदर्शवादिता पर बल दिया है, किन्तु अलका में किसानों के जीवन का अच्छा चित्रण हुआ है। चित्रण की दृष्टि से निराला यथार्थवाद के समर्थक और प्रमा-णन की दृष्टि से वैज्ञानिक हैं। कवि होने के बावजूद उनके कथा-साहित्य में कल्पना का निरुद्देश्य प्रयोग नहीं मिलता है। आज के कलावादी युग में उनके चरित्र 'पिछड़े हुए' और 'आउट आफ डेट' लग सकते हैं। पर वे भारतीय जन-जीवन का सच्चा रूप रूप पेश करते हैं इसमें कोई शक नहीं।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयीजी ह्रासोन्मुख जीवन के भावुक कथाकार हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में कथानक का स्वरूप बहुत कुछ समान ही है। मनोविश्लेषण के अन्तर्द्वन्द्व के आधार पर उनकी कहानियों में जो चरित्र-विकास दिखाया गया है, उसे हम प्रेमचन्द की परम्परा से कुछ आगे बढ़ा हुआ पाते हैं। उनकी कहानियों में 'फ्रस्ट्रेटेड' पात्रों का बाहुल्य है जिनके माध्यम से उच्च और मध्यमवर्ग के विविध संस्कारों एकांतिक भावनाओं, वैषम्य कुंठाओं और मनोव्यथाओं का चित्रण किया गया है। इस तरह इनकी कहानियों में जनरव का सामाजिक कोलाहलों का चित्र नहीं, वरन् वैयक्तिक मनोभावों को उपस्थित किया गया है। फलस्वरूप, इनके पात्र निराशावादी दार्शनिक, रोमांटिक और कष्ट सहनेवाले आदर्शवादी हैं और उनमें चेष्टाओं का भी अभाव है।

उनकी रचनाओं के मूल में सेक्स-सम्बन्धी वही अतृप्ति है जो डी० एच० लारेन्स की रचनाओं में मिलती है।[२७३] उनके पात्र जीवन-संघर्ष के मैदान में उतरते तो हैं, पर अंत में कामविकार, नियति की निर्ममता और जीवन में निराशा के शिकार होकर चीखने-चिल्लाने लगते हैं। वे अपना पुरुषार्थ प्रदर्शित न कर नियति को आत्म-समर्पण कर देते हैं जो तामसी युग का दर्शन है।[२७४] इसीलिए साहित्य में ऐसे पात्रों की सृष्टि सिर्फ समाज में निष्क्रियता और थोथी भावुकता को उभारने वाली होती है जो साहित्य का सच्चा लक्ष्य नहीं।

वृन्दावनलाल वर्मा

वर्माजी ने स्वयं कहा है—"मेरे उपन्यासों के पात्र मेरे जीवन के अनुभवों के परिणाम हैं। उनमें से बहुत से तो मेरे सम्पर्क में भी आये हैं।"[२७५] इसीलिए उनके

---

२७३ हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी पृ० २०
२७४ आ० कथा-साहित्य, पृ० १४६
२७५. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १४१

पात्रों की रूपरेखा इतनी स्पष्ट और उभरी हुई है कि उनके व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता और भिन्नता सुरक्षित है। पात्रों की सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं और बाह्यस्वरूप के विस्तृत विवरण द्वारा वे उनका सजीव चित्र पाठकों के सामने उपस्थित करने में सफल हुए हैं। 'गढ़-कुंडार' में नागदेव और अग्निदत्त के शारीरिक गठन प्रकृति और स्वरूप आदि का लगभग दो पृष्ठों में चित्रण हुआ है।[२७६]

वर्माजी के प्रायः सभी प्रमुख पात्र आकर्षक हैं और पाठकों के मन पर अपना स्थायी प्रभाव डालने में सफल होते हैं। पात्रों में व्याप्त तन्मयता निर्भयता और निस्पृहता बीते सामन्तवादी युग के प्रभाव के परिचायक हैं।[२७७]

इनके पात्रों की दो श्रेणियाँ हैं। पहले वे हैं जो सिर्फ लड़ने-भिड़नेवाले ईमानदार, वीर साहसी और अपनी धुन के पक्के हैं। क्रोधित होने पर इन्हें बुद्धि और विवेक से कोई ताल्लुक नहीं रहता। दूसरे वे हैं जो वीर धीर साहसी होने के साथ ही लोलुप विलासी तामसी और स्वेच्छाचारी भी हैं। इनमें तामसी दुर्गुणों का प्रचण्डतम रूप मिलता है।

उनकी नारी पुरुष से कहीं अधिक ऊंची है। उनमें बाह्य सौंदर्य और लावण्य के अतिरिक्त आंतरिक तेज भी है। उनकी दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी प्रेरणा है। नारी सम्बन्धी उनकी यह धारणा प्रारम्भिक उपन्यासों में अधिक कल्पना मय एवं रोमांटिक है।[२७८] 'गढ़ कुंडार' की तारा एवं 'विराटा की पद्‌मिनी' की कुमुद उपन्यासकार की इसी प्रारम्भिक प्रवृत्ति की उपज हैं। बाद की कृतियों में वे संघर्ष की कठोर भूमि पर अपना जौहर दिखाती हैं। कचनार मृगनयनी लाखी रूपा और दुरगाई ऐसी ही नारियां हैं। लक्ष्मीबाई तथा अहिल्याबाई में ये गुण अपनी चरम सीमा पर दिखाई पड़ते हैं।

इसके अलावा उनकी नारियों में ईर्ष्यालु प्रेमिका उजियारी आकांक्षामयी, लोमती लालसा की पुतली कुन्ती धन एवं शारीरिक सुख की लोलुप मंजना आदि नारी-चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं।

वर्माजी के उपन्यासों का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। उनके पात्रों में सभी वर्गों और क्षेत्रों का समावेश है—खासकर ऐतिहासिक क्षेत्र। अतः वे प्रेमचन्द और शरत्‌चन्द्र की परम्परा से भी आगे बढ़े हैं। इसीलिए उनकी तुलना अक्सर विदेशी उपन्यासकार स्काट से भी की जाती है। वर्माजी को सभी वर्गों के पात्रों के चित्रण में अपूर्व सफलता मिली है। आलोचक श्री सियाशरण प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा' में वर्माजी के पात्रों का व्यापक वर्गीकरण और विस्तृत विवेचन किया है।[२७९]

---

२७६. लोकजीवन और साहित्य पृ० ७८

२७७. वही पृ० ७४

२७८. वही पृ० ७५

२७९. वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा, पृ० २१

राखीबन्द भाई, तातार और एक वीर राजपूत आदि वर्माजी की प्रारम्भिक ऐतिहासिक कहानियां हैं। आगे चलकर उनकी कथा का विकास कलाकार का दण्ड, शेरशाह का न्याय, सौन्दर्य प्रतियोगिता और खजुराहो की दो मूर्तियां में मिलता है। इन समस्त कहानियों में चरित्र-विकास की प्रेमचंद-परम्परा का निर्वाह है। प्रसाद की भांति उनमें ऐतिहासिक वातावरण, ओज और स्वाभाविकता भी मिलती है। बाद में वर्माजी ने सामाजिक समस्याओं के आधार पर भी सफल सामाजिक कहानियां लिखी हैं। ये कहानियां निश्चित रूप से चरित्र-प्रधान हैं। किन्तु इन कहानियों में भी उनकी आदर्शवादिता, चरित्र के प्रति निष्ठा एवं मानवता की विराट भावना सर्वत्र प्रतिष्ठित हुई है।

उपन्यास के क्षेत्र में उनका स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के कथानक मध्ययुगीन भारतीय इतिहास से लिये गये हैं। इनका विस्तार १४वीं से १९वीं शताब्दी तक है। इनमें क्षत्रिय जातियों के जीवन-संघर्ष एवं त्याग-बलिदान की पावन झांकी तथा तत्कालीन झांसी, नरवर, दिल्ली आदि की स्थिति के सच्चे चित्र दिखाई पड़ते हैं।[२८०]

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यास प्रधानतः आदर्शवादी हैं जिनमें सामन्ती संस्कृति का चित्रण हुआ है। लेखक ने अपने चरित्रों को अतीत गौरव के संरक्षक के रूप में चित्रित किया है।

'गढ़ कुंडार' का नायक नागदेव अपने युग का उपयुक्त प्रतिनिधि है। प्रणय में निराशा मिलने पर वह प्रतिहिंसा के लिए युद्ध करता है।

विराटा की पद्मिनी की नायिका कुमुद अनुपम सुन्दरी है। उसके लिए युद्ध होते हैं। अंत में अपने प्रेमी कुंजरसिंह के प्रति प्रेम का पूर्ण प्रदर्शन करके वह बेतवा में अपने को विसर्जित कर देती है। कुमुद के चरित्र में रोमांस और आदर्श का यथार्थवादी रूप अच्छा मिलता है।

मुसाहिबजू में सामन्ती युग के शासकों का उज्ज्वल चरित्र दिखाया गया है।

झांसी की रानी की कथा तो जगत्विख्यात है ही। लेखक ने लक्ष्मीबाई का चरित्र-चित्रण इतिहास तथा भावुकता के सुखद समन्वय के आधार पर किया है। राव दिलीपसिंह की रानी की दासी कचनार में आत्मसंयम दृढ़ता आत्माभिमान आदि चारित्रिक गुण प्रचुर मात्रा में हैं। लेखक ने सामान्य वर्ग से भी आदर्श ग्रहण कर अपनी सारग्राहिणी वृत्ति का परिचय दिया है।[२८१]

ग्रामीण कन्या मृगनयनी अपनी वीरता, शौर्य और अनुपम सुन्दरता के कारण ग्वालियर के मानसिंह तोमर की परिणीता बनती है, संयम स्वाभिमान, सहिष्णुता, उदारता आदि उसके गुणों का चित्रणकर लेखक ने उसे एक आदर्श भारतीय महिला के रूप में उपस्थित किया है।

---

२८० आकाशवाणी, लखनऊ (१ ११ ५८), ब्रजकिशोर मिश्र

२८१ हिन्दी उपन्यास (प्रथम), पृ० १४१

'टूटे काँटे' उपन्यास की नायिका नूरबाई नृत्यकला और संगीत से बर्बर नादिरशाह और मुहम्मदशाह को भी मुग्ध कर देती है। अंत में वह एक साधारण सैनिक की पत्नी बनती है। वृन्दावन में मीरा-धुर के पद गाती हुई वह आत्मविभोर हो जाती है। लेखक ने इसे भक्ति और प्रेम के रंगों में रंगकर उसके चरित्र को चमकाया है।

पेशवा माधवजी सिंधिया को एक लोकनायक के रूप में चित्रित किया गया है। एक विनम्र, साहसी, दूरदर्शी और विचारवान राजनीतिज्ञ के रूप में इनके उज्ज्वल चरित्र के चित्रण में लेखक को पूरी सफलता मिली है।

नायिका के रूप में रानी अहिल्याबाई के चित्रण में लेखक ने इतिहास के यथातथ्य चित्र उपस्थित किये हैं।

लेखक ने इन कृतियों में भारतीय नारीत्व की मर्यादा को पुनः जाग्रत किया गया है। सामाजिक उपन्यासों में आधुनिक युग की विभिन्न समस्याओं को लिया गया है। इन सामाजिक उपन्यासों के नायक भी निम्न अथवा मध्यमवर्ग के हैं। इनके चरित्र-चित्रण में लेखक ने यथार्थवादी शैली का प्रयोग किया है। साथ ही सभी कथाओं में रोमांस की अविच्छिन्न धारा विद्यमान है।[282]

'अचल मेरा कोई' की नायिका कुन्ती नारी-स्वतन्त्रता की पोषक एक शिक्षित तरुणी है। उसके चरित्र में कर्तव्यशीलता, दृढ़ता एवं आधुनिकता और प्राचीनता का समन्वय मिलता है।

'सगन' में दहेज प्रथा पर आक्षेप है। देवीसिंह की परिणीता रामा केवल १०० पैसों का दहेज न पहुँचने के कारण श्वसुर द्वारा परित्यक्ता है।

'कुंडली चक्र' का नायक अजित चरित्रवान, तितोंमी, दुखियों का सहायक एवं न्यायप्रेमी है। अजित के रूप में लेखक ने भारतीय समाज के युवकों के लिए एक आदर्श उपस्थित किया है।

'प्रत्यागत' में मंगल का चरित्र प्रधान है। रूढ़ियों की विवशता एवं यथार्थ चित्रण ही उसके चरित्र में प्रधान है। इस पात्र में भी लेखक ने आदर्श भारतीय युवक की कल्पना की है।

'कभी न कभी' में देवनू नामक मजदूर का चरित्र प्रधान है। लेखक ने इस कृति में आदर्शोन्मुख यथार्थ की सृष्टि की है।

'अमरबेल' का बेसराज एक पूर्णतः यथार्थवादी चरित्र है। उसमें मानवमात्र के सभी दुर्गुण हैं। फिर भी लेखक ने अंत में उसके चरित्र में सुधार दिखलाया है।[283] इस उपन्यास में सरकारी ग्रामविकास योजनाओं का यथार्थ रूप उपस्थित किया गया है। किन्तु, इस कृति में चरित्र की दृष्टि से कोई भी सबल चरित्र नहीं आया है।

२८२ हिन्दी उपन्यास, पृ० ३४६
२८३ आकाशवाणी, लखनऊ, ३ १० ५८ प्रसारित वार्ता

सिंहावलोकन

संक्षेप में ये विभिन्न भूमियाँ हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न लेखकों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्रों एवं 'उग्र' और चतुरसेन शास्त्री के प्रकृतिवादी पात्रों की दो धाराओं के दर्शन होते हैं। इस युग के अंतिम चरणों में यथार्थ के चार अन्य रूपों के भी दर्शन होते हैं, यथार्थोन्मुख आदर्शवाद (कौशिक) मनोविश्लेषणात्मक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ (इलाचन्द्र जोशी) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (यशपाल) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ (द्वारकाप्रसाद) किन्तु, इन नये चित्रणों का अभी प्रारंभ ही हुआ था।[284]

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ।

डा० रामविलास शर्मा[285] आदि आलोचकों का मत है कि छायावाद ने भी इस युग में चरित्र-विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हालांकि प्रेमचन्द इस प्रभाव से अवश्य अछूते रहे। प्रसादजी की कई कहानियाँ कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार है। ग़बन और कायाकल्प में प्रेमचन्द के उपन्यासों का अंत भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। निराला के सभी उपन्यासों पर इसका गहरा रंग है। प्रसादजी की 'तितली' छायावादी पुतली है। गोदान की मालती सुनीता अपि और रेखा आदि छायावाद के प्रतीक पात्र हैं।[286] छायावाद तो लेखक या कवि की आत्मानुभूति को ही व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'आत्मकथा' लिखने की परम्परा-सी चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी असमर्थ ही बना रह गया। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला-चित्रित राम की करुण असमर्थता उस युग के व्यक्ति की ही असमर्थता है। बाद के वर्षों में छायावादी भावना को ग्रहण करने के बावजूद कथाकारों का ध्यान यथार्थ चित्रण की ओर गया। कंकाल सुनीता अलका और तलाक जैसी रचनाओं में नये चरित्रों की सृष्टि हुई जिनमें विद्रोह की भावना व्यक्त हुई। गोदान के अंत में होरी के रूप में आदर्श को टूटते हुए पाते हैं और गोबर की नई यथार्थवादिनी दृष्टि सामने आती है। चरित्र अब मानसिक-रासायनिक प्रक्रिया के निष्कर्ष के रूप में आने लगे। इनमें अस्पष्ट चित्रण की रहस्य वीथियाँ नहीं हैं।[287] हालांकि सन २० से ३० और ४० में बहुत बड़ा अन्तर है। पर प्रेमचन्द के सम्पूर्ण युग का सिंहावलोकन करने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि चाहे राजनीति अथवा साहित्य में, उस समय उन्हीं का व्यक्तित्व सबसे अधिक क्रांतिकारी था।[288]

---

२८४ श्री नारायण एंड श्री पीयूष पृ० ८७

२८५. संस्कृति और साहित्य, पृ०, ४१

२८६ छायावाद, पृ० १४१

२८७ आलोचना (११), पृ० ६०

२८८. प्रमचन्द (शर्मा) पृ० १२

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर : चरित्र-विकास

दूसरे महायुद्ध से लेकर अब तक के कथा-साहित्य में एक अतिरोध और असीम निराशा दिखाई पड़ती है।[1] इसका कारण युद्ध द्वारा उत्पन्न सामाजिक और नैतिक समस्याएं हैं जिसमें सारी उथल-पुथल के बीच लेखक ने अपने को निरीह, असहाय और निहत्था महसूस किया। उसके सारे नैतिक मान-दण्ड नष्ट हो गये। जीवन की साधारण जरूरतों के लिए उसे कदम-कदम पर झुकना पड़ा।[2] इतने बड़े परिवर्तन के सम्मुख अपने को पूर्णत: असहाय पाकर वह निराशा और कुंठा का शिकार हो गया।[3] उसके अंदर की मानवता और विवेक का ह्रास हो गया। इतनी बड़ी विडम्बना के समक्ष उसका रास्ता भूल बैठना आश्चर्यजनक नहीं। आश्चर्य है मगर तो सिर्फ इस बात पर कि वह अब तक नहीं समझ पाया है कि इसी विसंगति से लड़कर ही तो जीवन के मूल्यों की स्थापना करनी है। किन्तु, ऐसा वह समझ नहीं पाया। भयंकर निराशा ने उसकी आत्मा को जड़ और चेतना को कुंठित बना दिया। उसने अपने दुःखों की संत्रासमात्र छाया को ही यथार्थ मान लिया और इस तरह नितांत व्यक्तिवादी कला का हमारे साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ। स्पष्ट है कि ऐसी कला जनजीवन से दूर होने के कारण मरणासन्न हो जाती है।

श्री जैनेन्द्र के उपन्यास इसी अमेय नैराश्य के परिणाम हैं जिनमें सौन्दर्य तो क्या काल्पनिक सौन्दर्य का भी अभाव है। उनमें सामाजिक या वैयक्तिक यथार्थ भी नहीं मिलता। उनमें न जीवन है और न वे जीवन के चित्र हैं। इतनी बोझिल, गतिहीन और तिलिस्मी कहानी पढ़ना धैर्य की परीक्षा नहीं तो क्या है।[4]

अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी एवं भगवतीचरण वर्मा जैसे ख्यातिप्राप्त कलाकारों ने भी अपने उपन्यासों में दर्शन एवं मनोविज्ञान के धरातल पर नवीन चरित्रों की

---

१ आलोचना (१०), पृ० ६७

२ अध्ययन के विचार, पृ० ११२

३ नयी समीक्षा, पृ० ४६

संस्कृति और साहित्य पृ० ८७

४ आलोचना (१०) पृ० ७६

५. वही, पृ० १८

सिंहावलोकन

संक्षेप में ये विभिन्न भूमियाँ हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न लेखकों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्रों एवं उग्र और चतुरसेन शास्त्री के प्रकृतिवादी पात्रों की दो धाराओं के दर्शन होते हैं। इस युग के अंतिम चरणों में यथार्थ के चार अन्य रूपों के भी दर्शन होते हैं यथार्थोन्मुख आदर्शवाद (जैनेन्द्र) मनोविश्लेषणात्मक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ (इलाचन्द्र, अज्ञेय) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (यशपाल) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ (द्वारकाप्रसाद) किन्तु, इन नये चित्रणों का अभी प्रारंभ ही हुआ था।[284]

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ।

डा० रामविलास शर्मा[285] आदि आलोचकों का मत है कि छायावाद ने भी इस युग में चरित्र विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हालांकि प्रेमचन्द इस प्रभाव से अवश्य अछूते रहे। प्रसादजी की कई कहानियाँ कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार है। सेवासदन और प्रेमाश्रम में प्रेमचन्द के उपन्यासों का अंत भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। निराला के सभी उपन्यासों पर इसका गहरा रंग है। प्रसादजी की 'तितली' छायावादी युवती है। गोदान की मालती सुनीता सुखि और रेखा आदि छायावाद के प्रतीक पात्र हैं।[286] छायावाद तो लेखक या कवि की आत्मानुभूति को ही व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'आत्मकथा' लिखने की परम्परा-सी चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी असमर्थ ही बना रह गया। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला-चित्रित राम की करुण असमर्थता उस युग के व्यक्ति की ही असमर्थता है। बाद के वर्षों में छायावादी भावना को ग्रहण करने के बावजूद कथाकारों का ध्यान यथार्थ चित्रण की ओर गया। कंकाल सुनीता अलका और तलाक जैसी रचनाओं में नये चरित्रों की सृष्टि हुई जिनमें विद्रोह की भावना व्यक्त हुई। गोदान के अंत में होरी के रूप में आदर्श को टूटते हुए पाते हैं और गोबर की नई यथार्थवादिनी दृष्टि सामने आती है। चरित्र अब आर्थिक-राजनीतिक प्रक्रिया के निष्कर्ष के रूप में आने लगे। इनमें अस्पष्ट चिन्तन की धुंधली वीथियाँ नहीं हैं।[287] हालांकि सन् २० से ३० और ४० में बहुत बड़ा अन्तर है। पर प्रेमचन्द के सम्पूर्ण युग का सिंहावलोकन करने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि क्या राजनीति क्या साहित्य में उस समय उन्हीं का व्यक्तित्व सबसे अधिक क्रांतिकारी था।[288]

---

२८४ डी नागेश एंड डी पीयूष पृ० ८७

२८५. संस्कृति और साहित्य, पृ , ४१

२८६ छायावाद पृ० १४३

२८७ आलोचना (११) पृ० ६०

२८८. प्रेमचन्द (शर्मा), पृ० १ २

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर . चरित्र-विकास

दूसरे महायुद्ध से लेकर अब तक के कथा-साहित्य में एक गतिरोध और असीम निराशा दिखाई पड़ती है।[1] इसका कारण युद्ध द्वारा उत्पन्न सामाजिक और नैतिक समस्याएं हैं जिसमें सारी उथल-पुथल के बीच लेखक ने अपने को निरीह, असहाय और निहत्था महसूस किया। उसके सारे नैतिक मान-दंड नष्ट हो गए। जीवन की साधारण जरूरतों के लिए उसे कदम-कदम पर झुकना पड़ा।[2] इतने बड़े परिवर्तन के सम्मुख अपने को पूर्णतः असहाय पाकर वह निराशा और कुंठा का शिकार हो गया।[3] उसके अंदर की मानवता और विवेक का ह्रास हो गया। इतनी बड़ी विषमता के समक्ष उसका रास्ता भूल बैठना आश्चर्यजनक नहीं। आश्चर्य है अगर तो सिर्फ इस बात पर कि वह अब तक नहीं समझ पाया है कि इसी विसंगति से लड़कर ही तो जीवन के मूल्यों की स्थापना करनी है। किन्तु ऐसा वह समझ नहीं पाया। भयंकर निराशा ने उसकी आत्मा को जड़ और चेतना को कुंठित बना दिया। उसने अपने दुःखों की कंपायमान छाया को ही यथार्थ मान लिया और इस तरह नितांत व्यक्तिवादी कथा का हमारे साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ। स्पष्ट है कि ऐसी कथा जनजीवन से दूर होने के कारण मरणासन्न हो जाती है।[4]

श्री जैनेन्द्र के उपन्यास इसी अभेद्य नैराश्य के परिणाम हैं जिनमें सौन्दर्य तो क्या काल्पनिक सौन्दर्य का भी अभाव है। उनमें सामाजिक या वैयक्तिक यथार्थ भी नहीं मिलता। उनमें न जीवन है और न वे जीवन के चित्र हैं। इतनी बोझिल गतिहीन और तिलिस्मी कहानी पढ़ना धैर्य की परीक्षा नहीं तो क्या है।[5]

अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी एवं भगवतीचरण वर्मा जैसे ख्याति-प्राप्त कथाकारों ने भी अपने उपन्यासों में दर्शन एवं मनोविज्ञान के धरातल पर नवीन चरित्रों की

---

१ आलोचना (१०), पृ० ३७
२ अध्ययन के विचार, पृ० ११२
३ नयी समीक्षा, पृ० ४६
संस्कृति और साहित्य, पृ० ८७
४ आलोचना (१०), पृ० ८६
५. वही पृ० ६८

सिंहावलोकन

संक्षेप में ये विभिन्न भूमियां हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न लेखकों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्रों एवं 'उग्र' और चतुरसेन शास्त्री के प्रकृतिवादी पात्रों की दो धाराओं के दर्शन होते हैं। इस युग के अंतिम चरणों में यथार्थ के चार अन्य रूपों के भी दर्शन होते हैं, यथार्थोन्मुख आदर्शवाद (जैनेन्द्र) मनोविश्लेषणात्मक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ (इलाचन्द्र, अज्ञेय) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (यशपाल) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ (द्वारकाप्रसाद) किन्तु, इन नये चित्रणों का अभी आरंभ ही हुआ था।[184]

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ।

डा० रामविलास शर्मा[185] आदि आलोचकों का मत है कि छायावाद ने भी इस युग में चरित्र-विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हालांकि प्रेमचन्द इस प्रभाव से अवश्य अछूते रहे। प्रसादजी की कई कहानियां कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार है। सदनों और आश्रमों में प्रेमचन्द के उपन्यासों का अंत भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। निराला के सभी उपन्यासों पर इसका गहरा रंग है। प्रसादजी की 'तितली' छायावादी युवती है। गोदान की मालती, सुनीता, शशि और रेखा आदि छायावाद के प्रतीक पात्र हैं।[186] छायावाद तो लेखक या कवि की आत्मानुभूति को ही व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'आत्मकथा' लिखने की परम्परा-सी चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी असमर्थ ही बना रह गया। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला-चित्रित राम की करुण असमर्थता उस युग के व्यक्ति की ही असमर्थता है। बाद के वर्षों में छायावादी भावना को ग्रहण करने के बावजूद कथाकारों का ध्यान यथार्थ चित्रण की ओर गया। कंकाल, सुनीता, अलका और तनाव जैसी रचनाओं में नये चरित्रों की सृष्टि हुई जिनमें विद्रोह की भावना व्यक्त हुई। गोदान के अंत में होरी के रूप में आदर्श को टूटते हुए पाते हैं और गोबर की नई यथार्थवादिनी दृष्टि सामने आती है। चरित्र अब मानसिक राजनीतिक प्रक्रिया के निष्कर्ष के रूप में आने लगे। इनमें अस्पष्ट चिन्तन की रहस्य वीथिका नहीं है।[187] हालांकि सन् २० से ३० और ४० में बहुत बड़ा अन्तर है। पर प्रेमचन्द के सम्पूर्ण युग का सिंहावलोकन करने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि क्या राजनीति क्या साहित्य में उस समय उन्हीं का व्यक्तित्व सबसे अधिक क्रांतिकारी था।[188]

---

१८४ दी नावेल एंड दी पीपुल, पृ० ८७
१८५ संस्कृति और साहित्य, पृ०, ४१
१८६ छायावाद पृ० १४१
१८७ आलोचना (११) पृ० ६०
१८८ प्रेमचन्द (शर्मा), पृ० ११

चतुर्थ अध्याय

प्रेमचन्दोत्तर : चरित्र-विकास

दूसरे महायुद्ध से लेकर अब तक के कथा-साहित्य में एक गतिरोध और असीम निराशा दिखाई पड़ती है।[1] इसका कारण युद्ध द्वारा उत्पन्न सामाजिक और नैतिक समस्याएं हैं जिसमें सारी उथल-पुथल के बीच लेखक ने अपने को निरीह, असहाय और निहत्था महसूस किया। उसके सारे नैतिक मान-दंड नष्ट हो गये। जीवन की साधारण जरूरतों के लिए उसे कदम-कदम पर झुकना पड़ा।[2] इतने बड़े परिवर्तन के सम्मुख अपने को पूर्णतः असहाय पाकर वह निराशा और कुंठा का शिकार हो गया।[3] उसके अंदर की मानवता और विवेक का ह्रास हो गया। इतनी बड़ी विडम्बना के समक्ष उसका रास्ता भूल बैठना आश्चर्यजनक नहीं। आश्चर्य है अगर तो सिर्फ इस बात पर कि वह अब तक नहीं समझ पाया है कि इसी विसंगति से लड़कर ही तो जीवन के मूल्यों की स्थापना करनी है। किन्तु, ऐसा वह समझ नहीं पाया। थककर निराशा ने उसकी आत्मा को जड़ और चेतना को कुंठित बना दिया। उसने अपने दुःखों की लंबायमान छाया को ही यथार्थ मान लिया और इस तरह नितांत व्यक्तिवादी कथा का हमारे साहित्य में प्रादुर्भाव हुआ। स्पष्ट है कि ऐसी कला जनजीवन से दूर होने के कारण मरणासन्न हो जाती है।

श्री जैनेन्द्र के उपन्यास इसी अमेय नैराश्य के परिणाम हैं जिनमें सौन्दर्य तो क्या काल्पनिक सौन्दर्य का भी अभाव है। उनमें सामाजिक या वैयक्तिक यथार्थ भी नहीं मिलता। उनमें न जीवन है और न वे जीवन के चित्र हैं। इतनी बोझिल गतिहीन और तिलिस्मी कहानी पढ़ना धैर्य की परीक्षा नहीं तो क्या है।[4]

अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी एवं भगवतीचरण वर्मा जैसे ख्याति-प्राप्त कलाकारों ने भी अपने उपन्यासों में दर्शन एवं मनोविज्ञान के धरातल पर नवीन चरित्रों की

---

१ आलोचना (१०), पृ० ९७
२ अध्ययन के विचार, पृ० ११९
३ नयी समीक्षा, पृ० ४९
संस्कृति और साहित्य, पृ ८७
४ आलोचना (१०), पृ० ८९
५. वही पृ० ९५

सिंहावलोकन

संक्षेप में ये विभिन्न भूमियाँ हैं जिनपर प्रेमचन्द-युग के चरित्रों का विभिन्न लेखकों द्वारा चित्रण हुआ है। इस युग में प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्रों एवं 'उग्र' और चतुरसेन शास्त्री के प्रकृतिवादी पात्रों की दो धाराओं के दर्शन होते हैं। इस युग के अंतिम चरणों में यथार्थ के चार अन्य रूपों के भी दर्शन होते हैं, यथार्थोन्मुख आदर्शवाद (जैनेन्द्र) मनोविश्लेषणात्मक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ (इलाचन्द्र, अज्ञेय) साम्यवादी या समाजवादी यथार्थ (यशपाल) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ (द्वारकाप्रसाद) किन्तु इन नये चित्रणों का अभी प्रारंभ ही हुआ था।[184]

प्रेमचन्द युग में पहली बार हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चरित्रों के विभिन्न पहलुओं का चित्रण हुआ।

डा० रामविलास शर्मा[185] आदि आलोचकों का मत है कि छायावाद ने भी इस युग में चरित्र-विकास को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया हालांकि प्रेमचन्द इस प्रभाव से अवश्य अछूते रहे। प्रसादजी की कई कहानियाँ कथा-साहित्य में छायावाद का प्रसार है। सदनों और आश्रमों में प्रेमचन्द के उपन्यासों का अंत भी छायावादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। निराला के सभी उपन्यासों पर इसका गहरा रंग है। प्रसादजी की 'तितली' छायावादी युवती है। गोदान की मालती सुनीता शशि और रेखा आदि छायावाद के प्रतीक पात्र हैं।[186] छायावाद तो लेखक या कवि की आत्मानुभूति को व्यक्त करने का नया कला-रूप था जो इस युग की विशेषता थी और इसीलिए इस युग में 'आत्मकथा' लिखने की परम्परा-सी चल पड़ी। पर व्यक्ति फिर भी असमर्थ ही बना रह गया। 'राम की शक्तिपूजा' में निराला-चित्रित राम की करुण असमर्थता उस युग के व्यक्ति की ही असमर्थता है। बाद के वर्षों में छायावादी भावना को ग्रहण करने के बावजूद कथाकारों का ध्यान यथार्थ चित्रण की ओर गया। कंकाल सुनीता अलका और तलाक जैसी रचनाओं में नये चरित्रों की सृष्टि हुई जिनमें विद्रोह की भावना व्यक्त हुई। गोदान के अंत में होरी के रूप में आदर्श को टूटते हुए पाते हैं और गोबर की नई यथार्थवादिनी दृष्टि सामने आती है। चरित्र अब मानसिक-रासायनिक प्रक्रिया के निष्कर्ष के रूप में आने लगे। इनमें अस्पष्ट चिन्तन की रहस्य वीथियाँ नहीं हैं।[187] हालांकि सन २० से ३० और ४० में बहुत बड़ा अन्तर है। पर प्रेमचन्द के सम्पूर्ण युग का सिंहावलोकन करने से यह अवश्य कहा जा सकता है कि क्या राजनीति क्या साहित्य में उस समय उन्हीं का व्यक्तित्व सबसे अधिक क्रांतिकारी था।[188]

---

१८४ दी नावेल एंड दी पीपुल, पृ० ८७
१८५. संस्कृति और साहित्य, पृ०, ४३
१८६ छायावाद पृ० १४३
१८७ आलोचना (१३) पृ० ६०
१८८. प्रेमचन्द (शर्मा), पृ० १९

शैली द्वारा भी हुआ। कौशिक ने चरित्र-विकास के लिए संभाषण शैली का सबसे अच्छा उपयोग किया। 'माँ' में इसके अच्छे उदाहरण मिलते हैं जिनसे कथा-चरित्र के विकास विस्तार एवं चित्रण में पर्याप्त सहायता मिलती है।[15] इस प्रकार वर्णन शैली में मनोविज्ञान और संभाषण कला के संयोग से चरित्र-विश्लेषण का पूर्ण विकास हुआ। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इस विकसित शैली के उदाहरण मिलते हैं।[16]

किन्तु कुछ कृतियों जैसे ब्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक', रामचन्द्र शर्मा के 'कलंक' एवं इलाचन्द्र जोशी की 'घृणामयी' में चरित्र-विकास के लिए भिन्न शैली भी अपनायी गयी। इनमें उपन्यास की पूरी कथा उत्तम पुरुष सर्वनाम (मैं) में कही गयी है। किन्तु यह शैली केवल वहीं उपयुक्त है जहाँ एक ही प्रधान चरित्र हो एवं अन्य सभी चरित्र सामान्य तथा संख्या में भी कम हों।[17] साथ ही श्री चन्द्रशेखर पाठक के 'वारांगना-रहस्य' और ब्रजनंदन सहाय के 'राधाकांत' में संभवतः रवीन्द्रनाथ के 'घर और बाहर' की शैली अपनाकर दो-तीन प्रधान चरित्रों ने स्वयं अपने मुँह से अपनी कहानियाँ सुनाई हैं। इस शैली में सिर्फ कथानक को समझने के लिए भी पाठकों को दिमाग लड़ाना पड़ता है यद्यपि प्रधान चरित्रों के चित्रण की दृष्टि से इसकी उपयोगिता अवश्य है।[18]

इनके अतिरिक्त पत्रों द्वारा एवं डायरी के उद्धरणों द्वारा भी चरित्र-विकास दिखलाने की दो और प्रचलित शैलियाँ हैं। 'उग्र' जी का 'चन्द हसीनों के खतूत' पत्र शैली में लिखा उपन्यास है। इस शैली के द्वारा कथानक को समझने में अवश्य कठिनाई होती है। किन्तु चरित्रों का क्रमिक विकास और उनके मनोभावों का सुन्दर विश्लेषण होता चलता है। अज्ञेय का 'नदी के द्वीप में' इस शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है।[19]

प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य में दर्शन मनोविज्ञान एवं साम्यवादी विचार-धारा ने चरित्र-विकास को प्रभावित किया। मानवतावाद युगदर्शन का मूल धरातल बन गया। नैतिक मान्यताओं और आदर्शों में व्यापकता आई। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण और व्यक्तित्व के आधार पर हर प्रश्न पर अपने मंतव्य स्थिर करने लगा।[20] सियाराम शरण गुप्त[21] जैनेन्द्र अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी भगवतीचरण वर्मा आदि ने इस युग के व्यक्ति-सापेक्ष्य जीवन-दर्शन के आधार पर अपनी रचनाओं में मानव-संवेदना और चरित्र-निष्ठा पर बल दिया। उन्होंने मानव अन्तर्जगत के चेतन और अवचेतन मन के

---

१५ आ० हिं० सा० का वि०, पृ० २७६
१६ आ० सा० और मनो०, पृ० ७८
१७ आ० हिं० सा० का वि०, पृ० २७८
१८ वही
१९ वही
२० विवेचना पृ० १२३
२१ शिल्पविधि, पृ० २१६

सृष्टि अवश्य की किन्तु, समकालीन समस्याओं से वे भी बचते रहे।[6] विभसेवा बैकर सुनीता, पारसनाथ आदि प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य की उपलब्धि हैं चाहे वे कुंठित चरित्र ही क्यों न हों।

यशपाल अश्क एवं राधाकृष्ण आदि ने इन कुंठाओं से बाहर निकलकर मार्क्सवादी यथार्थ के आधार पर नये चरित्रों का सृजन किया। पहाड़ी ने साधारण कथा-विधान और सीमित चरित्रों को लेकर मन्द वासना शारीरिक सुख और यौन विकारों को अपनी कथा का विषय बनाया।

मनोविज्ञान के समावेश से इन उपन्यासों में चरित्र-विकास का नया द्वार खुला और कला-सौंदर्य में भी अभूतपूर्व अभिवृद्धि हुई।[7] अब लेखकों ने मानव हृदय और मस्तिष्क के वास्तविक नाटक के प्रदर्शन की आवश्यकता पर ध्यान दिया। वह पाठकों के सामने पात्रों का हृदय खोलकर रखने लगा।[8] मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और चित्रण पर अधिक जोर देने की यह प्रवृत्ति हिन्दी में लगभग १९२५ के बाद आई।[9] प्रेमाश्रम और रंगभूमि में इसके सुंदर उदाहरण मिलते हैं। किन्तु प्रेमचन्द के बाद के कथा-चरित्रों में स्वाभाविक मनोविश्लेषण की परंपरा का प्रारम्भ हुआ। इसी शैली को अपनाकर इलाचन्द्र एवं जैनेन्द्र आदि ने ऐसे चरित्रों की सृष्टि की जो सामाजिक जीवन में आसानी से प्राप्त नहीं हो रहे थे।[10]

कथा के प्रारंभिक चारित्रिक विश्लेषण में लेखक का ध्यान सिर्फ पाठकों के मनोरंजन पर था। इसीलिए पाठकों को चौंका देने वाले सभी पात्रों की अधिक सृष्टि हुई।[11]

चरित्र-विकास की शैली में प्रथम मोड़ इस युग में आया जब कथाकार ने तटस्थ होकर चरित्रों का वर्णन-विश्लेषण प्रारंभ किया। मनोविज्ञान के सहारे वह चरित्र विकास और भी अधिक परिष्कृत और पूर्ण बना।[1] मन और मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले काम स्थान वातावरण और परिस्थिति का विशद वर्णन उपन्यास साहित्य में उपस्थित किया जाने लगा।

कंकाल और रंगभूमि में इसके अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

औपन्यासिक पात्रों का द्वितीय विकास वार्तालाप या कथोपकथन की

---

६ शिल्पविधि, पृ० २४१
७ नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० १६
८. शिल्पविधि पृ०, २८८
९. विवेचना
१० नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १८
११ डॉ० वार्ष्णेय
१२ नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १८
१३ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० ७३
१४ आ० हि० सा० का वि०, पृ० २८७

यूरोप मध्यवर्ग के वैषम्यपूर्ण संशयमूलक एवं अनिश्चित जीवन को संभवतः ऐसे ही रचना प्रकार की आवश्यकता थी जो काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ के अधिक निकट हो। अस्तु आधुनिक उपन्यासों में इसी भावना को पुष्टि मिली।[29]

मध्यवर्गीय चरित्रों का विकास

भारतवर्ष में मध्यवर्ग का उदय १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य वाद ने इस देश की सामन्ती अर्थव्यवस्था को बिल्कुल विध्वंस कर दिया था। लेकिन इसी ध्वंस के बीच से अंग्रेजों के न चाहने पर भी इतिहास की गति ने निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।[30] इसी अवधि में नवोदित भारतीय पूंजीपति वर्ग ने वाणिज्य व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश किया। साम्राज्य की नींव को मजबूत करने के लिए खोले गये स्कूलों-कालेजों विश्वविद्यालयों ने वकील डाक्टर, अध्यापक क्लर्क आदि के रूप में एक नये मध्यवर्ग को जन्म दिया। ब्रह्म समाज आर्य समाज थियासोफिकल आंदोलन इसी नवीन मध्यम वर्ग की चिंतन-धारा के फल थे। इसी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी जन्म दिया।[31] १९१४ तक यह मध्यवर्ग अपने पूरे रूप में सामने आ गया था यद्यपि अपने वर्ग-स्वभाव के अनुरूप कौटुम्बिक एवं सामाजिक मर्यादा तथा आर्थिक अनिश्चितता की चक्की के दो पाटों के बीच यह पिस रहा था।[32] इस वर्ग के दो छोर थे—देशी व्यापारी और पढ़े-लिखे बाबू लोग। ये दोनों ही हमारे कथा-साहित्य में मौजूद हैं। नवाबों राजाओं का स्थान अब सेठों ने ले लिया है और मुसाहिबों एवं हाली-मवालियों का स्थान छोटे-मोटे क्लर्क या मुंशियों ने।[33]

पूंजीपति वर्ग पैसों के बल पर अपनी सभी आकांक्षाएं पूरी कर सकता है। निम्नवर्ग की बुरी आर्थिक स्थिति में उसमें अनपेक्षित आकांक्षाएं होती ही नहीं।[34] बच रहता है यह मध्यमवर्ग जिसमें विभिन्न आर्थिक स्तरों के लोग होते हैं और उनमें स्वाभाविक ईर्ष्या-द्वेष विरोध पूरी मात्रा में रहते ही हैं। अर्थाभाव से उसकी आकांक्षाएं भी अतृप्त रहती हैं। परिणामस्वरूप वह मन की ग्रन्थियां सुलझाने लगता है और अत्यन्त ही वैयक्तिक हो जाता है।

मन की इसी गुत्थी को सुलझाने में प्रेमचन्द के उपन्यासों की स्वस्थ परम्परा का लोप हो जाता है और हिन्दी उपन्यास डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में 'लाफ़ी चम्मर' की परम्परा पर चल निकलते हैं जो 'अब अपने ह्रास की सीमा तक पहुंच चुके

२९. आलोचना (११), पृ० १२५
३० आलोचना (१३), पृ० १२५
३१ हि० म० सा० पृ० २१
३२ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० १११
३३ आलोचना (१४) पृ० ३०
३४ हिन्दी उपन्यास में वर्गभावना, पृ० १७

चित्र उपस्थित किये।[२२]

सम्प्रति सम्पूर्ण मानवीय विचारधारा में फ्रायड और मार्क्स का सर्वाधिक प्रभाव स्पष्ट है। फ्रायड ने मन को जीवन का आधारभूत तत्त्व माना और मार्क्स ने भौतिकता अर्थात् पदार्थ को। एक का स्वरूप मनोविज्ञान है तो दूसरे का भौतिक विज्ञान या साम्यवाद।[२३]

मनोवैज्ञानिक पद्धति में मनस्तत्त्व माध्यम से मानव चरित्र का चित्रण एवं विश्लेषण होता है क्योंकि मनुष्य मानसिक गतिविधियों के ही कारण अपने जीवन की सार्थकता पाता है।[२४] इस पद्धति का ध्येय मनुष्य की बाह्य प्रक्रिया से उसके भीतरी सूत्रों को समझना और सुलझाना है। इस युग के उपन्यासों में यह एक प्रमुख धारा है जिसका प्रारंभ जोशीजी ने किया। जोशीजी के मनोविश्लेषण की यह एक विशेषता है कि उन्होंने मानव के बाह्य और अन्दर—दोनों जीवनों की प्रगति में जो अन्योन्याश्रय संबंध है उसे स्पष्ट किया। इसी कारण वह यह भी मानते हैं कि फ्रायड और मार्क्स एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि एक ही सत्य के पूरक दृष्टिकोणों के प्रवर्तक हैं।[२५] इस तरह आधुनिक उपन्यासों में उपन्यास की मुख्य वस्तु—यानी पात्रों का मनोविश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण—के अर्थ में बहुत बड़ा परिवर्तन आ चुका है।[२६]

आधुनिक उपन्यासों में विकृताचार की चर्चा भी खुलकर होने लगी है। अज्ञेय, जैनेन्द्र यशपाल इलाचन्द्र जोशी प्रभृति द्वारकाप्रसाद इसके उदाहरण हैं। राहुलजी के जय यौधेय सिंह सेनापति आदि ऐतिहासिक उपन्यासों में जिस मुक्त विलास का महोत्सव मनाया गया है, वह सिर्फ इतिहास की ही रक्षा नहीं, या उसे सिर्फ द्विवेदी युग की आदर्शवादिता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया ही नहीं कहा जा सकता बल्कि यह फ्रायड के काममूलक सिद्धांतों का समर्थन है कि हमारे सारे आन्तरिक संघर्षों के मूल में कामवासना ही है।[२७] इलाचन्द्र जोशी ने अपनी पुस्तक विवेचन में इस आधार पर गढ़े चरित्रों का सुन्दर विवेचन किया है।

चरित्रविकास में फ्रायड के सिद्धान्तों का सर्वप्रथम प्रयोग उर्दू के कथाकारों ने किया। श्री कृष्णचन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास ने इसके स्वस्थ पक्ष को और सआदत हसन मंटो एवं असमत चगताई ने इसके अस्वस्थ और गोपनीय पक्ष को अपनी कहानियों में स्थान दिया। असमत और मंटो की तरह पहाड़ी एवं यशपाल ने भी[२८] इसके दूसरे पक्ष को अपनाया। यशपाल से अधिक पहाड़ी ने नग्न वर्णन को प्रश्रय दिया।

---

२२ वही, पृ० २७४
२३ समीक्षा शास्त्र पृ० २९२
२४ वही पृ० २६०
२५ वही, पृ० १०२
२६ आ० हि० का सा० और मनो० पृ० १४५
२७ वही पृ १२४
२८. नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० १७

यूरोप मध्यवर्ग के वैषम्यपूर्ण समयमूलक एवं अनिश्चित जीवन को संभवतः ऐसे ही रचना प्रकार की आवश्यकता थी जो काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ के अधिक निकट हो। अस्तु आधुनिक उपन्यासों में इसी भावना को पुष्टि मिली।[२९]

मध्यवर्गीय चरित्रों का विकास

भारतवर्ष में मध्यवर्ग का उदय १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस देश की सामन्ती अर्थव्यवस्था को बिल्कुल विध्वंस कर दिया था। लेकिन इसी ध्वंस के बीच से अंग्रेजों के न चाहने पर भी इतिहास की शक्ति ने निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।[३०] इसी अवधि में नवोदित भारतीय पूंजीपति वर्ग ने वाणिज्य-व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश किया। साम्राज्य की नींव को मजबूत करने के लिए खोले गये स्कूलों-कालेजों विश्वविद्यालयों ने वकील डाक्टर अध्यापक क्लर्क आदि के रूप में एक नये मध्यवर्ग को जन्म दिया। ब्रह्म समाज आर्य समाज थियासोफिकल आंदोलन इसी नवीन मध्यम वर्ग की चिंतन-धारा के फल थे। इसी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी जन्म दिया।[३१] १९१४ तक यह मध्यवर्ग अपने पूरे रूप में सामने आ गया था यद्यपि अपने वर्ग-स्वभाव के अनुरूप कौटुंबिक एवं सामाजिक मर्यादा तथा आर्थिक अनिश्चितता की चक्की के दो पाटों के बीच यह पिस रहा था।[३२] इस वर्ग के दो छोर थे—देशी व्यापारी और पढ़े-लिखे बाबू लोग। ये दोनों ही हमारे कथा-साहित्य में मौजूद हैं। नवाबों राजाओं का स्थान अब सेठों ने ले लिया है और मुसाहिबों एवं हाकी-मवालियों का स्थान छोटे-मोटे क्लर्क या मुंशियों ने।[३३]

पूंजीपति वर्ग पैसों के बल पर अपनी सभी आकांक्षाएं पूरी कर सकता है। निम्नवर्ग की बुरी आर्थिक स्थिति में उसमें अनपेक्षित आकांक्षाएं होती ही नहीं।[३४] बच रहता है यह मध्यमवर्ग जिसमें विभिन्न आर्थिक स्तरों के लोग होते हैं और उनमें स्वाभाविक ईर्ष्या-द्वेष विरोध पूरी मात्रा में रहते ही हैं। अर्थाभाव से उसकी आकांक्षाएं भी अतृप्त रहती हैं। परिणामस्वरूप, वह मन की गुत्थियां सुलझाने लगता है और अत्यन्त ही वैयक्तिक हो जाता है।

मन की इसी गुत्थी को सुलझाने में प्रेमचन्द के उपन्यासों की स्वस्थ परम्परा का लोप हो जाता है और हिन्दी उपन्यास डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में 'साड़ी ब्लाउज' की परम्परा पर चल निकलते हैं जो 'अब उनके ह्रास की सीमा तक पहुंच चुके

२९ आलोचना (१३), पृ० १२५
३० आलोचना (१३), पृ० १२५
३१ हि० म० सा०, पृ० २२
३२ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० १११
३३ आलोचना (१४), पृ० ३०
३४ हिन्दी उपन्यास में वर्गभावना, पृ० १७

है और ज्यादा दिनों तक पाठकों को उससे बहलाया न जा सकेगा ।[35]

प्रेमचन्द के युग में ही 'प्रसाद' जी ने उनकी वर्णगत चित्रण प्रणाली का विरोध किया और उपन्यासों के लिए अत्यधिक स्वच्छंदता का द्वार उन्मुक्त कर दिया था। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों ने यथार्थ के नाम पर वैयक्तिक चित्रण के हेतु सुन्दर शैली और शिल्प का आविष्कार तो अवश्य किया पर उनके द्वारा चित्रित जीवन समाज की किसी प्रशस्त भूमिका पर प्रतिष्ठित नहीं हो पाया ।[36]

द्वितीय विश्वयुद्ध ने जहां एक ओर पूंजीपतिवर्ग को मालामाल कर दिया, निम्नवर्ग की आर्थिक स्थिति को भी थोड़ा उन्नत ही किया वहां निम्न मध्यवर्ग को अपनी सारी कोशिशों के बावजूद हार, लाचारी और घुटनपूर्ण समझौता ही हाथ लग सका ।[37] इस स्थिति में भारतीय साहित्य खासकर हिन्दी साहित्य युद्धोत्तरकालीन विश्वसाहित्य के अनुकरण और प्रभाव में पूर्णरूप से आया ।[38] युद्ध के दौरान में ही बंगाल का अकाल आया सन् ४२ की क्रांति हुई बाद में देशविभाजन और देशव्यापी दंगे हुए जो विश्व इतिहास में अपनी भयंकरता के लिए बेमिसाल है ।[39] हालांकि इसके साथ ही १९४७ में भारत-पाकिस्तान को आजादी भी मिली पर दोनों देशों में भयंकर बेरोजगारी गरीबी कालाबाजारी और बर्बरता का उस समय जो उदय हुआ था वह अभी भी मौजूद है। इस सारी परिस्थिति ने मिलकर एक 'अनास्था' 'करने' या 'न करने' की 'निराशा' की भावना को जन्म दिया। नवोदित स्वतंत्रता की किरणें भी जनता के जीवन को आलोकितकर इस निराशा की भावना को समाप्त न कर सकीं[40] और यहां से ही लेखकों के दो वर्ग बने—एक कुंठित निराशावादियों का दूसरा प्रगतिशीलों का जिन्होंने सारी गैर-इन्साफी के खिलाफ कलम का जंग छेड़ा ।[41] इस तरह इसी दौर में समाजवादी यथार्थ पर आधारित चरित्रों का सृजन हुआ ।[42] अकाल भुखमरी साम्प्रदायिक दंगों और राजनीतिक दमन के विरुद्ध पहली बार साहित्य के क्षेत्र में आवाज उठी। भारत की सभी भाषाओं के लेखकों ने अपना संघ बनाकर साम्प्रदायिक झगड़ों और देश के दुश्मनों के खिलाफ अपने हस्ताक्षरयुक्त घोषणा-पत्र प्रकाशित किये ।[43]

---

३५. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं, पृ० १२६
३६ आलोचना (१३), पृ० ९
३७ हिन्दी उपन्यास में कथाशिल्प, पृ० १२१
३८ संस्कृति और साहित्य पृ० ८१
३९. हि० सा०, पृ० ३५
४० आलोचना (१०) पृ० ६७
४१ अध्ययन के विचार, पृ० १६
४२ और इन्सान मर गया, पृ० ६
४३ संकेत, पृ० २४६

जैनेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्र प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य के आकाशस्थमान नक्षत्र हैं। उनकी कृतियों में बुद्धि और हृदय का सफल एवं सुन्दर समागम एवं सामञ्जस्य दीखता है।[44] उनके उपन्यास 'परख' एवं 'त्यागपत्र' तथा अनेक कहानियाँ कवित्व के रत्न हैं। किन्तु अपनी साहित्य-साधना के उत्तरार्द्ध में वह जो राह भटके तो फिर कभी राह न पाई। उनके अंदर के कोमल, स्पन्दनशील विवेकी कलाकार ने दम तोड़ दिया है और लगता है कि अब उसकी रक्षा नहीं हो सकती।[45]

जैनेन्द्र के औपन्यासिक चरित्र

जैनेन्द्र के उपन्यासों में उनके दार्शनिक विचार नहीं खप सके हैं। इससे कृतियों के कलात्मक पक्ष और चरित्र विकास में अस्पष्टता आई है। अपने मानसिक अवरोधों के कारण उनके नारी चरित्र सीमित अधूरे और अनबूझ-से लगते हैं। मनोविज्ञान के साथ दार्शनिकता का सही समन्वय न कर पाने के कारण उनका चित्रण क्षतिग्रस्त हुआ है।[46] डा० देवराज उपाध्याय के अनुसार उनके औपन्यासिक चरित्र फ्रायडियन और मेस्मरिस्टवादी आधार पर गढ़े गये हैं।[47]

विपर्यस्त[48] मनोवैज्ञानिक चित्रण का एक सुन्दर उदाहरण 'सुनीता' का हरिप्रसन्न है जिसकी आत्मा में कहीं गाँठ पड़ी है जो अपने भीतर किसी भेद को पाल रहा है। एक प्रश्न के उत्तर में वह सुनीता को कहता है—"मैं तुमको चाहता हूँ समूची तुमको चाहता हूँ।"[49] सुनीता निरावरण हो जाती है और कहती है—' अपने को मारो मत कर्म करो। मुझे चाहते हो तो मुझे ले लो। और हरिप्रसन्न की कामुकता शांत हो जाती है।

सुनीता' का श्रीकांत भी एक मनोवैज्ञानिक असाधारण पात्र है जो हरिप्रसन्न को संसार में अनुरक्त करने के लिए अपनी पत्नी को ही शिकारी के रूप में प्रयोग करना चाहता है।[50] परस्पर द्रोह और परस्पर उत्सर्ग होने की आकांक्षा ही अपनी जीवन की विडंबना है जिसका शरत ने बड़ा सुन्दर अध्ययन और उपयोग किया है और जो हमें नये जीवन के निर्माण के लिए नये सूत्र देते हैं।[51] श्री जैनेन्द्र ने दो विरोधी भावों को दो पुरुष पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। नारी-पात्रों द्वारा वे चुनाव का काम लेते

---

४४ आलोचना (१०) पृ० ६६
४५ वही
४६ आलोचना (२४) पृ० ४
४७ आ० हि० सा० और मनो, पृ० ११७
४८ वही
४९ सुनीता पृ० १९२
५० आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २८५
५१ जैनेन्द्र—साहित्य और समीक्षा पृ० २००

है।[52] इस तरह उनके उपन्यासों में चरित्र चित्रण के लिए एक नारी और दो पुरुष की योजना की गयी है। मुख्य चरित्रों के अलावा गौण पात्र तो जैसे अपनी कोई हस्ती रखते ही नहीं। शरत्चन्द्र के पात्रों की 'नयी' की तरह[53] उनके उपन्यासों में 'नारी-पात्र' हैं। इसके बावजूद समस्याओं के प्रति उनकी प्रतिक्रियाएं अवश्य भिन्न-भिन्न हैं।[54] सबका मनस्तत्त्व भी अलग-अलग है। इस प्रकार उनके नारी पात्र सिद्धान्त प्राप्त होने पर भी कथाकार के जाने-अनजाने कुछ हो गयी हैं जो साहित्य के लिए गर्व और विस्मय की वस्तु है।[55]

उनके उपन्यासों में एक महान आदर्शवादी किन्तु निरा निष्क्रिय एवं दार्शनिक पात्र भी आता है। उनका पराजित होनेवाला कोई दूसरा पात्र क्रांतिकारी क्रियाशील बलिदानों के लिए उद्यत और बहुत कुछ उद्देश हुआ करता है।[56] किन्तु गांधीवादी अहिंसा दर्शन के आधार पर खड़ा गया यह नायक अकर्मण्य एवं निष्क्रिय क्यों होता है। इससे तो गांधीवाद से लेखक का अपरिचय ही सिद्ध होता है। तीसरी नारी पात्र पतिव्रत और सतीत्व के द्वन्द्व की प्रतीक होती है। परिस्थितिवश वह पति की ओर झुकती है एवं भावना उसे प्रेमी की ओर घसीटता है।[57] नंददुलारे वाजपेयी का कहना है कि आधुनिक अर्थ में उन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार कहना ठीक नहीं। उनके मन की ग्रंथियां ही उनके विभिन्न पात्रों के रूप में व्यक्त हुई हैं। जैनेन्द्र का कहना है कि "वे हमारी आत्मा के प्रतीक हैं, हमारे मताग्रहों के नहीं।"[58]

जैनेन्द्र ने मध्यवर्गीय बौद्धिक पात्रों का चित्रण किया है। वे अपने विचार इन्हीं के माध्यम से व्यक्त करते हैं।[59] जैनेन्द्र के प्रथम उपन्यास परख में चरित्रों की आदिम प्रकृति और बुद्धि के संघर्ष का चित्रण है। 'सुनीता' के हरिप्रसन्न और सुनीता दोनों कुंठाग्रस्त व्यक्तित्व हैं। इस उपन्यास में न चरित्रों की आदिम प्रकृति खुलकर खेल सकी है और न उन्हें बुद्धि के द्वारा संयमित किया जा सका है। इस प्रकार का द्वन्द्व मध्यवर्गीय लेखक के व्यक्तित्व में ही संभव है।[60] त्यागपत्र की मृणाल को जीवन के

---

५२ नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० २५८
५३ वही पृ० २५८
५४ वही पृ० २५५
५५. जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा पृ० १०१
५६ नया साहित्य नये प्रश्न पृ० २५६
५७ नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० २५६
५८ वही, पृ० २६२
५९ वही, पृ० २६१
६० जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा पृ० १८
६१ नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० २५६
६२ विवेचना पृ० १२१

अन्त तक बिखरा नहीं दिखता और अंत में वह स्वयं टूट जाती है।[63] 'सुखदा' और 'विवर्त' में आकर उनका अस्पष्ट दार्शनिक आवरण बिल्कुल टूट जाता है। ऐसा लगने लगता है जैसे उनकी नारी दूसरों को शरीर देने के लिए ही अवतरित हुई है। इसके विपरीत नारी-पात्रों में उन्मुक्त यौन-प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते।[64] 'सुखदा' की अस्पष्टता ही शायद इस उपन्यास का सबसे बड़ा गुण है।[65] अपने अंतिम उपन्यास के पात्रों पर लेखक बिल्कुल छाया हुआ है। उसमें का दार्शनिक और तटस्थ इस्टन स्वयं जैनेन्द्र का प्रतिबिंब है।[66] पूरे उपन्यास में नाथ और एलिजाबेथ ही ऐसे दो पात्र हैं जिनका अपना व्यक्तित्व है।[67]

जैनेन्द्र के औपन्यासिक नायक

प्रेमचन्द या उनके समकालीन लेखकों के पात्र स्पष्ट होते थे। उनमें कुछ मन बूझ नहीं था। किन्तु जैनेन्द्र के पात्र चिरंतन नैतिक मूल्यों की खोज में भटकनेवाले प्राणी हैं। जिन्दगी के कुछ खास निर्णायक क्षणों में वे थोड़े विश्वसनीय और सहज आत्मीय प्रतीत होते हैं या हमारे विश्वासों को धक्के देकर हमारी अनुसंधानात्मक प्रवृत्ति को जाग्रत करनेवाले होते हैं। 'अपने कार्यों और चिंतन के द्वारा वे एक प्रभाव और एक बेचैनी अवश्य पैदा कर जाते हैं। किसी बड़े आदर्श की ओर इंगित करते हैं। इसी इंगित को सबल या अग्राह्य बनाने के लिए ही लेखक उनकी मानसिक गति-विधि का चित्रण करता है।[68] उनके नायक भावना और चिंतन के क्षेत्र में जितने सबल हैं उतने कार्यक्षेत्र में नहीं। भावना के माध्यम से व्यक्ति के परिष्कार को व्यक्तिवादी विचारधारा के वे पोषक जान पड़ते हैं।[69] उनका आत्मचिंतन भी मर्मस्पर्शी होता है। स्वीकृत नैतिक मूल्यों के संबंध में अपनी शंकाएं उठाकर वे हमारी विवेक-बुद्धि को अवश्य झकझोर जाते हैं।[70]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल[71] ने उनके पात्रों को छः श्रेणियों में बांटा है—प्रथम ऐतिहासिक चरित्र जैसे यशोविजय, वासवदत्ता जयवीर, जयसंधि द्वितीय पौराणिक चरित्र जैसे शंकर, पार्वती इन्द्र आदि तृतीय लौकिक राजा रानी बैरागी आदि

---

६३ आधुनिक साहित्य पृ० १६६
६४ आलोचना (११), पृ० १११
६५. आलोचना (१०) पृ० ६८
६६. आलोचना (१३), पृ० ५१
६७ वही
६८. नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० २६१
६९. आधुनिक साहित्य पृ० १६१
७० विवेचना पृ० १२१
७१ आकाशवाणी, इलाहाबाद १ १२ ५८
७२ मित्रविधि पृ० २४१

चतुर्थ आध्यात्मिक चरित्र, पंचम विशुद्ध भावात्मक और काल्पनिक और अंतिम प्रतीकात्मक पशु-पक्षी आदि।

सभी ऐतिहासिक चरित्र किसी न किसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित एवं अपनी हद में महान और आदर्श हैं।

पौराणिक चरित्रों के द्वारा नीति और दर्शन पर प्रकाश डाला गया है।

लौकिक चरित्रों में चारित्रिक निष्ठा सबल रूप से व्यक्त हुई है।[73]

लौकिक धरातल पर कुछ सबल आध्यात्मिक चरित्रों की भी सृष्टि हुई है। 'मानसरोवर' नामक कहानी का बैरागी इसका प्रतिनिधि है। बैरागी के व्यक्तित्व से किसी परोक्ष सत्ता की ओर भी प्रेरित होने का संकेत मिलता है।[74]

नीलम देश की राजकन्या, उसकी सखियाँ और वहाँ पहुँचनेवाला राजकुमार भावात्मक और काल्पनिक चरित्रों के उदाहरण हैं। राजकुमार और राजकुमारी में परस्पर ब्रह्म और आत्मा के व्यक्तित्व का संकेत है।[75]

पेड़-पौधे जीव-जंतु आदि प्रतीकात्मक चरित्रों में मनुष्य जीवन, उसकी नीति व्यवहार तथा जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। इन कहानियों का उद्देश्य चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व प्रतिष्ठा है।

कहानियों में चरित्र

उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है[76]— पहली हैं 'मास्टरजी' जैसी कहानियाँ जो किसी चरित्र के जीवन के लंबे मार्गों पर आधारित हैं, दूसरी हैं 'एक रात' जैसी कहानियाँ जो कुछ घंटों के जीवन-चक्र पर आधारित होकर भी मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन उपस्थित करती हैं, तीसरी हैं वे कहानियाँ जो जीवन के किन्हीं विशिष्ट चित्रों की द्रुत झाँकियाँ उपस्थित करती हैं, चौथी हैं 'मिस विद्याधर' जैसी कहानियाँ जो चरित्र-विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत की गयी हैं। इन कहानियों में चरित्र विश्लेषण को ही प्रधानता मिली है— कथानक केवल साधनमात्र है। श्री जैनेन्द्र ने इस चरित्र-विश्लेषण को बनावट से स्वाभाविकता की ओर, सजावट से रुचिरता की ओर एवं आडंबर से प्रभाव की ओर बढ़ने वाला विकास बतलाया है।[77] ये चरित्र अन्तर्मुखी एवं किसी न किसी अन्तर्द्वन्द्व और भाव-प्रतिमाओं से अनुप्राणित रहते हैं। इन्हें पूर्ण रूप से समझना तो कठिन अवश्य है फिर भी ये असाधारण न होकर पूर्ण मानव होते हैं।[78] 'एक रात' का जयराज और

---

७३ हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १२६

७४ हिन्दी कहानी और कहानीकार, पृ० ११४

७५. हिन्दी कहानी, पृ० ११०

७६ शिल्पविधि पृ० २२१

७७ एक रात, पृ ३

७८ विवेचना, पृ० १२१

सुदर्शना 'राजीव की भाभी' का राजीव, मास्टरजी गोपाल बाबू क्या होगा, बंदी आशुतोष, जाह्नवी की जाह्नवी आदि इस तरह के अमर चरित्र हैं। ये चरित्र प्रायः साधारण ढंग की कहानियों में पाये हैं।[७९]

चरित्रों की व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व-विश्लेषण मुख्यतः चार साधनों से हुआ है—आत्मविश्लेषण, मानसिक ऊहापोह, अवचेतन विक्षिप्ति एवं संकेतों और कार्य द्वारा।[८०]

डा० देवराज ने[८१] उनकी कहानियों को फ्रायड और गेस्टाल्टवादी मनो-विज्ञान पर आधारित बताया है। 'जयसंधि' की कहानियों में प्रमुख रूप से और 'पाजेब' की कहानियों में यत्र-तत्र गेस्टाल्टवादी मनोविज्ञान मौजूद है।

मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के आंतरिक स्वास्थ्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कई तरह की पद्धतियों का आविष्कार किया है।[८२] 'एकरात' 'दृष्टिदोष' आदि कहानियों में भी जैनेन्द्र ने इन पद्धतियों का कलात्मक उपयोग किया है।[८३]

विचारमग्न मानव के वैविध्य और वैचित्र्य को भी जैनेन्द्र ने अपनी कथाओं में उभारा है और यही उनकी विशेषता है। वे समाज और राजनीतिक परिस्थितियों को भी नहीं भूले हैं। पर इन चीजों का चित्रण उन्होंने व्यक्ति के माध्यम से किया है और व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक आधार पर।[८४] इस तरह वे जीवन में और भी गहरे पैठ सके हैं जहां प्रेमचन्द की पहुंच नहीं थी।

अक्सर जैनेन्द्र की (१९०५) तुलना अंग्रेजी उपन्यासकार मेरिडिथ (१८२८) से की जाती है। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि ये दोनों अपने-अपने साहित्य में एक नई प्रवृत्ति के पोषक हैं। जैनेन्द्र के पुरुष पात्र स्त्रैण होने के कारण नारी को जीत नहीं पाते। मेरिडिथ के पुरुष पात्र निर्मम दुराग्रही और अहंकारी होने के कारण नारी के भीतर रम नहीं पाते। इस तरह दोनों के पुरुष एवं नारी पात्रों में पृथकत्व एवं दूरी बनी रहती है।[८५]

अपने चरित्रों के बारे में श्री जैनेन्द्र का कहना है कि "वे मेरे अन्दर से आये हैं इसलिए मेरे मनोनुकूल चलते हैं। उन्हें 'अतिमनोवैज्ञानिक' कहा जाता है तो मैं सुन लेता हूं। कारण—जो हूं सो हूं।"[८६]

---

७९. प्रतिनिधि कहानियां, पृ० ६८
८० शिल्पविधि पृ० २५४
८१ आ० हिं० क० सा० और मनो०, पृ० १२५
८२ वही, पृ० १५१
८३ नीलम देश की राजकन्या, पृ० १०
८४ आ० हिं० सा० और मनो०, पृ० १५५
८५. साहित्य दर्शन पृ० २९१
८६ आजकल, दिसम्बर १९५८, पृ० २५

अज्ञेय

लेखक अज्ञेय हिन्दी साहित्य के आगे-आगे लेखक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है, नकार नहीं।[87] फिर भी उस व्यक्तित्व में एक विफलता और अवसाद का भाव है। 'शेखर' की भांति वह 'कोने' में रहने वाला और बाहर से घबराने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने संस्कृति के अमरीकी व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है और उसे वह 'संस्कृति की स्वाधीनता' का नाम देते हैं।[88]

अज्ञेय ने व्यक्ति के आंतरिक ऊहापोह को समझने की कोशिश की है। उनका चरित्र-विश्लेषण मौलिक है। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।[89]

अज्ञेय के सब चरित्र व्यक्तिवादी हैं। कोई विद्रोहात्मक भावना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंत्व के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण आधारशिला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही है।[90] किन्तु अज्ञेय के चरित्र का यह अहंकार उदात्त, समुन्नत और मानवतावादी है।[91] इस अहंत्व का प्रयोग उन्होंने सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने शिल्पविधान में पूरी सफलता भी मिली है।[92]

सामूहिक रूप से सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति विद्रोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के अंकन में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'शत्रु' का ज्ञान, 'नम्बर दस' का रामन, 'द्रोही' का मैं, 'अभिशाप' की कर्मेन और मेरिया आदि चरित्र इसी विद्रोह के प्रतीक हैं।[93] इन चरित्रों का निर्माण करुणा, त्याग और मूक बलिदान के तत्त्वों को लेकर हुआ है जो स्त्री-पुरुष दोनों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही विद्रोह की भावनाओं से ओतप्रोत है—"मैं विद्रोही हूं इसलिए कि मेरी प्रकृति यह मांगती है। मेरी जीवन-शक्ति की यही निष्पत्ति है।"[94]

मनोविश्लेषण के लिए अज्ञेय ने कभी सीधे मनोविश्लेषण का तरीका अपनाया है, कभी मानसिक सपनों द्वारा मनोविश्लेषण किया है।[95] द्रोही, सांप और सिगनेलर आदि कहानियां चरित्र के आत्मविश्लेषण के आधार पर ही निर्मित हैं।[96]

---

८७ नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका, पृ० १९७
८८. वही, पृ० २००
८९. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २०६
९० वही, पृ० १७१
९१ शिल्पविधि, पृ० २११
९२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २१२
९३ हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १५७
९४ कोठरी की बात, पृ० ११५
९५. विवेचना पृ० १९२
९६ विचार और विश्लेषण पृ० ९१

'मनुष्य का भाग्य' और 'पुलिस की सीटी' आदि कहानियों में संकेतों एवं सूक्ष्म हाव-भावों के सहारे मनुष्य की कर्मप्रेरणाओं और मनःस्थिति का सफल अध्ययन किया गया है।[97] इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों, प्रश्नों और आकांक्षाओं पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एवं संस्कारों की कमी नहीं।[98] बाद कहानियों में आकर उनके चरित्रों का कार्य-संकुल एवं कोलाहलपूर्ण जगत से सम्बन्ध टूट-सा गया है और वे अपने मानसिक चिंतन की दुनिया में बिल्कुल सिमटे से दीखते हैं।[99]

अज्ञेय के उपन्यासों में चरित्र-विकास

अब उनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—शेखर एक जीवनी एवं 'नदी के द्वीप' तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने वाला है।

शेखर एक जीवनी हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक मूल्यांकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने उसे निर्श्रेयस क्रांतिकारी' असामाजिक प्राणी 'भयंकर, घोर उद्धत अहंवादी या किसीने उसे आनेवाले उपन्यासों के लिए 'प्रकाश स्तम्भ' बताया है।[100] लेखक ने स्वयं शेखर का परिचय देते हुए कहा है—शेखर 'अच्छा' या 'बड़ा' आदमी नहीं, लेकिन एक 'व्यक्ति स्वतन्त्र' और 'घोर ईमानदार' व्यक्ति है।[101] शेखर स्वयं अपने बारे में कहता है—" मैं नया हूँ अपूर्व हूँ नई प्रतिज्ञा हूँ जिसे भविष्य पूरा करेगा एक शिक्षा हूँ जो मनुष्य के लिए रह जायगी।"[102] शेखर घोर अंतर्द्रष्टा है—कल्पना के शीशमहल में अपना जीवन काटनेवाला जहाँ 'बादलों से बने हुए सूत के वस्त्र पहननेवाली राजकन्या रहती है।" इसीलिए वह अकेला है। उसे आशा का कोई आलोक नहीं दीखता क्योंकि वह व्यक्तिवादी है, सामाजिक क्रांति के भय से थर-थर कांपने वाला है।[103]

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से उच्च मध्यवर्ग का विस्फोट हुआ है।[104] शेखर को युग या संस्कृति की सभी उपलब्धियां प्राप्त हैं जिन्हें वह उसी संस्कृति के विघटन का उपकरण बनाता है।[105]

---

९७ परम्परा, कोठरी की बात, पृ० १
९८. शिल्पविधि, पृ० २६८
९९. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० ११३
१०० हिन्दी उपन्यास पृ० ३१०
१०१ शेखर एक जीवनी भूमिका, पृ० १०
१०२ वही पृ० २३८
१०३ नया हिंदी साहित्य एक भूमिका पृ० २०१
१०४ आत्मनेपद, पृ० ५८
१०५. आलोचना (११), प० ११४

अज्ञेय

लेखक अज्ञेय हिन्दी साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है नकार नहीं।[८७] फिर भी उस व्यक्तित्व में एक विफलता और अवसाद का भाव है। 'शेखर' की भांति वह 'कोठे' में रहने वाला और बाहर से घबराने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने संस्कृति के अमरीकी व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है और उसे वह 'संस्कृति की स्वाधीनता' का नाम देते हैं।[८८]

अज्ञेय ने व्यक्ति के आंतरिक ऊहापोह को समझने की कोशिश की है। उनका चरित्र-विश्लेषण मौलिक है। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।[८९]

अज्ञेय के सब चरित्र व्यक्तिवादी हैं। कोई विद्रोहात्मक भावना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंकार के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण आधारशिला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही है।[९०] किन्तु अज्ञेय के चरित्र का यह अहंकार उदात्त समुन्नत और मानवतावादी है।[९१] इस अहंकार का प्रयोग उन्होंने सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने शिल्पविधान में पूरी सफलता भी मिली है।[९२]

सामूहिक रूप से सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति विद्रोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के अंकन में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'मधु' का ज्ञान 'नम्बर दस' का मदन 'द्रोही' का मैं 'अभिशाप' की कर्मेन और मेरिया आदि चरित्र इसी विद्रोह के प्रतीक हैं।[९३] इन चरित्रों का निर्माण करुणा शोषण और मूक बलिदान के तत्त्वों को लेकर हुआ है जो स्त्री-पुरुष दोनों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही विद्रोह की भावनाओं से ओतप्रोत है—"मैं विद्रोही हूं इसलिए कि मेरी प्रकृति यह मांगती है। मेरी जीवन-शक्ति की यही निष्पत्ति है।"[९४]

मनोविश्लेषण के लिए अज्ञेय ने कभी सीधे मनोविश्लेषण का तरीका अपनाया है, कभी मानसिक संघर्षों द्वारा मनोविश्लेषण किया है।[९५] द्रोही सांप और सिगनेलर आदि कहानियां चरित्र के आत्मविश्लेषण के आधार पर ही निर्मित हैं।[९६]

---

८७ नया हिन्दी साहित्य एक भूमिका, पृ० १६७
८८. वही, पृ० २००
८९. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २०६
९० वही, पृ० १७१
९१ शिल्पविधि, पृ० २६१
९२ आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २१२
९३ हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १२७
९४ कोठरी की बात पृ० ११२
९५. विवेचना, पृ० १२२
९६ विचार और विश्लेषण पृ० ६२

'मनुष्य का भाग्य' और 'पुलिस की सीटी' आदि कहानियों में संकेतों एवं सूक्ष्म हाव भावों के सहारे मनुष्य की कर्मप्रेरणाओं और मनःस्थिति का सफल अध्ययन किया गया है।[97] इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों भावनों और आकांक्षाओं पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एवं संस्कारों की कमी नहीं।[98] बाद कहानियों में आकर उनके चरित्रों का कार्य-संकुल एवं कोलाहलपूर्ण जगत से सम्बन्ध टूट-सा गया है और वे अपने मानसिक चिंतन की दुनिया में बिल्कुल सिमटे से दीखते हैं।[99]

अज्ञेय के उपन्यासो मे चरित्र विकास

अब उनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—शेखर एक जीवनी एवं 'नदी के द्वीप' तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने वाला है।

शेखर एक जीवनी हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक मूल्यांकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने उसे 'निरुद्देश्य क्रांतिकारी' 'असामाजिक प्राणी' 'भयंकर, घोर, उद्दाम अहंवादी' या किसीने उसे आनेवाले उपन्यासों के लिए 'प्रकाश स्तम्भ' बताया है।[100] लेखक ने स्वयं शेखर का परिचय देते हुए कहा है—शेखर 'अच्छा' या 'बड़ा' आदमी नहीं, लेकिन एक 'जागरूक स्वतन्त्र' और 'घोर ईमानदार' व्यक्ति है।[101] शेखर स्वयं अपने बारे में कहता है—"   मैं नया हूं अपूर्व हूं   नई प्रतिज्ञा हूं जिसे भविष्य पूरा करेगा एक शिक्षा हूं जो मनुष्य के लिए रह जायगी।[102] शेखर घोर अंतर्द्रष्टा है—कल्पना के शीशमहल में अपना जीवन काटनेवाला जहां   "बादलों से बने हुए सूत के वस्त्र पहननेवाली राजकन्या रहती है।" इसीलिए वह अकेला है। उसे आशा का कोई आलोक नहीं दीखता क्योंकि वह व्यक्तिवादी है, सामाजिक क्रांति के भय से थर-थर कांपने वाला है।[103]

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से उच्च अध्ययन का विस्फोट हुआ है।[104] शेखर को युग या संस्कृति की सभी उपलब्धियां प्राप्त हैं जिन्हें वह उसी संस्कृति के विघटन का उपकरण बनाता है।[105]

---

९७ परम्परा, कोठरी की बात, पृ० १
९८. शिल्पविधि, पृ० १९८
९९. आ० हि० क० सा० और प्रगो पृ० १८१
१०० हिन्दी उपन्यास पृ० ११०
१०१ शेखर एक जीवनी, भूमिका, पृ० १०
१०२ वही, पृ० ९१८
१०३ नया हिंदी साहित्य एक भूमिका पृ० २०१
१०४ आत्मनेपद पृ ५८
१०५. आलोचना (११), पृ० ११४

अज्ञेय

वे स्वयं अज्ञेय हिन्दी साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है नकार नहीं।[८७] फिर भी उस व्यक्तित्व में एक विफलता और अवसाद का भाव है। 'शेखर' की भांति वह 'घोंघे' में रहने वाला और बाहर से घबराने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने संस्कृति के अमरीकी व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है और उसे वह 'संस्कृति की स्वाधीनता' का नाम देते हैं।[८८]

अज्ञेय ने व्यक्ति के आंतरिक ऊहापोह को समझने की कोशिश की है। उनका चरित्र-विश्लेषण मौलिक है। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।[८९]

अज्ञेय के सब चरित्र व्यक्तिवादी हैं। कोई विद्रोहात्मक भावना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंरूप के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण आधारशिला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही है।[९०] किन्तु अज्ञेय के चरित्र का यह अहंकार उदात्त समुन्नत और मानवतावादी है।[९१] इस अहंरूप का प्रयोग उन्होंने सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने शिल्पविधान में पूरी सफलता भी मिली है।[९२]

सामूहिक रूप से सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति विद्रोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के अंकन में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'शम्भु' का ज्ञान 'नम्बर दस' का उत्तम, 'द्रोही' का मैं, 'अभिशाप' की कर्मेन और मेरिया आदि चरित्र इसी विद्रोह के प्रतीक हैं।[९३] इन चरित्रों का निर्माण करुणा, शोषण और मूक बलिदान के तत्वों को लेकर हुआ है जो स्त्री-पुरुष दोनों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही विद्रोह की भावनाओं से ओतप्रोत है—"मैं विद्रोही हूं इसलिए कि मेरी प्रकृति यह मांगती है। मेरी जीवन-शक्ति की यही निष्पत्ति है।"[९४]

मनोविश्लेषण के लिए अज्ञेय ने कभी सीधे मनोविश्लेषण का तरीका अपनाया है, कभी मानसिक संघर्षों द्वारा मनोविश्लेषण किया है।[९५] द्रोही साँप और सिगनेलर आदि कहानियां चरित्र के आत्मविश्लेषण के आधार पर ही निर्मित हैं।[९६]

---

८७ नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका, पृ० १६७
८८. वही, पृ० २००
८९ आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २०६
९० वही, पृ० १७१
९१ शिल्पविधि, पृ० २१३
९२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २१२
९३ हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १५७
९४ कोठरी की बात पृ० ११२
९५. विवेचना, पृ० १९२
९६ विचार और विश्लेषण पृ० १२

'मनुष्य का भाग्य' और 'पुलिस की सीटी' आदि कहानियों में संकेतों एवं सूक्ष्म हाव-भावों के सहारे मनुष्य की कर्मप्रेरणाओं और मन:स्थिति का सफल अध्ययन किया गया है।[९७] इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों प्रश्नों और आकांक्षाओं पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एवं संस्कारों की कमी नहीं।[९८] बाद कहानियों में आकर उनके चरित्रों का कार्य-संकुल एवं कोलाहलपूर्ण जगत से सम्बन्ध टूट-सा गया है और वे अपने मानसिक चिंतन की दुनिया में बिल्कुल सिमटे से दीखते हैं।[९९]

अज्ञेय के उपन्यासों में चरित्र-विकास

अब उनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—शेखर एक जीवनी एवं 'नदी के द्वीप' तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने वाला है।

शेखर एक जीवनी हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक मूल्यांकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने उसे निरुद्देश्य क्रांतिकारी' असामाजिक प्राणी' 'भयकर, घोर, उद्धत अहवादी या किसीने उसे मानवादी उपन्यासों के लिए प्रकाश स्तम्भ' बताया है।[१००] लेखक ने स्वयं शेखर का परिचय देते हुए कहा है—शेखर 'अच्छा' या 'बड़ा' आदमी नहीं लेकिन एक 'जागरूक स्वतन्त्र' और 'घोर ईमानदार व्यक्ति है।[१०१] शेखर स्वय अपने बारे में कहता है—" मैं नया हूं अपूर्व हू नई प्रतिभा हू जिसे भविष्य पूरा करेगा एक शिक्षा हू जो मनुष्य के लिए रह जायगी।"[१०२] शेखर घोर अंतर्द्रष्टा है—कल्पना के शीशमहल में अपना जीवन काटनेवाला जहां "बादलों से बने हुए सूत के वस्त्र पहननेवाली राजकन्या रहती है।" इसीलिए वह अकेला है। उसे आशा का कोई आलोक नहीं दीखता क्योंकि वह व्यक्तिवादी है सामाजिक क्रांति के भय से थर-थर कांपने वाला है।[१०३]

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से उच्च मध्यवर्ग का विस्फोट हुआ है।[१०४] शेखर को युग या संस्कृति की सभी उपलब्धियां प्राप्त हैं जिन्हें वह उसी संस्कृति के विघटन का उपकरण बनाता है।[१०५]

---

९७. परम्परा, कोठरी की बात, पृ० १
९८. मिस्त्रीमिति, पृ २१८
९९. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० ११३
१०० हिन्दी उपन्यास पृ० ११०
१०१ शेखर एक जीवनी, भूमिका, पृ० १०
१०२ वही, पृ० २१४
१०३ नया हिंदी साहित्य एक भूमिका पृ० २०१
१०४ आत्मनेपद, पृ० ६८
१०५. आलोचना (११), पृ० ११४

अज्ञेय

बेशक अज्ञेय हिन्दी साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। उनका व्यक्तित्व एक समन्वय है इनकार नहीं।[87] फिर भी उस व्यक्तित्व में एक विफलता और अवसाद का भाव है। 'शेखर' की भांति वह 'घोंघे' में रहने वाला और बाहर से घबराने वाला है। इसी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने संस्कृति के अमरीकी व्यापारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है और उसे वह 'संस्कृति की स्वाधीनता' का नाम देते हैं।[88]

अज्ञेय ने व्यक्ति के आंतरिक ऊहापोह को समझने की कोशिश की है। उनका चरित्र-विश्लेषण मौलिक है। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक कथाकार हैं।[89]

अज्ञेय के सब चरित्र व्यक्तिवादी हैं। कोई विद्रोहात्मक भावना से प्रेरित है या किसीका चरित्र विकास उसके अहंकार के माध्यम से किया गया है। फिर भी चरित्रों की सम्पूर्ण आधारशिला मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही है।[90] किन्तु अज्ञेय के चरित्र का यह अहंकार उदात्त समुन्नत और मानवतावादी है।[91] इस अहंकार का प्रयोग उन्होंने सब रूपों और प्रकारों में किया है और इसी की सहायता से उन्हें अपने शिल्पविधान में पूरी सफलता भी मिली है।[92]

सामूहिक रूप से सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत मूल्यों और समस्याओं के प्रति विद्रोह प्रदर्शन करने वाले चरित्रों के अंकन में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। 'रामु का ग्राम' 'नम्बर दस' का रतन 'द्रोही' का मैं 'अभिशाप' की कर्मेन और मेरिया आदि चरित्र इसी विद्रोह के प्रतीक हैं।[93] इन चरित्रों का निर्माण करुणा शोषण और मूक बलिदान के तत्त्वों को लेकर हुआ है जो स्त्री-पुरुष दोनों ही चरित्रों में समान रूप से विद्यमान हैं। इन चरित्रों की प्रकृति ही विद्रोह की भावनाओं से ओतप्रोत है—"मैं विद्रोही हूं इसलिए कि मेरी प्रकृति यह मांगती है। मेरी जीवन-शक्ति की यही निष्पत्ति है।"[94]

मनोविश्लेषण के लिए अज्ञेय ने कभी सीधे मनोविश्लेषण का तरीका अपनाया है, कभी मानसिक सपनों द्वारा मनोविश्लेषण किया है।[95] द्रोही सांप और सिगनेलर आदि कहानियां चरित्र के आत्मविश्लेषण के आधार पर ही निर्मित हैं।[96]

---

८७ नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका, पृ० १९७

८८. वही पृ० २००

८९ आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २०६

९० वही, पृ० १७१

९१ शिल्पविधि, पृ० २६३

९२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २१२

९३ हिन्दी कहानी और कहानीकार पृ० १२७

९४ कोठरी की बात, पृ० १३२

९५. विवेचना पृ० १९२

९६ विचार और विश्लेषण, पृ० ६२

'मनुष्य का भाग्य' और 'पुलिस की सीटी' आदि कहानियों में संकेतों एवं सूक्ष्म हाव भावों के सहारे मनुष्य की कर्मप्रेरणाओं और मनःस्थिति का सफल अध्ययन किया गया है।[९७] इन चरित्रों की विशेषता यह भी है कि ये मानवीय सम्बन्धों भावनों और आकांक्षाओं पर आधारित हैं और उनमें मानवीय निष्ठा एवं संस्कारों की कमी नहीं।[९८] बाद कहानियों में आकर उनके चरित्रों का कार्य-संकुल एवं कोलाहलपूर्ण जगत से सम्बन्ध टूट-सा गया है और वे अपने मानसिक चिंतन की दुनिया में बिल्कुल सिमटे से दीखते हैं।[९९]

अज्ञेय के उपन्यासों में चरित्र-विकास

अब उनके दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—शेखर एक जीवनी एवं 'नदी के द्वीप' तीसरा उपन्यास प्रकाशित होने वाला है।

शेखर एक जीवनी हिन्दी साहित्य में एक नूतन प्रयोग है। इस कृति के औपन्यासिक मूल्यांकन पर आलोचकों में बड़ा मतभेद है। किसीने उसे निरुद्देश्य क्रांतिकारी' असामाजिक प्राणी' 'अपकर, चोर, उद्दत अहंवादी या किसीने उसे मानवाले उपन्यासों के लिए 'प्रकाश स्तम्भ' बताया है।[१००] लेखक ने स्वयं शेखर का परिचय देते हुए कहा है—शेखर 'अच्छा' या 'बड़ा' आदमी नहीं लेकिन एक 'जागरूक स्वतन्त्र' और 'घोर ईमानदार व्यक्ति है।[१०१] शेखर स्वयं अपने बारे में कहता है—" मैं नया हूं अपूर्ण हूं नई प्रतिभा हूं जिसे भविष्य पूरा करेगा एक जिज्ञासा हूं जो मनुष्य के लिए रह जायगी।"[१०२] शेखर घोर अंतर्द्रष्टा है—कल्पना के शीशमहल में अपना जीवन काटनेवाला जहां" "बादलों से बने हुए सूत के वस्त्र पहननेवाली राजकन्या रहती है।" इसीलिए वह अकेला है। उसे भाषा का कोई आलोक नहीं दीखता क्योंकि वह व्यक्तिवादी है सामाजिक भ्रांति के भय से थर-थर कांपने वाला है।[१०३]

इस तरह इस उपन्यास में चरित्र की दृष्टि से उच्च मध्यवर्ग का विस्फोट हुआ है।[१०४] शेखर को युग या संस्कृति की सभी उपलब्धियां प्राप्त हैं जिन्हें वह उसी संस्कृति के विघटन का उपकरण बनाता है।[१०५]

---

९७ परम्परा, कोठरी की बात, पृ० १
९८. शिल्पविधि, पृ० २६८
९९. आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० १६१
१०० हिन्दी उपन्यास पृ० ३१०
१०१ शेखर एक जीवनी भूमिका, पृ० १०
१०२ वही, पृ० २३८
१ ३ नया हिंदी साहित्य एक भूमिका पृ० १०१
१०४ आत्मनेपद, पृ० ३८
१०५. आलोचना (११), पृ० ११४

होती।[113]

किन्तु लेखक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी "किसी हद तक असाधारण"[114] माना है—"सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात में।"[115] उन्होंने उसे "उस समाज का—जो संख्या में अप्रधान है—उस समाज के व्यक्तियों का सच्चा चित्र"[116] माना है।

टेक्नीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और चन्द्रमाधव हैं। रेखा का आदर्श है दान, चन्द्रमाधव का उपलब्धि।

प्रगतिशील आलोचक डा० रामविलास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की अनुकृति माना है।[117] एक आलोचना विचारधारा ने इस कृति के स्त्री-पात्रों को इसलिए 'अस्वाभाविक' और 'असम्भव' बताया है चूंकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।[118]

अज्ञेय द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पूर्ति के लिए उच्च मध्यवर्ग के अवकाश-वीथियों में उन्होंने अपने पात्रों को खोजा है जिससे औपन्यासिक कैनवस की सीमा भी बँध गयी है।[119] जिस तरह मैडम बोवेरी के चरित्र में फ्लोबेयर ने अपने व्यक्तित्व को लय कर दिया है, वैसा ही अज्ञेय ने भी किया है जो उनकी खास-विशेषता है।[120]

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की भावभूमि और परिवेश वासनाक्रान्त संत्रस्त पीड़ा-मण्डित और संकटग्रस्त है। इन विपन्नताओं में यदि कोई लय या राग उन्होंने खोजा भी है तो या तो वह अधूरा रह गया है या पूरा होते-होते अप्रासंगिक हो गया है।[121] लेखक ने 'शेखर' की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। शेखर उसी समय अदम्य कर्मशील जमाने का प्रतिनिधि होकर फांसी की कोठरी में बंद होता है। अगर वह चन्द्रकांता संतति का पात्र होता तो ऐयार लोग उसे उस कालकोठरी से छुड़ा ले जाते। वह यदि प्रेमचन्द का नायक होता तो जनता के जयजयकारों के बीच फांसी के फंदे को चूम

---

११३ साहित्यानुशीलन पृ० २९१
११४ आत्मनेपद, पृ० ७१
११५ वही
११६ वही
११७ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव पृ० २०९
११८ आलोचना अक्तूबर १९५८
११९ आलोचना (२४) पृ० ५
१२० ए ड्रीटाइज आन दी नावेल पृ० ९७
१२१ आधुनिक साहित्य, पृ० १७९

आदिम स्वच्छंदता में विश्वास करते हुए भी वह शशि, शारदा और 'कुमार' (पुरुष) को अपनाना चाहता है। विदेशी उपन्यासकार प्राउस्ट ने[106] पुरुष के प्रति इस अस्वाभाविक काम अथवा स्वलिंगी प्रेम (होमोसेक्स)[107] की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। शारदा और 'कुमार' तो उससे बच निकले। किन्तु शशि को उसका आत्मकेंद्रित अहं अपने अधिकार में पकड़ सका हालांकि यह शेखर मानव की मौज उन्मुक्तता और आदिम स्वच्छंदता का समर्थक है।

शेखर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके इर्द-गिर्द कुछ और भी अस्पष्ट से छाया-प्राणी हैं। शेखर स्वयं भी अस्पष्ट रह जाता है क्योंकि अन्तर्मन तो धुंधला ही रहने की चीज है।

'नदी के द्वीप' के पात्र भुवन, चन्द्रमाधव, रेखा, गौरा—सभी के सभी उच्च शिक्षित मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ आलोचकों ने रेखा में शशि को और भुवन में शेखर को देखने की कोशिश की है। निस्सन्देह ये चरित्र आपस में मिलते-जुलते हैं। फिर भी उनमें विषमता है। भुवन का व्यक्तित्व रेखा और गौरा में सिमटकर संकीर्ण हो गया है। शशि शेखर के लिए टूट जाती है। पर रेखा भुवन के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।[108] भुवन शेखर की भांति अराजकतावादी भी नहीं। वह घर-गृहस्थी में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की जड़ें समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और गौरा नाम की दो बिन्दुओं के अन्तर्गत है। इसीलिए उसके सिद्धान्तों को मूर्तरूप नहीं मिल पाया।[109]

'नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र चन्द्रमाधव एक 'मिडियाकर' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस वर्ग के चरित्र की असंगतियों को अत्यन्त जीवंत रूप से उपस्थित करता है।[110]

स्वयं लेखक ने 'नदी के द्वीप' को "चार संवेदनाओं का अध्ययन" मात्र कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।[111] लेखक ने यह भी कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि "प्रत्येक चरित्र एक सही सुनिश्चित विश्वास्य व्यक्ति-चरित्र हो जीवंत हो" यही काफी है।[112]

आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान इस उपन्यास के पात्रों को सजीव नहीं मानते। भुवन और चन्द्रमाधव को वे एक ही सिक्के का दो रुख मानते हैं। रेखा और गौरा भी एक ही हैं—सिर्फ उम्र का फर्क है दोनों में। वे भुवन के अहं को चोट पहुंचाने की निमित्तमात्र हैं। उनमें अपनी स्वतन्त्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं नहीं

---

१०६ दृष्टिकोण पृ० १४
१०७ आ० हि० सा० और मनो, पृ० ५७०
१०८. आलोचना (१३), पृ० ११४
१०९ वही पृ० ११२
११० वही,
१११ आत्मनेपद, पृ० ७९
११२ आत्मनेपद पृ० ८६

होती।[113]

किन्तु लेखक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी 'किसी हद तक असाधारण'[114] माना है— 'सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात से।'[115] उन्होंने उसे 'उस समाज का—जो संख्या में अप्रधान है—उस समाज के व्यक्तियों का सच्चा चित्र'[116] माना है।

टेक्नीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और चन्द्रमाधव हैं। रेखा का आदर्श है राग चन्द्रमाधव का उपलब्धि।

प्रगतिशील आलोचक डा० रामविलास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की अनुकृति माना है।[117] एक आलोचना विचारक ने इस कृति के स्त्री-पात्रों को इसलिए 'अस्वाभाविक' और 'असम्भव' बताया है चूंकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।[118]

अज्ञेय द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पूर्ति के लिए उच्च मध्यवर्ग के अवकाश-वीथियों में उन्होंने अपने पात्रों को खोजा है जिससे औपन्यासिक लेखन की सीमा भी बँध गयी है।[119] जिस तरह मैडम बोवेरी के चरित्र में फ्लौबेयर ने अपने व्यक्तित्व को व्यय कर दिया है वैसा ही अज्ञेय ने भी किया है जो उनकी खास विशेषता है।[120]

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की भावभूमि और परिवेश यातनाछादित समस्त पीड़ा-अभिशप्त और संकटग्रस्त हैं। इन विषमताओं में यदि कोई लय या राग उन्होंने खोजा भी है तो या तो वह अधूरा रह गया है या पूरा होते-होते अप्रासंगिक हो गया है।[121] लेखक ने 'शेखर' की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। शेखर उसी समय अदम्य कर्मशील जमाने का प्रतिनिधि होकर फांसी की कोठरी में बंद होता है। अगर वह चन्द्रकांता संतति का पात्र होता तो ऐयार खोज उसे उस कालकोठरी से छुड़ा ले जाते। वह यदि प्रेमचन्द का नायक होता तो जनता के जयजयकारों के बीच फांसी के फंदे को चूम

---

११३ साहित्यानुशीलन, पृ० २६१
११४ आत्मनेपद पृ० ७१
११५. वही
११६ वही
११७ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव पृ० २ ६
११८. ज्ञानोदय, अक्टूबर १९५८
११९. आलोचना (१४) पृ० ५
१२० ए ट्रीटाइज आन दी नावेल, पृ० ६७
१२१ आधुनिक साहित्य पृ० १७५

आदिम स्वच्छंदता में विश्वास करते हुए भी वह शशि, शारदा और 'कुमार' (पुरुष) को अपनाना चाहता है। विदेशी उपन्यासकार प्राउस्ट ने[१०६] पुरुष के प्रति इस अस्वाभाविक काम अथवा सलिंगी प्रेम (होमोसेक्स)[१०७] की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। शारदा और 'कुमार' तो उससे बच निकले। किन्तु शशि को उसका *आत्मकेंद्रित अहं अपने अधिकार में पकड़ पाया हालाँकि यह शेखर मानव की यौन* उन्मुक्तता और आदिम स्वच्छंदता का समर्थक है।

शेखर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके इर्द-गिर्द कुछ और भी अस्पष्ट से छाया-आभी हैं। शेखर स्वयं भी अस्पष्ट रह जाता है क्योंकि अन्तर्मन तो धुंधला ही रहने की चीज है।

'नदी के द्वीप' के पात्र भुवन चन्द्रमाधव रेखा गौरा—सभी के सभी उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ आलोचकों ने रेखा में शशि को और भुवन में शेखर को देखने की कोशिश की है। निस्सन्देह ये चरित्र आपस में मिलते-जुलते हैं। फिर भी इनमें विषमता है। भुवन का व्यक्तित्व रेखा और गौरा में सिमटकर संकीर्ण हो गया है। शशि शेखर के लिए टूट जाती है। पर रेखा भुवन के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।[१०८] भुवन शेखर की भाँति अराजकतावादी भी नहीं। वह घर-गृहस्थी में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की जड़ें समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और गौरा नाम की दो बिन्दुओं के अन्तर्गत है। इसीलिए उसके सिद्धान्तों को मूर्तरूप नहीं मिल पाया।[१०९]

'नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र चन्द्रमाधव एक 'सिनिसाकर' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस वर्ग के चरित्र की असंगतियों को अत्यन्त जीवंत ढंग से उपस्थित करता है।[११०]

स्वयं लेखक ने 'नदी के द्वीप' को "चार संवेदनाओं का अध्ययन" मात्र कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।[१११] लेखक ने यह भी कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि "प्रत्येक चरित्र एक सही सुनिश्चित विश्वास्य व्यक्ति-चरित्र हो जीवंत हो" यही काफी है।[११२]

आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान इस उपन्यास के पात्रों को सजीव नहीं मानते। भुवन और चन्द्रमाधव को वे एक ही सिक्के का दो रुख मानते हैं। रेखा और गौरा भी एक ही हैं—सिर्फ उम्र का फर्क है दोनों में। वे भुवन के अहं को चोट पहुँचाने की निमित्तमात्र हैं। उनमें अपनी स्वतन्त्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं नहीं

---

१०६ दृष्टिकोण पृ० १४
१०७ आ० हि० सा० और मनो०, पृ० २७०
१०८. आलोचना (११) पृ० १२४
१०९ वही पृ० १२५
११० वही
१११ आत्मनेपद पृ० ७२
११२ आत्मनेपद पृ० ८६

होगी।[113]

किन्तु लेखक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी "किसी हद तक यथार्थ"[114] माना है—"सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात से।"[115] उन्होंने उसे "उस समाज का—जो संख्या में अल्पमात्र है—उस समाज के व्यक्तियों का सच्चा चित्र[116]" माना है।

टेक्नीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और चन्द्रमाधव हैं। रेखा का आदर्श है दान, चन्द्रमाधव का उपलब्धि।

प्रगतिशील आलोचक डा० रामविलास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की अनुकृति माना है।[117] एक आलोचना-विशारद ने इस कृति के स्त्री-पात्रों को इसलिए 'अस्वाभाविक' और 'असम्भव' बताया है चूंकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।[118]

अज्ञेय द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पूर्ति के लिए उच्च मध्यवर्ग के अवकाश-जीवियों में उन्होंने अपने पात्रों को खोजा है जिससे औपन्यासिक फलक की सीमा भी बँध गयी है।[119] जिस तरह मैडम बोवेरी के चरित्र में फ्लोबेयर ने अपने व्यक्तित्व को लय कर दिया है, वैसा ही अज्ञेय ने भी किया है जो उनकी खास विशेषता है।[120]

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की भावभूमि और परिवेश यातनाक्रमित, वेदनार्त पीड़ा-मण्डित और संकटग्रस्त है। इन विषमताओं में यदि कोई लय या राग उन्होंने खोजा भी है तो या तो वह अधूरा रह गया है या पूरा होते-होते असामयिक हो गया है।[121] लेखक ने 'शेखर' की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। शेखर उसी समय अदम्य कर्मशील जमाने का प्रतिनिधि होकर फांसी की कोठरी में बंद होता है। अगर वह चन्द्रकांता संतति का पात्र होता तो ऐयार लोग उसे उस कालकोठरी से छुड़ा ले जाते। वह यदि प्रेमचन्द का नायक होता तो जनता के जयजयकारों के बीच फांसी के फंदे को चूम

---

११३ साहित्यानुशीलन, पृ० २११
११४ आत्मनेपद, पृ० ७१
११५ वही
११६ वही
११७ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० २०६
११८ ज्ञानोदय अक्तूबर, १९५८
११९ आलोचना (२४) पृ० ५
१२० ए ट्रीटाइज आन दी नावेल पृ० ६७
१२१ आधुनिक साहित्य, पृ० १७५

आदिम स्वच्छंदता में विश्वास करते हुए भी वह शशि, शारदा और 'कुमार' (पुरुष) को अपनाना चाहता है। विदेशी उपन्यासकार प्राउस्ट ने[१०६] पुरुष के प्रति इस अस्वाभाविक काम अथवा स्वलिंगी प्रेम (होमोसेक्स)[१०७] की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। शारदा और 'कुमार' तो उससे बच निकले। किन्तु शशि को उसका आत्मकेंद्रित अहं अपने अधिकार में पकड़ लाया हालांकि यह शेखर मानव की थोथ वस्तुपरकता और आदिम स्वच्छंदता का समर्थक है।

शेखर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके इर्द-गिर्द कुछ और भी अस्पष्ट से छाया-प्राणी हैं। शेखर स्वयं भी अस्पष्ट रह जाता है क्योंकि अन्तर्मन तो धुंधला ही रहने की चीज है।

'नदी के द्वीप' के पात्र भुवन चन्द्रमाधव रेखा गौरा—सभी के सभी उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ आलोचकों ने रेखा में शशि को और भुवन में शेखर को देखने की कोशिश की है। निस्सन्देह ये चरित्र आपस में मिलते-जुलते हैं। फिर भी इनमें विषमता है। भुवन का व्यक्तित्व रेखा और गौरा में सिमटकर संकीर्ण हो गया है। शशि शेखर के लिए टूट जाती है। पर रेखा भुवन के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।[१०८] भुवन शेखर की भांति अराजकतावादी भी नहीं। वह घर-गृहस्थी में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की जड़ें समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और गौरा नाम की दो बिन्दुओं के अन्तर्गत है। इसीलिए उसके सिद्धान्तों को मूर्तरूप नहीं मिल पाया।[१०९]

नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र चन्द्रमाधव एक 'मिडियाकर' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस युग के चरित्र की असंगतियों को अत्यन्त बीभत्स रूप से उपस्थित करता है।[११०]

स्वयं लेखक ने 'नदी के द्वीप' को 'चार व्यक्तियों का अध्ययन' मात्र कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।[१११] लेखक ने यह भी कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि "प्रत्येक चरित्र एक सही सुनिर्मित विश्वास्य व्यक्ति-चरित्र हो जीवंत हो" यही काफी है।[११२]

आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान इस उपन्यास के पात्रों को सजीव नहीं मानते। भुवन और चन्द्रमाधव को वे एक ही सिक्के का दो रुख मानते हैं। रेखा और गौरा भी एक ही हैं—सिर्फ उम्र का फर्क है दोनों में। वे भुवन के अहं को ठेस पहुंचाने की निमित्तमात्र हैं। उनमें अपनी स्वतन्त्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं नहीं

---

१०६ दृष्टिकोण, पृ० १४
१०७ आ० हि० सा० और मनो०, पृ० २७०
१०८. आलोचना (११) पृ० ११४
१०९ वही पृ० ११५
११० वही
१११ आत्मनेपद पृ० ७२
११२ आत्मनेपद पृ० ८६

होगी।[113]

किन्तु लेखक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी "किसी हद तक असाधारण"[114] माना है—"सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात में।"[115] उन्होंने उसे 'उस समाज का—जो संख्या में अल्पमात्र है—उस समाज के व्यक्तियों का सच्चा चित्र'[116] माना है।

टेकनीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति-चरित्र रेखा और चन्द्रमाधव हैं। रेखा का आदर्श है दान चन्द्रमाधव का उपलब्धि।

सर्वविदित आलोचक डा० रामविलास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की अनुकृति माना है।[117] एक आलोचना-विशारद ने इस कृति के स्त्री-पात्रों को इसलिए 'अस्वाभाविक' और 'असम्भव' बताया है चूंकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।[118]

अज्ञेय द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पुष्टि के लिए उच्च मध्यवर्ग के अवकाश-जीवियों में उन्होंने अपने पात्रों का खोजा है जिससे औपन्यासिक फलक की सीमा भी बंध गयी है।[119] जिस तरह मैडम बोवेरी के चरित्र में फ्लोबेयर ने अपने व्यक्तित्व को लय कर दिया है वैसा ही अज्ञेय ने भी किया है जो उनकी खास विशेषता है।[120]

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की भावभूमि और परिवेश अवसादाच्छादित, संत्रस्त पीड़ा-मज्जित और संकटग्रस्त हैं। इन विषमताओं में यदि कोई लय या राग उन्होंने खोजा भी है तो या तो वह अधूरा रह गया है या पूरा होते-होते अप्रासंगिक हो गया है।[121] लेखक ने 'शेखर' की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। शेखर उसी समय अदम्य कर्मशील क्रान्ति का प्रतिनिधि होकर फांसी की कोठरी में बंद होता है। अगर वह चन्द्रकांता संतति का पात्र होता तो ऐयार लोग उसे उस कालकोठरी से छुड़ा ले जाते। वह यदि प्रेमचन्द का नायक होता तो जनता के जयजयकारों के बीच फांसी के फंदे को चूम

---

११३ साहित्यानुशीलन, पृ० २११
११४ आत्मनेपद, पृ० ७१
११५ वही
११६ वही
११७ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ० २०६
११८ ग्रामोदय अगस्त, १९५८
११९ आलोचना (२४) पृ० ५
१२० ए ट्रीटाइज आन दी नावेल, पृ० ९७
१२१ आधुनिक साहित्य, पृ० १७५

आदिम स्वच्छंदता में विश्वास करते हुए भी वह शशि शारदा और 'कुमार' (पुरुष) को अपनाना चाहता है। विदेशी उपन्यासकार प्राउस्ट ने[106] पुरुष के प्रति इस अस्वाभाविक काम अथवा स्वलिंगी प्रेम (होमोसेक्स)[107] की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। शारदा और 'कुमार' तो उससे बच निकले। किन्तु शशि को उसका आत्मकेंद्रित अहं अपने अधिकार में पकड़ पाया हालांकि वह शेखर मानव की यौन उन्मुक्तता और आदिम स्वच्छंदता का समर्थक है।

शेखर एक ही व्यक्ति का चित्र है यद्यपि उसके इर्द-गिर्द कुछ और भी अस्पष्ट से छाया प्राणी हैं। शेखर स्वयं भी अस्पष्ट रह जाता है क्योंकि अन्तर्मन तो धुंधला ही रहने की चीज है।

'नदी के द्वीप' के पात्र भुवन चन्द्रमाधव रेखा गौरा—सभी के सभी उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय पात्र हैं। कुछ आलोचकों ने रेखा में शशि को और भुवन में शेखर को देखने की कोशिश की है। निस्सन्देह ये चरित्र आपस में मिलते-जुलते हैं। फिर भी उनमें विषमता है। भुवन का व्यक्तित्व रेखा और गौरा में सिमटकर संकीर्ण हो गया है। शशि शेखर के लिए टूट जाती है। पर रेखा भुवन के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करने के लिए टूटकर भी नहीं टूटती।[108] भुवन शेखर की भांति अराजकतावादी भी नहीं। वह घर-गृहस्थी में विश्वास करता है। वह व्यक्ति की जड़ें समाज जीवन में मानता है। पर उसका समाज रेखा और गौरा नाम की दो बिन्दुओं के अन्तर्गत है। इसीलिए उसके सिद्धान्तों को मूर्तरूप नहीं मिल पाता।[109]

'नदी के द्वीप' का दूसरा पात्र चन्द्रमाधव एक 'सिडियाकर' मध्यवर्गीय चरित्र है जो इस युग के चरित्र की असंगतियों को अत्यन्त जीवंत ढंग से उपस्थित करता है।[110]

स्वयं लेखक ने 'नदी के द्वीप' को 'चार व्यक्तियों का अध्ययन' मात्र कहा है। उसमें जो विकास है वह भी चरित्र का नहीं संवेदना का ही है।[111] लेखक ने यह भी कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि 'प्रत्येक चरित्र एक सही सुनिर्मित, विश्वास्य व्यक्ति चरित्र हो जीवंत हो" यही काफी है।[112]

आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान इस उपन्यास के पात्रों को सजीव नहीं मानते। भुवन और चन्द्रमाधव को वे एक ही सिक्के का दो रूप मानते हैं। रेखा और गौरा भी एक ही हैं—सिर्फ उम्र का फर्क है दोनों में। वे भुवन के अहं को चोट पहुंचाने की निमित्तमात्र हैं। उनमें अपनी स्वतन्त्र और स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं नहीं

---

१०६ दृष्टिकोण, पृ० १४
१०७ आ० हि० सा० और मनो०, पृ० २७०
१०८. आलोचना (१३), पृ० ११४
१०९. वही पृ० ११५
११० वही,
१११ आत्मनेपद पृ० ७२
११२ आत्मनेपद पृ० ८६

होती।[११३]

किन्तु, लेखक ने अपनी कहानी को एवं पात्रों को भी "किसी हद तक असाधारण"[११४] माना है—"सब नहीं तो चार में से तीन के अनुपात से।"[११५] उन्होंने उसे 'उस समाज का—जो संख्या में अप्रधान है—उस समाज के व्यक्तियों का सच्चा चित्र'[११६] माना है।

टेकनीक की दृष्टि से उपन्यास के प्रति चरित्र रेखा और चन्द्रमाधव हैं। रेखा का आदर्श है दान चन्द्रमाधव का उपलब्धि।

प्रगतिशील आलोचक डा॰ रामविलास शर्मा ने अज्ञेय के चरित्रों को विदेशी साहित्यकारों की अनुकृति माना है।[११७] एक आलोचना विशारदा ने इस कृति के स्त्री-पात्रों को इसलिए 'अस्वाभाविक' और 'असम्भव' बताया है चूंकि उनमें ईर्ष्या नहीं है।[११८]

अज्ञेय द्वारा चित्रित रोमांस एक अन्तर्मुख व्यक्तित्व का रोमांस है। इसकी पूर्ति के लिए उच्च मध्यवर्ग के अवकाश-जीवियों में उन्होंने अपने पात्रों को खोजा है जिससे औपन्यासिक लेखन की सीमा भी बँध गयी है।[११९] जिस तरह मैडम बोवेरी के चरित्र में फ्लोबेयर ने अपने व्यक्तित्व को व्यय कर दिया है वैसा ही अज्ञेय ने भी किया है जो उनकी खास-विशेषता है।[१२०]

अज्ञेय के औपन्यासिक नायक

अज्ञेय के दोनों ही उपन्यासों की भावभूमि और परिवेश आतंकाक्रान्त संत्रस्त पीड़ा-मण्डित और संकटग्रस्त है। इन विषमताओं में यदि कोई लय या राग उन्होंने खोजा भी है तो या तो वह अपूर्ण रह गया है या पूरा होते-होते अप्रासंगिक हो गया है।[१२१] लेखक ने 'शेखर' की कल्पना १९३०-३२ के राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में की थी यद्यपि पुस्तक का प्रकाशन सन् ४० में हुआ। शेखर उसी समय अदम्य कर्मशील जमाने का प्रतिनिधि होकर फांसी की कोठरी में बंद होता है। अगर वह चन्द्रकांता संतति का पात्र होता तो ऐयार लोग उसे उस कालकोठरी से छुड़ा ले जाते। वह यदि प्रेमचन्द का नायक होता तो जनता के जयजयकारों के बीच फांसी के फंदे को चूम

---

११३ साहित्यानुशीलन, पृ॰ २६१
११४ आत्मनेपद पृ॰ ७३
११५ वही
११६ वही
११७ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पृ॰ २०६
११८ आलोचना अक्टूबर, १९५८
११९ आलोचना (२४) पृ॰ ५
१२० ए डीफाइन आफ दी नावेल, पृ॰ ९७
१२१ आधुनिक साहित्य पृ॰ १७५

कर सके तथा नेता या पेन से छूटकर कहीं किसी आश्रम की स्थापना कर सकता[122] पर शेखर के सामने ये दोनों रास्ते नहीं थे। इसीलिए फाँसी की कोठरी में मृत्यु की आसन्न छाया में वह गहरे सोचने को विवश है।

भुवन शेखर की तरह १९१२ के भारत का नहीं १९४८ के भारत के परिवेश पर गढ़ा गया पात्र है। शेखर में जुलूस है उसमें व्यक्ति स्वयंसेवक है। नदी के द्वीप में भीड़ है उसमें व्यक्ति फँस गया है। इसीलिए भुवन एक अजीब परिवेश में है। शेखर कर्म प्रतिश्रुत था। पर भुवन क्या करे यह उसे समझ में नहीं आता। इसी अनिश्चय के बीच संत्रस्त मानवता के प्रसंग में वह जीवन, स्वाधीनता और आत्मोपलब्धि के प्रश्नों को उठाता है।[123] शेखर के रूप में अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भकर भुवन केवल प्रतीक्षा के 'शिखर' और शिथिल द्वीप तक पहुंच पाता है।[124]

अपने प्रकाशित होनेवाले नये उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' के बारे में लेखक ने कहा है कि इसके पात्र विदेशी हैं। किस प्रकार मृत्यु कुछ के लिए अपनी और कुछ के लिए अजनबी होती है, यही उपन्यास की वस्तु है।[125]

इलाचन्द्र जोशी

श्री इलाचन्द्र जोशी की उपन्यास-कला दो धाराओं में बँटकर बही है।[126] पहली धारा के उपन्यास मानवीय मनोविकारों एवं मानवीय अंतश्चेतना पर आधारित हैं। उनमें मनुष्य स्वभाव के बड़े घृणित अंशों का भी चित्रण हुआ है। बाद में उन्होंने बाह्य सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर अपनी रचनाएं कीं और यही धारा अब उनकी उपन्यास-कला की मुख्य धारा है। पहली धारा की मुख्य रचनाएं हैं 'पर्दे की रानी' एवं 'प्रेत और छाया'। दूसरी धारा की प्रतिनिधि रचनाएं हैं 'मुक्तिपथ', 'सुबह के भूले' 'जिप्सी' और 'जहाज का पंछी'।

जोशीजी के औपन्यासिक चरित्र

कलात्मक दृष्टि से जोशीजी के उपन्यासों का मूलाधार चरित्र है। इनके निर्माण उद्घाटन तथा व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने व्यक्तिवादी धरातल का सहारा लिया है। चरित्र के अंतर में प्रवेशकर उसकी वृत्तियों—दुर्बलताओं और सबलताओं—का उद्घाटन करना ही उनकी कला की आधार-शिला है।[127]

कुछ आलोचकों ने व्यक्ति-मन की पीड़ा और कुंठा का चित्रण करने के लिए

---

१२२ आकाशवाणी, इलाहाबाद, २०-१०-५७

१२३ प्रसारिका, १९५७ जुलाई-सितम्बर, पृ० ४१

१२४ आकाशवाणी इलाहाबाद, २० १० ५७

१२५ ज्ञानोदय, मार्च १९६२, पृ० ४३

१२६ आलोचना (१८), पृ० [illegible]

१२७ नया साहित्य, नये प्रश्न, पृ० १८

उनकी आलोचना की है। किंतु, यदि व्यक्ति की चिंता नहीं की जाय तो हमें दुनिया के बारे में सोचने-समझने का कोई कारण नहीं मिल सकता क्योंकि व्यक्ति ही वह इकाई है जो दुनिया की चिंता करने वाला है।[128] जोशीजी के उपन्यासों के व्यक्ति के माध्यम से जीवन या मस्तिष्क में तैरती हुई मानव-चेतना के प्रवाह को अच्छी तरह देखा और समझा जा सकता है। फिर भी जोशीजी ने व्यक्ति के अहंभाव पर तीव्र प्रहार किये हैं। 'पर्दे की रानी' का नायक इन्द्रमोहन इसका प्रमाण है।[129]

'जहाज का पंछी' उनका नवीनतम उपन्यास है जिसका नायक मध्यवर्गीय एवं स्वस्थ बौद्धिकता का एक सबल चरित्र है।

शेक्सपीयर के नाटकों की तरह उनके उपन्यासों की नायिकाएं नायकों से कहीं अधिक प्रबुद्ध और प्रभावशालिनी हैं। अन्य पात्रों के साथ ही उनके उपन्यासों में एक संयममूर्ति पात्र की योजना की गयी है जैसा 'ला मिजरेबल्स' (विक्टर ह्यूगो) में बिशप घर-बाहर (रवीन्द्र) में नायक का अध्यापक है। 'पर्दे की रानी' में निरंजना का गुरु भी वैसा ही एक पात्र है।[130] कुल मिलाकर उनके पात्र सिद्धांतों सुधारों और आदर्शों की प्रस्तर-प्रतिमाएं नहीं हैं।[131] उनमें जीवन की सफलता विफलतामयी सजीवता है। उनके नायक किसी एक परिवार या वर्ग के प्राणी नहीं। वे सम्पूर्ण मानव-परिवार के सचेतन सदस्य के रूप में हमारे सामने आते हैं।[132]

जोशी के उपन्यासों में आये पात्रों पर विचार करने से यह भी प्रतीत होता है कि उनके आरम्भिक उपन्यासों के कई पात्र अपने यत्किंचित् परिवर्तित रूपों में उनके बाद के उपन्यासों में भी आते हैं। व्यक्ति की अन्तर्मुखी समस्याओं पर विचार करने वाले उपन्यासों में ऐसे निराग्रही और तटस्थ दृष्टिकोण रखने वाले पात्र दुहराये गये हैं।[133]

उनके पात्र अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी भी होते गये हैं।[134] 'निर्वासित' का ठाकुर वीरबलसिंह ऐसा ही एक पात्र है। प्रारम्भिक चरित्र 'लज्जा' को सन्यासी में 'जयंती' के रूप में पहचाना जा सकता है हालांकि परिस्थितियों के अनुसार इन पात्रों का रूप भी परिवर्तित होता गया है।[135] 'मुक्ति पथ' की सुनंदा 'सुबह के भूले' की गिरिजा और 'जिप्सी' की मनिया पहले की कृतियों में आए नारी-पात्रों के परिवर्तित रूप हैं। 'निर्वासित' के महीप को बार-बार न दुहराकर 'जहाज का पंछी' के आवारा

---

१२८ इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास, पृ० १५५
१२९ हिन्दी कथा साहित्य, पृ० १०८
१३० आकाशवाणी, इलाहाबाद, १५-१२-५८
१३१ आ० हि० कथा सा० और मनो, पृ० २५१
१३२ आकाशवाणी इलाहाबाद, १५ १२ ५८
१३३ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० २२२
१३४ आलोचना (१८), पृ० ५१
१३५. इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास, पृ० १००

नायक में एक बार आया गया है। यह सुदृढ़, दीप्तिमान और हँसोड़ व्यक्ति महीप का ही पूरक है।[136]

व्यक्तिवादी उपन्यासकार होने के कारण प्राय: एक ही मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त व्यक्ति उनके उपन्यासों का केन्द्र होता है। किन्तु, परिपार्श्व के साथ इस व्यक्ति के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को न देख पाने के कारण 'संन्यासी' से लेकर 'निर्वासित' तक उनके उपन्यासों की परिणति पलायन और निराशावाद में हुई है।[137] जोशीजी ने इसकी सफाई देते हुए कहा है— "और नायकों की गाथा लिखने वाले उपन्यासकारों की कमी नहीं पर दुर्बल व्यक्तियों को कथा-नायक बनाने का सौभाग्य अकेले मुझे ही प्राप्त है।"[138] यह बात संभवत: सही है। उनके पास अकर्मण्य निष्क्रिय आलसी यथार्थ से नाता न रखनेवाले स्वच्छंद यौन सम्बन्ध रखनेवाले हैं जो एक साथ कई नारियों से खेलते हैं और अन्त में उन्हें धोखा भी देते हैं।[139] आलोचनाओं के उत्तर में जोशीजी ने कहा है कि 'आज के समाज से मनोविकार ग्रस्त चरित्र-नायकों को लाकर, उनका सच्चा मनोविश्लेषण करके ही व्याधियों का निराकरण किया जा सकता है और अपने साहित्य में मैंने ऐसा ही किया है।"[140]

जोशीजी के नारी-पात्र आत्महनन करनेवाली पति-परायणा नहीं हैं। वे मुखर सोचने वाली एवं व्यक्तित्वपूर्ण हैं। नन्दा मंजरी मंदिनी शांति नीलम प्रतिमा सुनंदा—सभी की सभी व्यक्तित्व की पूर्णता से समन्वित हैं। जोशीजी ने कहा है कि ऐसी सबल और सचेत नारियों की सृष्टि करके मैंने आज के युग की संघर्षशील नारी का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से करने का प्रयास किया है।"[141]—ऐसी नारी जिसमें विद्रोह के बीज हैं जो पुरुष के साथ समझौता नहीं करती और उसके परिणाम को भी भुगतने को स्वयं अपने ही बल पर तैयार रहती है।[142]

मनोविज्ञान की योजना द्वारा इनके पात्रों में कुछ विषमताएं दिखाई पड़ती हैं। वे हैं अन्तर्मन के विस्फोट, अहं हीनभाव तथा केवल स्वाभाविक जीवन नहीं जीना, विचित्र क्रिया-कलापों वाले।[143]

जोशीजी ने मध्यवर्ग की समस्याओं को कुंठाओं को मनोविज्ञान की पुस्तकों में देखा है।[144] फलत: 'पर्दे की रानी' और 'प्रेत की छाया' जैसे उनके उपन्यासों में मनो-

---

१३६ वही
१३७ साहित्य सन्देश नवम्बर १९४८ पृ० १९४
१३८ हिन्दी पृ० ७०९
१३९. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० २२२
१४० विश्लेषण पृ० १९९
१४१ विवेचना, पृ० १२४
१४२ विश्लेषण, पृ० १०१
१४३ आलोचना (१८) पृ० ७७
१४४ आलोचना (११) पृ० ११२

विश्लेषण मन्थर हो गया है जिससे चरित्रों को व्यक्तित्व भी नहीं मिल पाता। 'प्रेत और छाया' का पारसनाथ ऐसे ही अमूर्त सिद्धांतों पर गढ़ा गया एक पात्र है।[१४५]

जोशीजी के कथनानुसार उनका 'निर्वासित' उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन की कहानी है। इसमें मध्यवर्ग के कुंठाग्रस्त व्यक्ति के जीवन की व्यर्थता का करुण चित्र खींचा गया है। महीप नीलिमा आदि ऐसे ही पात्र हैं। प्रतिमा और शारदा के रूप में नारी-व्यक्तित्व को कुछ निश्चित स्वरूप प्रदान करने की कोशिश की गयी है अवश्य पर कृत्रिमता के कारण वह असफल हुई है।[१४६] शारदा के माध्यम से सर्वहारा क्रांति के विषय में प्रकट किये गये विचार अप्रासंगिक हैं। उनसे सिर्फ पढ़े-लिखे वर्ग की चिंतन धारा का थोड़ा-सा पता चलता है।[१४७]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल[१४८] ने उनकी कहानियों के समस्त चरित्रों को तीन श्रेणियों में बांटा है। असाधारण में कापालिक रानिचर प्रेतात्मक एवं शराबी आदि हैं। दूसरे हैं साधारण चरित्र जिनमें रोगी परित्यक्ता एवं मध्यवर्ग के अन्य चरित्र हैं। तीसरे हैं वे चरित्र जो अधिक बलिष्ठ सुदृढ़ और सर्वग्राही हैं।

चरित्र का तीसरा प्रकार अर्थात् 'मैं' लेखक के चरित्रविधान का प्रमुख अंग है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों का प्रतिनिधि नायक 'मैं' ही है।[१४९] किन्तु यह उनकी विशेषता है कि इस 'मैं' का विश्लेषण भी उन्होंने निर्ममतापूर्वक किया है। वस्तुतः आत्मविश्लेषण द्वारा चरित्रों का उद्घाटन ही उनकी खास विशेषता है। चरित्र को उन्होंने अतिरंजित करके नहीं देखा है। वे भावतत्व और चरित्र-विश्लेषण को ही कहानियों की आत्मा मानते हैं।[१५०]

श्री जोशी 'हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार'[१५१] नामक पुस्तक में अपने को फ्रायडवाद से प्रभावित नहीं मानते। पर आलोचक डा० देवराज उपाध्याय ने[१५२] उन्हें फ्रायडवादी ही माना है। श्री शिवदानसिंह चौहान एवं हिन्दी के कुछ अन्य आलोचकों ने भी उन्हें फ्रायडवादी ही माना है।[१५३] डा० देवराज 'दिवालेख' नामक कहानी की नायिका सम्मोहिनी को तो बिल्कुल फ्रायडियन ही मानते हैं।[१५४] कुछ प्रश्नों के उत्तर

---

१४५ वही
१४६ इलाचन्द्र जोशी साहित्य और समीक्षा पृ० १५
१४७ आलोचना (११), पृ० ११३
१४८. विश्वलिपि पृ० २७५
१४९. आ हि० क० सा० और मनो० पृ० २६८
१५० हिन्दी कहानी पृ० २०६
१५१ पृ० ११०
१५२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २२२
१५३ साहित्यानुशीलन पृ० ३८
१५४ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २२२

में सम्मोहिनी को कुछ कहती है उसमें फ्रायड के अनुकूल बहुत-सी बातें हैं।[125] एक पाकेटमार को बड़ी-बड़ी तनखा पानेवाले बाबुओं और मालदार सेठों की जेब काटने पर परम प्रसन्नता होती है। कारण बताते हुए वह कहता है इस तरह 'मन ही मन अपने को दलितों का स्वयंसिद्ध प्रतिनिधि समझकर मैं खुश हो लेता हूं।' यह भी फ्रायडियन मनोवृत्ति की सूचना देने वाला वक्तव्य है।[126]

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा का सुप्रसिद्ध एवं सर्वप्रथम उपन्यास है 'चित्रलेखा'। इसके नायक बीजगुप्त के बारे में सम्राट चन्द्रगुप्त ने कहा है—'तुम एक महान आत्मा हो। तुम मनुष्य नहीं देवता हो।'"[127] और फिर महाप्रभु रत्नांबर ने कहा—"बीजगुप्त भोगी है उसके हृदय में संसार की समस्त वासनाओं का निवास है, ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं स्वर्ग तथा नरक की उसे कोई चिंता नहीं।"[128]

बीजगुप्त भोगी होते हुए भी योगी कुमारगिरि से श्रेष्ठ सिद्ध हुआ। वासना में भी वह अभ्युत है। नर्तकी चित्रलेखा के प्रति उसकी वासना अनन्य प्रेम में लीन हो जाती है। कुमारगिरी का पतन होता है। बीजगुप्त स्वयं देवता बना और नर्तकी चित्रलेखा का भी उद्धार कर गया।

प्रेमचंद कुलीन चरित्रों से 'चित्रलेखा तक चरित्र विकास में काफी प्रगति हुई है।'[129] व्यक्ति-स्वातंत्र्य के आदर्शों की स्थापना ही वर्मा के उपन्यासों का मूल उद्देश्य है। 'चित्रलेखा' में बीजगुप्त तथा चित्रलेखा 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में पंडित रामनाथ के तीनों पुत्र 'आखिरी दांव' में चमेली तथा रामेश्वरी के चरित्र लेखक के दृष्टिकोण का परिणाम है।[130] 'तीन वर्ष' के नायक रमेश के विचारों में 'प्रेम का अंत विवाह है।'"[131] पर उसकी सहपाठिनी और प्रेमिका प्रभा विवाह को 'आर्थिक सम्बन्ध' कहती है। प्रभा की असहमति से रमेश विक्षिप्त हो गया। तभी वह शराबी और वेश्यागामी बना।[132] वह कहने लगा—'रुपया ही वासित है प्रेम दुनिया में कहां है जो कुछ है सो पता है।" पर सरोज नाम की वेश्या ने उसकी आंखें खोलीं। रमेश के प्रेम में वह मिट गयी और चार लाख की सम्पत्ति उसे विरासत में छोड़ गयी। फिर प्रभा ने उसे धनी देखकर विवाह का प्रस्ताव किया। रमेश ने जवाब दिया

---

१२५ वही, पृ० २६७
१२६ वही
१२७. चित्रलेखा
१२८ वही
१२९. हिन्दी उपन्यास (शवन), पृ० ६९
१३० वही
१३१ आलोचना (११), पृ० ११६
१३२ हिन्दी उपन्यास (शवन), पृ० १०२

"पुरुष को शरीर देने के बदले तुम उसका धन चाहती हो और यह वेश्यावृत्ति है।" इस तरह रमेश ने एक वेश्या में शुद्ध प्रेम और एक संभ्रांत युवती में वेश्यावृत्ति के दर्शन किये।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में हमारे जटिल जीवन के दृश्य हैं। उसके वृद्ध, शिक्षित निष्ठावान नायक पंडित रामनाथ बड़े लड़के दयानाथ को कांग्रेस में शामिल होने पर और मझले उमानाथ को समाजवादी दल में शामिल होने के कारण त्याग देते हैं।[१६३] आतंकवादी छोटे पुत्र को स्वयं फांसी पर चढ़ने को तैयार करते हैं। अंत में उन्होंने महसूस किया कि सब कुछ के बावजूद 'वह जीवन में बुरी तरह हार रहे हैं।' जिन्दगी की यह आँख-मिचौनी तो हर व्यक्ति के जीवन में लगी ही रहती है। 'आखिरी दांव' का नायक रामेश्वर भी सब कुछ हारकर गांव से बम्बई आया। वहां उसे अपने घर वालों से पीड़ित चमेली मिली। चमेली अंत में उसे आत्मसमर्पण करती है।[१६४] पर फिर रामेश्वर के कारण ही उसका पतन होता है। अंत में रामेश्वर ने आदमी बनने की ठानी। वह बम्बई का 'दादा' बना पर यहाँ जीवन का आखरी दांव हार गया। 'अपने खिलौने' का युवराज वीरेश्वरप्रताप भी ऐसा ही एक चरित्र है—हालांकि वह शिक्षित सुसंस्कृत और एक कलाकार है जिससे वह श्रीमती कैरा जैसी कौमल का अस्थायी आराध्य देव भी बन सका है।[१६५] आज के संभ्रांत और शिष्ट उच्च वर्ग पर 'अपने खिलौने' में अत्यधिक तीखा व्यंग है।[१६६]

'भूले-बिसरे चित्र' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें चार पीढ़ियों तथा उनके आस-पास के युग का चित्रण है। इसमें दो दर्जन पात्रों का चित्रण है। इस दृष्टि से इसे हम एक नया प्रयोग भी कह सकते हैं।[१६७] इसके ज्वालाप्रसाद गंगाप्रसाद ज्ञिनकी और नौबू हिन्दी उपन्यास के अमर पात्र हैं। हालांकि विशद रूप से उस पूरे युग के आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे का चित्र इसमें नहीं आ सका है, तो भी इस दृष्टि से भी उपन्यास में कोई बड़ी कमी नहीं दीखती।[१६८]

डा० भगवतशरण उपाध्याय ने[१६९] इस उपन्यास की नारियों की चारित्रिक नैतिकता के चित्रण को संभावना की दृष्टि से अनुचित कहा है। उनकी राय में संतो और कैलासो के चित्रण को धीरे धीरे उभारने की जरूरत थी।

'भूले-बिसरे चित्र' के बाद 'सामर्थ्य और सीमा' का प्रकाशन वर्माजी की सफल प्रयोगशीलता का एक सुन्दर उदाहरण है। यह केवल दस व्यक्तियों की कहानी है जो

---

१६३ वही, पृ० १०४
१६४ वही, पृ० १०७
१६५. वही
१६६ आकाशवाणी लखनऊ, १७-११ ५८
१६७ आजकल, अक्टूबर १९५९, पृ० ३७
१६८. वही
१६९. आज (साहित्य विशेषांक) ६०, पृ ११

सात-आठ दिन के अन्दर घटित हो जाती है। समूचा उपन्यास आज की दुनिया पर एक तीखा और सफल व्यंग है। इसके पात्र आज के सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्माजी के पात्रों की अपनी विशेषता है। वे वर्ग का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं। पर उनमें अपनी चारित्रिक विशिष्टताएं भी हैं। इस तरह वर्माजी के पात्र व्यक्तिवादी उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं।[१७०] पर उनके व्यक्तियों की समस्या समाज की समस्या है। इसलिए उनके उपन्यासों को व्यक्तिवादी या स्वयं उन्हें व्यक्तिवादी कलाकार नहीं कहा जा सकता।

वर्माजी के सभी पात्र परिस्थितियों के शिकार हैं और उसी से उनके जीवन के उत्थान-पतन का निर्धारण होता है।[१७१] ये पात्र बाह्य परिस्थिति के सम्मुख झुकते अवश्य हैं। किन्तु आंतरिक द्वन्द्व उनके चरित्रों को ऊँचा उठा देता है। इससे लेखक के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की विशेषता ही प्रकट होती है।[१७२]

वर्माजी के पात्र मानव सुलभ दुर्बलताओं से जूझनेवाले और उनपर विजय पाने वाले हैं।

उनके पुरुष पात्र अधिक तार्किक हैं। उनकी नारी पुरुष पर आश्रित एवं त्याग मयी है। इसीलिए पुरुष को उसके आगे नत होना पड़ता है। पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त प्रभा जैसी स्त्रियां अवश्य इसका अपवाद हैं।

उनके प्राय सभी पात्रों की यह व्यक्तिगत विशेषता है कि बाह्य परिस्थितियों से पराजित होकर भी उनका अन्तर कभी हार नहीं मानता।[१७३] हां इतना अवश्य है कि ये पात्र परिस्थिति की चहारदीवारी की सीमाओं में घिरे हैं, जहां से उन्हें मुक्ति की कोई राह नहीं दिखाई देती।[१७४] मृत्यु भी इन पात्रों को वरण नहीं करती है। इसी कारण उनके चरित्रों को दुर्बल कहा जा सकता है।[१७५]

वर्माजी की कहानियों के चरित्र

ये चरित्र अपनी दुर्बलता को ही जीवन का आदर्श मान लेते हैं। 'पराजय अथवा मृत्यु' की नायिका इसका एक उदाहरण है। 'काश मैं कह सकता' की नायिका दूसरा उदाहरण है।

इनके चरित्र-विकास में सेक्स की भी प्रधानता मिली है।[१७६] पर इस तरह के

---

१७० हिन्दी उपन्यास (प्रवन), पृ० ६१

१७१ चित्रलेखा पृ० ११४

१७२ आलोचना (२०) पृ० ५०

१७३ हिन्दी उपन्यास, पृ० १०८

१७४ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० १२२

१७५. प्रतिनिधि कहानियां पृ० ६६

१७६ कहानी और कहानीकार पृ० १०५

चरित्र 'उग्र' के चरित्रों की तरह 'अतिरंजित' या भगवतीप्रसाद वाजपेयी के चरित्रों की तरह 'रुग्ण' न होकर सत्य के अधिक समीप हैं।[177] इसके विपरीत प्रेमचन्द तथा उस परम्परा के लेखकों ने यौनवृत्ति से ऊपर उठकर विवाह-बंधन को ही प्रधानता दी है। आर्थिक वैषम्य के कारण असफल प्रेम का पूर्ण चित्रण वर्माजी के 'तीन वर्ष' में पहली बार मिलता है हालांकि स्फुट चित्रण पहले भी कई कृतियों में हो चुके थे।[178]

ऐसा लगता है कि वर्माजी को व्यावहारिक मनोविज्ञान की गम्भीर जानकारी है।[179] उन्होंने आज के प्रत्येक व्यक्ति को निस्सहाय, कमजोर एवं मनोभावों का गुलाम माना है।[180] 'कायरता' का नायक इसका उदाहरण है। 'विवशता' शीर्षक कहानी में नारी का करुण रूप चित्रित हुआ। उन्होंने नारी को पुरानी रीतिनीति के दलदल में फंसा हुआ चित्रित किया है जो हमारे समाज की एक हकीकत है। आप एक पेग, प्रेजेन्ट्स, एक विचित्र चक्कर और उत्तरदायित्व आदि कहानियों में आधुनिकाओं का चित्रण हुआ है जो पैसों के लिए अपने प्रेम को बेचने वाली हैं। 'पराजय अथवा मृत्यु' की भुवनेश्वरीश्री एम० ए० ने आधुनिक स्त्रियों के प्रति पुरुष की उपेक्षा और स्वार्थान्धता का प्रतिनिधित्व किया है।[181] वर्मा जी की कहानियों का एक भाग ऐसा भी है जिसमें आधुनिक सभ्यता एवं ढोंगी दुनिया पर कसकर व्यंग किये गये हैं।[182] 'दो बांके' इसका एक उदाहरण है। अपनी कहानियों के द्वारा वर्माजी का यह सन्देश है कि "आज मानव में अहंशक्ति जगाने की बड़ी आवश्यकता है।"[183]

यशपाल

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा-साहित्य में भी यशपाल का प्रमुख स्थान है। अपने उपन्यासों एवं कहानियों में उन्होंने इस युग के जीवन और संघर्षों का सफल चित्रण किया है।[184] यशपाल ने यह भी दिखाया है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था के कारण मनुष्य के ऊँचे उदार सिद्धांत और संकल्प भी खटाई में पड़ जाते हैं और उसे नीच से नीच कर्म करने को विवश होना पड़ता है। आलोचकों की राय है कि समाज की इस वास्तविकता का चित्रण करने में वे अतिरंजित एकांगी हो गये हैं और उन्होंने जानबूझकर नग्न प्रसंगों को लाया है एवं राजनीतिक रोमांस लिखे हैं।[185] आलोचकों का कहना

---

१७७. प्रतिनिधि कहानियां, पृ० ६७
१७८ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १९९
१७९. हिन्दी कहानी, पृ० १८४
१८० नया हिन्दी साहित्य एक भूमिका पृ० ६६
१८१ वही
१८२ कहानी और कहानीकार, पृ० १७४
१८३ आधुनिक साहित्य पृ० १७१
१८४ नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १७
१८५ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं पृ० ११७

है कि—यह एकांगिता इसलिए आई है कि उन्होंने जीवन की समस्त समस्याओं को 'सिक्सोवर' की समस्या के रूप में ही देखा है।[186] लेकिन यह कहकर उनकी रचनाओं का वास्तविक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यह अवश्य एक हकीकत है कि यशपाल ने अधिकांशतः इस समाज-व्यवस्था से पीड़ित लोगों का ही चित्र खींचा है जिस कारण मानव प्रकृति के मूल्यांकन में उन्हें सिक्सोवरवादी समझने का भ्रम पैदा होता है[187] और यह चाहे उनका इरादा हो या नहीं, पर ऐसा भ्रम भी अस्वाभाविक नहीं। उनके अधिकांश पात्र नकारात्मक ही हैं हालांकि 'दिव्या' का मारिश और 'मनुष्य के रूप' का धर्मसिंह इसके अपवाद हैं। यशपाल का एकांगी किन्तु निर्मम व्यंग ही उनकी कला का पोजिटिव (संविधायक) पक्ष है। अपने चरित्रों के माध्यम से उनका यही कहना है कि मौजूदा समाज में ऐसा होता है—मनुष्य के विचार और कर्म में भयंकर वैषम्य अवश्य पैदा हो गया है।[188] उन्होंने इसी स्थिति के खिलाफ विद्रोह जगाया है।

यशपाल के औपन्यासिक चरित्र

इनके सर्वप्रथम उपन्यास 'दादा-कामरेड' में उनके क्रांतिकारी जीवन की अनुभूत घटनाओं का चित्र है। कुछ आलोचकों का यह भी कहना है कि 'दादा' के रूप में प्रसिद्ध क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद का और हरीश के रूप में स्वयं लेखक का व्यक्तित्व झलकता है।[189] दादा कामरेड में जो है, वह सुनीता' और 'पार्टी-कामरेड' और 'देशद्रोही' में नहीं है। उनके दूसरे उपन्यास 'देशद्रोही' में 'योरुप' के पश्चात देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का सफल चित्रण हुआ है।[190] इसमें व्यक्ति, समाज राष्ट्र अन्तर्राष्ट्र—सभी आये हैं और इन्हीं के अनुसार चरित्रों और समस्याओं की विविधता भी आ गयी है।[191]

'पार्टी-कामरेड' पर के पृष्ठ से लेकर बम्बई के प्रसिद्ध नाविक-विद्रोह और मजदूरों-तरुणों पर जनता के गौरवपूर्ण साम्राज्यविरोधी संघर्षों का चित्रण है।

'मनुष्य के रूप' में भी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना जाग्रत करने का ही उद्देश्य है। धर्मसिंह के चरित्र में युग की परिस्थिति का अच्छा चित्रण है।

दिव्या और अमिता—ऐतिहासिक उपन्यास हैं। दिव्या शोषित भारतीय जनता का प्रतीक है।[192]

---

१८६ यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य पृ० १४३
१८७ हिन्दी साहित्य के पचास वर्ष पृ० १६६
१८८. हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार पृ० ७०
१८९. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० २०५
१९० सामयिकी, पृ० १८४
१९१ वही, पृ० २८५
१९२ आधुनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि, पृ० १२३

समिता में विश्वशांति की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है।

मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचार-दर्शन को पहली बार यशपाल ने अपनी उपन्यास कला में ढाला जिसे नागार्जुन, रांगेय राघव, अमृतराय और फणीश्वरनाथ रेणु आदि सबल बना रहे हैं।[152]

'झूठा-सच' उनके अब तक के प्रकाशित उपन्यासों में सर्वोत्कृष्ट है। विभाजन के पूर्व का लाहौर, दिल्ली, जालंधर एवं लखनऊ इस कृति के घटनास्थल हैं। 'झूठा-सच' के अधिकांश पात्र मध्यम वर्ग के हैं और उसमें इस वर्ग का यथार्थ एवं सजीव चित्रण हुआ है। डा० रामविलास शर्मा का कहना है कि मध्यवर्ग का चित्रण करते हुए लेखक स्वयं उस वर्ग के दृष्टिकोण से प्रभावित हो गया है।[153] इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें आये सभी पात्र अत्यधिक सजीव हैं और प्राणवान हैं जिनकी संख्या भी ४० के करीब है। यह लेखक की असाधारण सफलता है हालांकि इसमें 'होरी' या 'सूरदास' या 'बूंद और समुद्र' की ताई की तरह पाठक को अभिभूत कर लेनेवाला कोई चरित्र नहीं आ सका है।[154] उपन्यास के मुख्य चरित्र हैं तारा, जयदेव एवं असद। फिर भी चरित्रों की इस चित्रशाला में हिन्दू-कट्टरवाद की चौखट[155] पर सिर पटक-पटककर जान दे देनेवाली 'मंती' का चरित्र कितना गौरवपूर्ण है। 'झूठा-सच' देश-विभाजन और सभी तरह के परिणामों को बड़ी ईमानदारी से चित्रित करता है।

डा० रामविलास शर्मा ने यशपाल के नायकों की कटु आलोचना की है। उन्होंने यशपाल की राजनीति को भी गुलीता की परम्परा पर चिपकाई हुई कागज की एक स्लिप माना है। वे 'दिव्या' को उनका सबसे प्रभावशाली उपन्यास मानते हैं क्योंकि उसमें राजनीति की स्लिप नहीं फड़फड़ाती।[156]

यशपाल ने मध्यवर्ग से अपने चरित्रों को लिया है। मजदूर या किसान श्रेणी से सीधा सम्पर्क न रहने के कारण उन्होंने उनके प्रति सिर्फ बौद्धिक सहानुभूति व्यक्त की है। पर उनके मनोविज्ञान समस्याओं तथा दैनिक जीवन के चित्रण का उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया है।[157] इसलिए चरित्रों के चुनाव की उनकी सीमा प्रेमचन्द की तुलना में तो बहुत अधिक संकुचित है ही नागार्जुन, अमृतलाल नागर, एवं वृन्दावन लाल वर्मा जैसे उपन्यासकारों से भी अधिक संकुचित है।

पर मध्यवर्ग की सीमा के भीतर उन्होंने बहुत ही सफल चरित्रों की सृष्टि की है। उनके चरित्रों में पूरी सजीवता है और वे हमारे बीच के ही आदमी जैसे लगते हैं। 'दादा' 'देशद्रोही' में राजवती और खन्ना और मारिया जैसे उनके

---

१५३ आलोचना (२१), पृ० ८८
१५४ हिन्दी टाइम्स, १७ मार्च, ६२, पृ० २
१५५ आजकल, अक्तूबर, १९५८, पृ० ५१
१५६ हिन्दी टाइम्स, १७ मार्च ६२, पृ० २
१५७ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० ११७
१५८. नया पथ, मई, ५५ (प २ क)

औपन्यासिक चरित्र बहुत ही सक्षम बन पड़े हैं। फिर भी घटनाओं और परिस्थितियों पर अधिक ध्यान देने के कारण उनके चरित्र दुर्बल लगते हैं उनमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अभाव दीखता है और वे लेखक के हाथ की कठपुतली से लगते हैं। घटनाओं द्वारा 'देशद्रोही' में डा० भगवानदास खन्ना 'दिव्या' में दिव्या और 'मनुष्य के रूप' में सोमा का चरित्र-विकास होता है।[199] पर इस चरित्र विकास में मनोविज्ञान की पूरी मदद ली गयी है। देशद्रोही में राज दिव्या में दिव्या के चरित्र में जो परिवर्तन हैं, वे पूर्णतया क्रमिक एवं मनोवैज्ञानिक हैं। और इसीलिए स्वाभाविक भी।[200]

उनकी कृतियों में गूढ़ (राउंड) और सपाट (फ्लैट) दोनों ही तरह के चरित्र मिलते हैं। पर जमाने के मुताबिक गूढ़ चरित्रों का ही बाहुल्य है। 'दादा कामरेड' में शैल दादा और हरीश गूढ़ चरित्र हैं एवं यमुना के पति अमरनाथ सपाट चरित्र। 'देशद्रोही' में राजाराम सपाट चरित्र है।[201] उनके चरित्र प्रायः टाइप हैं। दादा, खन्ना आदि अपने-अपने वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। शैल आधुनिक शिक्षित कालेज की लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती है।[202] दिव्या सामन्तकालीन कुचली हुई नारी का प्रतीक है। अमीर सामन्तों का एवं पृथुसेन दासवर्ग का प्रतिनिधि है। इसी प्रकार अन्य कृतियों के पात्र भी वर्गगत हैं।

चरित्र-विकास के लिए उन्होंने मनोविज्ञान के स्वाभाविक सूत्रों को पकड़ा है जिसे हम सरल और सामान्य कह सकते हैं। इसलिए उनका मनोविज्ञान जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी से भिन्न किस्म का है।[203]

विविधता ही उनके चरित्र-चित्रण की विशेषता है। अपनी कल्पना की बारीकियों से उन्होंने अपने विविध पात्रों की भावनाओं को आत्मसात किया है। इसीलिए वे 'नीरक' के शब्दों में बहू की प्राप्ति एवं अठन्नी पर अपना शरीर बेचने वाली कोकिला' की भाषा भी बोल सकते हैं।[204] इसके साथ ही उनके चरित्रों में आंतरिक जीवन की गहराई भी पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। चूंकि यशपाल ने अपने चरित्रों को समाजवादी यथार्थ के आधार पर गढ़ा है इसलिए उनके और प्रेमचन्द के यथार्थ में काफी अन्तर है।[205]

उनके उपन्यास 'देशद्रोही' में 'गोदान' के बाद पहली बार देश के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन से सम्बन्धित व्यक्तियों का सफल चित्रण है। पर डा० रामविलास शर्मा आदि प्रगतिशील आलोचकों ने इसके चरित्रों को मध्यवर्गीय जीवन

---

१९९. आलोचना (११), पृ० २०६
२०० आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० १९०
२०१ वही पृ० २८५
२०२ हिन्दी उपन्यास पृ० २९२
२०३ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २७५
२०४. यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य पृ० १२
२०५. यशपाल से एक भेंट १९५७

का यौनाकर्षित चित्र मानकर असफल बताया है।[206] डा० शर्मा ने इसी सिलसिले में कहा है कि उनके सभी नायक आत्मपीड़ा के शिकार हैं और नारी की करुणा को उकसाते हैं। डा० खन्ना और भावरिया ऐसे ही चरित्र हैं।[207] 'मनुष्य के रूप' के पात्रों का क्रमबद्ध मानसिक विकास अवश्य दिखाया गया है।[208] पर डा० शर्मा की राय में ये पात्र अपने में पूँजीवादी व्यभिचार को चुनौती देने की दृढ़ता नहीं रखते।[209] इसीलिए प्रगतिशील साहित्य में इंसान की जिन्दगी पर नये ढंग से सोचने-विचारने के दृष्टिकोण का उनमें अभाव है। साथ ही उनके सभी मुख्य चरित्रों का अंत भी मौत में होता है जो उनकी उलझनों को स्पष्ट करने वाला है।[210]

लेखक स्वयं भी अपने तीन चार प्रमुख पात्रों में एक बन जाता है। मारिश यशपाल के निकट दीखता है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने तो मारिश को यशपाल ही समझ लिया है।[211]

उनके निकट का दूसरा पात्र है हरीश जो क्रान्तिकारी होने के साथ ही मनुष्य भी है। 'सुनीता' के हरिप्रसन्न की तरह वह भी शैल को बिना कपड़ों के देखना चाहता है। बाद में हरिप्रसन्न की पुष्ट मुद्रा का वर्णन तो जैनेन्द्र ने स्वयं किया है पर हरीश अपना वर्णन आप करता है जो अधिक मनोवैज्ञानिक है।[212] फिर भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के चित्रण में वे एक विकृत (मोरबिड) मनोवृत्ति का परिचय देते हैं।[213]

उनकी रचनाओं में भी एक पत्नी एक पति, एक मित्र का सनातन त्रिकोण बार-बार उभरकर आता है। आज के जीवन में यह त्रिकोण अवश्य ही है पर इतना ही नहीं है, और भी बहुत-सी बातें हैं।[214]

यशपाल के नारी-चरित्र

नारी के सम्बन्ध में यशपाल का दृष्टिकोण कहीं तो मार्क्सवादी है और कहीं उलझा हुआ। प्रगतिशील साहित्य नारी की स्वाधीनता का समर्थक है।[215] मार्क्सवाद स्वच्छ विकास में स्वच्छ जल पीने का' समर्थक है। पर यशपाल यथार्थ का चित्र खींचते हुए कभी-कभी घोर अश्लीलता की ओर झुक जाते हैं, 'दादा कामरेड' की शैल

---

२०६ संस्कृति और साहित्य, पृ० २६१
२०७ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं, पृ० १२
२०८. हिन्दी के उपन्यासकार, पृ० २१४
२०९ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं, पृ० १२१
२१० यशपाल और हिन्दी कथा-साहित्य, पृ० १२६
२११ लेखक से एक भेंट में यशपाल द्वारा दी गई सूचना, १९६७
२१२ आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० ५७२
२१३ आलोचना (२४) सम्पादकीय
२१४ संस्कृति और साहित्य पृ० १०४
२१५. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं पृ० १३१

में पहली बार उन्होंने नारी के प्रति आदर्शों की स्थापना की। हीन विचारों एवं कर्म से स्वतन्त्र तथा पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष करनेवाली नारी है। पर मार्क्सीय आदर्शों के अनुसार उसके जीवन में बहुत-सी खटकने वाली बातें मौजूद हैं। पर 'देशद्रोही' में नारी के चित्रण में—खन्ना राज अमुला, गुलशां, नफिस में—वे मार्क्सवाद से विमुख हो गये। यहां नारी पुरुष की भोग्या है—पुरुष के साथ मिलकर संघर्ष करनेवाली नहीं।"[216] 'दिव्या' में नारी-चित्रण में वे अधिक सफल हैं—उसका सबल और दुर्बल रूप दिखाने में सफल हुए। 'पार्टी कामरेड' में उन्हें इससे भी अधिक सफलता मिली। गीता का चरित्र उनके सभी नारी-पात्रों की अपेक्षा अधिक निखरा हुआ है। 'मनुष्य के रूप' की सोमा और प्रगतिशील नारी के रूप में मनोरमा के चित्रण में भी वे असफल रहे।

फिर भी उनके नारी-पात्र पुरुष पात्रों से अधिक सबल हैं। 'दिव्या' में दिव्या और 'मनुष्य के रूप' में सोमा के बिना उपन्यास चल भी नहीं सकता। इस सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा का कहना है कि वे रूढ़ियों से लड़ने वाली एक नारी का चरित्र अपने कथा-साहित्य में कहीं भी नहीं दे पाये हैं चूंकि उनका दृष्टिकोण सामंती पूंजीवादी भोगवादी है।"[217]

यशपाल के नारी-चरित्रों की तुलना बेबल की नारियों से की गई है। समाज के बन्धनों में जकड़ी, शरीर और मनोबल से हीन नारी में वे आत्मचेतना जगाना चाहते हैं। बेबल का भी सन्देश है "यदि तुम लाभदायक होना चाहती हो तो अपनी सीमित परिधियों को छोड़कर बाहर निकलो और जनता को प्रभावित करने का प्रयत्न करो।"[218]

कहानियों में चरित्र-विकास

यशपाल ने अपनी कहानियों में मुख्यतः आर्थिक संघर्ष और वर्ग-चेतना के धरातल से चरित्रों की सृष्टि की है। इसीलिए उनके व्यक्तित्व में संघर्ष और विद्रोह की भावना व्याप्त है। इन्हीं आधारों पर वे चरित्र यथार्थवादी भी हैं।[219] उन्होंने इसे स्पष्ट किया है कि आज की समस्याओं के मूल में अर्थ है सभ्यता अर्थ-प्रधान है और समस्याएं भी आर्थिक हैं। समाज वर्गों में बंटा है—एक ओर शोषित दूसरी ओर शोषक और पूंजीपति हैं।[220] बीच में मध्यवर्ग है जिसमें अनेक स्तर हैं और इस स्तर भेद के कारण उसकी समस्याएं भी भिन्न-भिन्न हैं। कर्म फल, दुःख संन्यासी, नई दुनिया को दुनिया ४२० अभिशप्त, काला आदमी रोटी का मोल आदमी का बच्चा

---

२१६ आलोचना (११) पृ० २०६
२१७ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं पृ० ११६
२१८ साहित्य दर्शन, पृ० २४६ ५०
२१९ चित्रलिपि पृ० १८६
२२० प्रतिनिधि कहानियां, पृ० १०२

आदि अनेक कहानियाँ आर्थिक समस्याओं पर आधारित हैं। 'कर्म-फल' में बुद्धिहीन निम्नवर्गों का चरित्र विकास दिखाया गया है। यशपाल ने इस सम्बन्ध में अज्ञेय की आलोचनाओं का उत्तर देते हुए कहा है कि 'यदि मेरे पास असली-फिल्मी आर्थिक-राजनीतिक तस्वीरें हैं तो मैं समझता हूं कि मैं अपने उद्देश्य में सफल हुआ हूं।[221] यशपाल की कहानियों में मानव की दिव्य आत्मा के दर्शन होते हैं। 'इन्सान का टुकड़ा' जैसी ही एक सफल कहानी है। यह कहानी 'ह्यू मन' से अधिक 'ह्यूमेन' है। यह लेखक की प्रतिभा का सबूत है।[222]

शान्तिप्रिय द्विवेदी[223] ने यशपाल को चरित्रांकन की दृष्टि से प्रेमचन्द की तिरोहित प्रतिमा की उत्तरशक्ति माना है।

वे प्रायः दो विरोधी चरित्रों या परिस्थितियों को उपस्थितकर अपनी कहानियों में विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं। ईद के बकरे की तरह पहले तो अपने पात्रों को खूब खिलाकर वह मोटा बनाते हैं। फिर, समय पर वे उसे हलाल कर डालते हैं।[224] वे अपनी कहानियों में वैयक्तिक स्पर्श देना भी नहीं चूकते।[225] 'ज्ञानदान' (कहानी संग्रह) की 'हृदय' नामक कहानी उसका एक उदाहरण है। प्रेमचंदोत्तर कहानियों में यह वैयक्तिक स्पर्श प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

यशपाल ने अपनी सामाजिक मान्यताओं को घटनाओं के रूप में चित्रितकर वर्तमान जीवन-व्यवहार और परम्परा से उसके संघर्ष का अच्छा चित्रण किया है। इसका कारण स्वयं उनका जीवन और जीवन का अनुभव है जो उन्हें कांग्रेस से प्रारम्भ कर बम और तमंचा लेकर सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्नों में जान की बाजी लगा देने तक ले गया।[226]

यौन-प्रसंगों की अश्लीलता के बारे में भी उन्होंने सफाई दी है। उनका कहना है कि 'पाठक के दिमाग को 'कैपचर' करना और समाज की विकृतियों को 'उभारने' के उद्देश्य से ही ऐसे प्रसंग आये हैं।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने अज्ञेय और यशपाल के चरित्रों की तुलना की है। उनका कहना है कि दोनों में अपनी-अपनी खूबियाँ हैं। अज्ञेय के चरित्र समाज के उच्च रहन-सहन एवं बौद्धिक उत्कर्ष को दिखाते हैं तथा यशपाल के चरित्र समाज के वैषम्य पर प्रहार करते हैं।[227]

---

२२१ हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार पृ० ७१
२२२ विचार-प्रवाह, पृ० १०६
२२३ सामयिकी पृ २८३
२२४ यशपाल और हिन्दी कथा-साहित्य, पृ० ११०
२२५. हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार, पृ० ६६
२२६ वही, पृ० ७०
२२७ नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १८१

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' प्रेमचन्द-परम्परा के कथाकार हैं। विषय दृष्टिकोण भाषा शैली आदि सभी दृष्टियों से उन्हें प्रेमचन्द-संस्थान का ही कथाकार माना जायगा।[228] वे यथार्थवादी कथाकार हैं इसीलिए उनके चरित्र इसी समाज से आये हैं। उनके सभी पात्र साधारण तथा मध्यवर्ग से लिये गये हैं।

उनके उपन्यासों के पात्रों के जीवन की मूल समस्या व्यक्ति के संघर्ष एवं विकास की समस्या है।[229] उनके नारी एवं पुरुष-पात्रों के विकास में एकरूपता एवं एकरसता दिखाई पड़ती है। आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिक एवं दीन कुंठाओं को उनके पात्रों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।[230] आज के समाज में सत्यनिष्ठ व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से जीवन-यापन करना बड़ा कठिन है। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों के रीढ़हीन दुर्बल और हेय जीवन उसकी छोटी-बड़ी घटनाएं तथा सीमित संकुचित विचारों को भी उनकी कृतियों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।[231]

अश्क ने युग-मानव की नैतिकता और मानवता को उभारकर देखते हुए बड़ी सतर्कता से अपने चरित्रों को गढ़ा है। वे चरित्र साहित्य के माध्यम से युग और जीवन की अभिव्यक्ति हैं।[232] अश्क की प्रतिक्रिया सार्थक सीधी यथार्थ और जनवादी है। 'गर्म राख' में उन्होंने आदर्शोन्मुख जीवन की भी झलक दी है। वे सिर्फ समाज के रूढ़िवादी संस्कारों पर ही प्रहार नहीं करते बल्कि नये समाज के निर्माण की ओर संकेत करते हैं।[233] इसीलिए 'गर्म राख' के पाठकों को ऐसा भी लग सकता है कि उसमें उनके अपने जीवन के प्रतिबिंब हैं।[234] उनके चरित्र रोमानी होते हुए भी जन-संघर्ष एवं नये युग की स्थापना में विश्वास करते हैं।[235] 'चांदनी रात और अजगर' के चरित्र विश्वास और साहस के साथ मानव की 'अमिलन शक्ति' के गीत गाते हैं। 'गर्म राख' का एक चरित्र कवि चातक एक दूसरे पात्र जगमोहन से कहता है —"वर्तमान संघर्ष में वह अपनी सौंदर्योपासक वृत्ति खो चुका है। गर्म राख में सोयी हुई चिनगारी की तरह वह अनायास चमक उठेगा।"[236] एक समय था जब बी० ए०

---

२२८. दो धारा पृ० ६१
२२९. नया साहित्य नये प्रश्न पृ० १९
२३०. वही पृ० १०५
२३१. हिन्दी उपन्यास (मदान), पृ० ११७
२३२. ज्यादा अपनी कम परायी, पृ० ७१
२३३. गर्म राख विज्ञापन
२३४. वही
२३५. बरगद की बेटी पृ० ४५
चांदनी रात और अजगर, पृ० ९८
२३६. गर्म राख पृ० ९३

पास करते ही युवकों के लिए नौकरी के दरवाजे खुल जाते थे। आज बी॰ ए॰ की वक-अत मैट्रिक से भी अधिक नहीं।[237] अब सदियों की बरसाती रात ही दुनिया है और भीगे से कम्बल-सा है यह जीवन।[238] लेकिन आशा यही है कि सुबह होगी सूरज निकलेगा और यह कम्बल सूखेगा।[239] इसीलिए जगमोहन कहता है कि 'बिना इस समाज का ढांचा बदले हम जैसों के लिए कुछ नहीं हो सकता।'[240] इसी उम्मीद पर ऐसे नौजवान जी रहे हैं जिनकी 'जान फक्त चार रोज की है जिनके दिलों में 'वहम' है 'बुखार मायूस' है।'[241] इस देश में ऐसे हजारों-लाखों बेकार युवक हैं जिन्हें जीवन में अंधेरा दिखाई पड़ता है, जो समझते हैं कि यह सब उनकी 'किस्मत खराब' होने के कारण है। आज इतना सख्त 'कम्पीटीशन' है कि बाल सफेद कर लेने के बाद भी सफलता मिलनी मुश्किल। कालेज में जिन्हें उदीयमान कवि कथाकार, नाटककार देखा, एक बार कम्पीटीशन में बैठने के बाद कविता-कहानी लिखना तो दूर रहा, पढ़ने की बात भी वे नहीं सोचते।[242]

शिवदानसिंह चौहान[243] का मत है कि 'गर्म राख' में लेखक ने मनुष्य की त्रुटि तथा क्षुद्रता स्वार्थलोलुपता एवं कामुकता का ही चित्रण किया है। केवल हरीश पुरी तथा एक हद तक कवि बसंत एवं जमुना इसके अपवाद हैं। इस तरह गर्म राख के किसी भी पात्र में अपना व्यक्तित्व नहीं है। खैर, दूसरे पात्रों में मनुष्यता पाने की बात तो छोड़ दीजिए पर आन्दोलनकारी हरीश भी मात्र आन्दोलनकारी ही है। सत्या के प्रेम को ठुकराकर जगमोहन भी ऐसा ही निर्वैयक्तिक आन्दोलनकारी बन जाता है एवं मानवमात्र के प्रति प्रेम का पाठ हरीश से सीखकर संतुष्ट हो जाता है।[244]

अश्क के उपन्यास 'गिरती दीवारें' में आर्थिक विषमता तथा प्रेम-सम्बन्धी कुंठा की समस्याएं चेतन के व्यक्तित्व को आधार बनाकर उठायी गयी हैं। सब कुछ होते हुए भी चेतन की सेक्स-चेतना इतनी उभरी हुई है कि वह एक मनोवैज्ञानिक 'केस'[245] हो जाता है। चरित्र-विकास की दिशा में चेतन मध्यवर्गीय चारित्रिक गुणों की दीवारों को तोड़कर आगे जाना चाहता है।[246]

---

२३७ वही पृ॰ ११६
२३८ वही पृ॰ १७४
२३९ वही, पृ॰ १७५
२४० वही
२४१ वही
२४२ गर्म राख, पृ॰ २२८
२४३ साहित्यानुशीलन, पृ॰ २३९ ४०
२४४ वही
२४५ आलोचना (११), पृ॰ ११७
२४६ हिन्दी उपन्यास, पृ॰ १२०

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' प्रेमचन्द-परम्परा के कथाकार हैं। विषय, दृष्टिकोण भाषा शैली आदि सभी दृष्टियों से उन्हें प्रेमचन्द-संस्थान का ही कथाकार माना जायगा।[228] वे यथार्थवादी कथाकार हैं, इसीलिए उनके चरित्र इसी समाज से आये हैं। उनके सभी पात्र साधारण तथा मध्यवर्ग से लिये गये हैं।

उनके उपन्यासों के पात्रों के जीवन की मूल समस्या व्यक्ति के संघर्ष एवं विकास की समस्या है।[229] उनके नारी एवं पुरुष-पात्रों के विकास में एकरूपता एवं एकरसता दिखाई पड़ती है। आज के मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिक एवं यौन कुंठाओं को उनके पात्रों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।[230] आज के समाज में सत्यनिष्ठ *व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से जीवन-यापन करना बड़ा कठिन है। मध्यम वर्ग के* व्यक्तियों के रीढ़हीन दुर्बल और हेय जीवन उसकी छोटी-बड़ी घटनाएं तथा सीमित संकुचित विचारों को भी उनकी कृतियों में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है।[231]

अश्क ने युग-मानव की नैतिकता और मानवता को उभारकर देखते हुए बड़ी सतर्कता से अपने चरित्रों को गढ़ा है। वे चरित्र साहित्य के माध्यम से युग और जीवन को अभिव्यक्त हैं।[232] अश्क की प्रतिक्रिया, सार्थक तीखी यथार्थ और जनवादी है। 'गर्म राख' में उन्होंने आदर्शोन्मुख जीवन की भी झलक दी है। वे सिर्फ समाज के रूढ़िवादी संस्कारों पर ही प्रहार नहीं करते बल्कि नये समाज के निर्माण की ओर संकेत करते हैं।[233] इसीलिए 'गर्म राख' के पाठकों को ऐसा भी भ्रम हुआ है कि उसमें उनके अपने जीवन के प्रतिबिम्ब हैं।[234] उनके चरित्र रोमानी होते हुए भी जन-संघर्ष एवं नये युग की स्थापना में विश्वास करते हैं।[235] 'चांदनी रात और अजगर' के चरित्र विश्वास और साहस के साथ मानव की अभिनव शक्ति' के बीज पाते हैं। 'गर्म राख' का एक चरित्र कवि चातक एक दूसरे पात्र जगमोहन से कहता है —"*वर्तमान संघर्ष में वह अपनी सौंदर्योपासक वृत्ति खो चुका है। गर्म राख में सोयी* हुई चिनगारी की तरह वह अनायास चमक उठता।"[236] एक समय था जब बी० ए०

---

२२८. दोआब पृ० ६१
२२९. नया साहित्य नये प्रश्न, पृ० १९
२३० वही पृ० १८५
२३१ हिन्दी उपन्यास (मदान), पृ० ११७
२३२ ज्यादा अपनी कम परायी पृ० ७१
२३३ गर्म राख विज्ञापन
२३४ वही
२३५. बरगद की बेटी पृ० ४५
चांदनी रात और अजगर, पृ० ९८
२३६ गर्म राख पृ० ६१

पास करते ही युवकों के लिए नौकरी के दरवाजे खुल जाते थे। आज बी० ए० की वकत मैट्रिक से भी अधिक नहीं।[237] अब सदियों की बरसाती रात ही दुनिया है और मौये से कम्बल-सा है यह जीवन।[238] लेकिन आशा यही है कि सुबह होगी सूरज निकलेगा और यह कम्बल सूखेगा।[239] इसीलिए जगमोहन कहता है कि 'बिना इस समाज का ढाँचा बदले हम बेकारों के लिए कुछ नहीं हो सकता।'[240] इसी उम्मीद पर ऐसे नौजवान जी रहे हैं जिनकी 'आज फाका कल रोज की है, जिनके दिलों में 'तड़प' है, 'पुकार मायूस' है।"[241] इस देश में ऐसे हजारों-लाखों बेकार युवक हैं जिन्हें जीवन में अंधेरा दिखाई पड़ता है जो समझते हैं कि यह सब उनकी 'किस्मत खराब' होने के कारण है। आज इतना सख्त 'कम्पीटीशन' है कि बाद 'टके' कर लेने के बाद भी सफलता मिलनी मुश्किल। कालेज में जिन्हें उदीयमान कवि कथाकार नाटककार देखा, एक बार कम्पीटीशन में बैठने के बाद कविता-कहानी लिखना तो दूर रहा पढ़ने की बात भी वे नहीं सोचते।[242]

शिवदानसिंह चौहान[243] का मत है कि 'गर्म राख' में लेखक ने मनुष्य की कुटिलता क्षुद्रता स्वार्थलोलुपता एवं कामुकता का ही चित्रण किया है। केवल हरीश पुरी तथा एक हद तक कवि बसंत एवं जमुना इसके अपवाद हैं। इस तरह 'गर्म राख' के किसी भी पात्र में अपना व्यक्तित्व नहीं है। वर दूसरे पात्रों में मनुष्यता पाने की बात तो छोड़ दीजिए पर आन्दोलनकारी हरीश भी मात्र आन्दोलनकारी ही है। सत्या के प्रेम को ठुकराकर जगमोहन भी ऐसा ही निर्वैयक्तिक आन्दोलनकारी बन जाता है एवं मानवमात्र के प्रति प्रेम का पाठ हरीश से सीखकर संतुष्ट हो जाता है।[244]

अश्क के उपन्यास 'गिरती दीवारें' में आर्थिक विषमता तथा प्रेम-सम्बन्धी कुंठा की समस्याएं चेतन के व्यक्तित्व को आधार बनाकर उठायी गयी हैं। सब कुछ होते हुए भी चेतन की सेक्स-चेतना इतनी उभरी हुई है कि वह एक मनोवैज्ञानिक 'केस'[245] हो जाता है। चरित्र-विकास की दिशा में चेतन मध्यवर्गीय चारित्रिक गुणों की दीवारों को तोड़कर आगे जाना चाहता है।[246]

---

२३७ वही पृ० ११९
२३८ वही पृ० १०४
२३९ वही, पृ० १७१
२४० वही
२४१ वही
२४२ गर्म राख पृ० २२८
२४३ साहित्यानुशीलन, पृ० २१९ ४०
२४४ वही
२४५ आलोचना (११), पृ० ११७
२४६ हिन्दी उपन्यास, पृ० १२०

'सितारों के खेल' में समाज के सीमित जीवन का चित्रण है। साथ ही लता और बंसीलाल के चरित्र-चित्रण द्वारा एक पौराणिक आदर्श को अमानवीय अस्वाभाविक तथा काल्पनिक सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है। उपन्यास की सम्पूर्ण कथा एक मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित है। उसमें जो आश्चर्य और अद्भुत है उसे फ्रायड के एडिपस ग्रन्थि के सिद्धान्तों के आधार पर ही समझा जा सकता है।[247] बंसीलाल की उपस्थिति जब डा० अमृतराय द्वारा लता की प्राप्ति में बाधा बनती है तो बंसीलाल को विष दे दिया जाता है।[248] इस कांड को भी आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर समझा जा सकता है।

अश्क के एक अन्य उपन्यास 'बड़ी-बड़ी आँखें' की मूलभूत विशेषताओं को अस्वीकार करते हुए भी लक्ष्मीकांत वर्मा ने इसे 'संत्रस्त पात्रों की घटनाहीन कथा' माना है।[249] इसमें लेखक ने पात्रों को अत्यधिक नियंत्रित और अनुशासित रखा है, जिस कारण उनका चरित्र विकास रुक-सा गया है। पात्रों को 'स्टैटिक' कहा जा सकता है जिनका अपना अस्तित्व कुछ है ही नहीं। इसीलिए कोई भी पात्र अपनी स्वाभाविक मन स्थिति द्वारा परिचालित नहीं है। उपन्यास का नायक संगीत ज्ञानी रामतीर्थ या देवाजी की धर्मपत्नी आदि सभी विक्षिप्त या अर्धविक्षिप्त से लगते हैं। कुछ पात्र तो बिल्कुल महत्त्वहीन हैं जो फेन की तरह पैदा होते और मिट जाते हैं।[250]

'पत्थर अल पत्थर' में पहली बार निम्नवर्ग के एक पात्र को नायक बनाकर समाज में सताये जाने वालों की निरीहता और बेबसी का चित्रण किया गया है। 'गिरती दिवारें' की चेतन की माँ मायाराम अम्मी चेतन 'गर्म राख' की सत्यावती 'बड़ी-बड़ी आँखें' की वाणी और नबी ऐसे ही पात्र हैं। 'पत्थर अल पत्थर' का हसन दीन भी ऐसा ही एक अमर पात्र है। हसनदीन की सहानुभूति में वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति हमारे मन में विद्रोह की भावना जगती है। उसके आँसू और आह हमारे पास पवित्र थाती के रूप में आते हैं।[251] उपन्यास में मुखर पात्रों के अलावा कुछ मूक पात्र (अमडू, ईडू, घोड़ा और रास्ता) भी हैं जिनका अपना अलग अस्तित्व और महत्त्व है।

अश्क के पात्र साधारण लोग हैं। उनकी कृतियों में सामंती युग के नायकों के समान कोई हवा-हवाया पुरुष और आदर्श पात्र नहीं है। उनके चरित्रों का कोई निश्चित विकास भी नहीं है क्योंकि ये पात्र मध्यवर्ग से आये हैं।[252]

भैरवप्रसाद गुप्त ने अश्क को निम्न मध्यवर्ग को आधार बनाकर अपनी

---

२४७ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ २४
२४८ वही
२४९. आलोचना (१७), पृ ११०
२५० वही, पृ० ११२
२५१ पत्थर अल पत्थर, पृ० २९
२५२. वही

रचनाएं करनेवाला सबसे अधिक 'एकाग्र' साहित्यकार माना है।[253] प्रेमचन्द के ऐसे ही पात्रों से उनकी तुलना करते हुए उन्होंने अश्क के चरित्रों की यथार्थता की प्रशंसा की है।[254] एवं उन्हें प्रेमचन्द के चरित्रों से अधिक विकसित माना है। किन्तु, मध्यवर्ग की ऐतिहासिक हासयुग अकीमी के कारण यह भी एक सत्य है कि अश्क के पात्र कोई निर्माण नहीं कर पाते; बल्कि कहना तो यही चाहिए कि उनमें स्वतंत्र निर्माण की शक्ति का पूर्ण अभाव है।[255]

अश्क की कहानियों में चरित्र-विकास

अश्क के कथा-चरित्र अवश्य सीमित हैं, परन्तु उनमें विविधता है। वे हमारे जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनके चरित्र साधारण और प्रतिनिधि—दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं। साधारण सर्वसुलभ परिचित और व्यापक चरित्रों का रहस्योद्घाटनकर अश्क पाठकों को आश्चर्यचकित कर देते हैं।[256] 'काले साहब' का रिक्शा वाला 'बगुले' का दुल्ले 'डाची' का बाकर 'तीन सौ चौबीस' का हैदर और 'उबाल' का चंदन इसके अमर उदाहरण हैं। इनका चरित्र-चित्रणकर अश्क ने हमारा चरित्र चित्रण किया है।

उनके प्रतिनिधि चरित्र विशुद्ध यथार्थवादी परम्परा में ढले हैं। कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थितियों और भावों के आधार पर इनकी सृष्टि होने के कारण उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र न होकर प्रतिनिधि या टाइप हो गया है।[257] इन चरित्रों में मन-स्थितिगत विशेषता की मुख्यता है और वे निरपेक्ष से अधिक सापेक्षिक हैं।[258] 'पिंजरा' की शांति 'पलीवत' के सन्ना साहब 'अंकुर' की सेंकरी 'उबाल' का चंदन 'नासूर' का सुरजीत और ईश्वर 'बैंगन का पौधा' का बुड्ढा आदि हमारे जीवन-दर्शन के प्रतिनिधि अधिक और चरित्र कम हैं। इनके चरित्र-विधान का सबसे बड़ा कौशल चरित्रों का रहस्योद्घाटन एवं उनकी सीमाओं—कुंठाओं पर कटु व्यंग्य करना ही है।[259] इनकी कहानियों में चरित्र विकास काफी स्वस्थ और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। अश्क की एक कहानी 'पलीवत' इसका एक उदाहरण है।[260] अश्क ने अपने पाठकों एवं आलोचकों की इस बात के लिए शिकायत की है कि वे उनकी कहानियों को समझ

---

२५३ वही
२५४ वही पृ० २२
२५५. आलोचना (२४), पृ० ९
२५६ शिल्पविधि, पृ० २८०
२५७ प्रतिनिधि कहानियां, पृ० १०६
२५८. सोपान पृ० ६२
२५९. वही
२६० शिल्पविधि, पृ २८१

नहीं पाते।[२६१] उन्होंने विभाजन से संबंधित अपनी कुछ कहानियों में एक खास ढर्रा अपनाया है एक नया दृष्टिकोण पेश किया है, जैसे 'टेबललैंड'। अश्क की एक प्रसिद्ध कहानी 'बच्चे' में एक 'न्यूरोटिक कैरेक्टर' का चरित्र विकास दिखाया गया है।[२६२] 'कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल' भी उनकी बड़ी प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कहानी है।[२६३] अश्क के एक दूसरे कहानी-संग्रह 'पलंग' की 'ठहराव' 'पर्मेश्वर', 'टेबिल और डाक्टर' 'बेबसी' आदि कहानियों में मनुष्य-चरित्र की मजबूरियों का बड़ा ही भव्य चित्रण है।

अश्क ने नगरों और शहरों का भी चरित्र-विकास दिखाया है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में लाहौर का अत्यधिक सुन्दर चित्रण हुआ है।[२६४] लेखक 'ओ होनरी' ने अपनी एक कहानी में अमरीका के व्यक्तित्वों का चित्रण किया है। इस कहानी में उन नगरों की चारित्रिक विशेषता का वर्णन है।[२६५] इसी तरह विक्टर ह्यूगो आदि लेखकों ने पेरिस के विभिन्न रूपों का अपनी कृतियों में विशद वर्णन किया है। हमारे यहां भी रवीन्द्र शरत रतननाथ सरशार आदि ने कलकत्ता और लखनऊ का सजीव व्यक्तित्व अंकित किया है। लाहौर नगर के चरित्र-विकास का लेकर अश्क ने भी एक नये प्रकार की व्यक्तित्व-स्थापना या मानवीकरण का प्रयास किया है।[२६६]

प्रेमचन्द ने अपनी कृतियों में भारतीय जन-जीवन के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र हमारे सामने उपस्थित किये[२६७] किन्तु उनके पात्र निस्सहाय भटकते रहते नहीं हैं। जीवन भर वे अपने समय के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से जूझते हैं। उनकी असफलता के गर्भ में भी समाधान के इशारे छिपे रहते हैं।[२६८] निराला भी अपने रेखाचित्रों में किसी भी भौतिकवादी कलाकार से आगे बढ़े दीखते हैं।[२६९] प्रेमचन्द के बाद उनकी परम्परा के कलाकार अश्क और यशपाल अज्ञेय इलाचन्द्र और भगवतीचरण वर्मा आदि ने यथार्थ का सहारा तो अवश्य लिया[२७०] पर उनका यथार्थ प्रेमचन्द रवीन्द्र और शरत के यथार्थ से भिन्न किस्म का है।[२७१] इनकी रचनाओं में कृत्रिम बौद्धिकता

---

२६१ कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल, पृ० ११
२६२ वही, पृ० २५
२६३ वही, पृ० ३४
२६४ दो धारा
२६५. आलोचना के मान पृ० १७०
२६६ वही
२६७ संस्कृति और साहित्य पृ० ६४
२६८. अध्ययन के विचार, पृ० २५
२६९. उपन्यास और लोक-जीवन, भूमिका
२७० अध्ययन के विचार, पृ० १२
२७१ उपन्यास और लोक-जीवन पृ० 'म'

या मनोवैज्ञानिकता का उपक्रम और कृत्रिम संघर्ष का रूपक भी रचा गया-सा दीखता है।[२७२] इसीलिए वास्तविक जीवन का उनका चित्रण भी अधिकांशतः विकृत एकांगी और औसत वर्ग का होने के कारण विश्वसनीय नहीं हो पाया है। इस गम्भीर स्थिति में हमारे आलोचकों को किसी उपन्यास में यत्र-तत्र आये सजीव एवं यथार्थ चित्रों से ही संतोष करना पड़ता है।[२७३]

---

२७२ अध्ययन के विचार, पृ० १५

२७३ साहित्यानुशीलन, पृ० २५१

पांचवां अध्याय

नवीन चारित्रिक स्थापनाएँ

आज बहुत-से लोग इस बात से चिंतित हैं कि मानव-तत्त्व का अंतर्भंग हो गया है और मानव-व्यक्तित्व सामाजिक और व्यक्तिगत दो टुकड़ों में बँट गया है।[1] इसी कारण आज का उपन्यास शाश्वत मूल्यों की स्थापना नहीं कर पाता। विश्व के पूरे समकालीन उपन्यास का स्तर पिछली महान कृतियों की तुलना में असंतोषजनक है। अमरीका के 'बेस्ट सेलर' उपन्यासों और स्टालिन-पुरस्कार-प्राप्त उपन्यासों का भी यही हाल है हालांकि समाजवादी निर्माण में पायी सफलताओं के कारण सोवियत संघ की जनता यह अवश्य समझती है कि जीवन उपन्यास की तरह है और उपन्यास जीवन की तरह है।[2] उनकी यह समझ समाजवादी व्यवस्था में विश्वास और उत्तरोत्तर मिली सफलताओं के कारण है। किन्तु इसके विपरीत अहर्निश अनिश्चितता की ज़िन्दगी बिताने वाले पूंजीवादी जगत के लेखक यह सोचने को मजबूर हैं कि कल उनका एवं उनके पात्रों का क्या होगा। युद्ध और अणुबम के द्वारा महानाश के खतरों के बीच वह अपने उपन्यास की बात क्यों सोचें? सोवियत कथाकार ईलिया एहरनबर्ग ने अपनी पुस्तक 'दा राइटर एंड हिज क्राफ्ट' में अपने यहां के बदलते समाज बदलती मान्यताएं, प्रथम पंच-वर्षीय योजना काल के मुकाबले आज के युवा स्त्री-पुरुषों के विकसित प्रेम आदि के संबंध में विशद रूप से अपने विचार प्रकट किये हैं।[3] किन्तु यही सारी बातें भारत पर भी लागू नहीं होतीं। युद्ध के बाद का भारत आज़ाद और जनतांत्रिक भारत है। यूरोपीय मध्य या निम्नवर्ग की भांति हम में चारित्रिक अराजकता अनास्था या व्यक्तित्व का विघटन आ गया है, यह कहना सर्वथा गलत है।[4] हमारी सांस्कृतिक जड़ें उखड़ी नहीं और भी गहरी बैठ रही हैं। उसके भीतर का जनवादी और लोक-परक तत्त्व नये वातावरण में अवश्य ऊपर उठ रहा है। ऐसी स्थिति में यथार्थवादी साहित्य की

---

१ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० २११
२ वही पृ० ६
३ दी राइटर एंड हिज क्राफ्ट पृ० १९
४ वही पृ० ४
५ वही पृ० २
६ आलोचना (८) पृ० ८
७ मथन्स जरनल, फरवरी ८, १९५९, पृ० ४३

सृष्टि का, चाहे उसमें कितना भी असाधारण तत्व या अभिनव टेकनीक क्यों न हो कोई औचित्य नहीं।[८] ऐसा साहित्य उच्च कोटि का भी नहीं माना जा सकता क्योंकि वह हमें वास्तविकता से संघर्ष करने और उसे अपने अनुकूल बनाने की प्रेरणा नहीं दे सकता।[९] ऐसा साहित्य समाज की ऐतिहासिक विकास-दिशाओं से हमें परिचित नहीं करा सकता और न एक कुशल डाक्टर या वैद्य की तरह समाज की नाड़ी के स्पन्दन को चित्रित ही कर सकता है।[१०] श्रेष्ठ साहित्य का उद्देश्य वास्तविक जीवन का इस तरह चित्रण करना है जिससे हमारी चेतना उस एकमात्र दिशा की ओर बढ़ निकले जो अपने गर्भ में समस्याओं का सही समाधान छिपाये है जैसा गोदान में प्रेमचन्द ने किया है।[११] उदाहरण के लिए आजादी का सवाल लीजिए। भारत ने आजादी के लिए क्यों संघर्ष किया? क्योंकि आजादी स्वयं सबसे बड़ा मूल्य है। उसके बिना नये *भारत का निर्माण संभव नहीं था।*[१२] इसी तरह 'जनवाद' है। जनवाद के आधार पर ही आजाद भारतीय जनगण की आशाओं-आकांक्षाओं को ठोस रूप दिया जा सकता है। तीसरी महत्त्वपूर्ण चीज है 'शांति' जो हमारी आजादी और जनवाद की सुरक्षा की गारंटी है। इस तरह आजादी जनवाद और शांति—ये तीन मूल्य हैं जो हमारे देश की राजनीति की आधार-शिला और हमारी सभी प्रगति-चेष्टाओं के मूल मंत्र हैं। गांधी के सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त समाजवादियों-साम्यवादियों के वर्गविहीन समाजव्यवस्था के सिद्धान्त एवं राष्ट्रों के सह-अस्तित्व के लिए पंचशील के सिद्धान्त भी उन्हीं बुनियादी मूल्यों की पुष्टि करते हैं। इन्हीं मूल्यों की स्वीकृति पर विश्व-जीवन का विकास निर्भर करता है[१३], किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे राष्ट्रीय जीवन में इन नये मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा ही नहीं पायी जब कि दूसरी तरफ मध्ययुगीन सामंती नैतिकता हमारे काम की चीज नहीं रह गयी थी। बदले में मौजूद था चारित्रिक असंयम भ्रष्टाचार दायित्वहीनता और बेईमानी। अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर महायुद्ध की क्रूरता का शिकार यूरोप आतंक भय और अनिश्चितता से ग्रस्त था। उसमें ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों का उभाड़ था[१४] जिसका काफी प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी पड़ा। यह प्रभाव दो रूपों में स्पष्ट है। लेखकों के एक वर्ग ने इस दर्द, घुटन और निराशा को ही भारतीय जीवन का आवश्यक अंग मान लिया। इन लेखकों ने व्यक्ति मन की ग्रंथियों के प्रदर्शन-विश्लेषण में ही अपने को गर्क कर दिया। वैसी कहानियों के अपने आपमें डूबे

---

८. नयी समीक्षा पृ० १६१
९. प्रगतिवाद पृ० १५०
१० वही
११ वही पृ० १५१
१२ संकेत पृ० २८४
१३ आलोचना (२५), पृ० २६३
१४ आलोचना (२५), पृ० २६६

अपनी एकमार्गीय समस्याओं में रमे 'संकटग्रस्त' व्यक्ति या पात्र विक्षिप्त से भटकते हैं।[१५] दूसरी तरह के लेखकों ने इस ह्रास और विघटन को वास्तविक जीवन मानने से इन्कार कर एकांगी व्यक्तिवादिता के खिलाफ मोर्चा लगाया। इन लेखकों की कहानियों में संघर्ष विद्रोह और आस्था—ये तीनों चीजें मिलती हैं। इनमें भी एक ऐसा तबका पाया जिसमें कलाकार-सुलभ-संवेदना का अभाव है हालांकि कालांतर में इन्होंने अपने में काफी सुधार किया। एक तीसरे प्रकार के लेखक भी हैं जिन्होंने सारी अव्यवस्था को उसके सही ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा इसे अधिक बढ़ाया एवं अपने अनुभवों तथा संवेदनाओं के आधार पर यथार्थ के विभिन्न स्तरों एवं दृष्टिकोणों से अपनी कहानियाँ लिखीं।[१६] इस तरह इन लेखकों द्वारा हमारे कथा-साहित्य में नये चरित्र आये हैं। ये चरित्र नव-निर्माण की प्रेरणा से अनुप्राणित विपुल प्राणी वर्ग से ओतप्रोत जीवन छंद रचने को बेताब से दीखते हैं।[१७] यद्यपि यह 'बेताबी' है अवश्य किन्तु अपने व्यक्तित्व के नवीन संस्कार के लिए, नये विश्व के योग्य बनने के लिए, प्रेमचन्द प्रभृति लेखकों ने जो काम किया उसे हमें अधिक गहराई में जाकर करना पड़ेगा। पुरातन-पाशों से अपने व्यक्तित्व को मुक्त करने के लिए हमें मुख्यतः चेतना के क्षेत्र में नई क्रांति की तैयारी करनी पड़ेगी जिसके लिए परिस्थिति परिपक्व भी है।[१८] बिहार के कुछ औपन्यासिकों ने विशेष रूप से इस क्षेत्र में काम किया। उनमें भी नागार्जुन वीरेन्द्र नारायण मर्हेन नगरायपुरी और फणीश्वरनाथ 'रेणु' के नाम उल्लेखनीय हैं।[१९] इसी परम्परा में भैरवप्रसाद गुप्त रांगेय राघव अमृतलाल नागर लक्ष्मीनारायण लाल उदयशंकर भट्ट, अमृतराय, मधुप शास्त्री श्यामनंदकिशोर झा शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय कमलेश्वर, बलभद्र ठाकुर, देवेन्द्रसत्यार्थी हृषीनाथ केशवप्रसाद सिंह ठाकुरप्रसाद सिंह, हिमांशु श्रीवास्तव यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' शेखर जोशी आदि कथाकारों का नाम लिया जा सकता है। संक्षेप में यह कि आज का कथा-साहित्य मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक जीवन के उद्घाटन में संलग्न है। आज रेल तार, इंजन एटम बम एवं समुद्र के साथ ही टेस्टट्यूब बेबीज[२०] यौन परिवर्तन आदि की बातें भी कथा-साहित्य में पहले से अपेक्षाकृत हमारे साथ रागात्मक संबंध स्थापित कर रही हैं।[२१] ऐसे कथाकारों में प्रभाकर माचवे रामकुमार राजेन्द्र यादव कमल जोशी नलिन विलोचन शर्मा निर्मल वर्मा धर्मवीर भारती अमरकांत मोहन राकेश ओमप्रकाश

---

१५. आलोचना (१०) पृ ५९

१६ नई कहानी साहित्यकार सम्मेलन, इलाहाबाद १९५७ में हरिशंकर परसाई द्वारा पठित निबंध

१७ आलोचना (२४) पृ० ९२

१८. आलोचना (२५) पृ० ९१८

१९. कथा के तत्त्व पृ० १८१

२० इन्दुमती

२१ कथा के तत्त्व पृ० 'घ'

श्रीवास्तव लक्ष्मीकांत वर्मा प्रेम कुमार, रजनी पनिकर आदि उल्लेखनीय हैं।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य के बाद के कथा साहित्य की पृष्ठभूमि का सम्यक विश्लेषण करते हुए अंत में कहा है— कथा में तटस्थता आवश्यक है और कथाकार को सबसे पहले मानवतावादी या 'ह्यूमनिस्ट' होना जरूरी है। उपन्यास के कलात्मक के लिए तो यह तटस्थ जीवन-दृष्टि और भी आवश्यक है।[22] मतवाद के विवादों से रहित इस तरह की रचनाओं की बाद में सृष्टि भी हुई और अधिक वस्तुवादी एवं निर्विवाद होने के कारण उनका सर्वाधिक स्वागत भी हुआ।[23] आलोचक ने उनका नामकरण 'शहरी एवं ग्रामीण कथा' के रूप में किया है। शहरी कथाओं में अधिकतर मध्यवर्गीय चरित्रों का एवं ग्रामीण कथाओं में अंचल विशेष के पात्रों का सृजन हुआ है।[24]

श्री राजेन्द्र यादव ने[25] इन दोनों प्रवृत्तियों का थोड़ा भिन्न नामकरण करते हुए कहा है कि साहित्य में छाये हुए छिछलेपन और झूठे मनबांधे मूल्यों के नपने के कारण ही नवोदित कथाकारों की एक धारा ग्रामीण जीवन एवं आंचलिक इकाइयों की ओर तथा दूसरी विदेशी साहित्य की ओर मुड़ी। 'पराजित पीढ़ी' के 'वदग्मास्ती हठयोगियों' ने 'दृष्टिहीनता' के वर्णन का बड़ा कमाल किया था। किन्तु इनके दिलों में तो देवदास और बाइरन बैठे थे। इन्होंने अपने साहित्य में 'बार' या सोसायटी में चहकने वाली लड़कियों को 'सभ्यता का शिकार' बनाकर पेश किया। इन लड़कियों को ऐसा ही नायक मिलता था जिसकी दोनों जेबों में पैसे भरे होते थे और वह उन्हें चुनकर लुटाना भी जानता था। इन नोटों को लूटने वाले कभी टैक्सी वाले होते हैं कभी 'बार' की लड़कियां कभी 'बैरे' आदि।[26] यही नायक शराब भरे गिलासों को झुला झुलाकर, चुस्कियां लेता हुआ निहायत ही एक्टराना ढंग से बिचारी नाचने वालियों की 'जिन्दगी का अध्ययन' शुरू कर देता है। इनमें गरीबी भी अपना महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करती है और यह 'प्रिंस' किस्म का नायक ठीक उनके बीचोंबीच पहुँच जाता है। यदि इससे भी अधिक मौलिक साहित्य की रचना करनी हो तो बाप-बेटी या भाई-बहन का शरीर संबंध दिखा दिया गया।[27]

आंचलिक कथा

ग्रामीण या आंचलिक चित्र उसे ही कहा जा सकता है जहाँ किसी एक स्थान

---

२२ नई कहानी (मोहन राकेश) साहित्यकार सम्मेलन, इलाहाबाद में १९५७ में पठित निबंध

२३ साप्ताहिक हिन्दुस्तान १६ जून १९६० पृ० १६

२४ आंचलिकता (भाषा विशेषांक) १९५८ पृ० १३

२५ विनोद (विशेषांक) अगस्त १९६० पृ० ११७

२६ नयी कहानियों में ऐसे पात्र राजकमल चौधरी, राजेन्द्र यादव निर्मल वर्मा प्रेमकुमार, रामकुमार, मोहन राकेश आदि ने रचे हैं।

२७ विनोद, पृ० १४१

का वातावरण उस पूरे इलाके या जनपद के वातावरण का प्रतिनिधित्व करता हो। इस आंचलिक चित्रण के भी दो रूप होते हैं—आंचलिक संस्पर्श और आंचलिक प्रवृत्ति। यह आंचलिक संस्पर्श हम वहाँ देखते हैं जहाँ लेखक का मुख्य उद्देश्य कुछ दूसरा ही होता है और उसकी पूर्ति के लिए वह आंचलिक विशिष्टताओं का चित्रण करता है। उस खास अंचल की पृष्ठभूमि पर लेखक वहाँ के सामाजिक जीवन का चित्रण स्थानीय किसानों, बुद्धिजीवियों तथा अन्य वर्गों के पात्रों द्वारा करता है।[28] ऐसे उपन्यासों में लेखक का प्रधान उद्देश्य नवीन सामाजिक पृष्ठभूमि में उठते-उभरते हुए नये मानव, आर्थिक-सामाजिक संघर्ष एवं जीवन का चित्रण करना है। ऐसे उपन्यासों की सृष्टि का श्रेय नागार्जुन एवं रेणु जैसे लेखकों को दिया जाना चाहिए।[29] किन्तु कतिपय आलोचक ऐसी कृतियों का प्रारंभ भी शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' एवं वृन्दावनलाल वर्मा के 'अमर बेल' आदि उपन्यासों से मानते हैं।[30] एक सीमित अर्थ में उदयशंकर भट्ट एवं अमृतलाल नागर को भी आंचलिक उपन्यासों का स्रष्टा कहा जा सकता है।[31]

इन कथाओं में हर समर्थ कथाकार ने अपने आपमें पूर्ण और समृद्ध चरित्र चित्रण किया है। चिरान सावमनी (परती परिकथा) बलचनमा (बलचनमा), सुखराम भट (कब तक पुकारूँ ?) कजरी और प्यारी आदि के अजर-अमर व्यक्तित्व दूर से ही हजारों की भीड़ में पहचाने जा सकते हैं। विशिष्ट चरित्रों पर आधारित कुछ कहानियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'दादामुंशी' (शिवप्रसाद सिंह) 'एक्टर और मनुष्य मास्टर' (राजेन्द्र यादव) तथा 'भीड़' (कमलेश्वर) उल्लेखनीय हैं। इस तरह, कहा जा सकता है कि अब कहानियों के रूप-रंग में काफी परिवर्तन आ चुका है और 'एबनार्मल' पात्र की स्पृहणीयता पर प्रश्न चिह्न लग चुका है।[32] मिस मोरिया एजवर्थ ने यूरोप में १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में उपन्यास की इस नई धारा का प्रारंभ किया था। १८०० ईसवी में उनका इस तरह का उपन्यास 'कासल रैकरेंट' के नाम से प्रकाशित हुआ जिसमें आयरलैंड के किसानों का जीवन स्थानीय जनता के रीति-रिवाज संस्कार आदि का सजीव चित्रण हुआ है।[33] १९वीं सदी के उत्तरार्ध में बालजक जोला और हार्डी जैसे सुप्रसिद्ध उपन्यासकारों ने भी मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति उसके प्राकृतिक परिवेश आदि का गहरा रंग अपनी कृतियों में उभारा। अमेरिका के उपन्यासकार फ्रांसिस होप्किंसन स्मिथ की कृतियों में भी स्थानीयता का

२८. आज (साहित्य विशेषांक १९५८), पृ० ११
२९. आलोचना (२४) पृ० ८
३० नलिन विलोचन शर्मा ने कहा था।
३१ आज (साहित्य विशेषांक), पृ० ११
३२ आलोचना (२४) पृ० ७
३३ आज (साहित्य विशेषांक) (डा० बच्चनसिंह) १९६१ पृ० ११
३४ दी इंगलिश नावेल, पृ० ६८

गहरा रंग मिलता है।[३५] इसी भाँति के महान चित्रकार मारदेल शोलोखोव की रचना 'वरजिन सायल अपटर्न्ड' (१९३१) में यही रंग है। नोबेल पुरस्कार प्राप्त विलियम फाकनर ने भी कई प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। १९६१ में नोबेल पुरस्कार प्राप्त युगोस्लाव लेखक इवो आन्द्रिच भी आंचलिक लेखक हैं। तुर्की लेखकों में स्थात दरवेश द्वारा लिखित 'अंकारा का बंदी' भी आंचलिक उपन्यास है। शरत के बाद बंगला साहित्य में शैलजानंद, ताराशंकर, सतीनाथ भादुड़ी, मानिक बन्द्योपाध्याय एवं समरेश बसु आदि ने आंचलिक उपन्यासों की भरमार कर दी।[३६] इन नये कलाकारों ने देहातों में जाकर वहाँ के जीवन में जो कुछ शिव और सुन्दर है, स्नायविक दुर्बलताओं मानसिक कुंठाओं से[३७] हीन है उसी का स्वस्थ और सबल चित्रण किया है।

प्रेमचन्दजी का कहना था कि किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित कहानी उत्तम कही जा सकती है।[३८] घटनाएं और पात्र उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्पष्ट करने के लिए लाए जाते हैं।[३९] इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपने कहानी-संग्रह 'कफन' का हवाला दिया था जिसके पात्रों में बहुत-सी विचित्रताएं हैं जिसे आजकल के कुछ उत्साही आलोचक यथार्थ भी कह सकते हैं। जैसा वे आंचलिक कृतियों में पायी बहुत-सी बातों और चरित्रों को कहते हैं। किन्तु उन तमाम विचित्रताओं के बावजूद वे चरित्र 'टीपल' हैं। नये कहानीकार प्रेमचन्द की इसी परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। उनपर लगाया जाने वाला यह आरोप सर्वथा गलत है कि वे सामन्ती अवशेषों या मध्यवर्गीय जीवन के कुछ व्यक्तियों के चरित्रों के निर्माण में रस लेते हैं। चरित्र के निर्माण में रूढ़ियों मर्यादाओं, मिथ्याभिमान आत्माभिमान आदि पुरातन संस्कारों का भी अवश्य हाथ रहता है क्योंकि ये सभी चीजें मिलकर उस व्यक्ति को वह बनाती हैं जो कि वह दीखता है।[४०] संक्षेप में यह कि कहानी-कला के विधान में आज नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। उसके चरित्र कार्य रत न होकर चिंतन रत हैं। फलतः कहानी में आज न घटनाएं घटती हैं न कार्य-व्यापार होते हैं—जो कुछ होता है वह चरित्र के मन में होता है। आज के अधिकांश चरित्रों का मन कुंठाओं ग्रंथियों अविश्वासों विशृंखलताओं से ग्रस्त है और इसी मन की देश-काल परिस्थिति में कहानी का भी निर्माण होता चलता है। इसी कारण आज की कहानी-कला आधुनिक चित्रकला के बहुत निकट आ गयी है।[४१]

---

३५. समीक्षा शास्त्र, पृ० ११७
३६ सारिका फरवरी ६२, (रेणु) पृ० ८२
३७ कहानी (विशेषांक), १९५५, पृ० १०
३८. कुछ विचार, पृ० ३६
३९. वही, पृ० ४१
४० शिवप्रसाद सिंह द्वारा पठित 'नयी कहानी : नये प्रश्न' शीर्षक निबंध, साहित्यकार सम्मेलन इलाहाबाद १९५७
४१ आलोचना (७) पृ० १२

अब आलोचकगण प्रेमचन्द एवं प्रेमचन्द-परंपरा की मांग[४२] एक स्वर से कर रहे थे तभी नागार्जुन के रूप में आंशिक तौर पर प्रेमचन्द की प्रतिभा से सम्पन्न कथाकार का हिन्दी साहित्य में उदय हुआ।[४३] इसके पहले 'अमृत लाल' द्वारा भी वृन्दावनलाल वर्मा एवं निरालाजी की कृतियों में नयी चारित्रिक स्थापनाएं हो चुकी थीं जिसने भी आने वाले परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार की।[४४]

नागार्जुन

इसी पृष्ठभूमि में नागार्जुन के चरित्रों का अध्ययन किया जा सकता है। नागार्जुन ने अपनी कृतियों में मिथिला का चरित्र-विकास उपस्थित किया है। उनके सभी चरित्र मिथिला से सम्बद्ध हैं जो मिथिला का व्यक्तित्व-विकास करते हैं। अतएव उनके चरित्रों का अध्ययन मिथिला के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाना चाहिए।

उनकी कृति 'बाबा बटेसरनाथ' एक नवीन कथा-प्रयोग है। १४८ पृष्ठों के उपन्यास में पूरे १०१ पृष्ठों तक जकिसुन की स्वप्न-कथा चलती है। उसके बाद जम कर जैकिसुन और जीवनाथ कर्मप्रवृत्त होते हैं। यह मुख्यकथा सिर्फ ४८ पृष्ठों की है और इसकी समाप्ति स्वाधीनता शांति और प्रगति के नारों से होती है।[४५] हिन्दी के एक प्रसिद्ध आलोचक ने उनके उपन्यास बलचनमा के प्रकाशन के एक वर्ष पूर्व लिखा था—"हिन्दी के साम्यवादी साहित्यिकगण किसान-मजदूर के लेखक के रूप में प्रेमचन्द की वीर-पूजा करते हैं। किन्तु, उनके बाद किसी भी उपन्यासकार ने किसान-मजदूर वर्ग से सम्बद्ध कोई उल्लेख्य उपन्यास नहीं लिखा है—साम्यवादी उपन्यासकारों ने भी नहीं।[४६] किन्तु, इस आलोचना के साल भर बाद ही साम्यवादी कवि-उपन्यासकार नागार्जुन का 'बलचनमा' प्रकाशित हुआ। आलोचकों ने विभिन्न रायें व्यक्त करने के बाद भी एक स्वर से इसे स्वीकार किया कि 'बलचनमा' में जनसाधारण का दर्द और पीड़ा पूरी तरह मुखरित हुआ है।[४७] इस तरह नागार्जुन ने प्रेमचन्द की परम्परा को बढ़ाया है। प्रेमचन्द के होरी और गोबर की तरह उनके चरित्र सामाजिक व्यवस्था के शिकार होकर मर नहीं जाते बल्कि अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करते हैं। 'बलचनमा' के रूप में नागार्जुन ने भारतीय जीवन के ऐसे पात्र को लिया है जो कभी भारतीय साहित्य में नायक नहीं बन सका था।[४८] ऐसे पात्र को खोज निकालना ही जो ठेठ खेत मजदूर है, होरी जैसे किसान से भी निम्नस्तर का—नागार्जुन की तीव्र दृष्टि का

---

४२. नयी समीक्षा पृ० ९३७
४३ अध्ययन के विचार पृ २०
४४ उपन्यास और लोकजीवन, पृ० क
४५. आलोचना (१७), पृ० १४
४६ आलोचना (इतिहास) पृ० ११८
४७ आजकल मार्च १९५१, पृ० १४
४८ अध्ययन के विचार, पृ० ९१

परिचायक है।[४९] नागार्जुन के पात्रों में वे द्वन्द्व भी नहीं जो प्रेमचन्द के पात्रों को आगे नहीं बढ़ने देते थे। यह उनकी राजनीतिक विचारधारा के कारण है।[५०] इसीलिए इन्होंने आत्मविश्वासपूर्वक भूमिहीन किसानों द्वारा स्थापित सरकार को ही मानव कल्याणकारक बताया है।[५१] 'बलचनमा' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें एक दृढ़ समाजवादी चरित्र का विकास दिखाया गया है।[५२]

'नयी पौध' में मथिल समाज के कुत्सित परम्परागत कर्मों का पर्दाफाश हुआ है।

'बाबा बटेसरनाथ' में एक बूढ़ा वट-वृक्ष नायक की भूमिका अदा करता है। यह लोक-चरित्र को नवीन साहित्यिक संस्कार प्रदान करने का प्रयास है।[५३] जिसमें वटवृक्ष का मानवीकरण किया गया है।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सर्वप्रथम नागार्जुन ने ही हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की रचना की और उनकी कृतियों के प्रकाशन के बाद ही प्रादेशिक या आंचलिक उपन्यासों के सम्बन्ध में विवाद उठा।[५४]

उनके पाचवें उपन्यास 'वरुण के बेटे' में आये चरित्र भी—मोहन मगल, मधुरी, मोहन मांझी वगैरह—बलचनमा और बाबा बटेसरनाथ की परम्परा के चरित्र हैं।[५५] निम्न वर्ग के चरित्र की सृष्टि का चरित्र-विकास की दृष्टि से उन्होंने समस्त हिन्दी साहित्य के स्तर पर मील-स्तम्भ का काम किया।[५६] 'दुखमोचन' उनकी सबसे नवीन कृति है। यह पात्र देश में नवीन-निर्माण और जागरण का प्रतीक है। किन्तु इस पात्र में लेखक ने जितने सद्गुणों का आरोप किया है उसका बोझ वह सँभाल नहीं पाता। वह एक व्यक्ति न होकर टाइप बन गया है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि इस उपन्यास की रचना संभवतः आज सरकार की ओर से हो रहे निर्माण सम्बन्धी प्रचार कार्यों के लिए की गयी है।[५७]

फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यास-लेखकों में नागार्जुन अग्रगण्य हैं। उनकी कृतियों में मिथिला अंचल की भौगोलिक प्राकृतिक सामाजिक राजनीतिक स्थिति के जीवंत चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।[५८]

---

४९. वही पृ० ६०
५० अध्ययन के विचार, पृ० ३१
५१ वही पृ० ३२
५२ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० २१०
५३ कल्पना मार्च, ५४
५४ आजकल, मार्च १९५६, पृ० ११
५५. आलोचना (उपन्यास विशेषांक) पृ० २०६
५६ सरिता १९५७, जनवरी
५७ नया पथ अप्रैल १९५८, पृ० ११६
५८ हिन्दी उपन्यास, पृ० १८७

भैरवप्रसाद गुप्त

भैरवप्रसाद गुप्त कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक नये उपन्यास-लेखक हैं। उनके उपन्यास 'मशाल' में यद्यपि कहानी का एक ढाँचा अवश्य खड़ा किया गया है, पर उसमें स्वाभाविकता और स्वानुभूति का पूर्ण अभाव है। यह भी कहा जा सकता है कि बौद्धिक रूप से साम्यवादी होने के बावजूद उनके हृदय भाव और दृष्टि में वह दर्शन समरस नहीं हो पाया है।[४९] फिर भी ग्रामीण चित्रण की परम्परा को उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा समृद्ध किया है। 'गंगा मैया' में बलिया अंचल के किसानों के संघर्ष का चित्रण है। 'जंजीरें और नया आदमी' सामंती दुराचारों की काली कहानी को सशक्त रूप में व्यक्त करता है।[५०]

'गंगा मैया' उनका लघु उपन्यास है। अतएव उसके चरित्र बड़ी छोटी भूमिका अदा करते हैं। अन्यथा उसका प्रमुख पात्र मटरू भी विकसित होकर कुछ अधिक विशिष्ट बन सकता था। किन्तु, सम्भवतः कथाकार की वर्ग-मनोवृत्ति उसे उपन्यास के स्तर तक आने नहीं देती।[५१] इसीलिए यह मटरू 'परती परिकथा' का जितन नहीं बन सका और गुप्तजी 'रेणु' से आगे नहीं बढ़ पाते। इसी तरह 'जंजीरें और नया आदमी' भी एक बेजान-सी चीज बन गयी है हालांकि उसके पात्र सामाजिक यथार्थवाद का सही और क्रांतिकारी रूप प्रस्तुत करते हैं। इसके बावजूद ये पात्र प्रेमचन्द के पात्रों से अधिक तेजस्वी दीख पड़ते हैं यद्यपि उनका निर्माण प्रेमचन्द की परम्परा के विकसित रूप का ही परिचायक कहा जा सकता है।[५२]

उनकी नवीन कृति 'सत्ती मैया का चौरा' में साधारण किसानों के जीवन एवं संघर्ष का चित्रण है—जो पूरे देश में चल रहे निर्माण के संघर्ष का ही एक अंश है।[५३] इसमें आये चरित्र—बड़े मियां बाबू साहब, हीरा भगत रहमान और मुन्नी छोटे पैमाने पर महान पात्र हैं।[५४]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी में ग्राम-जीवन की पकड़ बड़ी जोरदार है और उन्होंने उसके अनेक पहलुओं को सजीव ढंग से चित्रित किया है।[५५] गांवों के महाजन और चतुर मैठकबाज हिन्दू और मुसलमान जमींदार और रैयत कांग्रेसी और कम्युनिस्ट—सभी का चित्रण लेखक ने भरपूर आस्था से किया है और यह भी दिखाया है कि किस तरह भाग्य का शासक वर्ग अनेक अनैतिक चरित्रों से सत्य का हनन

४९. आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० २११
५० आज (साहित्य विशेषांक), १९५८
५१ जनसत्ता अप्रैल १९५७, पृ० ५२
५२ अध्ययन के विचार, पृ० ११९
५३ आलोचना, अप्रैल' ६० ठाकुर प्रतापसिंह
५४ भगवतशरण उपाध्याय, आज (साहित्य विशेषांक), १९६०
५५ वही पृ० १२

कर गाँव के कर्मठ जीवन में कुंठा उत्पन्न कर रहा है। यही इनकी कृतियों का विषय है।[66] गुप्तजी ने काफी मात्रा में कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें उन्हें काफी सफलता मिली है। पर अपनी राजनीतिक मान्यताओं के कारण यहाँ भी वे नवीन चरित्रों की कल्पना नहीं कर सके हैं।[67]

श्री उदयशंकर भट्ट

भट्टजी का उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' एक महान रचना है। यों तो यह बम्बई के मछुओं की कहानी है लेकिन वास्तव में यह मछुआ-दम्पति विट्ठल और वंशी की कन्या रत्ना की कहानी,[68] जो सभ्य जीवन बिताने को बेताब है क्योंकि वह पढ़ी-लिखी है। किन्तु, सभ्य समाज में भी उसे नरपशु ही मिलते हैं—एक डाक्टर पांडुरंग को छोड़कर। यह लेखक की बड़ी सफलता है कि इस उपन्यास के प्रायः सभी पात्र सजीव बन पड़े हैं।[69] उनकी भाषा भी एक खास किस्म की बम्बइया भाषा है। विट्ठल, वंशी, माणिक, यशवंत, सारिका, दुर्गा, बीरूमामा, पांडुरंग तथा छोटे-मोटे अन्य सभी चरित्र लेखक के कलात्मक अंकन से बड़े सजीव और स्वाभाविक बन पड़े हैं।[70] इतने पात्रों का मूर्त और सजीव चरित्र-निर्माण हिन्दी उपन्यासों के लिए एक अपूर्व घटना है।[71] रत्ना का चरित्र इतनी विशिष्टताओं से सम्पन्न है कि वह आधुनिक प्रतिष्ठित भारतीय नारी की प्रतिनिधि बन गयी है। वह हिन्दी-उपन्यासों में आये अब तक के सभी नारी-पात्रों से भिन्न और ऊँची भी है। प्रेमचन्द ने नारी को अबला और उसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अभाव देखा।[72] जैनेन्द्र की नारी में व्यक्तित्व तो है, किन्तु, सामाजिक बन्धनों को तोड़ने के बाद सुनीता की तरह वह आत्मग्लानि से पीड़ित होती है।[73] लेकिन रत्ना को अपनी वासना-तृप्ति का साधन बनाने की कोशिश में कई लोग डंडों और जूतों की मार खाते हैं यद्यपि आलोचक डा० देवराज उपाध्याय को यह बात पसन्द नहीं।[74] फिर भी रत्ना के विद्रोह में अधिक गहराई है और उसका लक्ष्य भी बड़ा है।[75]

परन्तु, इस उपन्यास की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इसमें पात्रों को सिर्फ

---

६६ वही
६७ श्रीपतराय (कहानी-विशेषांक) १९५६
६८. वसुधा, फरवरी '५७, पृ० १५
६९. वही
७० वही
७१ कथा के तत्त्व, पृ० २०१
७२ वही, पृ० २०१
७३ वही
७४ वही
७५. आलोचना-मान, पृ० ११०

क्रियारत स्थिति में अनुचिन्तनरत स्थिति में नहीं चित्रित किया गया। वे सभी जल्दी में हैं और लगता है जैसे उन्हें फटपट अपना पार्ट अदा करके चला जाना है।[76] फिर भी इसमें दो तरह के पात्रों की सृष्टिकर लेखक ने अपने हृदय के दो पक्षों का प्रदर्शन किया है। हेमिंग्वे के उपन्यास 'दी ओल्ड मेन एण्ड द सी' से भट्टजी ने अपने उपन्यास के लिए[77] और सागर मामाजु म ने[78] अपनी कृति 'वरुण के बेटे' के लिए अवश्य ही प्रेरणा ली होगी। किन्तु, समुद्री मछुओं के जीवन पर हिन्दी में सम्भवतः भट्टजी की कृति ही सर्वप्रथम है।[79] लेखक ने इस उपन्यास में गांव तथा महानगरी के जीवन में विषमता सामंती और पूँजीवादी सभ्यता में अन्तर एवं उभरते हुए व्यक्तिवादी जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण किया है।[80]

भट्टजी ने अपनी पुस्तक साहित्य का स्वर में लिखा है—'नाटक और उपन्यास के सभी पात्र मैंने समाज से चुने हैं। 'एक नीड़ दो पंछी' के सभी पात्र मेरे देखे, सुने और पहचाने हैं। पर 'सागर लहरें और मनुष्य' की रत्ना ने तो मुझे आत्मसात कर लिया।'[81] यह लेखक की 'प्राप्त-काम शक्ति पर निर्भर करता है कि वह अपने पात्रों को ग्रामसमाज का प्रतिनिधि 'होरी' बना दे या ओल्डमैन एण्ड द सी का मछुआ बना दे।[82]

श्री अमृतराय

श्री अमृतराय ने मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार अपने पात्रों का निर्माण किया है। उनकी सबसे ज्यादा उल्लेखनीय कृति 'बीज' है।[83] इसके प्रमुख पात्र मध्य वर्गीय हैं। इसका नायक सत्यवान और उसकी पत्नी उषा नये विश्व के निर्माण में विश्वास करते हैं[84] सत्यवान उषा से कहता है—"इस बाब में हमारे-तमे जीवन के विराट महत्त्व का बीज छिपा है, हमारे नये युग का बीज नये प्रभात का बीज। तभी इस स्वयंवर-वेला में हम उस प्रभात को प्रणाम करें।"[85] *मध्यवर्गीय चरित्रों में इस प्रकार के विकास का पहला लक्षण नहीं दिखाई पड़ता है—स्वयं अमृतराय की अन्य कृतियों में भी* यथा 'नागफनी के देश में' 'हाथी के दांत' इतिहास' आदि में इस प्रकार के चरित्र का विकास नहीं दिखाई पड़ता। 'बीज' में साम्यवादी विचारों को पात्रों पर उस हद तक

७६ कथा के तत्त्व पृ० २०६
७७. वही
७८. साहित्य के स्वर (भट्ट) पृ० १२६
७९. अजन्ता, अप्रल १९५८, पृ० २१
८० साहित्य के स्वर, पृ १५३
८१ हिन्दी उपन्यास, पृ० १५०
८२ साहित्य के स्वर, पृ० १२८
८३ वही, पृ १२६
८४ साहित्यधारा, पृ० १४७
८५. वही

नहीं आरोपित किया गया है जितना उनका विकास पात्रों के जीवन में दिखाया गया है।[86]

इस उपन्यास में अनेक सजीव चरित्र हैं जिनमें मानवजन्य दुर्बलताएं तथा संभावनाएं हैं।[87]

रांगेय राघव

रांगेय राघव ने दर्जनों उपन्यास लिखे हैं। प्रेमचन्दोत्तर कथासाहित्य में मध्यवर्ग की जिन विशेषताओं के आधार पर उपन्यास लिखे गए हैं, उसी परम्परा में इनके भी उपन्यास हैं।[88] इनके अब तक प्रकाशित उपन्यासों में सबसे महत्त्वपूर्ण है 'कब तक पुकारूँ' और कहानियों में सबसे श्रेष्ठ है 'गदल'। 'गदल' प्रेमचन्द की धनिया की याद दिलाती है।[89] 'कब तक पुकारूँ' नटों के जीवन पर आधारित कृति है जिसमें चरित्र विकास की दिशा में काफी प्रगति हुई है। इस उपन्यास के कुछ ऐसे चरित्रों की एक झाँकी श्यामलकिशोर झा के कहानी-संग्रह 'इन्सान की जिन्दगी' में मिलती है। उनकी 'चमन के धनी' नामक कहानी में एक जरायम-पेशा नटों के चरित्र में भी उदात्त तत्त्व को उद्घाटित किया गया है। इसमें साधारण जनता के हृदय में छिपी हुई असाधारण मानवता की सच्ची तस्वीर है। लेखक श्यामलकिशोर झा की वर्णन-शैली प्रभावशाली और चरित्र-चित्रण सजीव है।[90] 'कब तक पुकारूँ' के चरित्र सुखराम, प्यारी कजरी, सुसन आदि की तरह 'चमन के धनी' के चरित्र रसिया बेला हैदर, छेदा आदि अति स्मरणीय हैं। लम्बे अन्तराल के बाद उनकी दूसरी कृति 'संगर के वीर' उपन्यास के रूप में प्रकाशित हुई है। उपन्यास की घटना ग्रामीण अंचल में घटित हुई है पर यह आंचलिक उपन्यास नहीं है। इसकी समस्या राष्ट्रीय है और कथानक का सम्बन्ध भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन से है। उपन्यास की समस्त क्रियाशीलता के वाहक चार युवक हैं जो सहरसा के ग्रामीण अंचल में तत्कालीन अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फेंकने की उत्तेजना फैला रहे हैं। ये चार युवक हैं—वीरेश महेश, विष्णु और निरंजन। सभी चरित्र बड़े आकर्षक हैं।[91] उनका विकास काफी सुलझा हुआ है।

कमलेश्वर

कमलेश्वर का जीवन-अनुभव बहुत छोटा क्षेत्र बहुत सीमित, पर अतिशय सजीव है। कस्बे के सर्वहारा के बड़े मार्मिक चित्र उन्होंने उपस्थित किये हैं। उनकी

---

८६ हिन्दी उपन्यास (सुमन), पृ० ११६
८७. साहित्यधारा, पृ० १४७
८८ आलोचना (उपन्यास अंक) पृ० ५०८
८९. माध्यम (साहित्य विशेषांक), प्रकाशचन्द्र गुप्त, १९५८, पृ० ११
९० डा० रामविलास शर्मा—इन्सान की जिन्दगी
९१ नवराष्ट्र, २४-२ १४, प्रो० धनेन्द्र प्र० ठाकुर

कहानियाँ 'अधखुली नजरें', मुर्दों की दुनिया, राजा निरबंसिया, एक सड़क सत्तावन गलियाँ आदि में उनकी रचना-कौशल की विशेषताओं के दर्शन होते हैं। किन्तु, यह उनका दोष है कि उनके सभी चरित्र एक ही साँचे में ढले हैं।[92] 'राजा निरबंसिया' में एक लोककथा की पृष्ठभूमि में आधुनिक निम्न मध्य वर्गीय चरित्रों की कहानी कही गयी है। पर लोक-कथा का यह उपयोग सिर्फ कोरा शिल्प नहीं है न इससे कहानीपन में ही बाधा होती है।[93] बल्कि यह मुख्य कथा को और भी मार्मिकता से भर देती है। शिल्प के लिए प्रयोग की नयी यह अतीत की लोक कथा वर्तमान को प्रकाशित भी करती है और अतीत को नवीन अर्थ भी प्रदान करती है।[94] विधान के इस नये प्रयोग में अनेक अर्थों और व्याख्याओं की संभावना भी है और एक विशेष घटना के भीतर से मानवीय सत्य का उद्घाटन भी हुआ है।[95] इस शिल्प का प्रयोग कई वर्ष पूर्व 'प्रतीक' में प्रकाशित श्री शिवप्रसादसिंह की कहानी 'करमर का पेड़' में हुआ था। पर दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं।[96]

नयी कहानी के बारे में जनवरी '५५ की कल्पना में प्रकाशित एक लेख में मार्कण्डेय, शिवप्रसादसिंह और केशवप्रसाद मिश्र की कहानियों को प्रेमचन्द की परम्परा को समृद्ध करने वाला बताया गया है।[97]

शिवप्रसाद सिंह

'आर-पार की माला' लेखक की सोलह कहानियों का संग्रह है। इसमें आई एक कहानी 'दादी-माँ' का चरित्र अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है।[98] सभी कहानियों में ग्रामीण जीवन के केवल पात्रों के किस्से हैं जिनके प्रति मन में एक गहरी संवेदना होती है, पर जिनके लिए हम कुछ कर नहीं सकते।[99] ऐसे ही 'बेबस' और बेचारे लेखक के 'हीरो और हीरोइन' हैं।[100] अन्तिम कहानी 'आर-पार की माला' की नीक को नाव ढूँढ़ने पर भी कोई किनारा नहीं मिलता। केवल प्रवाह, जल और गहरा पानी। उसके मन में किसीकी बगल में बैठकर पार जाने की इच्छा है पर कोई किनारा नहीं केवल पार की माला 'और पार की माला'।[101]

---

९२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत् २०१५, अंक २, पृ० २१२
९३ कहानी (विशेषांक), १९५८, पृ० १२
९४ वही
९५ वही
९६ आज (साहित्य-विशेषांक) १९५८, पृ० १७
९७ कल्पना, जनवरी '५५
९८ प्रतीक नवम्बर '५१
९९ नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत् २०१५ अंक २, पृ० २११
१०० वही
१०१ वही

उनका दूसरा कहानी संग्रह 'कर्मनाशा की हार' आंचलिक कथाओं की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें शीर्ष कहानी 'माला-मृग' विशिष्ट चरित्र पर आधारित है। इस तरह उनके अनेक पात्रों को भूलना सर्वथा असम्भव है।[102] इसकी श्रेणी में भी मार्कण्डेय भी हैं जिनके 'नई-पुरानी तस्वीरें' के कई चरित्र अविस्मरणीय और प्रभावित करने वाले हैं।[103]

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

नये चारित्रिक मूल्यों की उपर्युक्त परम्परा में 'रेणु' जी के उपन्यास 'मैला आँचल', 'परती परिकथा' एवं 'ठुमरी' (कहानी-संग्रह) का विशिष्ट स्थान है। 'मैला आँचल' को स्वयं लेखक ने आंचलिक उपन्यास कहा है। लेकिन यह केवल आंचलिक उपन्यास ही नहीं है।[104] 'मैला आँचल' 'गोदान' की परम्परा में भारतीय भाषाओं का दूसरा समष्टिमूलक उपन्यास है हालांकि उसकी अपनी सीमाएं हैं।[105] अनगिनत गरीब धनी, शिक्षित, अशिक्षित उच्च-शिक्षित स्त्री और पुरुष पात्रों से भरे हुए इस उपन्यास में चित्रित जीवन अविश्वसनीय नहीं लगता।[106] यह एक यथार्थवादी जनवादी एवं कलात्मक होने के साथ ही भविष्य के जीवन की सूचना देने वाली रचना है।[107] उपन्यासकार अमृत तो इसे 'गोदान' के बाद का मील-स्तम्भ मानते हैं।[108] कलाकार ने पूरी मानवता और सहानुभूति से सामाजिक जीवन के चित्र जिसमें अमीर गरीब, किसान मजदूर, राजनीतिक कार्यकर्ता वैरागी, मानवोचित यौन-संबंध—सभी की रेखाएं उपस्थित की हैं। साथ ही उनके चरित्रों में राष्ट्रीय जागरण एवं नवनिर्माण स्वतन्त्रता के बाद की आशा निराशा, कोसी पीड़ित किसानों के जीवन में कोसी-बाँध के निर्माण की भावना, विश्वयुद्ध के खतरे और विश्वशान्ति के प्रयास को लू_स्वेल की मातृ-भाषा से और भी बलवती हुई आदि भावनाएं सुदृढ़ रूप से प्रस्फुटित हुई हैं।[109] इसी पृष्ठभूमि में उनके चरित्र उभरे और निखरे हैं। इसमें ऊंचाई तक उठने वाले पात्र भी हैं साथ ही पतित धूर्त, कायर पीठ में छुरा भोंकने वाले लोग भी मौजूद हैं।[110] इसमें बावनदास जैसे सच्चे सेवासेवी बालदेव जैसे अवसरवादी कांग्रेसी और बालाजिये, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट सभी उपस्थित हैं। बालदेव, बावनदास और काली

---

१०२ साहित्यधारा, पृ० ११८

१०३ वही पृ० १२१

१०४ आलोचना (१५), पृ० १०७

१०५ वही

१०६ वही

१०७ आज, (साहित्य विशेषांक), १९५८, पृ० १९

१०८ आलोचना (१५), पृ० ११०

१०९ अध्ययन के विचार, पृ० १७

११० कथा के तत्त्व, पृ० १८३

चरण का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक है। किन्तु, डा० प्रशान्त जैसे डाक्टरों का चित्रण कुछ पहले के बंगला उपन्यासों में भी आ चुका है।[१११] यद्यपि डाक्टर नायक है, फिर भी उससे अधिक दूसरे पात्र सजीव बन पड़े हैं।

नेमिचन्द्र जैन[११२] का मत है कि 'मैला आँचल' का एक भी पात्र 'क्लासिक' नहीं कहा जा सकता। शिवदानसिंह चौहान[११३] ने इतनी अधिक संख्या में आये पात्रों के 'मूर्त और सजीव' चित्रण की प्रशंसा करने के बाद उन पात्रों को ग्रामीण जीवन की क्षुद्रताओं में बंधे होने से 'बौना' बताया है। डाक्टर का आदर्शवादी चरित्र प्रेमचन्दजी के सूरदास चक्रधर अमरकान्त और प्रेमशंकर से साम्य रखता है।[११४] इनके नारी-पात्र भारत की नारी जैसी दूसरों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने वाली हैं। इसमें कोठी अंचल की कुछ दशों को समग्र जीवन-गति समझकर आ गई है।[११५] मौलिकता से समन्वित ऐसे चरित्र अभी से हिन्दी साहित्य में चित्रित नहीं हुए थे। साथ ही उनकी विशेषता यह भी है कि एक अंचल के सीमित चरित्र होते हुए भी उनमें सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन की ध्वनि पर्याप्त रूप में विद्यमान है।[११६]

'रेणु' के दूसरे उपन्यास 'परती : परिकथा' में ६० से अधिक पात्र हैं—६१ के लगभग पुरुष और शेष सभी स्त्रियाँ। इतनी संख्या में होने के बावजूद ग्रामीण जीवन के समग्र और पूर्ण चित्रण में पात्रों का समीचीन उपयोग एवं कुछ पात्रों का चित्रण बहुत ही सुन्दर हुआ है। नायक जितेन्द्र, ताजमनी भिम्मल-मामा एवं लुत्तो आदि का चरित्र-चित्रण अत्यधिक सजीव है। फिर भी 'मैला आँचल' के बावनदास जैसा एक भी अविस्मरणीय चरित्र यहाँ प्राप्त नहीं।[११७] जितन डाक्टर राय चौधरी, इरावती आदि में नवीन भारत की पुनर्निर्माण-भावना का शानदार चित्रण हो पाया है।[११८]

'परती : परिकथा' के पात्र इतने स्वाभाविक हैं कि वे हमें भारत के हर गाँव में मिल सकते हैं।[११९] रेणु ने बड़े ही रोचक ढंग से कथाओं को कहा और सुनाया है। साथ ही अनेकानेक चरित्रों की सृष्टि करते हुए उन्हें आश्चर्यजनक ढंग से निभाया भी है।[१२०] परानपुर के महोत्सव में सम्मिलित होने वाले ये अनेकानेक चरित्र अपनी व्यक्तिगत

---

१११ आलोचना (१५), पृ० १११
११२ कल्पना, फरवरी, १९५६
११३ आलोचना के मान, पृ० १५८
११४ हिन्दी उपन्यास (मदन), पृ० ८५
११५ आलोचना (२४), पृ० २
११६ आलोचना (१६), पृ० १०७
११७ आजकल, मार्च ५८, पृ० ११
११८ परती : परिकथा पृ० ४९८
११९ आज (साहित्य विशेषांक), १२ जनवरी '५८, पृ० १२
१२० आलोचना (२५), पृ० ९९

विशेषताओं से पूरित हैं।[121] सभी अपना जीवन जीते हैं और उनका अंकन सबल रेखाओं से हुआ है।[122] उनका अपना व्यक्तित्व है, बाहर और भीतर का स्पष्टीकरण है और सबों ने कथा की धारा में पूर्ण योगदान किया है और उनकी अपनी विशिष्टताएं हैं। इन सभी चरित्रों का सफल अंकन लेखक के मानव-अध्ययन और कलात्मक शक्ति के प्रमाण हैं।[123] स्त्री-पात्रों में ताजमनी मालती गीता मिश्र—सभी का चरित्रांकन अत्यधिक सबल है।[124] सभी चरित्रों के निर्माण में लेखक ने तटस्था से काम लिया है।[125] उनके पात्रों में अपनी पृथक सत्ता है।[126] मनुष्य के सर्वस्व रूपों का अंकनकर रेणु टाल्सटाय और गेटे के अधिक समीप आ गये हैं।[127] इसलिए 'परती परिकथा' हिन्दी साहित्य को उनकी एक अमूल्य भेंट है।[128]

प्रेमचन्द के पात्रों की तुलना में उनके पात्रों में मानसिक द्वन्द्व भी उभरकर आया है। उनके चरित्र अधिक सर्वातिक हैं।[129] उनके पात्र लेखक के दृष्टि-विस्तार के संकेतिक स्तम्भ हैं।[130] मनेसा और सुरपति गाँव के जीवन या रंगमंच पर फ्लैश लाइट डालने का काम करते हैं।[131] रेणु ने अपने सभी चरित्रों के माध्यम से जीवन की एक सर्वाङ्गीण तस्वीर प्रस्तुत की है।[132]

कुछ लोगों ने 'परती परिकथा' में 'चरित्र-विकास का अभाव' बताया है। कुछ ने पात्रों को 'निष्प्राण निर्जीव' कहा है।[133] किन्तु इन सबों के बावजूद इस परिकथा में हर व्यक्ति समाज का हर वर्ग हर राजनीतिक दल अपने वर्तमान आचरण और भूमिका का सही चित्र देख सकता है।[134] इस कथा के पात्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व के नहीं हैं। वे मंचई-गाँव के छोटे लोग अवश्य हैं। पर वे बौने' नहीं हैं उनके क्रोध और प्रेम

---

१२१ अजन्ता, अक्टूबर-नवम्बर, १९५७, पृ० ८७
१२२ वही
१२३ आलोचना (२४), पृ० ६६
१२४ आज, (साहित्य विशेषांक), ५८, पृ० १२
१२५ वही
१२६ नया पथ, अप्रैल १९५८, पृ० १०१
१२७ आलोचना, (२४), पृ० ७०
१२८ वही पृ० ७१
१२९ नया पथ अप्रैल, '५८, पृ० १६६
१३० आलोचना (२४), पृ० ६५-७६
१३१ वही
१३२ आज, (साहित्य विशेषांक), १९५८, पृ० १२
१३३ कल्पना फरवरी १९५८ (श्रीपतराय)
१३४ आलोचना के मान शिवदानसिंह चौहान द्वारा १९५० में साहित्यकार सम्मेलन इलाहाबाद में पठित निबन्ध

के मापेम चाहे 'हिरोइक' न भी हों पर तुच्छ भी नहीं।[११५] परिकथा एक घोषणा है कि प्रतिभावान कथाकार आज भी युग-युग के छोर नाप सकता है—बौनापन उसकी नियति नहीं है।[११६]

रेणु ने सफल कहानियां भी लिखी हैं। पर कहानियों के चरित्र भी औपन्यासिक चरित्रों से भिन्न नहीं। उनका कहानी-संग्रह 'ठुमरी' की कुछ कहानियां बहुत ही 'लिरिकल' हैं जैसे रसप्रिया' 'पंचलैट' 'तीसरी कसम या मारे गये गुलफाम' सफल कहानियां हैं। सभी चरित्र सशक्त अविस्मरणीय और प्रेमचन्द की परम्परा के हैं। 'तीसरी कसम' का हिरामन तो भुलाये नहीं भूलता। उसका भोलापन आत्मीय जीवन और चरित्रों की सच्चाई और सद्गुणों का प्रतीक है।

हिमांशु श्रीवास्तव

लेखक ने अपने उपन्यास 'लोहे के पंख' में सन् १९२८ से ४२ तक का कथाकाल लिया है। इसके परिवर्तन की तुलना भी इलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंछी' से की जा सकती है। पर स्वाभाविकता के आधार पर यह 'जहाज का पंछी' को भी पीछे छोड़ जाता है। इस कृति का नायक मँगरू स्वयं अपनी आत्मकथा कहता है और एक मजदूर की तरह सीधे-सादे ढंग से उसे कहता है। उसकी विचार-शक्ति सीमित एवं जीवनदर्शन भी साधारण मजदूरों जैसा है।

मँगरू वर्ग का प्रतीक चरित्र है जो केवल वही काम करता है जो उसके जैसे लोग किया करते हैं।[११७]

देवेन्द्र सत्यार्थी

देवेन्द्र सत्यार्थी के 'ब्रह्मपुत्र' में इस नदी के किनारे बसने वाले नदी-पुत्रों के जीवन की कथा कही गई है। 'ब्रह्मपुत्र' से उनका जीवन उसी तरह जुड़ा है जैसे धरती से किसान का या माता-पिता के साथ पुत्र का होता है।

इस उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य है जिसमें विभिन्न अवस्थाओं के एवं प्रकृति के लोग हैं। इनमें कल्याण भगत भीलमणि राखाल काका अब्दुल कादिर वर्मनदी देवकांत मतुल नीरद, मुकन्द प्रभात आदि प्रमुख हैं।

उनकी दूसरी कृति 'दूधगाछ', 'ब्रह्मपुत्र' की परम्परा का ही आंचलिक उपन्यास है जिसे लेखक ने महाकाव्य कहा है।[११८] इसके प्रमुख पात्र आदिवासी संथाल हैं। इसके प्रमुख पात्र गोविन्दम का चरित्र विकास सहज और स्वाभाविक है। स्थान-स्थान पर लोकगीतों के प्रयोग से भी चरित्र-विकास में सहायता मिली है।

---

११५. वही
११६. वही
११७. युग चेतना अगस्त '५८
११८. दूधगाछ पृ० १५

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

नवीन कृतियों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास 'बया का घोंसला और साँप' की काफी चर्चा हुई है। यह कृति प्रेमचन्द की स्वस्थ परम्परा में पड़ती है। इसकी नायिका सुमायी हर स्थिति में अपनी असहायावस्था के बावजूद अपने सतीत्व की रक्षा में सफल होती है। किन्तु, इस सबसे प्रेमचन्द की परम्परा आगे नहीं बढ़ती। उनका दूसरा उपन्यास 'धरती की आँखें' प्रेमचन्द जी के सामाजिक उपन्यासों की परम्परा में आता है। 'प्रेमाश्रम' के विद्रोही बलराज का विकसित रूप गोविन्द के चरित्र में मिलता है।[139]

इनके उपन्यासों में निश्चित रूप से एक ऐसा चरित्र होता है जिसके जीवन की मार्मिकता पाठकों को सदा छूती रहती है। 'बया का घोंसला और साँप' में वह सुमायी है 'काले फूल का पौधा' में सीता है और 'रूपाजीवा' में मधु बुआ है।[140] इस प्रकार उन्होंने तीन सशक्त नारी चरित्रों का निर्माण किया है जो आदर्श भारतीय नारियाँ हैं। इससे यह भी निष्कर्ष निकल सकता है कि उन्होंने नारी के एक विशेष 'टाइप' की प्रतिष्ठा की है और उससे भिन्न उन्हें नहीं देखना चाहते।[141] ऐसे आदर्श चरित्रों की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने गाँव कस्बा या आधुनिक नगर किसी एक कोने को पृष्ठभूमि के रूप में लिया है जहाँ के पात्र सत्य प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से उपन्यास सफल कहे जा सकते हैं।[142]

अमृतलाल नागर

नागर का प्रथम उपन्यास है 'महाकाल' जो बंगाल के भीषण अकाल की झाँकियों के चित्रण से प्रारम्भ होता है—जब सर्वग्रासी भूख ने सती गृहणियों को वेश्या बनाया और लाखों यमराज के कराल गाल में समा गये।[143] इसमें तीन पात्रों का अंकन मुख्य रूप से हुआ है—मास्टर पाँचू गोपाल, जमींदार दयाल और बनिया मोनाई।

'महाकाल'[144] के बाद नागर की दूसरी कृति 'सेठ बाँकेमल' है। इसमें सेठ बाँकेमल और चौबेजी दो अभिन्न मित्रों की अनुभूतियों को आगरा की आंचलिक भाषा में अभिव्यक्ति दी गई है।

उनकी तीसरी कृति 'बूँद और समुद्र' स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद उनकी एक असाधारण और शक्तिशाली रचना है। इसका घटनास्थल लखनऊ का चौक है और

१३९. आलोचना (८), पृ० १११
१४० माध्यम, (साहित्य विशेषांक), १९५५, पृ० १२
१४१ आलोचना (१७), पृ० १२१
१४२ ज्योत्सना माघ '५१, पृ० [illegible]
१४३ संस्कृति और साहित्य, पृ० ८०
१४४ वही

के आवेग चाहे 'हिरोइक' न भी हों पर तुच्छ भी नहीं।[११५] परिकथा एक मोपमा है कि प्रतिभावान कलाकार आज भी अग-जग के छोर नाप सकता है—बौनापन उसकी नियति नहीं है।[११६]

रेणु ने सशक्त कहानियाँ भी लिखी हैं। पर कहानियों के चरित्र भी औपन्यासिक चरित्रों से भिन्न नहीं। इनका कहानी-संग्रह 'ठुमरी' की कुछ कहानियाँ बहुत ही 'लिरिकल' हैं जैसे 'रसप्रिया' 'पंचलैट' 'तीसरी कसम या मारे गये गुलफाम' सफल कहानियाँ हैं। सभी चरित्र सशक्त अविस्मरणीय और प्रेमचन्द की परम्परा के हैं। 'तीसरी कसम' का हिरामन तो भुलाये नहीं भूलता। उसका भोलापन भारतीय जीवन और चरित्रों की सचाई और सद्गुणों का प्रतीक है।

हिमांशु श्रीवास्तव

लेखक ने अपने उपन्यास 'लोहे के पंख' में सन् १९२८ से '५२ तक का कथाकाल लिया है। इसके परिवर्तन की तुलना भी इलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंछी' से की जा सकती है। पर स्वाभाविकता के आधार पर यह 'जहाज का पंछी' को भी पीछे छोड़ जाता है। इस कृति का नायक मँगरू स्वयं अपनी आत्मकथा कहता है और एक मजदूर की तरह सीधे-सादे ढंग से उसे कहता है। उसकी विचार-शक्ति सीमित एवं जीवनदर्शन भी साधारण मजदूरों जैसा है।

मँगरू वर्ग का प्रतीक चरित्र है जो केवल वही काम करता है जो उसके जैसे लोग किया करते हैं।[११७]

देवेन्द्र सत्यार्थी

देवेन्द्र सत्यार्थी के 'ब्रह्मपुत्र' में इस नदी के किनारे बसने वाले नदी-पुत्रों के जीवन की कथा कही गई है। 'ब्रह्मपुत्र' से उनका जीवन उसी तरह जुड़ा है जैसे धरती से किसान का या माता पिता के साथ पुत्र का होता है।

इस उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य है जिसमें विभिन्न अवस्थाओं के एवं प्रकृति के लोग हैं। इनमें कल्याण भगत नीलमणि राजाराम काका मजबूल कादिर धर्मनंदी देवकांत अतुल नीरद, मुकुल, प्रभात आदि प्रमुख हैं।

उनकी दूसरी कृति 'दूधगाछ' 'ब्रह्मपुत्र' की परम्परा का ही आंचलिक उपन्यास है जिसे लेखक ने महाकाव्य कहा है।[११८] इसके प्रमुख पात्र आदिवासी संथाल हैं। इसके प्रमुख पात्र गोविन्दम का चरित्र विकास सहज और स्वाभाविक है। स्थान-स्थान पर लोकगीतों के प्रयोग से भी चरित्र-विकास में सहायता मिली है।

---

११५. वही

११६. वही

११७. युग चेतना अगस्त '५८

११८. दूधगाछ पृ० १५

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

नवीन कृतियों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल के उपन्यास 'बया का घोंसला और साँप' की काफी चर्चा हुई है। यह कृति प्रेमचन्द की स्वस्थ परम्परा में पड़ती है। इसकी नायिका सुनामी हर स्थिति में अपनी असहायावस्था के बावजूद अपने सतीत्व की रक्षा में सफल होती है। किन्तु, इन सबसे प्रेमचन्द की परम्परा आगे नहीं बढ़ती। उनका दूसरा उपन्यास 'धरती की आँखें' प्रेमचन्द जी के सामाजिक उपन्यासों की परम्परा में आता है। 'प्रेमाश्रम' के विद्रोही बलराज का विकसित रूप गोविन्द के चरित्र में मिलता है।[139]

इनके उपन्यासों में निश्चित रूप से एक ऐसा चरित्र होता है जिसके जीवन की मार्मिकता पाठकों को सदा छूती रहती है। 'बया का घोंसला और साँप' में वह सुनामी है, 'काले फूल का पौधा' में नीला है और 'रूपाजीवा' में मधु बुआ है।[140] इस प्रकार उन्होंने तीन सशक्त नारी-चरित्रों का निर्माण किया है जो आदर्श भारतीय नारियाँ हैं। इससे यह भी निष्कर्ष निकल सकता है कि उन्होंने नारी के एक विशेष 'टाइप' की प्रतिष्ठा की है और उससे भिन्न उन्हें नहीं देखना चाहते।[141] ऐसे आदर्श चरित्रों की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने गाँव कस्बा या आधुनिक नगर किसी एक कोने को पृष्ठभूमि के रूप में लिया है जहाँ वे पात्र सत्य प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से उपन्यास सफल कहे जा सकते हैं।[142]

अमृतलाल नागर

नागर का प्रथम उपन्यास है 'महाकाल' जो बंगाल के भीषण अकाल की झाँकियों के चित्रण से प्रारम्भ होता है—जब सर्वग्रासी भूख ने सती गृहणियों को वेश्या बनाया और लाखों यमराज के कराल गाल में समा गये।[143] इसमें तीन पात्रों का अंकन मुख्य रूप से हुआ है—मास्टर पाँचू गोपाल जमींदार दयाल और बनिया मोनाई।

'महाकाल'[144] के बाद नागर की दूसरी कृति 'सेठ बाँकेमल' है। इसमें सेठ बाँकेमल और चौबेजी दो अभिन्न मित्रों की अनुभूतियों को आगरा की आंचलिक भाषा में अभिव्यक्ति दी गई है।

इनकी तीसरी कृति 'बूँद और समुद्र' स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद उनकी एक असाधारण और शक्तिशाली रचना है। इसका घटनास्थल लखनऊ का चौक है और

---

१३९. आलोचना (८), पृ० १११
१४० आज, (साहित्य विशेषांक), १९५९, पृ० १२
१४१ आलोचना (१७), पृ० १२५
१४२ ज्योत्स्ना, मार्च ५९, पृ० ३५
१४३ संस्कृति और साहित्य, पृ० ८०
१४४ वही

के आवेग चाहे 'हिरोइक' न भी हों पर तुच्छ भी नहीं।[११५] परिकथा एक चोपना है कि प्रतिभावान कलाकार आज भी युग-बन्ध के छोर नाप सकता है—बौनापन उसकी नियति नहीं है।[११६]

रेणु ने सशक्त कहानियां भी लिखी हैं। पर कहानियों के चरित्र भी औपन्यासिक चरित्रों से भिन्न नहीं। इनका कहानी-संग्रह 'ठुमरी' की कुछ कहानियां बहुत ही 'क्लिरिकल' हैं जैसे 'रसप्रिया' 'पंचलैट' 'तीसरी कसम या मारे गये गुलफाम' सफल कहानियां हैं। सभी चरित्र सशक्त अविस्मरणीय और प्रेमचन्द की परम्परा के हैं। 'तीसरी कसम' का हिरामन तो भुलाये नहीं भूलता। उसका भोलापन भारतीय जीवन और चरित्रों की सचाई और सद्गुणों का प्रतीक है।

हिमांशु श्रीवास्तव

लेखक ने अपने उपन्यास 'लोहे के पंख' में सन् १६२८ से ४२ तक का कथाकाल लिया है। इसके परिवर्तन की तुलना भी इलाचन्द्र जोशी के 'जहाज का पंछी' से की जा सकती है। पर स्वाभाविकता के आधार पर यह 'जहाज का पंछी' को भी पीछे छोड़ जाता है। इस कृति का नायक भैंवरू स्वयं अपनी आत्मकथा कहता है और एक मजदूर की तरह सीधे-सादे ढंग से उसे कहता है। उसकी विचार-शक्ति सीमित एवं जीवनदर्शन भी साधारण मजदूरों जैसा है।

भैंवरू वर्ग का प्रतीक चरित्र है जो केवल वही काम करता है जो उसके जैसे लोग किया करते हैं।[११७]

देवेन्द्र सत्यार्थी

देवेन्द्र सत्यार्थी के 'ब्रह्मपुत्र' में इस नदी के किनारे बसने वाले नदी-पुत्रों के जीवन की कथा कही गई है। 'ब्रह्मपुत्र' से उनका जीवन उसी तरह जुड़ा है जैसे धरती से किसान का या माता-पिता के साथ पुत्र का होता है।

इस उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य है जिसमें विभिन्न अवस्थाओं के एवं प्रकृति के लोग हैं। इनमें कल्याण भगत भीमभणि राजाल काका, मजबुल कादिर, धर्मनंदी देवकांत, मधुल मीरव, मुकुन, प्रभात आदि प्रमुख हैं।

उनकी दूसरी कृति 'दूधगाछ' 'ब्रह्मपुत्र' की परम्परा का ही आंचलिक उपन्यास है जिसे लेखक ने महाकाव्य कहा है।[११८] इसके प्रमुख पात्र आदिवासी संथाल हैं। इसके प्रमुख पात्र मोचिग्मम का चरित्र विकास सहज और स्वाभाविक है। स्थान-स्थान पर लोकगीतों के प्रयोग से भी चरित्र-विकास में सहायता मिली है।

---

११५. वही
११६. वही
११७. युग चेतना, अगस्त '२८
११८. दूधगाछ, पृ० १२

सिर्फ गँवार रस को छोड़कर।[123] डॉ० रामविलास शर्मा का मत है कि यदि यह पुस्तक 'सूसू की माँ' और 'बड़े मुनीर' के स्तर पर लिखी जाती तो वह हिन्दी-उपन्यास ही क्यों विश्वसाहित्य में अद्वितीय रचना होती। 'बड़े मुनीर' की वासना के भाव कान्ते का नरक कल्पनामात्र है।[124]

हजारीप्रसाद द्विवेदी

आत्मकथात्मक उपन्यासों में द्विवेदीजी की कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' सर्वश्रेष्ठ है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है 'हर्षचरित' के रचयिता बाणभट्ट के युग के अनुकूल वातावरण की सृष्टि और सौन्दर्यपूर्ण भाषा। द्विवेदीजी की भाषा इतिहास के पृष्ठों को सजीवता प्रदान करती है जिसे 'प्रसाद' जी के समकक्ष कहा जा सकता है।[125]

उपन्यास में बाणभट्ट, भट्टिनी और निपुणिका के चरित्र बड़े ही सजीव और मांसल हैं जिनमें प्रेम का त्रिकोण भी है।[126] तीनों पात्रों के आपसी प्रेम में पूजा की पवित्रता है—वासना का लेश भी नहीं।[127] यह द्विवेदीजी की मौलिकता है कि उन्होंने इस आत्मकथात्मक प्रवृत्ति को एक ऐतिहासिक पात्र से सम्बद्ध कर उसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' कहा है।[128] चरित्र-विकास में तत्कालीन राष्ट्रीय एवं युग चेतना का स्वर भी योग देता है।

शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

'रुद्र' जी की कृति 'बहती गंगा' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें काशी नगरी के चरित्र को भावात्मक प्रभाव की दृष्टि से चित्रित किया गया है।[129] इस कारण विभिन्न पात्रों के माध्यम से काशी के जीवन की अद्भुत मस्ती, साहसिकता और स्वतंत्रताप्रियता को अभिव्यक्ति मिली है। सभी चरित्रों में काशी के अनुरूप मस्ती, वीरता तथा प्रेम है।[130] स्थानीय वातावरण के साथ पाठक की गहरी संवेदना उत्पन्न करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है।[131]

इस उपन्यास में एक लम्बे काल को लिया गया है। इसीलिए पात्रों की संख्या भी काफी है। किन्तु, प्रधानता काशी नगरी को ही प्राप्त है और वही जैसे प्रधान

---

१२३. वही
१२४ वही
१२५. हिन्दी उपन्यास (बबन), पृ० ३१
१२६ संस्कृति और साहित्य, पृ० १०४
१२७ उपन्यास के मूल तत्त्व, पृ० २६
१२८. कथा के तत्त्व, पृ० १०६
१२९ आज, (साहित्य विशेषांक), १९५८ पृ० ११
१३० बहती गंगा, पृ० ११
१३१ आज, (साहित्य विशेषांक) १९५८, पृ० ११

काल है २८ दिसम्बर, १९५१ से लेकर जून १९५२ तक यानी प्रथम आम चुनाव का युग[145]। इसमें मध्यवर्गीय चरित्रों के एक पक्ष का चित्रण है जिनके प्रमुख पात्रों में सज्जन, महीपाल कन्या ताई आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा भी सभी पात्र सजीव और स्वाभाविक हैं।

'बूंद और समुद्र' में इस पुरानी समाज-व्यवस्था के भीतर बनते-बिगड़ते बदलते भारतीय परिवारों का अच्छा और अत्यधिक स्वाभाविक चित्रण है। इसलिए इसे 'महाकाव्य' भी कहा गया है।[146] तो, इस परिवार की धुरी है ताई और कितनी ही तरह की नारियों के चित्र उपस्थित हैं। इस कृति में—ताई, नन्दो अतृप्त प्रेम से पीड़ित युवतियां रूढ़िवादी कल्याणी संघर्षशील वनकन्या एवं कितनी ही अन्य गृहिणियां हैं। इनके अलावा पंडित राजा डाक्टर सेवक चित्रकार, साधु गुण्डे और अन्य अनेकानेक चरित्र—जैसा प्रेमचन्द के बाद हिन्दी के उपन्यासों में दुर्लभ है।[147]

उपन्यास की धुरी है ताई[148]—लखनऊ के एक बड़े रईस की परित्यक्ता प्रथम पत्नी। उनकी हिंसा इतनी तीव्र है कि पति के अपराध के लिए वह जादू द्वारा उसके नाती की जान लेने पर उतारू है। पुरुष पात्रों में सज्जन और महीपाल चित्रकार एवं उपन्यासकार हैं। दोनों रईस घराने के हैं। पर अपनी सम्पत्ति खोकर महिपाल अब मध्यवर्ग का सदस्य बन चुका है।[149] इनके अलावा कर्नल और रामजी साधु हैं। पात्रों की बड़ी संख्या उनकी विविधता आदि से ऐसे समृद्ध चित्र लेखक ने अपनी कृति में उपस्थित किए हैं जिनकी तुलना बाल्ज़ाक की रचनाओं से ही हो सकती है।[150]

उनके उपन्यास 'शतरंज के मोहरे' का विस्तार छोटा है किन्तु पात्रों की संख्या की दृष्टि से व्यक्ति-बहुल चरित्र-बहुल। किन्तु इस उपन्यास में कोई महान पात्र नहीं है। महनीयता की एक झलक दिग्विजय सिंह में मिली भी तो वह भी बादशाहत हरम की जिन्दगी में लुप्त हो गई,[151] जिसमें इन्सान जितना भी उठा वही बहुत।

'ये कोठेवालियां' वेश्या जीवन पर लिखा गया उनका उपन्यासनुमा संस्मरण है। इसके अलावा उन्होंने कई कहानियां लिखी हैं जो बहुत-सी पत्रिकाओं में छप चुकी थीं। उन्हें प्रसाद निराला और शरत जैसे साहित्यकारों का सम्पर्क और प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ था।[152] किन्तु 'कोठेवालियां' पढ़कर जो इस रस का आनन्द लेना चाहेंगे उन्हें निराश ही होना पड़ेगा क्योंकि इस कृति में सभी रसों का अद्भुत परिपाक है

---

१४५. आजकल, अक्तूबर, १९५७
१४६ समालोचक सितम्बर, '५६, पृ० १६
१४७ आलोचना (२०), पृ० ८१
१४८. वही पृ० ८३
१४९. प्रसारिका सितम्बर '५७, पृ० ८६
१५० आलोचना (२०), पृ० ८३ (शर्मा)
१५१ आज (साहित्य विशेषांक), १९६०, पृ० ११
१५२ हिन्दी टाइम्स ११ मार्च '६२ (शर्मा), पृ० २

सिर्फ शृंगार रस को छोड़कर।[153] डॉ० रामविलास शर्मा का मत है कि यदि यह पुस्तक 'मुन्नू की माँ' और 'बड़े मुंशीजी' के स्तर पर लिखी जाती तो वह हिन्दी-उपन्यास ही क्यों विश्वसाहित्य में अद्वितीय रचना होती। 'बड़े मुंशीजी' को यातना के साथ दान्त का नरक कल्पनामात्र है।[154]

हजारीप्रसाद द्विवेदी

आत्मकथात्मक उपन्यासों में द्विवेदीजी की कृति 'बाणभट्ट की आत्मकथा' सर्वश्रेष्ठ है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है 'हर्षचरित' के रचयिता बाणभट्ट के युग के अनुकूल वातावरण की सृष्टि और सौन्दर्यपूर्ण भाषा। द्विवेदीजी की शैली इतिहास के पृष्ठों को सजीवता प्रदान करती है जिसे 'प्रसाद' जी के समकक्ष कहा जा सकता है।[155]

उपन्यास में बाणभट्ट भट्टिनी और निपुणिका के चरित्र बड़े ही सजीव और मांसल हैं जिनमें प्रेम का त्रिकोण भी है।[156] तीनों पात्रों के आपसी प्रेम में पूजा की पवित्रता है—वासना का लेश भी नहीं।[157] यह द्विवेदीजी की मौलिकता है कि उन्होंने इस आत्मकथात्मक प्रवृत्ति को एक ऐतिहासिक पात्र से सम्बद्ध कर उसे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' कहा है।[158] चरित्र-विकास में तत्कालीन राष्ट्रीय एवं युग चेतना का स्वर भी योग देता है।

शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

'रुद्र' जी की कृति बहती गंगा एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें काशी नगरी के चरित्र को भावात्मक प्रभाव की दृष्टि से चित्रित किया गया है।[159] इस कारण विभिन्न पात्रों के माध्यम से काशी के जीवन की अद्भुत मस्ती साहसिकता और स्वर्तत्रताप्रियता को अभिव्यक्ति मिली है। सभी चरित्रों में काशी के अनुरूप मस्ती, शौर्य तथा प्रेम है।[160] स्थानीय वातावरण के साथ पाठक की गहरी संवेदना उत्पन्न करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है।[161]

इस उपन्यास में एक लम्बे काल को लिया गया है। इसीलिए पात्रों की संख्या भी काफी है। किन्तु, प्रधानता काशी नगरी को ही प्राप्त है और वही वैसे प्रधान

---

१५३ वही
१५४ वही
१५५ हिन्दी उपन्यास (भवन), पृ० ३६
१५६ संस्कृति और साहित्य पृ० १०४
१५७ उपन्यास के मूल तत्त्व, पृ० २९
१५८ कथा के तत्त्व, पृ० १०६
१५९ आज, (साहित्य विशेषांक), १९५८, पृ० ११
१६० बहती गंगा, पृ० ११
१६१ आज, (साहित्य विशेषांक), १९५८, पृ० ११

नायिका है और सभी पात्र या घटनाएँ उसके जीवन की अभिव्यक्तियाँ हैं। पात्रों की परिस्थिति प्रवृत्ति एवं प्रकृति भिन्न होते हुए भी सबों में कुछ समान गुण हैं। उनके जीवन की अधिकांश घटनाएँ इतिहासानुमोदित होते हुए भी अलौकिक होने के कारण काल्पनिक-सी लगती है।[१९२]

अमरकान्त

लेखक के कहानी-संग्रह 'जिन्दगी और जोंक' से पता चलता है कि लेखक युग चेतना का पूजक नहीं। वे मध्यवर्ग के पारखी हैं जो आज न घर का है, न घाट का। उसकी औकात तो औसत है, लेकिन हौसले असीम हैं।[१९३] फिर भी बस में बड़े मोत की तरह जिसमें असम्य लेप है। यह मध्यवर्ग उन्हें डूबता हुआ नजर आता है हालांकि सारी बातें भी कहानियों में नहीं उतारी जा सकतीं।[१९४] रघुवा का चरित्र बहुत अच्छा बन पड़ा है जो हर हालत में प्रसन्न रहना जानता है। लगता है जैसे जीवन की उपयोगिता समझने की उसमें अद्भुत शक्ति है।[१९५]

अमरकान्त के उपन्यास 'सूखा पत्ता' में कुछ नये किस्म के पात्र आये हैं। इसके नायक का चरित्र-विकास बहुत ही स्वस्थ और सबल ढंग से चित्रित हो सका है यद्यपि आज के समाज में तो ऐसे नवयुवकों को 'फ्रस्ट्रेशन' का ही शिकार होना पड़ता है।[१९६]

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव एक शक्तिशाली लेखक हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यासों 'प्रेत बोलते हैं' और 'उखड़े हुए लोग' का स्थान उल्लेख्य है। उनकी 'कुलटा' आधुनिक नारी का प्रतीक है। इनके चरित्र विकास का उद्देश्य मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन का विश्लेषण एवं चित्रण है।

उनकी प्रथम कृति 'प्रेत बोलते हैं' एक विचार-प्रधान उपन्यास है। किन्तु, इसके पात्र सजीव न होकर प्रतीकात्मक हैं। उपन्यास के अन्त में प्रेतलोक से मध्यवर्गीय समाज के प्रेत बोलते हैं और 'नये जीवन'[१९७] की मांग करते हैं क्योंकि 'सृजन' शिव है और मध्यवर्ग शिव का साथी 'प्रेत' है। इसीलिए इसमें चारित्रिक स्पष्टता नहीं है। इसके पात्र व्यक्ति न होकर प्रतिनिधि प्रतीक और टाइप हैं।[१९८]

उनकी दूसरी कृति 'उखड़े हुए लोग' में युद्धोत्तरकालीन स्त्री-पुरुषों के बनते

---

१९२ आलोचना (८), पृ० ११०
१९३ आलोचना (११), पृ० ११३
१९४ युग चेतना, अप्रैल ५८, पृ० ९७
१९५ वही
१९६ आज (साहित्य विशेषांक), १९६० पृ० १२
१९७ आलोचना (१२), पृ० १००
१९८ वही

बदलते बिगड़ते सम्बन्धों का चित्रण है। उपन्यास के नायक-नायिका का चरित्र एवं दृष्टिकोण प्रगतिशील है।[169] इसमें सूरज देवबंधु तथा शरद प्रमुख पुरुष पात्र तथा कथा मायादेवी और पद्मा नारी-पात्राएं हैं। इसमें भी देवबंधु तथा सूरज का व्यक्तित्व सबसे प्रबल है। देवबंधु जीवन में एक सफल व्यक्ति है और सूरज उतना ही असफल। पर जब गोलीकांड के बाद सूरज का अपराजित व्यक्तित्व उभरता है तो उपन्यास ही समाप्त हो जाता है और पाठक को भविष्य का सिर्फ एक संकेत भर पाकर संतोष करना पड़ता है।[170] इस कृति को चरित्र प्रधान ही कहना चाहिए क्योंकि इसमें कथा तत्व का प्रयोग सिर्फ चरित्र-विकास के लिए किया गया है।[171]

यादव को डा० रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द नागर और नागार्जुन की परंपरा का कथाकार माना है।[172] उन्होंने अपनी रचनाओं में आधुनिक बुद्धिजीवियों के सबसे अलग एवं स्वतंत्र रास्ता अपनाने की वितंडु-वृत्ति पर गहरा प्रहार किया है।[173]

उनकी कथाकृतियों में मार्क्सवादी चिंतन के आधार पर सामाजिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया गया है। टाइप होते हुए भी इनके अधिकांश पात्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताएं भी रखते हैं। लेखक ने हीन से हीन चरित्रों को भी अपनी सहानुभूति दी है। उनकी परिस्थितियों और चरित्र-विकास की प्रक्रिया को जान लेने के बाद हमें उनके प्रति भी सहानुभूति हो जाती है।[174]

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र निर्गुण, हंसराज रहबर, भीष्म साहनी, चन्द्रकिरण सौन रेक्सा आदि पुरानी परिपाटी के कलाकार हैं। भीष्म साहनी यथार्थ अनुभव के आधार पर[175] अपने पात्रों को गढ़ते हैं। सोनरेक्सा कृष्णा सोबती[176] और रजनी पनिकर आदि नारी-स्वभाव की सफल कलाकार हैं।

निर्मल वर्मा

निर्मल वर्मा के चरित्र अधिकांशतः उदास, निराश, मायूस और बारों तथा रेस्तरां में भटकनेवाले हैं। उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय युवक का अकेलापन बेकारी और अपने आपसे संघर्ष करने के चित्र मिलते हैं। स्वयं अपने जीवन में भटकने वाले चरित्रों का जीवन-रहस्य ही उनके पात्रों को एक विशिष्टता प्रदान करता है।

---

१६९. हिन्दी उपन्यास (मदान), पृ० ३२१
१७० आलोचना (२१), पृ० ६४
१७१ वही
१७२ उपन्यास और लोक जीवन, भूमिका
१७३ उखड़े हुए लोग, पृ० २११
१७४ हिन्दी उपन्यास (श्रीवास्तव), पृ० ४७१
१७५. भीड़ की बाबत
१७६ कहानी (विशेषांक), १९५६, पृ० ५

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रशंसनीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र अंकित करने में सफल हैं। उनकी कहानी उस्ताद, दाज्यू कोसी का घटवार आदि में मानव-स्वभाव की निर्मल झाँकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का अच्छा अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं अंधेरे बन्द कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएँ हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र नीलिमा शुक्ला हरबंस सुरजीत सुषमा ठकुराइन तथा लेखक मधुसूदन आदि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाल ही में प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक और जिन्दगी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति मिली है।[१७७]

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके नष्ट होते आदर्शों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक नवीन जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ नया दृष्टिकोण अपनाने की ओर बढ़ता है।[१७८] इस नायक के चरित्र का विकास साधना, सुशीला और मायावती के संसर्ग में होता है। ये तीनों नारियाँ उसके मन की तीन प्रवृत्तियों से मेल खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।[१७९]

इस उपन्यास के पात्रों में अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र के चरित्रों से भिन्न कोई विकास नहीं दीखता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए, कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यक्तित्वहीन दीखते हैं। इसी कारण प्रो० नलिन विलोचन शर्मा[१८०] एवं शिवदानसिंह चौहान[१८१] की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अपव्यय प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'अजय की डायरी' में चरित्र-विकास की दिशा में एक नया

---

१७७ नवनीत मई ६२, पृ० १२८
१७८ साहित्यानुशीलन, पृ० २५२
१७९. हिन्दी उपन्यास (पचन), पृ० २२६
१८० दृष्टिकोण
१८१ आलोचना के मान पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के अचेतन पक्ष को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकी है।[182]

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहर भीतर' पर जेम्स ज्वायस के यूलिसिस का प्रभाव है। उसका बच्चा नायक भी यूलिसिस के सम्बन्ध में वाल्टर एलन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।[183]

उनके एक और उपन्यास 'रोड़ और पत्थर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की असंगतियों और श्रमिकों के चरित्र पर करारा व्यंग हुआ है।

डा० धर्मवीर भारती

लेखक के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा' में अन्तर्मुख मध्यवर्गीय चरित्रों का चित्रण है। इसके नायक चंदर का अहं और व्यक्तिवाद स्वयं उसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका सारा प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुधा भी अव्यावहारिक भावसंसार में विचरण करती हुई अशोक की पत्ति की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।[184] लेखक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति कितनी विषम, रूढ़िग्रस्त एवं विकृत है।[185]

'सूरज का सातवां घोड़ा' टेक्नीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों को अनेक कोणों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुल की बन्नो' एक मार्मिक कहानी है। चरित्र-विकास ही इस कहानी की विशेषता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनके चरित्र निराशावादी एवं उदास प्रतीत होते हैं[186] जिन्हें शेखरवादी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' १९५४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—'नारी और उसका सुंदर शरीर'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है, नारी रिक्ता है जब हम स्वयं को नहीं समझ पातीं तब तुम उस रिक्ता को क्या समझ सकोगे'[187] वह फिर कहती है—'मेरे पास केवल एक प्रश्न है मेरा शरीर। सबने इस प्रश्न के उत्तर दिये, अपने-अपने ढंग पर, पर कोई भी मुझे क्या

---

१८२ दी टाइम्स आफ इण्डिया, फरवरी, १९, १९६१, पृ० ४
१८३ दी इंगलिश नावेल पृ० ४११
१८४ आलोचना (११), पृ० ११८
१८५. हिन्दी उपन्यास (धवन), पृ० २५८
१८६ कहानी (विशेषांक), १९५६
१८७ डूबते मस्तूल पृ० २१०

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रशंसनीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र अंकित करने में सफल हैं। उनकी कहानी उस्ताद, दाज्यू, कोसी का घटवार आदि में मानव-स्वभाव की निर्मल झाँकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का अच्छा अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'अंधेरे बन्द कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएँ हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र नीलिमा शुक्ला हरबंस सुरजीत सुषमा ठकुराइन तथा लेखक मधुसूदन आदि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाल ही में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'एक और जिन्दगी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति मिली है।[177]

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके नष्ट होते आदर्शों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक नवीन जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ नया दृष्टिकोण अपनाने की ओर बढ़ता है।[178] इस नायक के चरित्र का विकास साधना सुशीला और माधवलता के संसर्ग में होता है। ये तीनों नारियां उसके मन की तीन प्रवृत्तियों से मेल खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।[179]

इस उपन्यास के पात्रों में प्रायः इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र के चरित्रों से भिन्न कोई विकास नहीं दीखता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यक्तित्वहीन दीखते हैं। इसी कारण प्रो० नलिन विलोचन शर्मा[180] एवं शिवदानसिंह चौहान[181] की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अपव्यय प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'अजय की डायरी' में चरित्र-विकास की दिशा में एक नया

---

१७७ नवनीत मई ६२, पृ० १२८
१७८. साहित्यानुशीलन, पृ २५२
१७९. हिन्दी उपन्यास (बचन), पृ० २५६
१८० दृष्टिकोण
१८१ आलोचना के मान पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के अचेतन पक्ष को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकी है।[182]

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहर भीतर' पर जेम्स ज्वायस के यूलिसिस का प्रभाव है। उसका वक्ता नायक भी यूलिसिस के सम्बन्ध में बास्टर एमन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।[183]

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े और पत्थर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की असंगतियों और श्रमिकों के चरित्र पर करारा व्यंग हुआ है।

डा० धर्मवीर भारती

लेखक के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय चरित्रों का चित्रण है। इसके नायक चंदर का अहं और व्यक्तिवाद स्वयं उसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका सारा प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुधा भी अव्यावहारिक आदर्शवाद में विश्वास करती हुई अज्ञेय की शशि की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।[184] लेखक ने अपनी कथा द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति कितनी विषम कष्टग्रस्त एवं विकृत है।[185]

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' टेकनीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों को अनेक कोणों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुल की बन्नो' एक मार्मिक कहानी है। चरित्र-विकास ही इस कहानी की विशेषता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनके चरित्र निराशावादी एवं उदास प्रतीत होते हैं[186] जिन्हें शेखरवादी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' १९५४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—'नारी और उसका सुंदर शरीर'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है "   नारी शिखा है   जब तुम स्वयं को नहीं समझ पातीं तब तुम उस शिखा को क्या समझ सकोगे"[187] वह फिर कहती है—"मेरे पास केवल एक प्रश्न है मेरा शरीर। सबने इस प्रश्न के उत्तर दिये अपने-अपने ढंग पर, पर कोई भी मुझे क्या

१८२ दी टाइम्स आफ इण्डिया, फरवरी, १६, १९६१, पृ० ४
१८३ दी इंग्लिश नावेल, पृ० ४११
१८४ आलोचना (११), पृ० ११८
१८५. हिन्दी उपन्यास (भवन), पृ० २२८
१८६ कहानी (विशेषांक), १९५६
१८७ डूबते मस्तूल, पृ० ५१०

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रशंसनीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र अंकित करने में सफल हैं। उनकी कहानी उस्ताद दाज्यू कोसी का घटवार आदि में मानव-स्वभाव की निर्मल झांकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का अच्छा अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'अंधेरे बन्द कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएँ हैं।

अंधेरे बंद कमरे' के पात्र नीलिमा शुक्ला हरबंस सुरजीत सुषमा ठकुराइन तथा लेखक मधुसूदन आदि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाल ही में प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक और जिन्दगी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति मिली है।[180]

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके नष्ट होते आदर्शों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक नवीन जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ नया दृष्टिकोण अपनाने की ओर बढ़ता है।[180] इस नायक के चरित्र का विकास साधना सुशीला और मायावती के संसर्ग में होता है। ये तीनों नारियां उसके मत की तीन प्रवृत्तियों से भेद खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।[180]

इस उपन्यास के पात्रों में अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र के चरित्रों से भिन्न कोई विकास नहीं दीखता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यक्तित्वहीन दीखते हैं। इसी कारण प्रो० नलिन विलोचन शर्मा[180] एवं शिवदानसिंह चौहान[181] की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अपव्यय प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'अजय की डायरी' में चरित्र-विकास की दिशा में एक नया

---

१७७ नवनीत मई '६२ पृ० १२८
१७८. साहित्यानुशीलन, पृ० २५२
१७९. हिन्दी उपन्यास (चमन), पृ० २६६
१८० दृष्टिकोण
१८१ आलोचना के मान पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के अचेतन पक्ष को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकी है।[१८२]

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहर भीतर' पर जेम्स ज्वायस के यूलिसिस का प्रभाव है। उसका वक्ता नायक भी यूलिसिस के सम्बन्ध में मास्टर एमन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।[१८३]

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े और पत्थर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की असंगतियों और व्यक्तियों के चरित्र पर करारा व्यंग हुआ है।

डा० धर्मवीर भारती

लेखक के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा' में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय चरित्रों का चित्रण है। इसके नायक चंदर का अहं और व्यभिचार स्वयं उसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका सारा प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुधा भी अव्यावहारिक आदर्शवाद में विश्वास करती हुई अज्ञेय की शशि की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।[१८४] लेखक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति कितनी विषम, कलियस्त एवं विकृत है।[१८५]

'सूरज का सातवां घोड़ा' टेकनीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों को अनेक कोणों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुल की बन्नो' एक मार्मिक कहानी है। चरित्र-विकास ही इस कहानी की विशेषता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनके चरित्र निराशावादी एवं उदास प्रतीत होते हैं[१८६] जिन्हें रोमांसवादी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' १९५४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—'नारी और उसका सुंदर शरीर'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है, " नारी शिखा है जब हम स्वयं को नहीं समझ पातीं तब तुम उस शिखा को क्या समझ सकोगे' " वह फिर कहती है—' मेरे पास केवल एक प्रश्न है मेरा शरीर। सबने इस प्रश्न के उत्तर दिये अपने-अपने ढंग पर, पर कोई भी मुझे क्या

१८२ दी टाइम्स आफ इण्डिया, फरवरी, १६, १९६१, पृ० ४
१८३ दी इंगलिश नावेल पृ० ४३१
१८४ आलोचना (१३), पृ० १४७
१८५. हिन्दी उपन्यास (पदम) पृ० २५८
१८६ कहानी (विशेषांक) १९५६
१८७ डूबते मस्तूल पृ० २१०

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रशंसनीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र अंकित करने में सफल हैं। उनकी कहानी दाज्यू कोसी का घटवार आदि में मानव-स्वभाव की निश्छल झांकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का सफल अंकन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'अंधेरे बंद कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएं हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र नीलिमा शुक्ला हरबंस सुरजीत सुषमा ठकुराइन तथा लेखक मधुसूदन आदि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाल ही में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'एक और जिन्दगी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति मिली है।[187]

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की ओर उनके नष्ट होते आदर्शों का संकेत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक नवीन जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ नया दृष्टिकोण अपनाने की ओर बढ़ता है।[188] इस नायक के चरित्र का विकास साधना सुशीला और मायावती के संपर्क में होता है। ये तीनों नारियां उसके मन की तीन प्रवृत्तियों से मेल खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।[189]

इस उपन्यास के पात्रों में प्रदीप, प्रभाकर जोशी और वीरेन्द्र के चरित्रों से भिन्न कोई विकास नहीं दीखता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यक्तित्वहीन दीखते हैं। इसी कारण प्रो० नलिन विलोचन शर्मा[190] एवं शिवदानसिंह चौहान[191] की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अपव्यय प्रतीत हुआ।

इनकी दूसरी कृति 'अजय की डायरी' में चरित्र-विकास की दिशा में एक नया

---

१८७ नवनीत मई ६२, पृ० १२८

१८८ साहित्यानुशीलन, पृ० २२२

१८९ हिन्दी उपन्यास ([illegible]), पृ० २६६

१९० दृष्टिकोण

१९१ आलोचना के मान पृ० ११

रचनाएं करनेवाला सबसे अधिक 'एकाग्र' साहित्यकार माना है।[illegible] प्रेमचन्द के ऐसे ही पात्रों से उनकी तुलना करते हुए उन्होंने अश्क के चरित्रों की यथार्थता की प्रशंसा की है।[illegible] एवं उन्हें प्रेमचन्द के चरित्रों से अधिक विकसित माना है। किन्तु मध्यवर्ग की ऐतिहासिक घुलघुल बकीली के कारण, यह भी एक सत्य है कि अश्क के पात्र कोई निर्णय नहीं कर पाते। बल्कि कहना तो यही चाहिए कि उनमें स्वतन्त्र निर्णय की शक्ति का पूर्ण अभाव है।[illegible]

अश्क की कहानियों में चरित्र-विकास

अश्क के कथा चरित्र अवश्य सीमित हैं, परन्तु उनमें विविधता है। वे हमारे जीवन के सच्चे प्रतिनिधि हैं। उनके चरित्र साधारण और प्रतिनिधि—दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं। साधारण, सर्वसुलभ परिचित और व्यापक चरित्रों का रहस्योद्घाटनकर अश्क पाठकों को आश्चर्यचकित कर देते हैं।[illegible] 'काले साहब' का रिक्शा वाला, 'बबूले' का कुम्मे 'डाची' का बाकर 'तीन सौ चौबीस' का हैदर और 'उबाल' का चंदन इसके अमर उदाहरण हैं। इनका चरित्र-चित्रणकर अश्क ने हमारा चरित्र चित्रण किया है।

उनके प्रतिनिधि चरित्र विशुद्ध यथार्थवादी परम्परा में ढले हैं। कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थितियों और भावों के आधार पर इनकी सृष्टि होने के कारण उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र न होकर प्रतिनिधि या टाइप हो गया है।[illegible] इन चरित्रों में मनःस्थितिगत विशेषता की मुख्यता है और वे निरपेक्ष से अधिक सापेक्षिक हैं।[illegible] 'पिंजरा' की शान्ति 'पलीथन' के सन्ना साहब, 'मकुर' की सेंकरी, 'उबाल' का चंदन 'मास्टर' का पुरषोत्त और ईश्वर, 'बैंगन का पौधा' का मुख्य आदि हमारे जीवन दर्शन के प्रतिनिधि अधिक और चरित्र कम हैं। इनके चरित्र विधान का सबसे बड़ा कौशल चरित्रों का रहस्योद्घाटन एवं उनकी सीमाओं—कुंठाओं पर कटु व्यंग्य करना ही है।[illegible] इनकी कहानियों में चरित्र-विकास काफी स्वस्थ और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। अश्क की एक कहानी 'पलीथन' इसका एक उदाहरण है।[illegible] अश्क ने अपने पाठकों एवं [illegible] की इस बात के लिए शिकायत की है कि वे उनकी कहानियों को समझ

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रशंसनीय एवं सफल होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र अंकित करने में सफल हैं। उनकी कहानी उस्ताद, दाज्यू, कोसी का घटवार आदि में मानव-स्वभाव की निर्मल झांकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का अच्छा अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'अंधेरे बन्द कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएं हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र नीलिमा शुक्ला हरबंस सुरजीत सुषमा ठकुराइन तथा लेखक मधुसूदन आदि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाल ही में प्रकाशित कहानी संग्रह 'एक और जिन्दगी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति मिली है।[१७७]

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके नष्ट होते आदर्शों का सफल मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक नवीन जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ नया दृष्टिकोण अपनाने की ओर बढ़ता है।[१७८] इस नायक के चरित्र का विकास साधना सुशीला और चाचावता के संसर्ग में होता है। ये तीनों नारियां उसके मन की तीन प्रवृत्तियों से मेल खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।[१७९]

इस उपन्यास के पात्रों में अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र के चरित्रों से भिन्न कोई विकास नहीं दीखता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यक्तित्वहीन दीखते हैं। इसी कारण प्रो० नलिन विलोचन शर्मा[१८०] एवं शिवदानसिंह चौहान[१८१] की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अपव्यय प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'अजय की डायरी' में चरित्र-विकास की दिशा में एक नया

---

१७७ नवनीत मई ६२, पृ० १२८

१७८. साहित्यानुशीलन, पृ० २२२

१७९. हिन्दी उपन्यास (बच्चन), पृ० २२६

१८० दृष्टिकोण

१८१ आलोचना के मान पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के अचेतन तत्व को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकी है।[१८२]

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहर भीतर' पर जेम्स ज्वायस के यूलिसिस का प्रभाव है। उसका कथा नायक भी यूलिसिस के सम्बन्ध में वाल्टर एलन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।[१८३]

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े और पत्थर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की असंगतियों और अमीरों के चरित्र पर करारा व्यंग्य हुआ है।

डा० धर्मवीर भारती

लेखक के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में अन्तर्मुख मध्यवर्गीय चरित्रों का चित्रण है। इसके नायक चंदर का अहं और व्यक्तिवाद स्वयं उसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका सारा प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुधा भी अव्यावहारिक आदर्शवाद में विश्वास करती हुई अज्ञेय की शशि की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।[१८४] लेखक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति कितनी विषम, रूढ़िग्रस्त एवं विकृत है।[१८५]

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' टेक्नीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों को अनेक कोणों से देखने के कारण महत्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुल की बन्नो' एक मार्मिक कहानी है। चरित्र-विकास ही इस कहानी की विशेषता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनके चरित्र निराशावादी एवं उदास प्रतीत होते हैं[१८६] जिन्हें शेखरवादी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' १९५४ की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—'नारी और उसका सुंदर शरीर'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है, "नारी क्रिया है   जब तुम स्वयं को नहीं समझ पातीं तब तुम उस क्रिया को क्या समझ सकोगे"[१८७] वह फिर कहती है—"मेरे पास केवल एक प्रश्न है मेरा शरीर। सबने इस प्रश्न के उत्तर दिये अपने-अपने ढंग पर पर कोई भी मुझे क्या

---

१८२ दी टाइम्स आफ इण्डिया, फरवरी, १९, १९६१, पृ० ४
१८३ दी इंगलिश नावेल पृ० ४११
१८४ आलोचना (११) पृ० १३८
१८५. हिन्दी उपन्यास (चयन), पृ० २२८
१८६ कहानी (विशेषांक), १९५६
१८७. डूबते मस्तूल, पृ० २१०

शेखर जोशी

नये कथाकारों में शेखर जोशी के चरित्र भी प्रशंसनीय एवं सक्षम होते हैं। वे पहाड़ी तथा मजदूर जीवन के चित्र अंकित करने में सफल हैं। उनकी कहानी उस्ताद दाज्यू, कोसी का घटवार आदि में मानव-स्वभाव की निर्मल झांकी मिलती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश ने पात्रों का अच्छा अध्ययन किया है जो मुख्यतया मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं। उनका कहानी संग्रह 'जानवर और जानवर' एवं 'अंधेरे बन्द कमरे' (उपन्यास) हिन्दी कथा साहित्य में उल्लेख्य रचनाएं हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' के पात्र नीलिमा शुक्ला हरबंस सुरजीत सुषमा ठकुराइन तथा लेखक मधुसूदन आदि सभी विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं।

इनके हाल ही में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'एक और जिन्दगी' के पात्रों के माध्यम से वर्तमान जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती हुई विभिन्न शक्तियों का चित्रण एवं उनके मानसिक द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति मिली है।[१७७]

डा० देवराज

डा० देवराज के उपन्यास 'पथ की खोज' में मध्यवर्गीय चरित्रों की और उनके नष्ट होते आदर्शों का संयत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। मध्यवर्गीय उपन्यासों के नायक नवीन जीवन-दृष्टियों से सामंजस्य स्थापित न कर पाने के कारण टूटते हुए दिखाई पड़ते हैं। पर इस उपन्यास का संघर्षशील नायक यथार्थ से टकराता हुआ नया दृष्टिकोण अपनाने की ओर बढ़ता है।[१७८] इस नायक के चरित्र का विकास साधना सुशीला और चाचानता के संपर्क में होता है। ये तीनों नारियां उसके मन की तीन प्रवृत्तियों से मेल खाती हैं। इस तरह इस नायक के माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन के एक विशेष पक्ष की मनोवैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की है।[१७९]

इस उपन्यास के पात्रों में प्रवेश इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र के चरित्रों से भिन्न कोई विकास नहीं दीखता। वे सामाजिक जीवन से कटे हुए कृत्रिम दुनिया के वासी एवं व्यक्तित्वहीन दीखते हैं। इसी कारण प्रो० नलिन विलोचन शर्मा[१८०] एवं शिवदानसिंह चौहान[१८१] की राय में इस उपन्यास का अध्ययन समय का अपव्यय प्रतीत हुआ।

उनकी दूसरी कृति 'पवन की डायरी' में चरित्र-विकास की दिशा में एक नया

---

१७७ नवनीत मई ६२, पृ० १२५
१७८. साहित्यानुशीलन पृ० २४२
१७९. हिन्दी उपन्यास (वचन), पृ० २११
१८० दृष्टिकोण
१८१ आलोचना के मान पृ० ११

पन मिलता है। इसमें मन के अचेतन पक्ष को नैतिक स्तर पर अभिव्यक्ति मिल सकी है।[१८२]

उनके एक दूसरे उपन्यास 'बाहर भीतर' पर जेम्स ज्वायस के यूलिसिस का प्रभाव है। उसका वक्ता नायक भी यूलिसिस के सम्बन्ध में बास्टर एलन द्वारा व्यक्त विचारों के अनुसार ही है।[१८३]

उनके एक और उपन्यास 'रोड़े और पत्थर' में मकान की समस्या की पृष्ठभूमि में मध्यवर्गीय जीवन की असंगतियों और श्रमिकों के चरित्र पर करारा व्यंग हुआ है।

डा० धर्मवीर भारती

लेखक के दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा' में ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय चरित्रों का चित्रण है। इसके नायक चंदर का अहं और व्यक्तिवाद स्वयं उसे गुनाह पर गुनाह करते जाने के लिए मजबूर करता है। सुधा के प्रति उसका सारा प्रेम-व्यापार मानसिक स्तर पर चलता जाता है। सुधा भी अव्यावहारिक आदर्शवाद में विश्वास करती हुई अज्ञेय की शशि की तरह अपने प्रेमी के निर्माण में टूट जाती है।[१८४] लेखक ने अपनी कला द्वारा यह प्रकट किया है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज की परिस्थिति कितनी विषम कुंठिग्रस्त एवं विकृत है।[१८५]

'सूरज का सातवां घोड़ा' टेक्नीक की दृष्टि से एक नया प्रयोग एवं निम्नमध्य वर्ग के चरित्रों को अनेक कोणों से देखने के कारण महत्त्वपूर्ण है। उनकी कहानी 'गुल की बन्नो' एक मार्मिक कहानी है। चरित्र-विकास ही इस कहानी की विशेषता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उनके चरित्र निराशावादी एवं उदास प्रतीत होते हैं[१८६] जिन्हें रोमानवादी परम्परा का विकृत रूप कहा जा सकता है।

नरेश मेहता

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' १९५४ की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें समस्या है—नारी और उसका सुंदर शरीर'। इस उपन्यास की नायिका रंजना कहती है, 'नारी छिपा है जब तुम स्वयं को नहीं समझ पाती तब तुम उस छिपा को क्या समझ सकोगे'[१८७] वह फिर कहती है—"मेरे पास केवल एक प्रश्न है मेरा शरीर। सबने इस प्रश्न के उत्तर दिये अपने-अपने ढंग पर पर कोई भी मुझे नया

१८२ दी टाइम्स आफ इण्डिया, फरवरी, १९, १९६१, पृ० ४
१८३ दी इ यलिश नावेल पृ० ४३१
१८४ आलोचना (१३) पृ० ११८
१८५. हिन्दी उपन्यास (भवन), पृ० २४८
१८६ कहानी (विशेषांक) १९५६
१८७. डूबते मस्तूल पृ० २१०

अप्रमाणवीवा कर सका है" "[188] । और अन्त में संसार को सब कुछ देकर भी विशिष्ट गुणोंवाली नारी रंजना आत्महत्या कर लेती है,[189] यह जानते हुए भी कि उसका कहीं कोई दोष नहीं है। इस तरह इस उपन्यास में नारी के सिर्फ एबनार्मल और अतिरंजित रूप को ही देखा गया है।[190]

विष्णु प्रभाकर

लेखक का उपन्यास 'निशिकान्त' संक्रान्तिकालीन समाज एवं उसके विरुद्ध संघर्षरत व्यक्तिवादी चेतना को अंकित करता है। यदि लेखक पात्रों को अपना जीवन जीने के लिए थोड़ा स्वतंत्र छोड़ता तो उपन्यास का रूप ही दूसरा होता।[191] लेखक ने उन पात्रों को अपने भीतर कठिन कठोरते एवं परिवेश पर विजय पाते दिखाया क्योंकि इसी तरह दुख कष्ट झेलकर उनके व्यक्तित्व का विकास होता है।[192]

रामकुमार

रामकुमार के चरित्र पतले-दुबले बीमार, विवर्ण होने पर भी निस्सहाय और निरुत्साहित नहीं दीखते। उन्होंने 'अस्तित्ववाद' से एक हद तक प्रभावित होकर अपने चरित्रों की सृष्टि की है। 'पेरिस की एक शाम' नामक उनकी कहानी इसका उदाहरण है।[193] उनकी नयी दृष्टि का स्रोत सार्त्र का वही दर्शन है।[194]

गिरधर गोपाल

अपनी कृति 'चाँदनी के खंडहर' में लेखक ने एक नवीन प्रयोग किया है जिसमें मध्यवर्ग के दबे मरते जीवन की घुटन का चित्रण है।[195] बचपन से जिस ममता और स्नेह के संस्कारों में वह पालित है उन्हीं से प्रेरणा ग्रहणकर वह जिन्दगी के अँधेरे का सामना करता है।[196] इस उपन्यास के चरित्र और नायक सभी नवीन हैं। इलाचन्द्र जोशी ने इस कृति के नायक को 'जटिल प्रकृति का' मानते हुए लेखक को 'ऐसे रहस्यमय चरित्र' के चित्रण के लिए बधाई दी है।[197] इसका नायक बसंत अन्तर्मुख

---

१८८. वही पृ० २०६
१८९. वही पृ० २१०
१९० कल्पना मार्च १९५६
१९१ कथा के तत्त्व, पृ० २१०
१९२ हिन्दी उपन्यास (पवन), पृ० १११
१९३ अप्सरा, अक्तूबर, १९५९
१९४ हुस्ना बीबी और अन्य कहानियाँ
१९५. आलोचना (१६) पृ० १९०
१९६ आलोचना (१४), पृ० ११२
१९७ चाँदनी के खंडहर, भूमिका, पृ० ४ ५

की उपज है। वह उस भारतीय युग की भी उपज है जब भारत विचार-संतुलन की धुरी को पुनः प्राप्त करने की ओर बढ़ रहा था।[१९८] [illegible] एक सहज स्वस्थ समन्वय की आकांक्षा रखने वाला व्यक्ति है।

डॉ० प्रभाकर माचवे

माचवे ने अपने प्रयोगात्मक उपन्यास 'परन्तु' में मध्यवर्गीय जीवन को ही अपना विषय बनाया है। इसके सभी पात्र कुलीन शिक्षित और संभ्रांत हैं जिनके चेतना-प्रवाह का लेखक ने सफल अंकन किया है।[१९९]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

'सोया हुआ जल' की रचना मनोवैज्ञानिक पद्धति पर की गयी है। यह एक प्रायोगिक लघु-उपन्यास है। इसका आधार मध्यवर्गीय तृष्णा और 'फ्रस्ट्रेशन' है। इसके कथाचित्र एक पात्र विशेष की मानसिक प्रतिक्रिया एवं स्वप्न-दर्शनों के आधार पर सूत्रबद्ध किये गये हैं। आदि से अंत तक मध्यवर्ग की मुख्य अतृप्ति को सेक्स के रूप में ही चित्रित किया गया है।[२००]

जैनकुमार जैन

नवीन उपन्यासकारों में श्री जैन उल्लेखनीय हैं। उनकी कृति 'उद्भ्रांत' में चरित्र-विकास की दिशा में कुछ नये प्रश्न उपस्थित किये गये हैं जिसे 'साहित्य-संदेश' के विद्वान संपादक ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक 'नया मोड़' माना है। 'उद्भ्रांत' अपराध एवं अपराधियों के वातावरण में भी जीवन के उदात्त तत्वों से ओत प्रोत है। इसमें आधुनिक मनोविज्ञान को चुनौती देते हुए यह सिद्ध किया गया है कि मनुष्य जन्म से ही अच्छा या बुरा नहीं होता उसे सामाजिक-भौतिक साधन ही ऐसा करने को बाध्य करते हैं।[२०१] उद्भ्रांत के दो प्रमुख पात्र तिवारी और निरंजन समाज के उपर्युक्त वातावरण से ही पीड़ित हैं। निरंजन 'चुपचाप' भूखा मरना नहीं चाहता। इसलिए वह अपराध-वृत्ति को अपनाता है और तिवारी के क्षमा करने पर भी नहीं मानता।[२०२]

यह कृति इसपर भी प्रकाश डालती है कि आज की गंदी राजनीति और निकम्मे शासन की बदौलत ही निरंजन और तिवारी जैसे बेकार एवं विचारवान युवकों

---

१९८ हिन्दी उपन्यास, पृ० २८०
१९९. साहित्य सन्देश जुलाई-अगस्त ५६
२०० आलोचना (१७), पृ० १५४
२०१ साहित्य सन्देश फरवरी १९५६
२०२. अध्ययन के विचार, पृ० ४०
२०३ उद्भ्रान्त

की तरह उसमें स्वार्थपरता और लोभ अवश्य है।[७] पर इसी कारण अपने सुख के लिए वह किसीको कष्ट नहीं पहुँचाता। होरी में सामाजिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न दुर्गुण हैं। पर उन दुर्गुणों के बावजूद वह महान है।[८] उसके जीवन की असफलताएं उसके युग की ही असफलताएं हैं। वह मरणोन्मुख युग का प्रतिनिधि है। आज का किसान उसकी तरह नहीं वह 'बलचनमा' और 'गोबर' की तरह है।[९] वह जमींदारी वातावरण में उत्पन्न समाज में जीने वाला और प्राचीनता का समर्थक है। फिर भी उसकी परिस्थितियों में विद्रोह के परमाणु अवश्य हैं जिसमें जीकर गोबर एक विद्रोही मनुष्य बनता है।[१०]

पारिवारिक जीवन में भी वह टाइप और इंडिविजुअल दोनों है—स्त्री को पीटने और प्यार करने वाला। लेकिन धनिया और वह दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। वह आदर्श पिता है, "भाई उसका बुरा चेतें पर वह क्यों उसका बुरा चेते।" उसमें पारिवारिक स्नेह पूर्णरूप में है। "जीवन के संघर्ष में उसकी सदैव हार हुई। पर उसने कभी हिम्मत न हारी।"[११] इसलिए उसके महान जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को लेकर ही प्रेमचन्द ने एक महान चरित्र की सृष्टि की।[१२] वह साधारण होकर भी एक महान आत्मा है और उसके जीवन की असफलता ही उसकी महानता है।[१३] वह बराबर ही एक साधारण पात्र रहा। पर उसके मुँह से निकले "ऐसे मोटेपन में क्या सुख सुख तब है जब सभी मोटे हों" आदि वाक्य उसकी प्रभावात्मकता के प्रमाण हैं।[१४] होरी के जीवन के अच्छे और बुरे दोनों पहलू चित्रित हुए हैं जो उसे भारतीय किसान के जीवन का पूर्णरूपेण प्रतिनिधि बनाते हैं। सूरदास में असाधारणता है। पर साधारण होने के बावजूद होरी सूरदास के निकट है।[१५]

कुछ आलोचकों ने यह भी प्रश्न उठाया है कि क्या होरी करुणोदात्त नायक है।[१६] पर उसके जीवन में वह उदात्त तत्व नहीं है जो हमें 'विस्मय भय आतंक करुणा

---

७ वही
८ वही
९ अध्ययन के विचार, पृ० २१
१० आलोचना (इतिहास अंक), पृ० १२४
११ गोदान पृ० ३१८
१२ प्रेमचंद : उपन्यास और शिल्प, पृ० १०६
१३ "होरी को साधारणीकृत करने की अपेक्षा नहीं, सामान्य होरी का विशेषीकरण ही साधारणीकरण का स्वरूप हो गया।"—आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १७०
१४ गोदान, पृ० ३१२
१५ प्रेमचंद : (दीक्षित), पृ० १०५
१६ शील-निरूपण, पृ० ३०

तथा गौरव की भावना से भर दे।[17] उसमें रजस की असम्यता भी नहीं है। दीन भावना अधिक है। वह सभी चीजों को बर्दाश्त करता चलता है। होरी स्वयं गौ है और गौ की लालसा रखता है। होरी में एक गरीब की कष्ट-सहिष्णुता है बधक की कठोरता नहीं।[18] वह उस अव्यवस्था से अवश्य संघर्ष करता है, जिसने उसे दीन और असहाय बनाया है पर विद्रोह नहीं करता।[19] सामान्य किसान होने के कारण उसमें किसानों की दुर्बलता भी है। पर सम्मान की लालसा से वह कभी व्यावहारिक नहीं बन पाता और धनिया तथा गोबर उसका विरोध करते हैं।[20] वह अकेले ही अपनी परिस्थितियों से लड़ता है। सभी किसानों का संगठनकर कम्युनिस्ट लीडर नहीं बनता क्योंकि वह धरती के रागात्मक संबंध से बँधा है।[21]

होरी के व्यवहार में स्वयाक्रमण प्रेरणावेग—आधुनिक मनोविज्ञान का एक सिद्धांत—अवश्य पाया जाता है।[22] इसका प्रदर्शन उसके चरित्र में एकाधिक बार देखा जा सकता है।[23] 'गोदान' के बीसवें अध्याय में उसकी इस प्रवृत्ति का अच्छा उदाहरण मिलता है। साथ ही 'गोदान' के अंतिम पृष्ठ भी उसकी स्वयाक्रमण वृत्ति के सबूत हैं जहाँ मालिक की लगती बातों के उत्तर में जोरों से काम करते हुए वह अपने प्राण भी खींच डालता है।[24] यहाँ उसकी आंतरिक प्रेरणा एक तरह से आत्महत्या का ही रूप ले लेती है जिसके मनोवैज्ञानिक पहलू पर फ्रायड तथा अन्य विद्वानों ने बहुत-सी बातें लिखी हैं।[25] यदि वह जीवित रहता तो उसे पीड़ा में डालकर उसके पीड़क आनन्द पाते। मरकर उसने उनसे बदला लिया।[26] होरी के चरित्र के अध्ययन से इन मनोवैज्ञानिक तथ्यों का स्पष्टीकरण हो सकता है।[27]

शिवदानसिंह चौहान[28] ने होरी के चरित्र की विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने उसे अनंत जीवन-शक्ति से ओतप्रोत और अक्षय जीवट का माना है जो ठोकरें खा-खाकर बार-बार गिरता है और फिर उठकर चलता रहता है। उसके जीवन के सारे सूत्र भारतीय किसान वर्ग से जुड़े हैं जहाँ से उसे यह अदमनीय अक्षय प्राण रस प्राप्त

---

१७ वही
१८ वही
१९ वही
२० आलोचना (उपन्यास अंक) पृ० १४६
२१ वही
२२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० १०१
२३ वही
२४ वही
२५ वही
२६ वही
२७ वही
२८ साहित्यानुशीलन, पृ० २२१

होता है।[२९] वह इसलिए पिसता और जीता जाता है क्योंकि उसकी तरह के लाखों-करोड़ों किसान इसी तरह पिसते और जीते चले जाते हैं। इसी जन-जीवन की गंगा उसके प्राणों की अमृत है। हालांकि आज यह परिस्थिति बदल चुकी है। आज किसानों की चेतना शोषणकारी शक्तियों के आक्रमण के विरुद्ध अपने जीवन-स्रोतों की रक्षा की ओर भी सचेष्ट और संगठित हो रही है। पर इस मूलतत्त्व को हिन्दी के कितने उपन्यासकार समझकर अभिव्यक्ति दे पा रहे हैं?[३०] सन् १९५० के बाद सर्वप्रथम नागार्जुन के 'बलचनमा' में ही इस मूलतत्त्व के दर्शन प्राप्त हो सके हैं।[३१]

प्रेमचन्द के होरी और गोर्की के प्रख्यात उपन्यास 'माँ' के पावेल में बड़ा साम्य है। किन्तु पावेल के हृदय में विद्रोह की चिनगारियाँ सुलग रही हैं जैसी होरी की पत्नी धनिया में। वह कहती है— 'पेट्स खाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से न्याय से।'[३२] पावेल भी शराब पीता है, गन्दी गालियाँ बकता है अविकल, अभिमानी और ईर्ष्यालु है। होरी भी बाँसों के सौदे में बेईमानी और रुपये लेकर अपनी कन्या का विवाह एक वृद्ध से करता है—सब कुछ अपनी दरिद्रता और निस्सहायता के कारण। मृत्यु के समय उसके घर में गोदान के लिए 'न बैल हैं, न गाय न बछिया'। पावेल की मृत्यु के समय भी उसके लिए रोने वाला कोई नहीं। लोग जब उसकी लाश को दफनाकर चले जाते हैं तो उसका एकमात्र कुत्ता उसकी समाधि पर चुपचाप बैठकर अपनी मूक संवेदना प्रकट करता है।[३३]

सुनीता जैनेन्द्र

संभवतः गोदान के प्रकाशन के समय ही सन् '३५ में सुनीता की रचना हो चुकी है।[३४] 'होरी' और 'सुनीता' की नायिका 'सुनीता' चरित्र-विकास के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग के रूप में आये।

जैनेन्द्र ने सुनीता को अपनी कल्पना की रंगीन तूलिका से निर्मित किया है। इसीलिए उसका चरित्र अस्वाभाविक है जो कि होरी का नहीं। एक ही युग का होने के बावजूद दोनों चरित्रों में जमीन-आसमान का अंतर है। दोनों लेखकों के चरित्र एक दूसरे के ठीक विपरीत हैं। प्रेमचन्द ने प्रत्येक पात्र के बीच एवं एक-एक घटना पर टीका-टिप्पणी की है।[३५] पर जैनेन्द्र ने ऐसा नहीं किया है।[३६]

---

२९. वही
३० अप्रतिपादित
३१ आलोचना (१३), पृ० १७०
३२ साहित्य दर्शन, पृ० १०२
३३ वही
३४ 'सुनीता' का प्रथम संस्करण
३५. दृष्टिकोण, पृ० १०
३६ आलोचना (१३), पृ० ११०

सुनीता के चरित्र का केन्द्र बिन्दु हरिप्रसन्न है। वह जो कुछ भी बनी है हरिप्रसन्न के कारण ही। सुनीता का शील उसके अपने क्रिया-कलाप के द्वारा ही उभरा है।[३७] सुनीता को हरिप्रसन्न का व्यक्तित्व रहस्यमय और विचित्र लगता है। उसी तरह सुनीता की प्रकृति भी जटिल और रहस्यमय है।[३८] हरिप्रसन्न ने उसे बहुत अधिक प्रभावित किया है। हरिप्रसन्न द्वारा उसके हृदय में उत्पन्न स्पन्दन को अस्वीकार करने के लिए वह अपने पतिगृह से भी भागती है।[३९] पति के प्रति उसका निश्छल प्रेम उसके चरित्र का उदात्त पक्ष है। किन्तु उसका यह चरित्र विकास कृत्रिम और आदर्शों से बोझिल लगता है।[४०] सम्भवतः यह गांधीजी के आदर्शों का साहित्य के क्षेत्र में प्रतिपादन है। इसीलिए अपने मन की अहिंसा-वृत्ति द्वारा हरिप्रसन्न की कामुकता को छूकर उसके अन्दर के देवता को जगाकर वह कहती है—"कहो कि मैं अपने को नहीं मारूंगा।"[४१] "अंत चाहना अपने को मारना ही है।"[४२] इन्हीं कारणों से आलोचक शिवनाथ ने सुनीता को 'नारी और केवल नारी' माना है।[४३]

जो भी हो हिन्दी साहित्य में सुनीता एक महत्वपूर्ण चरित्र है और अपनी कोटि में अकेली भी।[४४] उसका चरित्र-विकास पिठरपाक सम्मत है यानी विनम्र पत्नी से आरम्भ फिर गुप्त प्रेम की नारी और अंत में पति द्वारा पत्नीत्व की भावना से मुक्ति पाते ही एकांत में अपने प्रेमी को नग्न समर्पण।[४५] वह बर्नार्ड शा की प्रावोकेटिव नारी भी है जो 'पुरुषों को सामने नचाती है' ताकि वह उससे 'पार नहीं जा सके।'[४६] प्रेमचन्द की तुलना में जैनेन्द्र ने अपने पात्रों को इस तरह सवारा और बनाया है कि जीवन के अरूप उद्गमों तक हमारी दृष्टि जा सके।[४७] सुनीता का चरित्र गेस्टाल्ट वादी मनोविज्ञान पर निर्मित है और असाधारण है।[४८] उन्होंने हिन्दी साहित्य में शरत्चन्द्र के अभाव की पूर्ति की है।[४९] गेस्टाल्टवाद की तरह उसके चरित्रों के अवयव

---

३७ वही
३८ विश्लेषण, पृ० ८५
३९. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृ० ६०
४० वही
४१ सुनीता, पृ० १६६
४२ आलोचना (११), पृ० ११५
४३ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ११२
४४ सुनीता पृ० १५
४५ शील-निरूपण पृ० २७
४६ शील-निरूपण पृ० ३१
४७ वही, पृ० ४१
४८. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० १४०
४९ आलोचना (इतिहास अंक), पृ० २२६

लिखते हैं, फिर भी उसमें मिथुन की सम्पूर्णता है।"[५०] इसीलिए कथारस की उपलब्धि और पात्रों को पहचानने के लिए एवं सुनीता की नग्नता का रहस्य समझने के लिए पाठकों को स्वयं अपनी ओर से भी कुछ लगाना आवश्यक है।"[५१] हरि तो अजीब है ही। लेकिन सुनीता का पति यह श्रीकांत कैसा है जो उसके पौरुष को ठीक करने के लिए अपनी पत्नी को भी दांव पर लगा देता है और यह सुनीता भी कैसी अलौकिक और रहस्यमयी है कि आखिर वह हरि के पौरुष को तोड़ ही डालती है।"[५२] श्री गोपालकृष्ण कौल ने इसीलिए सुनीता के मुंह से कहलवाया है—'यह एक प्रयोग हो सकता है जो जैनेन्द्रजी ने शुष्क अपदार्थ मिट्टी को अपने विचारों से सजाकर किया … यदि आपकी कला के लिए मुझे अपने मूलरूप का त्याग करना पड़ा तो यह भी भारतीय नारी के लिए सौभाग्य की बात है।"[५३]

शेखर अज्ञेय

शेखर प्रसिद्ध उपन्यासकार डा० अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' का मध्यवर्गीय नायक है। शेखर के जन्म से लेकर मृत्यु तक के वैयक्तिक संघर्षों और विचारों का चित्रण ही इस उपन्यास का विषय है। इसीलिए प्रगतिवादी आलोचक[५४] शेखर को वैयक्तिक चरित्र मानते हैं। वैसे वह देशभक्त और राष्ट्रवादी भी है। पर उसमें व्यक्तिगत अहं की भावना बड़ी तीव्र है। इसीलिए डा० नगेन्द्र ने उसे 'भयंकर' इलाचन्द्र जोशी ने 'घोर' एवं प्रभाकर माचवे ने उसे 'उद्धत' अहंवादी माना है।[५५] किन्तु आलोचक विश्वम्भर मानव ने शेखर को 'एक जन्मजात विद्रोही' मानते हुए उसके अहं की भावना को आत्मविश्वास में परिणत होता हुआ बताया है जिसके बिना मनुष्य राख के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता।[५६] फिर भी शेखर जीवन की सभी दिशाओं में असाधारण है और उसके विद्रोही स्वभाव ने उसकी असाधारणता को चमकाने में अवश्य योगदान किया है।[५७] शेखर की जिज्ञासा अनन्त है। अपनी इस जिज्ञासा को शांत करने के लिए वह कभी-कभार ऐसे काम भी कर डालता है जो समाज के नियमों के विरुद्ध हैं।[५८] उसके सभी मान्य नियम विरोधी कार्य और घटनाएं एवं विद्रोही स्वभाव बचपन में ही उसके मां-बाप द्वारा की गई उपेक्षा के कारण ही होते हैं जिसे

---

५० आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० १४०
५१ वही
५२ वही, पृ० १४१
५३ आकाशवाणी दिल्ली ३ ४ ५७
५४ शिवदानसिंह चौहान प्रकाशचन्द्र गुप्त डा० रामविलास शर्मा
५५. आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० ९९
५६. वही पृ० १००
५७. आधुनिक साहित्य पृ० १७५
५८ वही

फ्रायडवादी मनोविज्ञान द्वारा समझा जा सकता है।[८९] उसके परिवार में उसकी बाल सुलभ सहज बुद्धि का प्रारम्भ से ही निरादर हुआ था जिस कारण ही उसका अहं और विद्रोह पनपा और बाद में चलकर बड़ा वृक्ष बन गया।[९०] ऐसा जान पड़ता है कि चित्तविश्लेषणवादी बालमनोविज्ञान के आधार पर ही शेखर का निर्माण हुआ है।[९१]

शेखर को डा॰ देवराज उपाध्याय ने 'कोठरी की बात' के नायक सुशील का ही विकसित रूप माना है।[९२] अन्तर यही है कि उपन्यास की सारी घटनाएं सिर्फ शेखर के इर्दगिर्द उसके भाव-केन्द्र के चतुर्दिक घूमती रहती हैं और वह स्वयं सारे उपन्यास का व्याख्याकार है। एक सीमित दृष्टिकोण की रोशनी में उपन्यास का संगठित चित्र उपस्थित करना इस कृति की टेकनिकल सफलता अवश्य है।[९३]

शेखर एक विकासशील चरित्र है। उसकी विद्रोह वृत्ति उसमें मानवता की भावना का पोषण करती है और मानवता की भावना अपनी पूर्ति के लिए उसे समाज और राजनीति में घसीट लेती है। उसमें दूसरी उत्कट भावना है प्रेम की जिसकी पूर्ति जीवन भर भटकने के बाद शशि के प्यार में होती है। तीसरी भावना है लेखक बनने की जिसके लिए भी वह अनेक कष्ट उठाता और साधना करता है। पर इतना स्पष्ट है कि उसकी सर्वोपरि भावना विद्रोह ही है, प्रेम जिसकी प्रेरणा है और साहित्य-सृष्टि है हथियार।[९४] इस तरह, शेखर, आत्मसमीक्षा प्रधान चरित्र है[९५] और इसी कारण उसकी चेतना में दुनिया भरके विषय शामिल हैं तथा उसमें हम केवल उसके माथे पर हाथ धर रहते हैं।[९६] लेखक का उद्देश्य कथा कहना नहीं बल्कि चरित्रांकन है।[९७] और एकमात्र वही महत्त्वपूर्ण भी है।

शेखर के चरित्र में बहुत-सारी अस्वभाविकता है जिसके कुछेक कारण यों हैं।[९८] उसकी प्रसंग प्रज्ञा एक सभ्य एवं शिक्षित स्नातक की है। कई आलोचक उसे 'युग की चीज नहीं' मानते और उसे 'युग पर परिश्रम की बाँध बनाने की कोशिश' कहते हैं।[९९] उनका यह भी कहना है कि लेखक ने निर्लिप्त भाव से शेखर का चित्रण नहीं किया

---

८९. आ॰ हि॰ क॰ सा॰ और मनो॰, पृ॰ १११
९० वही, पृ॰ १११
९१ वही, पृ॰ १६७
९२ वही, पृ॰ १७२
९३ वही, पृ॰ १९९
९४ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ॰ १७५
९५. विश्लेषण (बोधी), पृ॰ ८७
९६. शील-निरूपण, पृ॰ १
९७. वही, पृ॰ २
९८ वही पृ॰ ५
९९ वही पृ॰ ७

है और न उसमें भारतेंदु के पात्रों की स्पष्टवादिता ही है।[६९] इसीलिए ऐसे आलोचकों को 'शेखर' कभी-कभी तो पैसे का माल 'बदमा' जैसा भी दीखता है।[७०] (क) शेखर जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों की देश-विदेश के साहित्य में इतनी आवृत्ति हो चुकी है कि वह 'टाइप' से बढ़कर 'स्टीरियोटाइप' बन गया है। कुल मिलाकर देखा जाय तो उसका व्यक्तित्व 'खंडित' है। भिन्न-भिन्न पुस्त खंडों में बँटकर उसे अर्धनग्नीस की आदर्श प्रतिमा भी नहीं बनाते।[७१] हाँ, वहाँ वह मनोविज्ञान और विद्रोहों के झमेलों से असम होकर अपने हृदय के वासोचित आग्रह की व्यंजिका प्रस्तुत करता है वहाँ वह स्नेह का पात्र बन जाता है।[७२] जेल के जीवन में भी उसकी प्रेम-भावना और-युवा आत्मीयता आभिजात्यता एवं जिज्ञासा के स्वरूप के दर्शन होते हैं। उसके लिए राष्ट्रीयता और आदर्शवाद की ऐसी सबल प्रेरणा बाहर से संभव भी न थी। उसे यह भी भ्रम है कि वह युग प्रवर्तक व्यक्तित्व विशिष्ट है। किन्तु, जीव विज्ञान की दृष्टि से वह केवल एक मानव है, आदिम प्रथम मौलिक एवं चिरन्तन मानव। मगर ऐसा मानव व्यक्ति नहीं एक प्रत्यय है।[७३] इसीलिए वह भारतीय जीवन और संस्कार का चरित्र नहीं। हिन्दी-उपन्यासों की परम्परा में वह एक ऐसा बुलबुला है जो समय बीतने के साथ ही हवाई होता जायगा।[७४]

लेखक अज्ञेय ने 'आत्मनेपद'[७५] नामक अपनी पुस्तक में उसकी विस्तृत व्याख्या की है। शेखर ने अपने परिचय में यहां कहा है—"मेरा हर पाठक हरबार मुझे बनाता है। मैं तटवासी हूँ मैं सेतुकामी हूँ"[७६]

शेखर के सम्बन्ध में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा पूछे गये[७७] प्रश्नों के उत्तर में अज्ञेय ने कहा है—"जिस तरह 'ज्याँ क्रिस्तोफ़' में रोम्याँ रोलाँ एक आत्मान्वेषी के पीछे-पीछे चले हैं, उसी तरह मैं भी चला हूँ। फिर भी शेखर एक जीवनी' 'ज्याँ क्रिस्तोफ़' जैसी कृति नहीं आदि।

शिवदानसिंह चौहान ने 'शेखर' को 'विद्रोही' नहीं एतादृश भाव का विरोधी बताया है क्योंकि उसके अन्दर ऊपर ईगो से भाव्य मानवीय विवेक नहीं—उसका आचरण एक असुरक्षित, कुण्ठित, स्वार्थी मूर्खता और परपीड़क व्यक्ति का है।[७८] अभि-व्यक्तिपरकता यदि अपना सब कुछ उसे समर्पण करके भी उससे अपेक्षा और पीड़ा ही

---

७० वही,
७० (क) आलोचना (इतिहास अंक), पृ० ११८
७१ विवेचन, पृ० ८८
७२ वही
७३ शील-निरूपण, पृ० १९
७४ वही, पृ० १९
७५ वही, पृ० १८ २१
७६ आत्मनेपद, पृ० १४
७७ शेखर, पृ० ९६

पाती है। श्री चौहान ने 'नदी के द्वीप' के भुवन को भी शेखर का प्रतिरूप माना है जिसे सिर्फ 'चाहिए', बदले में 'देना' उसे मान्य नहीं। वह भी पहले रेखा को अपनी वासना तृप्ति का साधन बनाता है। फिर उसे त्यागकर गौरा के प्रति समर्पित होता है। इन कारनामों के लिए उसकी अंतरात्मा उसे कभी धिक्कारती भी नहीं क्योंकि उसमें भी अंतरात्मा का तो विकास ही नहीं हुआ है। इस तरह अज्ञेय ने चरित्रों की रचना में एक खास सांचे का प्रयोग किया है और जहां सांचों का प्रयोग हो वहां सामाजिक या मनोवैज्ञानिक सत्य कैसे प्रवेश पा सकते हैं।[७८]

लेखक ने शेखर को असाधारणता प्रदान करने का हर कलात्मक प्रयत्न किया है। लेकिन इसके बावजूद वह एक असामाजिक और विक्षिप्त व्यक्ति है जो शिक्षित मध्यवर्ग में पला है किन्तु, इस वर्ग की परम्पराओं से छुटकारा पाने के लिए छटपटा रहा है,[७९] फिर भी वह क्रान्ति के प्रति जितना ही उत्साह दिखाता है, उतना ही वह समझौते के मार्ग पर दौड़ता चला जाता है।[८०]

शेखर के विषय में अज्ञेय के शब्दों में डा० नगेन्द्र की राय है कि 'शेखर का विश्लेषण लेखक के अपने ही व्यक्ति-विकास का विश्लेषणात्मक सिंहावलोकन है।'[८१] डा० नगेन्द्र ने उसे "एक क्षतिपूर्ण व्यक्ति का अपने जीवन का प्रत्यालोकन"[८२] बताया है।

शेखर अपने जीवन विकास के स्वनिर्मित पथ का अनुसरण करता हुआ ज्ञान के अनेक भूस्तरों का हमें दिग्दर्शन कराने में सक्षम होता है। हाँ, लेखक ने उसके जीवन के सत्यों को पढ़-समझकर, उनका निष्कर्ष निकालकर पाठकों के समक्ष अवश्य सम्बद्ध किया है।[८३]

डा० रामविलास शर्मा ने[८४] कहा है कि 'शेखर का विद्रोह एवं आत्मपीड़ा—दोनों ही उसके निकम्मे व्यक्तित्व के दो पहलू हैं। वह विद्रोही है, क्रान्तिकारी नहीं। वह त्रात्स्की का अनुयायी और स्तालिन का आलोचक है। अपनी हीनता का रोना रोकर, अपने सिर विद्रोहभाव की दुहाई देकर वह स्त्रियों की करुणा जगाने में एक ही है।'[८५] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उसकी विद्रोह भावना को "व्यक्तिगत और काल्पनिक" माना है जिसका 'सामाजिक यथार्थ' से कतई मेल नहीं।[८६] इलाचन्द्र

७८, साहित्यानुशीलन, पृ० १८
७९ हिन्दी उपन्यास, पृ० २४०
८० साहित्यानुशीलन, पृ० २१९
८१ विचार और अनुभूति पृ० १२
८२ वही पृ० १४५
८३ आधुनिक कथा-साहित्य, पृ० १७९
८४ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएं, पृ० १०९
८५. वही, पृ० १०६
८६ आधुनिक साहित्य पृ० १७६

जोशी 'शेखर के विकास को मूलतः मनोवैज्ञानिक' मानते हैं ।[87] किन्तु, उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि उसके चरित्र विकास के मूल में सिर्फ एक ही आधार है—वह है उसका तीव्र महान सर्वव्यापी और सर्वग्रासी अहंभाव ।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास 'प्रेत और छाया' के नायक से भी उसकी तुलना की गयी है । किन्तु, दोनों के चरित्रांकन में दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट है हालांकि चारित्रिक विकृति और नैतिक पतन में दोनों एक दूसरे से होड़ करते-से लगते हैं । फिर भी, अपनी विकृतियों के बावजूद 'शेखर' को लेखक की पूरी सहानुभूति प्राप्त होने के कारण वह एक परिमार्जित रुचि एवं उच्च जीवन-दर्शन से समन्वित नायक के रूप में पाठकों के सामने आता है । पर 'प्रेत और छाया' का चित्रण यथार्थवादी होकर उसके नायक का सुस्पष्ट और पतित रूप बिना किन्हीं मोहक रंगों के, पाठक के समक्ष आ जाता है ।[88]

नन्दकिशोर इलाचन्द्र जोशी

नन्दकिशोर इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास 'संन्यासी' का नायक है । श्री जोशी के अधिकांश कथा-नायक दुर्बल स्वभाव के हैं ।[89] उनकी धारणा है कि मध्यवर्गीय संस्कृति के ह्रासोन्मुख काल में यथार्थ के आधार पर सबल नायकों की सृष्टि नहीं हो सकती । उदाहरण के लिए 'मादाम बावेरी' का नायक बालजक के नायकगण तथा रवीन्द्र और शरत के नायकगण सभी दुर्बल स्वभाव के व्यक्ति हैं ।[90] इसी लिए उन्होंने जान-बूझकर दुर्बल नायकों की ही सृष्टि की है । उनका विचार है कि सुधारवादी नायक वास्तविक जीवन में नहीं मिलते ।[91] मनोविश्लेषण के ज्ञान ने भी मानवीय स्वरूप को बिल्कुल बदल दिया है । मनुष्य जो दीखता है, वह वह नहीं है । वह अन्तर्मन के निगूढ़तम रहस्यों से परिचालित होने वाला व्यक्ति है । इसीलिए आज के युग में सबल नायकों को उपन्यास की पृष्ठभूमि पर नहीं उतारा जा सकता ।[92] किन्तु जोशीजी प्रेमचन्द और उनकी परम्परा के उपन्यासकारों की मध्यवर्गीय सामाजिक परिस्थिति को नकार जाते हैं जिसके कारण आदर्शवादी नायकों की सृष्टि संभव थी ।[93] किन्तु आज का मानव रोगग्रस्त है, इसीलिए उपन्यासों के नायक भी दुर्बल हैं । संन्यासी का नन्दकिशोर भी ऐसा ही एक पात्र है—बाहर से सबल, किन्तु, भीतर से दुर्बल ।[94] जोशीजी का

८७. विश्लेषण पृ० ८७
८८ वही, पृ० ११८
८९. विश्लेषण पृ० ११२
९० साहित्य-चिन्तन पृ० ९२
९१ वही, पृ० ९३
९२ वही २०६
९३ हिन्दी उपन्यास (प्रकाश), पृ० २०१
९४ साहित्य-चिन्तन पृ० ९४

कहना है कि उन्होंने अपने नायकों की "अत्यन्त तीक्ष्ण मनोवैज्ञानिक शस्त्रों द्वारा चीर फाड़ करके' उनके "महान दुर्बलताओं' से पूर्ण चरित्र का पर्दा फाश किया है क्योंकि वह जानबूझकर पाठकों को धोखे में नहीं डालना चाहते।"[९५] उन्होंने नन्दकिशोर की तुलना शरत के देवदास से करते हुए कहा है कि "मैंने नन्दकिशोर की मानसिकता के विश्लेषण में भावुकता का सहारा न लेकर उसके यथार्थ रूप को उपस्थित किया है। पर देवदास की दुर्बलताओं का सारा दोष समाज के सिर पर मढ़कर शरत ने उसे पाठकों की सहानुभूति और श्रद्धा का पात्र बना डाला है। उनका यह भी कहना है कि इस तरह यथार्थ रेखाओं द्वारा अंकित उसके चित्रण से जीवन की वास्तविकताओं को समझने में अधिक सहायता मिलती है।"[९६]

नन्दकिशोर फ्रायड के 'दमित काम-वासना' से पीड़ित युवक है। वह इसे स्वयं भी स्वीकार करता है कि कमरे में जयन्ती के दर्शन से भी उसकी दमित काम वासना उसी तरह भड़क उठी थी जैसी बनारस में शांति एवं कमला को देखकर[९७] शांति के घर। शांति के घर पहुंचने पर 'नव वधू की तरह उसका सलज्ज और संत्रस्त भाव' देखकर वह 'पुलकित' हो उठता है।[९८] कामुक व्यक्ति भीरु भी होते हैं। इसीलिए शांति के मुख की ओर देखने पर उसका अन्तर्मन उसे 'भीरु' और 'कापुरुष' कहकर भी धिक्कारता था।[९९] इसीलिए शांति से वह बल की भीख मांगता है कि 'समस्त बन्धन तोड़कर' उससे मिल सके[१००] किन्तु, शांति को भगाकर इलाहाबाद ले जाने के बाद ही भावुक प्रेमी के बदले उसका 'अहंवादी' और 'शंकालु' रूप स्पष्ट होने लगता है। वह शांति से कहता है—"तुम बराबर अपने मन की यथार्थ बातों को मुझसे छिपाती आई हो और मुझसे कपट रखती हो।"[१०१] उसकी शंका और ईर्ष्या ने शांति पर बलदेव से प्रेम करने का कलंक भी लगा डाला। उसके भीतर एक प्रलयंकर द्वंद्व मच गया—"शांति क्या बलदेव से भी उसी तरह प्रेम करती है जैसे अब तक मुझसे करती आयी है।"[१०२] और बड़ा विश्लेषणवादी बनकर वह कहता है— 'बलदेव को शांति को चाहने लगी है, यह दोनों के भीतर कुछ अज्ञात संस्कार किसी रहस्यमय नियम की प्रेरणा" के कारण है[१०३] और निष्कर्ष रूप में वह शांति को लांछित करते हुए उसपर बलदेव से प्रेम करने का झूठा अभियोग लगा डालता है। इस तरह पाठकों के समक्ष

---

९५. विश्लेषण पृ० ११५

९६. विश्लेषण, पृ ११६

९७. संन्यासी, पृ० ६४

९८ वही, पृ० ११०

९९. वही

१०० वही पृ० ६२

१०१ वही, पृ० ११५

१०२ वही पृ० २०४

१०३ वही पृ० २११

नन्दकिशोर का स्वार्थी अहंवादी आत्मलीन, संदेहशील रूप उभरकर आ जाता है।

उसके मन की सारी कुंठाओं को शांति और जयंती समझती है। इसीलिए जयन्ती कहती है—"आपकी अप्राकृतिक आकांक्षा की तृप्ति कभी संभव नहीं। आपके मन की अशांति और असंतोष सदा बने रहेंगे और जिस जिस के सम्पर्क में आप रहेंगे उसके जीवन में भी आप बेचैनी के बीज बोते चले जायेंगे।"[१०४] लेखक ने इन पंक्तियों में नन्दकिशोर के चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत कर डाली है। और नन्द किशोर स्वयं भी अपने असाधारण व्यक्तित्व से परिचित है। किन्तु वह यह भी मानता है कि "हो सकता है कुछ विशेष बातों में मेरे मन और मस्तिष्क ऊँचे उठे हुए हों पर बहुत-सी बातों में मैं साधारण मनुष्य से भी बहुत नीचे—एकदम नीचे गिरा हुआ हूँ।"[१०५] उसके हृदय की यही असाधारण स्थिति 'आत्मघाती अस्थिरता' अन्त में उसके जीवन को नष्ट कर देती है[१०६] और वह संन्यासी बन जाता है। जोशीजी ने उसके चरित्र-चित्रण द्वारा यही स्पष्ट किया है कि 'एक भयंकर असामाजिक प्राणी' को एक सर्वनाशी दैत्य' बनकर निकला था समाज द्वारा अपने ही गर्त में भस्म होने के लिए अकेला छोड़ दिया गया।[१०७]

डा० देवराज उपाध्याय ने नन्दकिशोर के मन की 'जटिलतापूर्ण उलझनों' को और भी स्पष्ट करते हुए कहा कि अंत में जब वह जयन्ती से विवाह करने को तैयार भी होता है तो जयन्ती के मन के 'दुर्दमनीय गर्व' को 'चूर-चूर करने की प्रतिहिंसापूर्ण भावना' उसमें विद्यमान है।[१०८] ऐसा व्यक्ति अपने वैवाहिक जीवन में किस तरह सुखी रह सकता है? 'गर्व चूर करने' एवं 'प्रतिहिंसा के लिए' विवाह करने की बात एक नवीन दृष्टिकोण की परिचायक है। इससे यही सिद्ध होता है कि आज के मानव में महान परिवर्तन आ गया है, पाठक और कथाकार भी बदल गया है तथा कथाकार की औपन्यासिक अभिव्यक्ति भी बिल्कुल बदल गयी है।[१०९]

डाक्टर खन्ना   यशपाल

डा० खन्ना यशपाल के प्रसिद्ध उपन्यास 'देशद्रोही' का नायक है जो सन् '४२ के भारत का चित्रण है। यशपाल के कम्युनिस्ट नेताओं का अन्त बहुधा हृदयद्रावक होता है। 'दादा कामरेड' का नायक शहीद होता है 'मनुष्य के रूप' में भूषण बरकत की करीबी से घायल होकर मरता है और डाक्टर खन्ना मजदूरों के बीच घायल होकर

---

१०४ वही, पृ० १८१
१०५. वही पृ० १५१
१०६ साहित्य-समीक्षा, पृ० ८२
१०७ इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास पृ० ६५
१०८. संन्यासी पृ० १५२
१०९. आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० २४५

गिरते हैं।[110] यशपाल के ये मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मजदूर-क्रांति से बौद्धिक सहानुभूति तो अवश्य रख सकते हैं पर उस क्रांति का नेता बनने की उनमें सामर्थ्य नहीं है।[111]

खन्ना असीम साहस और जीवट का व्यक्ति है और हर तरह की बाधाओं के बावजूद संघर्ष में जुटा रहता है। पर श्री गंगाप्रसादजी ने उसे निकम्मा निर्लज्ज और अनुत्तरदायित्वपूर्ण कहा है।[112] ये आरोप पूर्णतया सत्य न होकर भी आंशिक तौर पर सत्य हैं। कुछ आलोचकों ने उसमें पौरुष की कमी भी देखी है[113] किन्तु अन्ततोगत्वा यह भी सही है कि वह परिस्थितियों का निर्माता न होकर परिस्थिति के हाथों में कठपुतली की तरह खेलता है। डा० रामविलास शर्मा ने उसे 'आत्मपीड़ा का शिकार' बताया है जिसका उद्देश्य 'नारी की करुणा को जगाना' है।[114]

किन्तु, हर दृष्टि से सोचने से उसे असफल चरित्र नहीं कहा जा सकता। उपन्यास के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते मृत्यु की कारुणिक स्थिति में वह 'गोदान' के होरी की भाँति हमारी सहानुभूति का अधिकारी हो जाता है। यशपाल के चरित्र भी 'गोदान' की परम्परा पर आधुनिक भारत के नये चरित्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।[115]

शिवदानसिंह चौहान[116] का मत है कि 'देशद्रोही' में मजदूर आंदोलन की तरफ आकृष्ट होने वाले मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का चित्र है जो 'व्यक्ति से समाज की ओर' जाने को आतुर हैं संघर्षशील हैं। किन्तु यह संघर्ष जनता के अधिकांश भाग को उपन्यास के बाहर रखकर चलता है जो इस कृति का मुख्य दोष है।[117] लेखक जहाँ खन्ना के हृदय में पैठकर उसके निगूढ़तम रहस्यों को टटोलता है, वहीं वह मजदूर-वर्ग की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को केवल छूकर संतोष कर लेता है। इसीलिए खन्ना को राजनीतिक चरित्र नहीं बल्कि श्रीकांत की कोटि का एक सामाजिक चरित्र कहना ही उचित प्रतीत होता है।[118] श्रीकांत की तरह स्त्रियों के साथ आकर्षण अनाकर्षण का खेल छोड़कर वह और क्या करता है? शरत के पात्रों की तरह वह अपनी प्रेमिका की गोद में सिर छिपाकर सुख से लेटना चाहता है।[119] ले-देकर लेखक ने उसके चरित्र को भी 'शिल्पोत्तरवादी' बना दिया है, जहाँ चित्रण व्यापक और उदार

११० आलोचना (२१), पृ० ८४
१११ आधुनिक हिन्दी-साहित्य एक दृष्टि, पृ० १४०
११२ आधुनिक कथा-साहित्य, पृ० १५६
११३ हिन्दी-उपन्यासकार, पृ० २०७
११४ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० ११६
११५ आलोचना (२१) पृ० ८१
११६ आलोचना के मान
११७ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ
११८. संस्कृति और साहित्य पृ० १०२
११९. वही

आप्य।[१२०] हरिप्रसन्न की तरह वह भी अपनी प्रेमिकाओं की बाँह को तकिये के रूप में प्राप्त करने की लालसा से हर समय पीड़ित है।[१२१]

चेतन उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

लेखक अश्क ने 'गिरती दिवारें' में निम्न मध्यवर्ग के जीवन का विस्तृत रूप से चित्रण किया है। यह कृति निम्न मध्यवर्ग के युवक 'चेतन' की जीवनी है जो जीने के लिए विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करता है। इसी संघर्षक्रम में उसकी प्रतिभा उत्तरोत्तर अधिक मानवीय सामाजिक और व्यापक बनती है।[१२२] वह अपनी इच्छा के विरुद्ध एवं माँ बाप की आज्ञा का पालन करने के लिए चंदा से शादी करता है। सुसराल में ही वह चंदा की छोटी बहन नीला के प्रति आकर्षित हो जाता है और एक बार बीमारी की स्थिति में नीला का निकट साहचर्य उसकी दमित वासनाओं को दुर्दमनीय रूप से उभार देता है।[१२३] बाद में वह नीला के पिता को कभी कुछ बताकर चंदा के साथ वहां से चला जाता है। फिर वह वैद्यराज रामदास के चंगुल में पड़कर बच्चों की स्वास्थ्य रक्षा पर पुस्तक लिखता है—सिर्फ तीन मास में और ६० रुपये महीने पर।[१२४] यह पुस्तक धूर्त वैद्य के नाम से ही निकलती है। बाद में वह नीला के विवाह की सूचना पाकर किसी तरह उससे जान छुड़ाकर भागता है।[१२५] नीला की शादी एक कुरूप और अधेड़ व्यक्ति से होती है और रात की निस्तब्धता में जब वह सोचने लगता है तो पाता है कि इस देश के अपरिचित लोगों के साथ दीवारों के अंदर कैद है। यही दीवारें सबों के व्यक्तित्व की परतें हैं जो उन्हें घेरे रहती हैं[१२६] और इन्हीं दीवारों की नींव की थाह पाने और यह जानने कि वे कैसे गिरेंगी चेतन समस्त हो उठता है। शोषण और आर्थिक वैषम्य के इस युग में पीड़ित व्यक्ति चेतन की तरह यह अवश्य चाहता है कि वह ऐसा फुफकार मारे कि इस व्यवस्था के पुर्जे पुर्जे हवा में उड़ जाएं। इसी लिए आज के कुंठित जीवन का आभास 'अश्क' की इस कृति में अवश्य मिलता है जिसकी सरसता में हम अविश्वास नहीं कर सकते।[१२७]

नलिनविलोचन शर्मा का कहना है कि यह कृति एक उपेक्षित किशोर, ग्रामीण युवक और एक असफल सहकारी संपादक के कुंठित व्यक्तित्व का दयनीय

---

१२० आ० हि० क० सा० और मनो० पृ० २७७
१२१ वही
१२२ प्रतीक ६, पृ० ११८
१२३ वही
१२४ गिरती दीवारें पृ० ७२१
१२५ प्रतीक (९) पृ० १२३
१२६ हिन्दी-उपन्यास पृ० १२१
१२७ प्रतीक (९), पृ १२३

इतिहास है।"[128] बेतन के नायकत्व के सम्बन्ध में भी शमशेर बहादुर सिंह[129] ने कई प्रश्न उठाये हैं। असल में बेतन 'गिरती दिवारें' का 'हीरो' नहीं—वह 'हीरो' तो है शोषण और पीड़न की कड़ियों का वह लंबा सिलसिला जिसके बगैर बेतन हवा में हाथ पांव मारने वाली एक छाया की तरह रह जाता।[130] बेतन सिर्फ स्टेज पर उपस्थित वह उजला पर्दा है जिसपर 'गिरती दीवारें' की पूरी फिल्म चलती है।[131]

बेतन सन १९५०-५२ के आसपास का निम्नमध्यमवर्ग का प्रतीक है।[132] ऐसे बेतन या तो अब तक बदल चुके होंगे या अपने समाज की नई शक्ति बनकर समाज को उठा रहे होंगे, नहीं तो वे उन गिरती दिवारों के बीच जिंदा नहीं रह सकते जिनमें से कुछ तो सन '४८ तक भार ही गिर चुकी होंगी।[133]

डा० रामविलास शर्मा ने बेतन को मुखौटा-फेंचकवादी परंपरा का प्रतीक माना है। वे कहते हैं—"कहीं डा० धर्मवीर भारती ने कथा-साहित्य के नपुंसक नायकों पर लेख लिखा था। अश्क जैसे कलाकार उनकी संख्या तेजी से बढ़ा रहे हैं।"[134] प्रगतिवादी आलोचक अमृतराय ने बेतन के चरित्र विकास का विश्लेषण तर्कशास्त्र के आधार पर करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि बेतन अपनी मनचाही लड़की से विवाह न कर पाने के कारण अपना सर्वनाश करता है, आत्महनन करता है। उसके जीवन की यही असफलता बेतन के चरित्र का वह 'ट्रैजिक फ्लाव' है जो कहानी के अंत को पहले से ही निश्चित कर देती है।[135] बेतन जीवन भर नीला को पाने की साध या न पाने की व्यथा लिये मारा-मारा फिरता है। अन्त में एक अयोग्य वर से उसकी शादी हो जाने के बाद ही उसका प्रणय-प्रसंग समाप्त होता है और वह सिर्फ अपना शरीर लेकर अपनी पत्नी के पास लौट आता है। बेतन की यही दशा देखकर डा० रामविलास शर्मा[136] ने कहा है कि सेक्सरोगियों का सबसे बड़ा सहारा है बीमारी जो उनकी प्रणय-भावना को बढ़ा देती है—नारी की करुणा को जगाकर। नतीजा यह होता है कि बेतन को लगता है कि संसार के सभी पुरुषों के बीच अनगिनत दीवारें खड़ी हैं और इन दीवारों का कोई अंत नहीं।

बलचनमा नागार्जुन

बलचनमा एक खेत-मजदूर का लड़का है। लेखक ने उसके मुँह से ही उसके

---

१२८. वही, पृ० १२८
१२९. वही, पृ० १२९
१३० वही, पृ० १३०
१३१ वही, पृ० १३२
१३२ वही, पृ० १३२
१३३ वही
१३४ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० १२८
१३५. नयी समीक्षा, पृ० १९२
१३६ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, पृ० १२९

जीवन की कथा कहलवाई है। जमींदार के घर भैंस चराने से उसका जीवन प्रारंभ होता है। फिर वह जमींदार के रिश्तेदार फूल बाबू के साथ पटना में उनका नौकर बन कर आता है। फूल बाबू खुद सत्याग्रह आंदोलन में जेल जाने के बाद पूरे कांग्रेसी बन जाते हैं। वह फिर सत्याग्रह आश्रम के संचालक राधे बाबू की चाकरी करता है। बाद में विवाह कर घर-गृहस्थी चलाने लगता है। इसी बीच किसानों की जमींदारों से जमीन की लड़ाई छिड़ती है। वह भी संघर्ष के संगठन में लगता है। और अन्त में एक दिन रात को सोते में ही जमींदार के आदमी उसपर प्राणघातिक आक्रमण कर देते हैं।[136]

आलोचकों का कहना है कि अंत में उसके चरित्र में जो स्वरूप आ जाता है, जमीन के संघर्ष में वह जिस तरह नेतृत्व ग्रहण करता है और बुनियादी बातों की पकड़ उसमें जो दिखाई पड़ती है, उसकी पुष्टि के लिए और भी उपयुक्त पृष्ठ-भूमि का निर्माण आवश्यक था ताकि उसके चरित्र का यह विकास स्वाभाविक दीख पड़े।[137] अज्ञेय[138] का कहना है कि "इस उपन्यास में सम्पूर्णता नहीं है" और "कथा की दृष्टि से भी उसमें अभाव" है। किन्तु, यह सारी भ्रमात्मकता इसलिए पैदा होती है कि ऐसे आलोचक 'बलचनमा' का अध्ययन सही पृष्ठभूमि पर—बेजमीन किसानों की समस्या की पृष्ठभूमि पर नहीं करते। नागार्जुन के चरित्रों के माध्यम से न केवल बिहार, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के चरित्र बोल रहे हैं।[139] बलचनमा के चरित्र की यह सम्पूर्णता 'गोदान' के बाद के किसी भी चरित्र में नहीं है हालांकि उसकी आंशिक पूर्ति 'परती परिकथा' में एक हद तक अवश्य हुई है। आलोचकों ने उसके चरित्र की सूक्ष्मता को नहीं समझ पाने के कारण ही ऐसी आलोचनाएं की हैं।[140] बलचनमा के चरित्र की सभी विशेषताओं को एक छोटे से उपन्यास में उभारना संभव भी न था। उसके माध्यम से लेखक ने सन् १९३५ तक की बिहारी राजनीति को देखा है।[141] उसका यह स्वप्न है कि 'बलचनमा' का दूसरा भाग[142] वहां समाप्त होगा जब वह अपनी जमीन को स्वयं अपने ट्रैक्टर पर चढ़कर जोतेगा और बोयेगा। आज के जमाने को देखते हुए लेखक की इस कल्पना को अतिरंजित भी नहीं कहा जा सकता।

उपन्यासों की परंपरागत टेकनीक में विश्वास रखने वालों को 'बलचनमा' में 'घटनात्मकता' का अभाव दीखता है।[143] काल्पनिक जीवन-चित्र के अभ्यस्त व्यक्तियों को ऐसा लगना भी अस्वाभाविक नहीं। पर वास्तविकता यह है कि आज का आदमी

---

१३७ आलोचना (१४), पृ० ४८

१३८ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० २१०

१३९ आजकल, मार्च १९५३

१४० आलोचना (१४) पृ० ४८

१४१ हिन्दी उपन्यास पृ० १५४

१४२ बलचनमा—लेखक की टिप्पणी

१४३ अब तक अप्रकाशित

१४४ आजकल, मार्च १९५३, पृ० १५

जैसा अस्तव्यस्त और संघर्षरत है बलचनमा का चरित्र भी उसी तरह चित्रित है। यह सिर्फ उपन्यासकार की कल्पना की उपज नहीं है। वह इस बड़े देश के विशाल कृषक का 'टाइप' चरित्र है।

डा० नगेन्द्र का कहना है कि बलचनमा के 'बलिष्ठ व्यक्तित्व' को लेखक संभाल नहीं सका है। "भावों और विचारों की गर्मी से उसका अकाल प्रसव हो गया है।'[145] यदि उनका अर्थ बलचनमा के शरीर की बलिष्ठता है तो ठीक ही है। यदि ऐसा न होता तो जमींदार की मार खाकर उसका बचना संभव न था। यदि उसके बलिष्ठ चरित्र से उनका तात्पर्य है तो यह भी सही है। यशपाल संन्यासी[146] ने इसकी पुष्टि में कहा है कि बलचनमा की "ईमानदारी चारित्रिक दृढ़ता और समाजोपयोगी सार्थक परिश्रम को बड़ा-से-बड़ा अत्याचार भी नहीं मिटा सकता।" जमीन के संघर्ष के समय वह कहता है—"किसान और मौत का सामना सामना तो सदा ही होता रहता है।' इसीलिए वैसे खतरे के समय भी वह अपने में 'एक अनूठी ताजगी' महसूस करता और उसका 'सीना तन जाता' है। बलचनमा के बलिष्ठ किन्तु सरल व्यक्तित्व का इससे बड़ा परिचय और क्या हो सकता है।[147]

कुछ आलोचकों का यह भी कहना है कि "बलचनमा हिन्दी कथा-साहित्य को एक नूतन दिशा देता है।" निस्सन्देह, चरित्र विकास की दिशा में 'बलचनमा' 'एक नई दिशा' का संकेत करता है। बलचनमा प्रेमचन्द के गोबर का विकसित रूप है।[148] डॉ० प्रभाकर माचवे ने इसकी पुष्टि में कहा है कि 'बलचनमा में जनसाधारण की पीड़ा-दर्द और 'जनदृष्टि' के अवश्य दर्शन होते हैं। नागार्जुन ने अपनी इस कृति के द्वारा प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ाया है। बलचनमा टूट सकता है, पर झुक नहीं सकता। उसके चरित्र की यही विशेषता गौरव और मानवता हिन्दी कथा-चरित्रों को नई दिशा देती है। इस चरित्र की सृष्टि कर नागार्जुन ने हरिजनों को छोड़कर उसके खेत-मजदूर रूप की कहानी प्रस्तुत की है। वह यह भी दिखाने में सफल हुए हैं कि बलचनमा जैसा असभ्य और अनपढ़ मनुष्य भी उच्च मानवीय गुणों से विभूषित है।[149] चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने इसी बात के समर्थन में लिखा है कि 'बलचनमा' का अंत एक महान चरित्र के अंत जैसा प्रतीत होता है।[150] इस उद्धरण से यह भी जान पड़ता है कि बलचनमा की मृत्यु हो गई है। पर ऐसी बात नहीं, वह मार खाकर बेहोश ही गया है।

किन्तु, रचना-कौशल की दृष्टि से यह बात सही है कि बलचनमा कोई नया

---

१४५ वही

१४६ नया पथ अगस्त ५५

१४७ अध्ययन के विचार पृ० २१

१४८ वही

१४९. साहित्यधारा पृ० १६१

१५० जनयुग १९५३

प्रयोग नहीं है।[121] तथापि प्रेमचन्द की परंपरा का जो सामाजिक यथार्थ है उसका सच्चा निर्वाह बलचनमा में प्रथम हुआ है।[122] डॉ० नगेन्द्र की यह भी राय है कि 'भाषा और शब्दावली के स्थानीय प्रयोग' की दृष्टि से यह हिन्दी का पहला सफल उपन्यास है। इस उपन्यास की भाषा भी चरित्र-विकास में सहायक हुई है। इसमें पात्रोचित भाषा के प्रयोग और मिथिला के परिप्रेक्ष्य में भी चरित्र-विकास हुआ है।

डॉ० रामवेसायन पांडेय[123] ने होरी और बलचनमा के चरित्र विकास का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखा है, "सामाजिक व्यक्तित्व की व्याप्ति का जो रूप होरी में मिलता है, उसके दूसरे पहलू के दर्शन नागार्जुन के बलचनमा में होते हैं। राजनीतिक चेतना और सामाजिक संगठन के स्पष्ट प्रभाव के कारण ही यह रूप अधिक स्पष्ट हो सका है।' ये दोनों निम्नतम वर्ग चेतना के दो विभिन्न स्तरों के प्रतिनिधि और प्रतीक हैं। दोनों ही ग्रामीण वातावरण तथा उसकी सामाजिक संगठन प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं। बलचनमा मध्यवर्गीय चेतना की निम्नस्तरीय स्फूर्ति है।[124] किन्तु, इतना अवश्य है कि 'समाज का प्रवक्ता' होने के कारण वह पाठक की संवेदना नहीं पा पाता जबकि होरी वैयक्तिक समस्याओं के सामाजिक परिवेष्टन के कारण वह सहानुभूति पाने में सफल होता है।

जितेन्द्र रेणु

जितेन्द्र 'परती परिकथा' का 'हीरो' है। उसका चरित्र-वर्णन पर्याप्त सुंदर और सशक्त हुआ है।[125] गाँवों के बहिष्ठ एवं सामंती-स्वार्थ के कीचड़ में वह कमल जैसा लगता है। रेणु ने उसका चित्रण किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर नहीं बल्कि तटस्थ होकर किया है।[126] जितेन्द्र के चरित्र में बड़ी उदारता सहायकता विनम्रता सरलता एवं लोककल्याण की भावना है। वह अपने कारिन्दे जमादारीलाल के जुल्मों से गाँव की रक्षा भी करता है।

डॉ० रामविलास शर्मा[127] ने जितेन्द्र के चरित्र की तुलना इलियट के 'वेस्टलैंड' के मछुआ राजा से की है। श्री शर्मा उसे फ्रायड चिकित्सालय का 'आउट डोर पेशेंट' मानते हैं जिसे इलियट की 'काकटेल पार्टी' की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हैं और जिसके बाग में "एक नयी जाति का नागफनी उग आया है।" राजा कामरूप नारायण उसे

---

१२१ वही

१२२ आजकल, मार्च, १९५९

१२३ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १४८

१२४ वही

१२५. हिन्दी उपन्यास, पृ० ११८

१२६ हिन्दी उपन्यास (श्रीवास्तव), पृ० ४०१

१२७ समालोचक, अगस्त '५९, पृ० ७

'हिजड़ा' कहते हैं। "धरती बाहर ही नहीं जितन के भीतर भी है।"[148] जितन स्वयं भी कहता है— प्राण नहीं अनुभूति नहीं अब मनुष्य को यंत्र चला रहा है।"[149] इसीलिए "इस समाज को मानवीय और मनुष्य को सामाजिक बनाना ही मुक्ति का एकमात्र पथ है।" अंत में कई संघर्षों के बाद उसके 'मन की धरती' टूटती है माघ मास की लंबी रात' कटती है और ग्रामीणों के मन में 'पवित्र प्राण' फूटता है।[150]

जितन को देखने से यह भी स्पष्ट होता है कि वह शेखरवादी परंपरा से बहुत कुछ मिलता-जुलता चरित है।[151] होरी की अपेक्षा शेखर और चमचन्द की तुलना में अप्रेय उन्हें अधिक प्रिय हैं। फिर भी जितन के व्यक्तित्व में भविष्य के औपन्यासिक नायक की सारी संभावनाएं वर्तमान हैं हालांकि उनका विकास 'धरती परिकथा' में नहीं हुआ है।

इस परिकथा में धरती को ही हीरो मानना चाहिए यद्यपि देखने में जितन और ताजमनी नायक-नायिका का पद अवश्य ग्रहण करते हैं।[152] इसका कारण यह है कि इस कृति में कथानक और चरित्र की योजना स्वतंत्र नहीं है—वह सम्पूर्ण जीवन चित्र का अंग बनकर आई है। इसे भी लेखक का 'विकासमान सफल चरण' कहा जा सकता है। अकेले जितन में शरत के सव्यसाची रवीन्द्र के गौरमोहन और प्रेमचंद के सूरदास का अदम्य साहस और व्यक्तित्व है यद्यपि वह इन सबकी अपेक्षा अधिक मितभाषी धीर और धीर-स्वभाव का है।[153] समाजमुखी और उदारमना ताजमनी उसी के उपयुक्त है और उसके चरित्र को विकास देती है। रिफ्यूजी लड़की इरावती ने भी उसे कभी नीचे नहीं गिराया। वह भी जितन के लिए आस्था का प्रतीक प्रेरणा का स्रोत है।[154]

मीरात ने जितन के चरित्र-विकास पर आक्षेप किये हैं। उनका कहना है कि आज की यथार्थ दुनिया में ऐसे 'बंधु' संभव नहीं। उन्होंने उसे 'हाड़मांस का स्पन्दनशील प्राणी नहीं बल्कि कठपुतली' माना है।[155] जितन को 'अति अतिरंजित' अति उत्तुंगित किन्तु यथार्थ में 'बौना' और 'कठपुतली' कहकर भी आलोचना की गयी है।[156] यह भी कहा गया है कि उसके चरित्र को "अस्पष्टता वह दुधारी तलवार है जो किसीका भी भला नहीं कर सकता"।[157] उपन्यास एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व एक परिलष्ट

---

१४८ वही
१४९ वही
१५० धरती परिकथा
१५१ लेखक को रेणु का कथन
१५२ आज (साहित्य विशेषांक ५८) पृ० १२
१५३ वही
१५४ अजन्ता अप्रैल '५७ पृ० ८
१५५ कल्पना, फरवरी १९५८ पृ० ११
१५६ वही
१५७ वही

व्यक्तित्व, एक जीवन-द्रष्टा और एक भविष्य-द्रष्टा की माँग करता है।[१६८] इसीलिए लेखक की यह कहकर भी आलोचना की गयी है कि उसी आदर्श की पुष्टि के लिए जितन जैसे एक पुराने सामंती मूल्यों के पोषक विलासी अहंवादी आचारहीन आस्था-हीन और जनविरोधी व्यक्ति को 'गुणों की खान' बनाकर पेश किया गया जिसका आधार लेखक की भ्रांत धारणाएं और जीवन की कच्ची समझ ही है। इसके विपरीत प्रो० गोपीकृष्णप्रसाद जितन को 'पूर्ण' और 'सुगठित' चरित्र मानते हैं जिसका चित्रण 'प्रौढ़' और 'वास्तविक' है।[१६९] भोपतराम जी की बुनियादी भूल यह है कि उन्होंने 'परती परिकथा' के मूल स्वरूप की अवहेलना करके जितन के चरित्र की समीक्षा परंपरागत उपन्यासों के मानदण्ड के आधार पर की है जिसे आलोचना-सिद्धान्तों का गलत प्रयोग ही कहा जा सकता है।[१७०] जितन का चरित्र गांव के भूतपूर्व जमींदारों के रईस बेटों की तरह अवश्य लगता है जो डीकिया हैंटर बजाते हैं, कोसी के किनारे किनारे पैसी परती पर अपनी बंदूकों से 'आहा' चिड़िया का शिकार करते हैं, दरवाजे पर चंदा मांगने के लिए आये राजनीतिक कार्यकर्ताओं से राजनीति पर बहस ठानते हैं और बाप की बढ़ाई नटिनों में से किसी एक को प्यार भी करते हैं।

जितन रेणु के 'मैला आंचल' के डाक्टर प्रशांत का विकसित रूप है। जितन का रिसर्च भी डाक्टर प्रशांत की तरह पूरा हो गया है—एकदम कम्पलीट। वह इस परती धरती में गुलाब उपजाएगा, प्रकाश की खेती करेगा।

कुछ प्रतिनिधि अविकसित चरित्र

जालपा प्रेमचन्द

जालपा के रूप में प्रेमचन्दजी ने एक भारतीय नारी को व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा की है। एक भारतीय नारी उसमें चाहे जो कुछ भी अवगुण हों अपने कारण अपने पतिदेव को कष्ट नहीं देना चाहती है। किन्तु जालपा को एक ऐसी नारी के रूप में लेखक प्रस्तुत करता है, जिसके कारण उसके पति को भटकना और भागना पड़ा। लेखक ने जिस घर में उसे जन्म दिया उसका वातावरण ऐसा बनाया कि उसे केवल आभूषणों से ही प्रेम है। क्या माता और क्या दादी सभी आभूषणों की ही बातें करें। कच्चे किस्सोरी चन्द्रहार की पसन्द का एक बिन्दु उन्होंने इतना बड़ा महल खड़ाकर खड़ा कर दिया जिसकी भूल-भुलैया से उसके पतिदेव का निकलना कठिन हो गया। जालपा की हार-चाह को ही लेखक ने इतना महत्व दिया कि वह उसके जीवन का ध्येय बन गया। लेखक ने नारी की आभूषणप्रियता को सीमा से बढ़ा दिया। एक चन्द्रहार के अभाव में जालपा के विवाह के प्रारंभिक दिनों को

---

१६८ वही

१६९. आलोचना (१४), पृ० ७०

१७० वही

नीरस ही नहीं कष्टमय भी बना दिया। वह इन गहनों के लिए अपनी जन्म देने वाली मां से ईर्ष्या करने लगी, उसके प्रति असंतोष की भावना को जन्म दिया। अपने पति से यह कहते हुए भी कि मेरे लिये कर्ज मत लो मैं वेश्या नहीं घर के प्राणियों को संकट में डालकर गहने पहनने वाली मैं नहीं आदि आदि फिर भी वह कर्ज पर आभूषण लेने को प्रिय पति से सहमत हो जाती है। कंगन भी उधार ही खरीदे जाते हैं। एक के ऊपर एक कर्ज से आभूषण लेने के लिये अग्रसर होती जाती है और हासविलास के जीवन में धन का अपव्यय करती है। यों तो वह बड़ी मान वाली बनती है किन्तु इन आभूषणों के लिए पति द्वारा किये जाने वाले अपव्यय और भ्रष्टाचार की ओर से आँखें मूँदे रही। वह आभूषणों के लिए अंधी दिखलाई गई कि वह अपने पति की आर्थिक स्थिति इतने समय तक उनके साथ रहकर भी न जान सकी। इतना ओछा उसे उसके स्रष्टा लेखक ने बनाया? यह सच है कि उसके पतिदेव उससे बढ़ा-चढ़ाकर वैभव की बातें करते थे पर क्या वह इतनी बुद्धू थी कि वह अपनी आँखों से इतने काल तक घर का समस्त हाल चाल देखकर भी वास्तविक स्थिति नहीं जान सकती थी? लेखक ने जान-बूझकर उसको सीखने नहीं दिया।

पति को कितनी बार उसने चिन्ताग्रस्त देखा करवट बदलते देखा किन्तु कभी भी जालपा उनकी असली दशा जानने के लिए व्यग्र न हो सकी। क्या सचमुच वह आभूषणों और विलास को इतना प्रेम करती थी कि प्रिय की विकलता भी उसे स्पर्श नहीं कर सकती थी? यह बिलकुल झूठ है। उसके विधाता ने उसे इतना हीन नहीं रखा अन्यथा वह आगे जा महान कार्य कैसे करती जिसे उसने किया। उसे इतनी समझदारी दी गई कि वह यह अनुमान लगा सकती कि उसके पति की कितनी आयु होगी और वह कितना दैनिक व्यय करे। आभूषणों का प्रेम तो हो सकता था। बचपन से हुदी कांच के हार से आकर्षित होकर संभवतः वह जीवन में हार का वरण करने वाली बनी। पर इतनी विलास-प्रियता और फिजूलखर्ची कहाँ सीखी उसने? क्या यह सब आभूषण-प्रियता के परिणामस्वरूप था।

लेखक यह मानता है कि जालपा को अपने पति से प्रेम है और सच्चा प्रेम है। उसी की रसायन से तो वह अपने पति को फिर पा सकी। पर प्रारंभिक जीवन में ऐसे दृश्य कैसे कर सकी जिनसे वह अपने पति की दृष्टि में और स्वयं अपनी दृष्टि में ही गिरी हुई रही।

यदि लेखक को उसमें इतना ही शुद्ध प्रेम दिखलाना था तो मां के भेजे हुए आभूषणों को ही उसे ले लेने दिया जाता कम-से-कम उसके पति तो आने वाले संकट से बच जाते।

मां की वस्तु तो बेटी ले सकती थी और संकोच रहित हो सकती थी और इससे उसके मायके के बड़प्पन की धाक भी जम जाती। पर वहाँ उसे मान में और संकोच में डाल दिया और इस प्रकार पति पर संकट लाने का कारण उसे ही बना दिया गया।

लेखक उसके पति को संकट में डालकर ही उपन्यास का ताना-बाना बुनना

चाहते थे क्योंकि उनके विश्वास का संसार उसी पर खड़ा हो रहा था। पर वे संकट थे जो और माध्यमों से भी टाले जा सकते थे। उसी के ऊपर सारा पाप लेखक ने क्यों डाला। उसे ही अपयश की पिटारी क्यों बनाया। जबकि जालपा ने सदैव अपनी तीव्र और तत्पर बुद्धि का परिचय दिया है। साथ ही उसने अपनी वास्तविक त्यागवृत्ति को भी खोने नहीं दिया। माँ का भेजा हुआ हार उसने लौटा दिया गबन से बचाने के लिए उसने गहने तुरन्त बेच दिये पति के चले जाने पर उसने विलास की सारी वस्तुएं गंगाजी में बहा दीं। विवाह के प्रारंभिक दिनों में उसे इतना आभूषण प्रेमी दिखाया गया कि आभूषणों के अभाव में पति के प्रेम की अवहेलना करके मातृ-गृह जाने को तैयार हो गई और पति के चले जाने पर एक साथ इतना परिवर्तन आ गया कि पिता के लिवाने आने पर भी उनके साथ न गई। पति के पाप का प्रायश्चित करने के लिए अपने समस्त सुखों को लात मारकर दिनेश अपराधी के घर सेवा की। उसकी यह सद्वृत्ति पति से विलग होने से पूर्व क्या कहीं भी प्रकट नहीं होती? उस पूर्व के चरित्र और उत्तरकालीन चरित्रों में इतना वैषम्य? लेखक ने उसके बीच में भी कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ दिखाने के लिए मोड़ दिए हैं।

आभूषण के मूल्य कम करने के लिए जहाँ माँ और पति संकोच करते हैं वहाँ वह उस दलाल के पास पहुँचा दी जाती है और उससे सीधे बातें करने लगती है। रतन को जो वह कंगन बेचती है क्या लेखक उसे पहले ही नहीं दिखला सकता था। इन बातों से स्पष्ट विदित है कि लेखक ने उसके प्रारंभिक चरित्र को कुटिल बनाया है और अनुचित रूप से उसे आभूषण-विरोधी उपदेशात्मक प्रवृत्ति की घोषणा करने के लिए बलि का बकरा बना दिया गया है।

कलकत्ते में उसे ले जाकर उससे जो पुरुषार्थ के कार्य कराये गये हैं वे तो उसके मन को भाने वाले लगते हैं पर पति के साथ उसे वहाँ भी अनुचित अवसर पर मान करने वाली चित्रित करके उसपर बड़ा आघात किया गया है। उसका पति उससे मिलने वहाँ आया और यह जानते हुए भी कि वह विपत्ति में फँसा हुआ था उसे सहानुभूति की आवश्यकता थी वह उससे अजनबी के भाव से मिल सकी संकटकाल में ऐसा मान क्या उचित था। उसे फिर लेखक ने उसके पति के चले जाने पर पछताया है और उसे उसका चरित्र उसके शब्दों में यों दिया गया—

"विलासिनी रूप में वह केवल प्रेम के आवरण के दर्शन कर सकी थी। आज त्यागिनी बनकर उसने उसका असली रूप देखा। कितना मनोहर, कितना विशुद्ध कितना विशाल कितना तेजोमय। विलासिनी ने प्रेमोद्यान की दीवारों को देखा था वह उसी में खुश थी। त्यागिनी बनकर वह उस उद्यान के भीतर पहुँच गई थी, कितना रम्य दृश्य था कितनी सुगन्ध कितना वैचित्र्य कितना विकास इसकी सुगन्ध में इसकी रम्यता में देवत्व भरा हुआ था। प्रेम अपने उच्चतम स्थान पर पहुँचकर देवत्व से मिल जाता है। अब कोई शंका नहीं है इस प्रेम को पाकर वह जन्म-जन्मान्तरों तक सौभाग्यवती बनी रहेगी। इसी प्रेम ने उसे विषम परिस्थिति और मृत्यु के मुख से मुक्त कर दिया। उसे अभय दान कर दिया। इस प्रेम के सामने अब सारा संसार और उसका

मसख वैभव तुच्छ है।"

लेखक अपनी प्रारंभिक कृतियों में सुधारवादी विचारों में विश्वास करता हुआ देखा गया है। अतएव वह आश्रम खुलवाता है। लेखक की यह प्रवृत्ति जालपा के साथ भी पायी जाती है। यद्यपि नाम उन्होंने आश्रम का नहीं दिया फिर भी अन्त में उसके सास-ससुर देवीदीन रतन, जोहरा सबको एक स्थान पर खेत-बयार में बसाकर आश्रम का ही रूप दिया गया है। क्या वह अपने पति के साथ परिमार्जित की हुई ऊंची नैतिक भूमि पर प्रेममय वातावरण में नौकरी के नागरिक क्षेत्र में ही नहीं रह सकती थी। पर क्या किया जाय लेखक को अपने आदर्श से प्रेम था और उसके लिये उसने जालपा को उस आश्रम में धकेल दिया, वहां उस आश्रम को भी लेखक ने पूरा नहीं बनाया।

फिर जोहरा को डुबाने में भी क्या लेखक ने जालपा की क्षुद्रता का ही सहारा लिया था। वह तो उससे प्रेम करने लगी थी पर उसकी क्षुद्रता को उसके लेखक ने अपनी क्षुद्रता क्यों बना लिया? उसे निर्द्वन्द्व करने के लिए ही प्रौपन्यासिक न्याय का सहारा लिया गया है। लेखक ने इस प्रकार अपने साथ भी अन्याय किया है। लेकिन यह सच है कि लेखक ने जालपा के चरित्र की संभावनाओं को प्रकाश में लाकर भारतीय नारी का गौरव बढ़ाया और स्त्री जाति को यह अवसर दिया कि वह अपनी अन्तरात्मा के प्रकाश को दीख सके।

कुमारगिरि भगवतीचरण वर्मा

'चित्रलेखा' उपन्यास में कुमारगिरि और बीजगुप्त की कथा केवल 'पाप और पुण्य' की व्याख्या करने के लिए प्रस्तुत की गई है। कुमारगिरी एवं बीजगुप्त को योगी और भोगी दो प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में खड़ा करके दोनों के आचरणों के सदर्भ में पाप और पुण्य की परिभाषा प्रस्तुत की गई है या महाप्रभु रत्नाम्बर के शब्दों में परिभाषा को असम्भव बताया गया है।

रचयिता ने प्रत्यक्ष या परोक्ष जितनी सहानुभूति भोगी बीज गुप्त को दी है उतनी उसने योगी को नहीं दी है। इसके बावजूद बड़ी चतुराई से महाप्रभु रत्नाम्बर के वेश में स्वयं रचयिता ने श्वेतांक और विशालदेव बीजगुप्त और कुमारगिरि इन दोनों के बीच या इन दोनों के परे सत्य रूप में स्थित होना चाहा है।

कहने को तो यह कथा दो आदर्शों को तौलने का प्रयास है दो दृष्टियों का द्वन्द्व है—दो पात्रों या दो व्यक्तियों का नहीं। यदि बीजगुप्त को आदर्श भोगी के रूप में प्रस्तुत किया गया तो कुमारगिरि को आदर्श योगी के रूप में किया जाना चाहिए था। फिर पाठकों पर छोड़ दिया जाता कि वह तय करें कि कौन 'पापी' है, कौन 'पुण्यात्मा'। लेकिन रचयिता के पूर्वाग्रह ने ऐसा नहीं होने दिया है। वह कहता तो अपने को तटस्थ है परन्तु बीच-बीच में अनायास ही कुमारगिरि योगी के स्थान पर कुमारगिरि पाखण्डी की झांकी देता जाता है। जैसे योग मार्ग का मार्ग-अवलम्बन करना पाखण्डी दम्भी और अहंकारी होना है। यह छिपा हुआ पूर्वाग्रह आरम्भ से ही काम करता है। महाप्रभु रत्नाम्बर जब उसका परिचय देते हैं तो विशालदेव से कहते हैं—"कुमारगिरि

योगी है—उसका दावा है कि उसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पा ली है। इस 'दावा' शब्द पर ध्यान दीजिए। इससे ध्वनि निकलती है कि योगी कुमारगिरि में नहीं केवल दम्भ है, पाखण्ड है सत्य नहीं। उसका सारा योग केवल दिखावे के लिए है।

प्रश्न यह है कि क्या योगी कुमारगिरि ऐसा ही है? और अगर वह ऐसा है भी तो इसमें योग और योग-मार्ग का क्या दोष? यदि एक योगी दम्भी या भ्रष्ट है तो इससे योग-मार्ग कैसे भ्रष्ट समझा जाय? इसी कारण ऐसा लगता है कि लेखक ने कुमारगिरि पर जानबूझकर पाखंड के छींटे डाले हैं। इसी तरह अन्तिम निर्णायक महाप्रभु रत्नाम्बर जैसे व्यक्ति को रखा गया है जिसके सिद्धान्त बीजगुप्त से तो मेल खाते हैं और कुमारगिरि के विरुद्ध पड़ते हैं। सच पूछा जाय तो बीजगुप्त तो रत्नाम्बर का शिष्य ही है। परिणामतः साधारण पाठक को अपना तादात्म्य महाप्रभु रत्नाम्बर से स्थापित करता है, अनायास ही बीजगुप्त के अधिक निकट हो जाता है और कुमारगिरि से दूर। सारे वृत्तान्त में बीजगुप्त के मन में बैठकर कथाकार उसे तो भीतर से देखता है जबकि कुमारगिरि को केवल बाहर से। सारी कथा में ऐसा लगता है कि रचयिता कुमारगिरि के आन्तरिक हृदय से अपरिचित है—केवल उसकी मुख मुद्राएँ देखता है। विलास और वासना के दो अंशों की तुलना की जाय। आरम्भ में बीजगुप्त का विलास है जो मदिरा के छलकते प्यालों के बीच कितना कामीन, कितना दार्शनिक और सहज रंगा गया है।

प्रत्येक मनुष्य की कमजोरी की तरह कुमारगिरि के जीवन में भी भूल वासना या पाप का एक क्षण आता है। वह योगभ्रष्ट हो जाता है। लेकिन उसका यह स्खलन संभवतः भावुक भोगी बीजगुप्त की तुलना में शायद कम है। लेकिन योग भ्रष्ट कुमारगिरि को उस क्षण रचयिता ने केवल बाहर से देखा—पागल की तरह बकते हुए, विकृत मुद्राएँ बनाते हुए वासना-पशु जैसा। योगी की मर्यादा का जो लौकिक प्रताप उमड़-उमड़कर उसकी पलकों से टकरा रहा था उसके ऊपर कथाकार ने पर्दा डाल दिया। कुमारगिरि मनुष्य था और किस शक्ति से तपकर वह ऊँचा चढ़ा उसी क्षण में वह मात्र पशु दिखलायी पड़ता है। यदि वह उस क्षण में नहीं गिरता तो उसका चरित्र सचमुच कृत्रिम और हाड़-मांस-हीन कठपुतली का हो जाता और बीजगुप्त जो केवल लालसा वासना उन्माद और मादकता, इसके अतिरिक्त दूसरे कोई शब्द ही नहीं बोलता अपने पतन के क्षण में बड़ा त्यागी महात्मा दिखलाई पड़ता है। यह बात दूसरी है कि उसके जीवन का अन्तिम क्षण बड़ा ही पवित्र और महान दिखलाया गया है, जो स्वाभाविक भी हो सकता है।

कुमारगिरि के चारित्रिक विकास में लेखक ने स्वाभाविक गति से कार्य नहीं लिया है यह सच है। वह जैसा था यदि उसे उसी रूप में पहले लिया जाता तो संभवतः उसका चरित्र प्रभावोत्पादक बन जाता। उसकी कहानी बहुत सरल और सीधी है। वह योगी था ईश्वर में रमने वाला। संसार के माया-बंधनों से अलग सत्य का अन्वेषी। संयोग से वह योगभ्रष्ट हुआ। किन्तु इस अवस्था के बाद उसकी आँखें खुलती हैं। वह

पुनः अपनी तपस्या और साधना से अपने को जो बदलता है। स्वस्थ होते ही अपने पाप को तिलांजलि दे दी। लेखक का मत है कि पाप-पुण्य संबंधी बीजगुप्त की दृष्टि ही विकृत है और बीजगुप्त के समान्तर हैं। कुमारगिरि अपने शिष्य विशालदेव को आरम्भ में कहता है—"वासना पाप है जीवन को कलुषित बनाने का एक मात्र साधन है।" बीजगुप्त के अनुसार अगर यह परिभाषा गलत है तब तो जीवन के उसी एक मात्र साधन में उसके पुण्य किया। अगर यह परिभाषा सही हो तो उसकी दृष्टि कहाँ विकृत है ? अन्याय यह है कि उसके पतन का सम्पूर्ण कथा में वर्णन किया गया है लेकिन उसके मानसिक संताप और द्वन्द्व का उत्थान करने के लिए उसके पीड़ामय प्रयास का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

चित्रलेखा से अपमानित और लांछित होने के बाद जब उसके भीतर की उज्ज्वल तेजस्विता सहसा फूटकर निकल पड़ी थी और उसने पूरी शक्ति पूरे आत्मविश्वास के साथ कहा था—"जाओ नर्तकी जाओ।" इन शब्दों में केवल अपमान का प्रतिशोध नहीं था इसमें था ज्ञान का फूटता हुआ प्रकाश भविष्य में स्थिर और सत्य मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प बादलों को फाड़कर निकलते हुए सूर्य की अभ्युत तेजस्विता। यह उसके विशाल हृदय की उदारता की कहानी है।

परन्तु उस कथा को कहने की आवश्यकता नहीं समझी गई। केवल उपन्यास के अंत में एक वाक्य विशालदेव के मुख से सूचना दिला दी गई है कि योगी कुमारगिरि प्रणित है, उन्होंने ममत्व को वशीभूत कर लिया है वह संसार से बहुत ऊपर उठ चुके हैं। परन्तु प्रणित होने का, ममत्व को वशीभूत करने का संसार से ऊपर उठने का क्या अर्थ होता है इसकी अनुभूति पाठक को नहीं होती है। और महाप्रभु रत्नाम्बर के लिए तो जैसे ये सब कुछ मात्र शब्द-जाल हैं, जिनका कोई तात्पर्य नहीं। कुमारगिरी की कथा के आवश्यक अंशों को घटाकर और पतन की एक घटना का विशद वर्णन करके उसके विकास को अवरुद्ध किया गया है। यह भी तब जब उसने वासना को पाप मानकर उसकी भर्त्सना-सी की है, बीजगुप्त की तरह उसपर सिद्धांत और आदर्श का आवरण चढ़ाकर उसका समर्थन करने की कोशिश नहीं की है।

पार्थिव की माया बीजगुप्त के जीवन-दर्शन में ज्यादा है। कुमारगिरि की परिभाषा में नहीं। इसीलिए लाख चाहने पर भी बीजगुप्त वासना का खुला समर्थन नहीं कर पाता। कुमारगिरि से प्रभावित होकर, वासना से प्रेरित चित्रलेखा जब उसके पास आती है तब बीजगुप्त विचलित हो उठता है और तड़पकर चित्रलेखा से कहता है—"जो तुम कहती हो वह ठीक हो सकता है। मैं उसका विरोध नहीं करता। यह तो अपना विश्वास है, पर इतना यहाँ पर कह देना अनुचित न होगा कि उन्माद और ज्ञान में जो भेद है वही वासना और प्रेम में है। उन्माद अस्थायी होता है और ज्ञान स्थायी। कुछ क्षणों के लिए ज्ञान लोप हो सकता है पर वह मिटता नहीं। जब पागलपन का प्रहार होता है, ज्ञान लोप हुआ विदित होता है पर उन्माद बीत जाने के बाद ही ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। यदि ज्ञान अमर नहीं है तो प्रेम भी अमर नहीं है। पर मेरे मत में ज्ञान अमर है—ईश्वर का एक अंश और साथ ही प्रेम भी।"

न्यायपूर्वक विचार किया जा सकता है कि क्या ये शब्द बीजगुप्त के मुख से शोभा पाने योग्य हैं ? उस भोगी बीजगुप्त के मुख से जिसका परिचय महाप्रभु रत्नाम्बर यों देते हैं कि उसके हृदय में संसार की समस्त वासनाओं का निवास है, ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं शायद उसने कभी ईश्वर के विषय में सोचा तक नहीं रत्नजटित मदिरा पात्रों में ही उसका सारा सुख है ? कितनी चतुराई से यह बीजगुप्त वासना और प्रेम में तात्विक भेद करके अपनी वासना को अमर और चित्रलेखा की वासना को उन्मत्त एवं क्षणिक सिद्ध करता है। कुल मिलाकर बीजगुप्त का सिद्धांत इतना ही निकलता है वासना अगर अपने में हो तो पुण्य है दूसरे में हो तो पाप है, और यही बीजगुप्त के योग संबंधी पाखण्ड का स्रोत है।

कुमारगिरि के चरित्र के साथ जो अन्याय हुआ उसका एकमात्र कारण यही है कि कथाकार ने उसे एक कसौटी पर कसा है। और बीजगुप्त को दूसरी पर। वही सिद्धांत और मर्यादाएं जब कुमारगिरि रखता है तो उसे थोथी दलील और तर्क-लचित कहा जाता है, वही बातें जब बीजगुप्त कहता है तो उनमें ऐसा स्वर भर दिया जाता है जैसे निरभ्र आकाश में आकाशवाणी हो रही है। जब वह ऐश्वर्य और वैभव को त्याग करके कठिन तपस्या के मार्ग का अवलम्बन करता है तब कहा जाता है कि वैराग्य और संन्यास वृत्ति जीवन के नियमों के प्रतिकूल चलना है अपने सुख के लिए संसार की बाधाओं से मुख मोड़ लेना है लेकिन बीजगुप्त सारे ऐश्वर्य को छोड़कर, भिखारी बनकर चित्रलेखा के शब्दों में अथाह संसार में केवल प्रेम की नौका पर बैठकर निकल पड़ता है तब जीवन् की अवहेलना नहीं होती। तब तो यह सारा इन्द्रजाल बीजगुप्त को देवता और त्यागमूर्ति बना देता है। उसके हृदय की विशालता सिद्ध करता है। बीजगुप्त जो कुमारगिरि के आदर्श मार्ग पर ही पैर रखे जाने वाला पथिक माना जा सकता है, किन्तु उसके ही दृष्टिकोण से यही कुमारगिरि केवल पलायन का अपराधी नहीं ठहराया जा सकता है।

कुमारगिरि के योग-मार्ग को केवल वैयक्तिक सुख से प्रेरित बतलाया गया है। जिस असीम शान्ति की साधना योगियों का लक्ष्य है उसे भोग के सुख के समानान्तर रखना भावुक पूर्वाग्रह है। शायद इसी पूर्वाग्रह के कारण कथाकार उसके मानस में पैठ नहीं पाता और इस स्थल पर उसे सत्य की खोज में हारता हुआ दिखलाता है। परन्तु यह उसकी हार नहीं है ज्ञान ही अधूरा है जबकि वह उसकी कथा कहकर सिर्फ इतना सिद्ध कर पाता है कि योग अधूरा है। और जितना ही वह पथ को अधूरा सिद्ध करने में विफल होता है उतना ही झल्लाकर उसके चरित्र को तोड़ता-मरोड़ता है जिससे उसके स्वाभाविक स्निग्ध विकास में बाधा होती है।

जयन्ती जोशी

'संन्यासी' उपन्यास की 'जयन्ती' का अंत आत्महत्या से होता है। उसने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगाकर आत्महत्या कर ली। लेखक ने अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए उसकी आत्महत्या करवा दी। लेखक ने उसे वह स्वतंत्रता ही नहीं

दी कि वह स्वतंत्र जीवन जी सके। उसने तो उसे अपने मन के भीतर अनेकों चक्करों के बीच उलझा रखा था। उपन्यास का समस्त कथानक कहता है कि आत्महत्या इस लिए नहीं कि उसके पतिदेवता नन्दकिशोर वाजपेयीजी उसपर अविश्वास करते थे अथवा यह कि वह स्वयं किसी भी रूप में कैलाश से साथ-सम्बन्ध रखती थी। वह एक सहज नारी है और अपनी नारी सुलभ-प्रकृति के अनुसार वह नन्दकिशोर के भ्रम को तो दूर कर ही सकती थी उनकी हर ज्यादती बर्दाश्त कर सकती थी किन्तु वह मजबूर थी क्योंकि उसके निर्माता लेखक ने उसे उसकी निजी स्वाभाविक गति पर न छोड़कर अपने पूर्व निश्चित आग्रह में बांध रखा था। उसकी मृत्यु अकाल मृत्यु-सी हुई है। और उसकी काया जबरदस्ती जला दी गई है।

यदि उसके चरित्र का अध्ययन निकट से किया जाय और संन्यासी उपन्यास में उसे जिस प्रकार का रूप दिया गया है उसपर ध्यान दिया जाय तो लगता है कि वह एक सजीव चेतन व्यक्ति मानवी न होकर एक मनोवैज्ञानिक टाइप के रूप में चित्रित की गई है। लेखक ने शान्ति जैसे पात्र को जहाँ संतों की श्रेणी में रखने का प्रयास जबरदस्ती किया है वहाँ उसे और रामबदरी को जान-बूझकर दो विभिन्न मनोवैज्ञानिक टाइप के रूप में बलपूर्वक ढालने की चेष्टा की है। गिल्टी कामप्लेक्स अर्थात् अपराध ग्लानि की मूर्ति-सी उसे जिस परिधि में रखकर लेखक ने चित्रित कर लिया है वह 'गिल्टी कामप्लेक्स' उसमें जरा भी नहीं है। उसके विपरीत उसके पतिदेव श्री नन्दकिशोर वाजपेयी में स्वभावतः निम्नस्तर की मनग्रंथियाँ हैं। वह ऐसा व्यक्ति है, जिसमें न तो रीढ़ की हड्डी है न आत्मसंयम। न तो विवेक है और न जीने और सोचने की उप लब्धि से संतुष्ट अथवा गतिशील होने की शक्ति। यदि देखा जाय तो नन्दकिशोर में न तो एक अच्छे प्रेमी होने के तत्त्व हैं और न पति होने के न तो विचारक का ही गुण है और न भावुक होने का। वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें न तो समाज में पाया जा सकता है और न किसी इतिहास में क्योंकि उनमें प्रत्येक क्षण नई कुंठायें जन्मती रहती हैं और ऐसी जन्मती हैं जैसे पिछले का संस्कार उनपर पड़ता ही नहीं है। यदि वह केवल उपन्यास में ही विरचित और चित्रित नायिका न होकर समाज की होती और उसके जीवन-तत्त्वों को लेकर लेखक ने उसकी असलियत पहचानी होती तो जिस नन्दकिशोर के प्रति उसे उपन्यास में आकर्षित होता दिखलाया गया है, शायद उसकी ओर वह फूटी आँखों भी नहीं देखती। इसका पहला कारण तो यह है कि नन्दकिशोर समाज का जीवन्त तत्त्व नहीं है। वह लेखक का गढ़ा हुआ व्यक्ति है। उसे न तो ब्रह्मा ने बनाया है और न समाज ने। वह ऐसा कागजी आदमी है जिसके लिए शान्ति भी उतनी ही रहस्यमयी मायाविनी और लुभावनी है जितनी कि वह अथवा कोई और स्त्री। ऐसा व्यक्ति आज या आज से दस-बीस वर्ष पूर्व किसी भी स्त्री का प्रिय पात्र नहीं हो सकता था। स्त्री पुरुष के पुरुषत्व और उसके साहस धैर्य और विवेक से प्रभावित होती है। उसकी सरलता-सुघरता के प्रति आकर्षित होती है। नन्दकिशोर में इन दोनों में से कोई भी गुण नहीं है। न तो वह जीवन से प्रेरणा लेकर अपने पुरु- षत्व पर जी सकता है और न उसमें वह सरलता और सुघरता ही है जो सहसा

किसी भी नारी को मोहित कर सके। वह एक अमरबेल के समान है जिसकी अपनी जड़ें नहीं हैं पर जो दूसरों पर पेरासाइट बनकर जीने में इतना दक्ष है कि भैया, भाभी और जयन्ती शान्ति सबसे केवल अपनी रुचि के अनुसार लेकर उन्हें त्यागने में दक्ष है। कायर इतना है कि भैया के दिये हुए रुपये के बल पर वह शान्ति को भगा लाता है और भैया की डांट-फटकार के सामने उसे भुला भी सकता है। दूसरी शादी रचा सकता है और फिर भी आदर्शवाद पर बढ़िया से बढ़िया व्याख्यान दे सकता है।

लेखक ने जयन्ती के साथ एक और अन्याय किया है। वह उसके संकोचशील स्वभाव की पृष्ठभूमि में उसकी स्वाभाविकता को आँक सकने में पूर्णतया असफल रहा है। उसकी सहज प्रस्फुटित हँसी और लज्जा को रुचि और प्रेम के स्तर पर आँककर व्यर्थ के अर्थों में बाँध लेखक ने मन के लड्डू खाने की चेष्टा की है। यदि वह रहस्य मयी दृष्टि से नन्दकिशोर को देखती भी है तो वह बात भी स्वभाव की विवशता की न कि किसी प्रकार प्रेम की। लेकिन लेखक ने तो एक तरफा बात की है। नन्दकिशोर जिसके प्रति उसका दृढ़ विश्वास है कि वह मात्र अवसरवादी मित्र रहित और व्यवहार हीन है उसे एकांगी प्रेम का वह चित्र दिखलाया है कि बेचारे की तबीयत हरी हो गई है। सारे उपन्यास में नन्दकिशोर का 'मैं' ऐसा प्रताप है कि उसे कभी भी 'हम' की सत्ता मिल ही नहीं सकती। जयन्ती भी अपनी प्रकृति के अनुसार उसके इस रहस्य को जानती थी लेकिन लेखक ने सारे उपन्यास को अपने मन्तव्यों के अनुसार इतना जकड़ रखा है कि उसे बोलने का कभी कोई अवसर ही नहीं मिला। जहाँ एक ओर नन्दकिशोर इतना ज्यादा बातूनी और बकवासी व्यक्ति है वहीं उसे लेखक ने केवल मोम की गुड़िया बनाया वेजबान। यदि लेखक ने विवाह के पूर्व कभी भी उसे नन्दकिशोर से बातचीत करने का अवसर प्रदान किया होता तो वह उनके समस्त रचित विधान को एक-एक करके ध्वस्त कर देती। लेखक ने जीवन की साधारण से साधारण बात का विराट बवण्डर का दृश्य उपस्थित किया है। सहज मानवीय संवेदना और अनुभूति पर विश्वास न करके केवल अप्रत्याशित और कल्पनीय घटनाओं एवं स्थितियों को ही महान माना है। यह सबका सब तो उस समय पता चलता है, जब जयन्ती हत्या करा चुकने के बाद लेखक मनमाने ढंग से महाधम नन्दकिशोर को संन्यासी बनवा देते हैं। और फिर उस संन्यासी को किसान नेता के रूप में स्वामी आत्मानन्द बनाकर केवल प्लेटिट्यूड्स के आधार पर उससे बकवास कराते हैं। ऐसे विकट परिवर्तन के लिए उप-युक्त घटना देने के लिए लेखक स्वयं असमर्थ रहे हैं।

रामेश्वरी की फिट से मृत्यु होना जयन्ती को फिट का दौरा आना रामेश्वरी का आग लगाकर जल मरना जयन्ती का आग लगाकर जल मरना मास्टरजी की स्त्री का आग लगाकर जल मरना अथवा नन्दकिशोर का वह स्वप्न जिसमें वह उसे आग लगाकर जलते हुए देखता है ऐसा लगता है कि लेखक ने आत्महत्या को ही समस्त समस्याओं का निदान मान लिया है। इससे भी बढ़कर विडम्बना तो उस पत्र में है जिसे लेखक ने उसे कमरे में बंद करके आत्महत्या करने के पूर्व लिखवाया है। उसे यह पत्र विक्षिप्त होकर नहीं तो आतंकित होकर अवश्य लिखना पड़ा है। जयन्ती के भीतर

कोई भावना दबी हुई नहीं थी, कैलाश के प्रति उसकी सहज किशोरावस्था की मोह भावना ही थी। वह अब कैलाश से उतनी ही दूर थी जितनी कि नन्दकिशोर से। इसलिए उसे किसी भी भावना को दबाने की चेष्टा ही नहीं करनी पड़ी थी लेकिन लेखक ने उससे वह भी लिखवाया जो बिलकुल सत्य नहीं था। उस पत्र में सत्य केवल यह हो सकता था कि विवाह के बाद कठोर बंधनों ने उसे बांध लिया था। काश कि वह इस कठोर बंधन की व्याख्या कर पाती और नन्दकिशोर को बता पाती कि वह कितना निरर्थक व्यक्तित्व है। उसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि इस सारे उपन्यास में नन्दकिशोर का कोई भी मित्र नहीं बन पाया और जिसका कोई मित्र न हो वह और सब कुछ कर सकता है शायद प्रेम का सौदा ही उससे नहीं हो सकता।

लेखक ने जयन्ती के परिवेश को भारतीय जीवन और भारतीय गृहस्थी के परिवेश में रखकर नहीं देखा। एक संपन्न परिवार कैसे रहता है उसकी पूर्णता किससे है उसकी अंतिम अनिवार्य उपलब्धि कहां होती है, शायद इसकी कोई परवाह लेखक ने नहीं की। चाहे वह प्रोफेसर मिश्र का घर हो या स्वयं उनके भाई साहब का चाहे वह उनकी निज की गृहस्थी चाहे वह इलाहाबाद का घर हो या लखनऊ जिले का एक गांव का घर। असलियत यह है कि घर की रचना और आत्मा को वह पकड़ ही नहीं पाये हैं। यदि लेखक ने इस परिवेश में जयन्ती के विकास को देखा होता तो न तो जयन्ती आत्महत्या करती और न रामेश्वरी। न तो शान्ति उनसे बचकर भाग जाती न नन्दकिशोर इतनी सरलता से अपने बेटे मस्सन को उसकी मनमानी मौसी के पास छोड़कर संन्यासी हो जाता।

चन्द्रमाधव अज्ञेय

'चन्द्रमाधव' अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' का गौण पात्र है। उसके पूर्ण व्यक्तित्व के अनिवार्य उपादानों को उपन्यास के नायक भुवन ने आत्मसात कर लिया है इसमें कोई संदेह नहीं। कला की निस्संगता के तकाजों को तिलांजलि देकर उसका चरित्र-विकास किया गया है। लेखक ने मनमाने ढंग से पात्रों को तोड़ा-मरोड़ा भी है। फिल्म जगत की प्रसिद्ध तारिका चन्द्रलेखा से उसका विवाह होता है। लेखक का मत है कि चन्द्रमाधव उससे ऊबा हुआ था लेकिन बात ऐसी नहीं थी। लेखक ने उसे पत्रकार के रूप में चित्रित किया है जो हर पहलू पर विचार करता है, टिप्पणियाँ देता है। बिना किसी रू-रियायत के सत्य को विज्ञापित करना पत्रकारों का काम है। और सत्य की चपेट में आकर कौन हताहत होता है इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। सत्य का उद्घाटन करने के लिए उन्हें व्यक्ति की पगड़ी और पैसे का लिहाज छोड़कर नुक्ताचीनी करनी पड़ती है।

चन्द्रमाधव के चरित्र की वास्तविकता को बड़े-बड़े शब्दों के जाल में छिपाया गया है और उसके चरित्र को नीच और घृणित दिखाया गया है, किन्तु लेखक चन्द्रमाधव को नीच न बना सका। पाठकों की आम धारणा लेखक की मनोवृत्ति से बिलकुल विपरीत है। चन्द्रमाधव की यही विशेषता है कि वह एक यथार्थ चरित्र है रेखा भुवन आदि

की अपेक्षा यह ज्यादा वास्तविक प्रतीत होता है। यह बात सत्य प्रतीत होती है कि लेखक ने अपने राजनीतिक आक्रोश को चन्द्रमाधव के माध्यम से स्पष्ट करना चाहा है, लेकिन लेखक की राजनीतिक मान्यताओं के आधार पर वह पूरा नहीं हो सका।

अज्ञेय को प्रगति, प्रगतिशील या प्रगतिवाद इन सभी शब्दों और राजनीतिक और मानव जीवन के परिप्रेक्ष्य में इन विचार सूत्रों की ऐतिहासिक अर्थवत्ता से स्वाभाविक चिढ़ है जिसके कारण सामाजिक विकास की सभी ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विचारधाराओं को त्यागकर उन्होंने क्षणवाद को अपना जीवनदर्शन बनाया है। अब ही रीमल है, यह मानकर उन्होंने मानव जीवन और संस्कृति के अतीत और भविष्य को जैसे फूंक से उड़ाकर उसकी जगह पर सिर्फ वर्तमान को स्थापित करना चाहा है। चूंकि वह प्रगतिशील या प्रगतिवादी विचारों का कमेंसिरट है तो क्या इस कारण ही उसके प्रति उनका आक्रोश इतना अनियंत्रित रूप में भड़क उठा कि वे अपने आप धर्मी अवसरवाद और क्षणवाद की मान्यताओं को भूलकर कमेंसिरटों पर ही पिल पड़े। इस प्रकार लेखक चन्द्रमाधव को पत्रकार बनाकर उसके चरित्र का मूल्यांकन हीन रीति से करता है। चन्द्रमाधव के चरित्र को ढकने के लिए लेखक ने उपन्यास के अन्य पात्रों को यथा भुवन, रेखा और गौरा को भी अविश्वसनीय चरित्र बना दिया। रेखा और गौरा भुवन की बेजान प्रतिध्वनियां हैं। चन्द्रमाधव का दोनों से गहरा परिचय था। रेखा से वह प्रेम भी करता था। दोनों नारियाँ आधुनिकाएँ हैं। दोनों पढ़ी-लिखी संभ्रान्त सुसंस्कृत नारियां थीं। दोनों इस देश के दकियानूसी समाज में अपने लिए नया प्रगतिशील रास्ता बनाने के लिए संघर्ष कर रही थीं। रेखा और गौरा में जिन्दगी और जिन्दादिली की कमी नहीं थी। लेकिन लेखक ने उसके जीवन को सीमित कर दिया क्योंकि यदि उसका समुचित विकास होता है तो चन्द्रमाधव फल-फूल जाता। जैसे मानो उनकी जिन्दगी का सारा जीवन रस निचोड़कर लेखक ने सिर्फ उनकी खोखली काया ही उपन्यास में पेश की हो।

लगता है उनके जीवन में सिर्फ एक ही समस्या है कि पढ़ लिखकर और स्वतंत्र चिन्तन से उनके अन्दर जिस व्यक्तित्व का विकास हो गया है उससे मुक्ति पाने के लिए वे किसी रहस्यमय असाधारण तिलस्मी पुरुष के प्रति जल्दी से जल्दी कैसे समर्पित हो जाएँ, कैसे उनकी बन जायें। यह आधुनिक नारी की जीवन-समस्या की पैरोडी तो है ही रेखा और गौरा की भी पैरोडी है। झुंझलाहट की बात यह है कि पुराने समाज में स्त्री अगर विषम आर्थिक संबंधों के कारण अनिच्छा से पुरुषों की गुलाम थी तो 'नदी के द्वीप' में आधुनिक नारी को स्वेच्छापूर्वक पुरुष की अहंकार-तुष्टि का उपकरण मात्र बनते हुए दिखाया है। नारी चरित्रों को लेखक ने निरीह बना दिया है हालांकि चन्द्रमाधव निरीह नहीं है। हालांकि लेखक उसे निरीह और बेजान बनाने की चेष्टा करता है। इसके पीछे लेखक की धारणा रही है कि वह भुवन को श्रेष्ठ बनाना चाहता था और भुवन अज्ञेय का प्रतिरूप बनकर आया है। किन्तु लेखक अपनी आत्मा और अपने यथार्थ व्यक्तित्व का प्रतिरूप भी उसे नहीं बना सका किन्तु सच पूछा जाए तो वह बड़ा ही फूहड़ खोखला और बहुरूपिया आदमी है और वह चन्द्रमाधव का सहपाठी एवं मित्र भी रह चुका है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भुवन की तुलना में चन्द्रमाधव को निकृष्ट चरित्र सिद्ध करने के लिए लेखक ने उसके विचारों की जगह-जगह कटु आलोचना की है स्वयं उसके संबंध में टिप्पणियाँ दी हैं भुवन, रेखा और गौरा के जरिये और कहीं-कहीं स्वयं सामने आकर 'नदी के द्वीप' में उसका मजाक उड़ाया है। उसे नीच और घृणित साबित किया है। रेखा से भुवन का परिचय चन्द्रमाधव के माध्यम से होता है और सचमुच चन्द्रमाधव रेखा से प्रेम करता है—सच्चे दिल से प्रेम करता है और रेखा भी स्नेह करती है।

किन्तु वह ईर्ष्यालु नहीं है। उसे रेखा और भुवन के स्नेह-सम्बन्धों से शिकायत नहीं है अगर ऐसा होता तो वह उन दोनों को इलाहाबाद की गाड़ी पर क्यों चढ़ाता। इलाहाबाद से लौटकर रेखा की आँखें बदल गईं। रेखा पर भुवन ने मोहिनी डाल दी थी। इसके बाद विचित्र घटनाएँ हुईं। रेखा के साथ भुवन नैनीताल गया और भुवन के पहुँचने से पहले रेखा श्रीनगर पहुँच गई। तुलियन झील पर जाकर रेखा ने भुवन के आगे समर्पण किया लेकिन इतना सब हो जाने पर भी भुवन ने एक बार भी रेखा से नहीं कहा कि वह प्यार करता है कि वह भी उसके प्रति समर्पित होना चाहता है। दरअसल वह उससे प्रेम करता ही नहीं था क्योंकि साथ-साथ ही गौरा को भी अपने प्रेमजाल में फँसाता जा रहा था। फिर भी वही हुआ जो होना था यानी रेखा को जब विश्वास हो गया कि भुवन उससे प्रेम नहीं करता केवल औपचारिक ढंग से उसकी सामाजिक स्थिति बनाने के लिए उसने विवाह का प्रस्ताव किया है। उसने जाकर अपने अजन्मे शिशु की हत्या करवा दी है। फिर भी भुवन ने जोर देकर नहीं कहा कि वह उसे प्यार करता है, उसके बिना अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। करता भी कैसे ? असल में उसकी निगाह तो गौरा पर थी और जब तक गौरा पढ़ लिखकर इन्डिपेन्डेन्ट नहीं हो जाती तब तक रेखा के साथ कैजुयल अफेयर ही वह चलाना चाहता था। आश्चर्य है कि लेखक ने दुनिया भर की अंग्रेजी, बंगला हिन्दी कविताओं के कोटेशन्स देकर भुवन के इस नीच कार्य पर औचित्य का मुलम्मा चढ़ाया है, भुवन को देवता और महामानव और न जाने क्या-क्या बनाया है। साथ ही रेखा और गौरा दोनों से चन्द्रमाधव के प्रेम का मजाक उड़वाया गया। बाद में चन्द्रलेखा से उसका विवाह हुआ। अभी तक उसका प्रेम अक्षुण्ण है। उतना ही ताजा जितना कभी था। यह इस बात का सबूत है कि अगर रेखा उससे प्रेम करती हो तो कम से कम उसे वह अपमान न झेलना पड़ता जो भुवन से प्रेम करके उसे झेलना पड़ा था। पाठक भी इस बात को महसूस करते हैं फिर भी मजे की बात यह है कि रेखा के मन में भुवन के विश्वासघात के प्रति जैसे भी क्षोभ उमड़ा लेखक ने उसे तुरन्त गले मुंह ही घोंट दिया और रेखा से भुवन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करवा दी। रेखा डाक्टर रमेश से विवाह करने के बाद भी भुवन को पत्र लिखती रही कि वह सुखी की है। उधर गौरा को जब इन बातों का पता चला तो भुवन के प्रति उसके मन में ग्लानि नहीं करुणा पैदा हुई। अजब गोरख-धन्धा है। भुवन किसीको कुछ नहीं देता लेकिन दोनों स्त्रियाँ उसपर अपने-आप समर्पित होती जाती हैं यहाँ तक कि इन दोनों में भी एक-दूसरे के प्रति

ईर्ष्या नहीं पैदा होती। दोनों स्त्रियाँ भुवन की अहंकार-तुष्टि का साधनमात्र खिलौना उसकी प्रतिध्वनि बनने में ही जीवन की सार्थकता समझती हैं। भुवन रेखा के प्रति और वफादार नहीं रहा गौरा से शादी करके उसके प्रति भी वफादार नहीं रहा गौरा से शादी करके रह सकेगा इसमें भी शक है। क्योंकि विवाहित जीवन में प्रेम की मियाद सात साल से अधिक नहीं होती किसी अभिज्ञ कामशास्त्र का यह सूत्र लेखक ने कई बार भुवन के मुँह से कहलवाया है। चन्द्रमाधव को यदि अपनी पत्नी चन्द्रलेखा का उदाहरण सामने न होता तो इन दोनों स्त्रियों से ज्यादा सुन्दर बड़ी कलाकार, अधिक आधुनिक और संभ्रान्त नारी है तो वह भी बालजक के शब्दों में कहता है कि औरतें सिर्फ मक्कारों, ढोंगियों, और बहुरूपियों को ही पसन्द करती हैं।

इस जमाने में मूल्यों का चाहे जितना विघटन हो गया हो स्त्रियों में चाहे जितनी गिरावट आ गई हो लेकिन एक महान लेखक ने भुवन जैसे स्वार्थी और व्यक्तित्वहीन आदमी को जो थोथी बौद्धिकता और वैज्ञानिकता के क्षेत्र में पढ़ी-लिखी स्त्रियों का जीवन भ्रष्ट करता फिरता है अपनी आत्मा का सारा आसव उँड़ेलकर अपनी पूरी रागात्मक सहानुभूति देकर देवत्व से मंडित करना चाहा है।

अध्याय सात

उपसंहार

चरित्र विकास उपलब्धि, अभाव और सम्भावनाएं

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल बहुमुखी विकास और प्रतिभा का युग है। इस काल में प्रत्येक विभाग और क्षेत्र में इतनी शीघ्रता से परिवर्तन हुए हैं कि इसे साहित्यिक क्रांति का युग कहा जा सकता है।[1]

आधुनिक युग का आरम्भ उत्पादन, यातायात और वितरण के नये साधनों से होता है। अपनी शोषण-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अंग्रेजों ने जिस रेल, तार, डाक तथा यातायात के अन्य साधनों का विकास किया वे भारत में एक नये जीवन और संस्कृति के विकास के साधन भी बने। अपने विशाल साम्राज्य को बसाने के लिए उन्होंने जिस अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ किया वह सुदर्शनचक्र की भांति उलटकर उन्हीं के मर्मस्थान पर लगा।[2]

इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना ने हिन्दी साहित्य के तीव्र विकास में और भी सहायता की। नवीन राष्ट्रीय चेतना के फलस्वरूप साहित्य, समाज, धर्म और दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में भारतीय गौरव के पुनरुत्थान का प्रयास होने लगा।[3] उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर २०वीं सदी तक आते-आते गद्य-साहित्य का प्रचुर विकास हुआ एवं 'चन्द्रकान्ता' से प्रारम्भ होकर क्रमशः साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

हिन्दी-साहित्य के चरित्रों का विकास सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनाओं से होता है।[4] यों तो चरित्रों का वास्तविक विकास कथा साहित्य में प्रेमचन्द से प्रारम्भ होता है पर इसके लक्षण भारतेन्दु युग में स्पष्ट हो चुके थे।[5] मनुष्य के वास्तविक जीवन का चित्रण प्रारम्भ हुआ—दरिद्र जन-साधारण और महाशक्तिशाली नर

---

१ आलोचना (इतिहास अंक) पृ० ७२
२ आलोचना (इतिहास अंक) पृ० ७२
३ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २६
४ ” ” ” ” , पृ० १०
५. त्रिवेणी पृ० ११२
६ काव्य, कला और अन्य निबंध, पृ० ११६

ईर्ष्या नहीं पैदा होती। दोनों स्त्रियां भुवन की अहंकार-तुष्टि का साधनमात्र जिनकी उसकी प्रतिध्वनि बनने में ही जीवन की सार्थकता समझती हैं। भुवन रेखा के प्रति और वफादार नहीं रहा गौरा से शादी करके उसके प्रति भी वफादार नहीं रहा गौरा से शादी करके रह सकेगा इसमें भी शक है। क्योंकि विवाहित जीवन में प्रेम की मियाद सात साल से अधिक नहीं होती, किसी अभिनव कामशास्त्र का यह सूत्र लेखक ने कई बार भुवन के मुंह से कहलवाया है। चन्द्रमाधव को यदि अपनी पत्नी चन्द्रलेखा का उदाहरण सामने न होता जो इन दोनों स्त्रियों से ज्यादा सुन्दर बड़ी कलाकार अधिक आधुनिक और संभ्रान्त नारी है तो वह भी वात्स्यायन के शब्दों में कहता है कि औरतें सिर्फ मक्कारों ढोंगियों और बहुरूपियों को ही पसन्द करती हैं।

इस ज़माने में मूल्यों का चाहे जितना विघटन हो गया हो स्त्रियों में चाहे जितनी गिरावट आ गई हो लेकिन एक महान लेखक ने भुवन जैसे स्वार्थी और व्यक्तित्वहीन आदमी को जो थोथी बौद्धिकता और वैज्ञानिकता के क्षेत्र में पढ़ी-लिखी स्त्रियों का जीवन-भ्रष्ट करता फिरता है अपनी आत्मा का सारा आसव उंडेलकर अपनी पूरी रागात्मक सहानुभूति देकर देवत्व से मंडित करना चाहा है।

अध्याय सात

उपसंहार

चरित्र विकास उपलब्धि, अभाव और सम्भावनाएं

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल बहुमुखी विकास और प्रतिभा का युग है। इस काल में प्रत्येक विभाग और क्षेत्र में इतनी तीव्रता से परिवर्तन हुए हैं कि इसे साहित्यिक क्रांति का युग कहा जा सकता है।[1]

आधुनिक युग का आरम्भ उत्पादन यातायात और वितरण के नये साधनों से होता है। अपनी शोषण-व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए अंग्रेजों ने जिस रेल तार डाक तथा यातायात के अन्य साधनों का विकास किया वे भारत में एक नये जीवन और संस्कृति के विकास के साधन भी बने। अपने विशाल साम्राज्य को बसाने के लिए उन्होंने जिस अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ किया वह सुदर्शनचक्र की भांति उलटकर उन्हीं के मर्मस्थान पर लगा।[2]

इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना ने हिन्दी साहित्य के तीव्र विकास में और भी सहायता की। नवीन राष्ट्रीय चेतना के फलस्वरूप साहित्य समाज धर्म और दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में भारतीय गौरव के पुनरुत्थान का प्रयास होने लगा।[3] उन्नीसवीं शताब्दी से आरम्भ होकर २०वीं सदी तक आते-आते गद्य-साहित्य का प्रचुर विकास हुआ एवं 'चन्द्रकान्ता' से आरम्भ होकर क्रमशः साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

हिन्दी-साहित्य के चरित्रों का विकास सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं से होता है।[4] यों तो चरित्रों का वास्तविक विकास कथा साहित्य में प्रेमचन्द से प्रारम्भ होता है पर इसके लक्षण भारतेन्दु युग में स्पष्ट हो चुके थे।[5] मनुष्य के वास्तविक जीवन का चित्रण प्रारम्भ हुआ—दरिद्र जन-साधारण और महाशक्तिशाली नर

---

१ आलोचना (इतिहास अंक), पृ० ७२
२ आलोचना (इतिहास अंक) पृ० ७२
३ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० २६
४ " " " " , पृ० १०
५. त्रिवेणी पृ० १६२
६ काव्य, कला और अन्य निबन्ध, पृ० १६६

पति दोनों के माध्यम से।[7]

हिन्दी के आदि मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' के चरित्र अपनी मानवीयता के कारण आकर्षक बनकर पाठकों के सामने आये। देवकीनन्दन खत्री किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी आदि के काल्पनिक तिलस्म जासूस और ऐय्यारों ने पाठकों को आश्चर्यचकित कर दिया। फिर भी उन कृतियों में मानव-जीवन के व्यापक चारित्रिक मूल्यों की वसी चर्चा नहीं हुई जैसी आज होती नजर आती है।[8] फिर भी 'भूतनाथ' जैसे दो प्रवृत्तियों के द्वन्द्व से समन्वित एक अद्भुत चरित्र की सृष्टि कर डालना चन्द्रकान्ता के लेखक की सफलता ही कही जायगी। यह 'हड्डियों का ढांचा' भूतनाथ किन विशेष परिस्थितियों का किस-किस रूप में शिकार है इसे चारों ओर से सोचने का उसके नये निर्माताओं को समय भी नहीं था। उन्होंने केवल उसके विद्रोह के आवेगों को पकड़ा तथा इसी सिलसिले में 'रक्तमंडल', 'काल चक्र' आदि की सृष्टि हुई।[9]

आलोचकों ने आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की सीमा रानी केतकी की कहानी' 'परीक्षा-गुरु' 'चन्द्रकान्ता सन्तति' आदि तक निश्चित की है। पर चरित्र विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द के पूर्व की ये कथा-कृतियां काफी कमजोर सतही और छिछली हैं। इसका कारण यह है कि उस समय का कथा-साहित्य चरित्र-प्रधान नहीं घटना प्रधान था।[10] प्रेमचन्द के पूर्व तक चरित्र विकास के क्षेत्र में इसी बाह्य यांत्रिकता[11] तड़कभड़क और निर्जीविता का राज्य था। इस युग का वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं था।[12] प्रेम-प्रधान उपन्यासों में भी यह चरित्र चित्रण केवल नाम का रहा है।[13] प्रेमचन्द ही पहले उपन्यासकार थे जिन्होंने स्वयं चरित्र-प्रधान उपन्यास लिखे दूसरों को भी उस ओर प्रेरित किया[14] और इस तरह उपन्यासों की धारा को उसके सही [illegible] की ओर मोड़ा। उन्होंने उपन्यासों को परियों के देश एवं रात के विलास-गृहों से निकालकर खेतों और बाजारों में लाकर खड़ा कर दिया। उन्होंने भारतीय किसानों के लिए वही काम किया जो रूसी किसानों के लिए टालस्टाय ने।[15] प्रेमचन्द ने ही हिन्दी उपन्यासों में पहले से चले आते आदर्शवाद को बुद्धिवाद से पुष्ट किया सुधारवादी दृष्टिकोण को सूक्ष्म और कलात्मक बनाया तथा उसे यथार्थ की ओर प्रेरित किया[16]

---

७ वही

८ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ६१

९ आलोचना (१४), पृ० ४१

१० आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १२३

११ आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ १८७

१२ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० ७२

१३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४२८

१४ प्रेमचन्द : एक विवेचन, पृ० ४४

१५ वही, पृ० ८४

१६ आलोचना (११), पृ० ८१

इसीलिए उनका 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' दूसरे लेखकों के लिए अनुकरणीय भी बन सका।[17] इस तरह इन दो दशकों के उपन्यास-साहित्य में चरित्रों के अनेकानेक बदलते हुए रूप मिलते हैं तथा हिन्दी-उपन्यासकारों के गम्भीर सामाजिक चिंतन एवं सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का पता चलता है।

इस काल के उपन्यासों में नारी-चरित्रों की महत्त्वपूर्ण समस्याओं का विशद चित्रण हुआ। वृद्ध-विवाह अनमेल विवाह बाल विवाह दहेज वेश्या-प्रथा हिन्दू मुस्लिम सम्प्रदाय के वैमनस्य आदि समस्याओं के आधार पर कथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण चरित्रों की सृष्टि हुई।[18] प्रेमचन्द ने समाज के भीतर के अनेक वर्गों—जमींदार, किसान, सूदखोर महाजन और उनके निर्धन कर्जदार, महाजनी संस्कृति के रखवाले पंडे पुरोहित आदि तथा भूमिहीन बेतिहर वर्गों तथा भिखारी-वर्ग का भी विशद चित्रण किया।[19] उनके द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलकर कई अन्य लेखकों ने भी इन्हीं वर्गों और समस्याओं के आधार पर अपनी सुप्रसिद्ध रचनाएं उपस्थित कीं।

'गोदान' लिखने से पहले प्रेमचन्द ने अपने एक पत्र में लिखा था—'आई एम एन आयडियलिस्ट विद ए टच आफ रियलिज्म"[20] पर उन्होंने जहां यथार्थ चित्रण को अपनाया वहां कलाकारों का एक वर्ग शरत की करुणा और भावुकता को आधार बना कर चरित्र-सृष्टि में भी संलग्न हुआ। तपोभूमि, परख और जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासों में शरत की इसी भावुकता के दर्शन होते हैं। साथ प्रकृतिवादी लेखकों का भी एक दल आया जिन्होंने नग्न चित्रण, जुगुप्सा और यौन आकर्षण को ही विशेष महत्त्व दिया। उग्र चतुरसेन शास्त्री ऋषभचरण जैन आदि के चरित्र इसी कोटि में आते हैं।[21] कुल मिलाकर आलोच्य युग का उपन्यास मध्यवित्तीय चरित्रों के चित्रण का क्षेत्र प्रतिबिंब है जो क्रांति का दावा करके भी सुधार पर अटक जाता है।

१९३०-३२ के राष्ट्रीय आंदोलन ने नारी के जीवन को कुछ आंगन में र खड़ा कर दिया और वह पथ की दावेदार बनकर सामने आई। घर और बाहर समस्या सामने आई तथा पारिवारिक शांति और देशसेवा का संघर्ष उभरा। इस तरह 'सुनीता' जैसी नई नारी का भी उदय हुआ, जो अपने साथ ही नई समस्याएँ भी लाई। इस तरह इस समस्त युग के कथा-साहित्य में नारी के नये और पुराने आदर्शों का द्वन्द्व भी उपस्थित हुआ यद्यपि उपन्यासकार ने उसकी उन्मुक्ति को संदेह की दृष्टि से देखा और उसके समक्ष गृह-लक्ष्मी का आदर्श अवश्य उपस्थित किया।

पुरुष चरित्रों की सामाजिक समस्या भी नारी-समस्या में ही बहुत कुछ समाहित है। अवैध प्रेम और स्वजाति-रति जैसी समस्याएं हमारे उपन्यासकारों ने नहीं

---

१७ नया पथ (१९४८), पृ० ६६

१८. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ० १६८

१९. वही पृ० ६६

२० शंकरप्रसाद गुप्त—'पत्थर अल पत्थर' की भूमिका से

२१ आलोचना (११), पृ० ५५

उठाई है। उग्र के 'देवदास' और 'बुधुवा' में उपस्थित किंकर्तव्य स्थिति आत्मघाती चरित्रों की वेदना का चित्रण भी हमारे कथा-साहित्य में नहीं हुआ है।[22] किन्तु राजनीतिक नेताओं से आगे बढ़कर और अछूतोद्धार की सतही समस्याओं से भी गहरे में जाकर प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' में चमारों के एक गाँव के आभ्यंतरिक सुधार के प्रश्न को उठाकर एक व्यापक मान-द्रष्टा की चेतना का परिचय दिया।[23]

मध्यवर्गीय चरित्रों की सबसे व्यापक भूमिका प्रेमचन्द के 'गबन' में ग्रहण की गई है।[24] 'गबन' का रमानाथ एक टिपिकल मध्यवर्गीय चरित्र है जिसमें कुल-मर्यादा और झूठी आत्मप्रतिष्ठा का अच्छा चित्रण हुआ है। 'सेवासदन' में मध्यवर्ग की पूरी परिधि—निम्न मध्य और उच्च—का चित्रण हुआ है। पद्मसिंह नवीन और पुराने विचारों एवं संस्कारों के बंधन में जकड़े व्यक्ति हैं जिनके आदर्शों और व्यवहारों में गहरी असंगति है। फिर भी कुल मिलाकर उनके विचार उस समय के लिए सर्वथा प्रगतिशील ही कहे जायेंगे।[25] 'सेवासदन' में प्रेमचन्द ने १९१४ तक के विकसित मध्यवर्गीय चरित्रों को अंकित किया है। 'प्रेमाश्रम' 'रंगभूमि' और 'गोदान' में सामाजिक संघात का रूप स्पष्ट हुआ है। अपनी अंतिम कृति 'गोदान' में उन्होंने समझौते और मध्यमार्ग का विरोध किया। फलतः गोबर जैसे विद्रोही चरित्र की सृष्टि हुई।

प्रेमचन्दोत्तर चरित्रों में मध्यवर्गीय पात्रों की ही प्रधानता मिलती है। इस समय तक मध्यवर्ग की ऐतिहासिक भूमिका तैयार हो चुकी थी।[26] इसीलिए संभवतः यह वर्ग कथा-साहित्य पर छाया रहा। साथ ही इन परवर्ती उपन्यासकारों ने मानव चरित्र की सूक्ष्म अनुभूतियों और ग्रंथियों को समझने और चित्रित करने का भी प्रयास किया।[27] ये उपन्यासकार कथानक को पीछे छोड़कर केवल चरित्र-विश्लेषण और अध्ययन के पीछे दौड़ पड़े।[28] इन्होंने मानव-चरित्र में अनेक सूक्ष्म अनुभूतियों और बारीकियों के दर्शन किये तथा उनका चित्रण किया।[29] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कथाकृतियों के लिए चरित्र-विकास को महत्त्वपूर्ण माना था जिसे इन लेखकों ने अपने नये-नये चरित्रों में स्पष्ट किया।[30] अज्ञेय ने भी चरित्र-विकास की सफलता को उपन्यास की सफलता की कसौटी माना है।[31] अब पात्रों का आत्मान्वेषण ही

---

२२ आलोचना (उपन्यास अंक) पृ० ८१

२३ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ० १४१

२४ प्रेमचन्द : एक विवेचन, पृ० ४०

२५ प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन पृ० ३१

२६ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १२२

२७ कल्पना, अगस्त १९५१, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त

२८ आलोचना (७), पृ० ३४

२९ कल्पना अगस्त १९५१ प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त

३० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, भूमिका, पृ० १०

३१ आजकल, मार्च, १९५६, पृ० १२

उपन्यासों की उच्चता का प्रतिमान बन गया है। यह आत्मान्वेषण बढ़ते-बढ़ते आत्म चरितात्मक हो चुका है।[३२] प्रेमचन्द की अधूरी और अंतिम कृति 'मंगलसूत्र' में भी इसी आत्मचरित्रात्मक शैली को अपनाया गया है।[३३] आधुनिक उपन्यासों की यह शैली युग की देन है हालांकि आज के कलाकारों के समक्ष यह बड़ी कठिनाई है कि वे बहुत से मनुष्यों को भीतर से जानने का दावा नहीं कर सकते।[३४] आज के सभी उपन्यासों में भी यही आत्मचरित्रात्मक शैली प्रचलित है।[३५] चरित्र-विकास ही अब उपन्यासों के लिए प्रधान विषय बन चुका है।[३६] उपन्यासकला का मेरुदण्ड चरित्र बन चुका है।[३७] और यह चरित्र दैनिकी-कृत आत्मकथा का रूप लेता जा रहा है।[३८]

इन उपन्यासों और कहानियों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यदि इनमें से प्रमुख चरित्र को हटा लिया जाय तो रचना धाराशायी होकर टूट जायगी। उदाहरण के लिए भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' और अज्ञेय के 'शेखर: एक जीवनी' को ले सकते हैं।[३९] औपन्यासिक महाकाव्यात्मक व्यक्तित्व के अभाव में इन कलाकारों ने खंडित व्यक्तित्व का चित्रण किया है। यद्यपि पृष्ठों की तुलना में 'गोदान' से अधिक पृष्ठ वाले उपन्यास जैसे 'शेखर' 'पथ की खोज' 'बूंद और समुद्र' 'इन्दुमती' या चतुरसेन शास्त्री[४०] की कृतियां अवश्य प्रकाशित हुई हैं। पर ये उपन्यास नहीं इतिहास-पुराणों के अनुवाद हैं। उनमें गोदान का-सा व्यापक परिवेश नहीं है। इसीलिए श्री नंददुलारे वाजपेयी ने ऐसी कृतियों को 'वर्णसंकर' माना है।[४१]

विश्वविख्यात लेखक चार्ल्स हेमिंग्वे के उपन्यास 'दी ओल्ड मैन एण्ड द सी' से प्रेरणा ग्रहणकर उदयशंकर भट्ट एवं नागार्जुन ने[४२] मछुओं के जीवन पर आधारित उपन्यासों की सृष्टि की। किन्तु, दोनों उपन्यास असफल सिद्ध हुए। एक की चरम परिणति रत्ना[४३] के रोमांस में और दूसरे की शुष्कता में हुई।

प्रेमचन्द के बाद इसी नवीन मोड़ के आधार पर चरित्र-विकास के क्षेत्र में

---

३२ कथा के तत्त्व, पृ० ५७
३३ वही
३४ कुछ विचार, पृ० ५६
३५. योरोपीय उपन्यास, पृ० १४
३६ आज (साहित्य विशेषांक १९६१), पृ० १८
३७ आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १२८
३८. उपन्यास का रूप-विधान साहित्यकार सम्मेलन में पठित निबंध, १९५७ ई०
३९. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान पृ० १७९
४० वयंरक्षाम', सोमनाथ वैशाली की नगरवधू
४१ आधुनिक साहित्य
४२ सागर लहरें और मनुष्य वरुण के बेटे
४३ सागर, लहरें और मनुष्य

नवीन उपलब्धियां होती रही हैं।[४४] इस अर्थ में हिन्दी कथा-साहित्य में व्यापकतर चरित्रों का ही विकास हुआ है।[४५] दोनों महायुद्धों के बीच का कथा-साहित्य वास्तव में व्यक्ति के अंतर-अध्ययन व्यक्तित्व के निर्माण और गठन के ह्रास और विकास की कहानी है। इन कथाओं में क्रान्तिकारियों के नाम पर उपस्थित किये गये सभी नायक निष्क्रियता और फ्रस्ट्रेशन के ही प्रतिनिधि बनकर आये हैं।[४६] इलाचन्द्र जोशी के चरित्र जैनेन्द्र और अज्ञेय के टेस्टाक्टवादी[४७]—आत्मवादी पात्रों से भिन्न और अधिक संतुलित हैं। इन सभी उपन्यासकारों ने और कहना चाहिए कि नये आख्यान साहित्य ने मनोविश्लेषण और आत्मचरित को ही प्रधानता दी है।[४८] किन्तु, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि मानव के साथ लेखक की संवेदना की दृष्टि से प्रेमचन्द अपने परवर्ती उपन्यासकारों से आगे हैं। इस बात को अज्ञेय ने भी माना है कि परवर्ती उपन्यासकार सिर्फ टेकनीक की दृष्टि से प्रेमचन्द से आगे कहे जा सकते हैं।[४९] राष्ट्रीय नवनिर्माण की पृष्ठभूमि में कथा-साहित्य में नये मानव का निर्माण सम्भव हो रहा है।[५०] पर अभी भी कथा-साहित्य में व्यक्ति की ही प्रमुखता प्राप्त है। समूह के चरित्र-विश्लेषण की दृष्टि से फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कृतियां उल्लेखनीय हैं। सेठ गोविन्ददास की 'इन्दुमती' में एक मारवाड़ी सेठ रामलाल का बड़ा ही सफल चित्रण हुआ है जिसकी प्रेरणा उन्हें अपने पितामह से मिली है।[५१] किन्तु, आज की समस्याओं को लेकर नागार्जुन ने अपने 'बलचनमा' में जो चरित्रांकन किया है, 'इन्दुमती' में उसका पूर्ण अभाव है।

'परती परिकथा' के पूर्व और 'गोदान' के बाद का कथा-साहित्य मूलतः व्यक्ति-चरित्र-प्रधान है। यशपाल, अश्क, अमृतराय, भगवतीचरण वर्मा आदि के अधिकांश चरित्र भी प्रेमचन्द परम्परा से आगे नहीं जा पाये हैं। देवराज और धर्मवीर भारती के पात्रों पर तो अज्ञेय और जैनेन्द्र का प्रभाव स्पष्ट ही है।[५२] इसी तरह जैनेन्द्र और अज्ञेय ने अपने पात्रों की अपनी अन्य कृतियों में पुनरावृत्ति ही की है।[५३] इस तरह यह निर्विवाद है कि प्रेमचन्द ही वह पहले कथाकार थे जिनकी कृतियों क

---

४४ आलोचना (इतिहास विशेषांक), पृ० १११
४५. आलोचना (उपन्यास अंक) पृ० १२८
४६ आलोचना (१४) पृ० १११
४७ आ० हि० क० सा० और मनो०, पृ० ५६
४८ साहित्यानुशीलन पृ० ५५
४९. दृष्टिकोण, जनवरी, १९४९, पृ० ५१
५० कथा के तत्त्व
५१ आजकल, मार्च १९५१ पृ० ११
५२ आलोचना (१४), पृ० ४२
५३ हिन्दी-साहित्य की जनवादी परम्परा, पृ० १८८

द्वारा ही चरित्र-विकास की परम्परा प्रारम्भ हुई।[54] फिर भी यह युग होरी या गोबर का नहीं है। आज का कलाकार यदि गोबर जैसे नायक को खोजना ही चाहेगा तो उसे कई उपन्यासों से कई गोबरों को निकालकर उसकी मूर्ति गढ़नी होगी।[55] इन सबके बावजूद यह भी निर्विवाद है कि गोदान के रचयिता प्रेमचन्द ही हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक हैं।[56] अब तक भी 'गोदान' पर ही हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास का सेहरा है।[57] प्रेमचन्द की सर्जनात्मक शक्ति का आज भी कोई मुकाबला नहीं हालांकि 'रेणु' को भी उस दिशा में प्रयास करते देखा जा सकता है।[58] रेणु ने प्रारम्भ से ही व्यापक भूखण्ड को चित्रित करने का प्रयास किया है। उन्होंने नागार्जुन की तरह केवल टाइप चरित्रों का निर्माण न कर 'कम्प्लीट' चरित्र की स्थापना की है।[59] नागार्जुन इस क्षेत्र में असफल सिद्ध हुए हैं और अपनी औपन्यासिक 'हृदय परिवर्तन'[60] के दम्भ में सिर्फ निर्जीव और बेजान पात्रों को ला पाये हैं। कहीं तो उनके वर्णन में इतनी नीरसता आ गयी है कि उपन्यास को समाप्त करना कठिन हो जाता है।[61] अन्तर्दृष्टि से ये गोर्की ईलिया एहरेनबुर्ग टाल्सटाय आदि लेखकों के अभी भी निकट हैं किन्तु औपन्यासिक यथार्थवाद मानवतावाद और मनोरंजन आदि की दृष्टि से रेणु शेक्सपीयर, टाल्सटाय[62] और हार्डी की कतार में आ जाते हैं। नागार्जुन का 'बलचनमा' यदि चरित्र प्रधान महाकाव्य है तो रेणु की 'परती परिकथा' व्यापक धरती का महाकाव्य है जो गंगा मैया[63] और कोसी मैया[64] की गाथा है जिसकी जमीन को[65] मटक और जितन[66] जोतते हैं—सुधार और कमेर उपजाते हैं। गोदान की तरह बीसवीं सदी के उत्तरार्ध का व्यापक जन-समूह उसका पात्र और विषय-वस्तु है।[67]

---

५४ प्रेमचन्द एक विवेचन, पृ० ४४

५५. पत्थर अल पत्थर, भूमिका पृ० १

५६ आलोचना (इतिहास विशेषांक), पृ० ११२

५७ आजकल अगस्त १९६१, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

५८. आलोचना, पृ० ८

५९. भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास 'गंगा मैया' में इस टेकनीक का सफल प्रयोग हुआ है।

६० यह कथन नागार्जुन का ही है।

६१ इस पंक्ति के लेखक को उपन्यासकार प्रभाकर ने ऐसा ही कहा था।

६२. 'युद्ध और शांति' के टालसटाय

६३ भैरवप्रसाद गुप्त

६४ रेणु

६५ गंगा मैया का पात्र

६६ 'परती परिकथा' का पात्र

६७ आलोचना के मान, पृ० १४

इसलिए ऐसा माना जा सकता है कि प्रेमचन्द के बाद नागार्जुन और रेणु ने महत्त्वपूर्ण चरित्रों के निर्माण किये हैं और 'रेणु' ने तो चरित्र-विकास के नये प्रतिमान भी स्थापित किये हैं। किन्तु डॉ० रामविलास शर्मा ने 'रेणु' की इन उपलब्धियों को अस्वीकार किया है।[६८] उनके पात्रों को उन्होंने पुरुषत्व-विहीन माना है।[६९] पर यह आलोचना पूर्वाग्रह से ग्रस्त दीखती है। रेणु ने आज की ज्वालामुखी परम्परा से एक हद तक अपने को मुक्तकर परिस्थितियों के माध्यम से मनुष्य का चित्रण किया है।[७०] *आज का मानव अपनी विषम परिस्थितियों के कारण आत्मरत और आत्म केन्द्रित बन चुका है*[७१] जिससे कि समाज से उसका सम्बन्ध कटु और शिथिल पड़ गया है। पर आज के कलाकार को इस परिस्थिति का मुकाबला करना होगा और अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे इस युग के प्रतिनिधि नायक की सृष्टि करनी होगी जिससे वह 'मानवात्मा का अभिवक्ता' बनकर अपनी सार्थकता सिद्ध कर सके।[७२] नवीन मानव की चेतना आज अमन की एक नयी दुनिया बनाने के प्रयास की ओर अग्रसर हो रही है। मानव-मुक्ति का एक नया युग आरम्भ हो रहा है[७३] और आज ऐसे उपन्यासों की सृष्टि के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो रही है जिसका नायक विश्व-मानवत्व का प्रतीक एवं विश्वजनीन अनुभूति का प्रतिनिधि होगा।[७४] वैसा नायक कुंठा निराशा घृणा और उबकाई से दूर रहकर महा-आत्मा की वाणी को उसी तरह प्रसारित करेगा जिस तरह बसंत में खिलने वाले फूल अपने परिमल को सहज रूप में और सारी प्रकृति में बिखेरते चलते हैं।

---

६८ समालोचक अगस्त ५६, पृ० १
६९. उपन्यास और लोक-जीवन, पृ ८२
७० आलोचना के मान पृ० २२
७१ हिन्दी उपन्यास, पृ० २ ५
७२ उपन्यास और लोक-जीवन, पृ० १७
७३ वही
७४ आलोचना (११), पृ० २६

परिशिष्ट-१

चरित्र विकास   उपलब्धि, प्रभाव और संभावनाएँ

आधुनिक मान-मूल्यों का विकास

हिन्दी-साहित्य का आधुनिक काल विकास और परिवर्तन का युग है। हमारे साहित्य के इतिहास में ऐसा एक भी युग न था जिसने बहुमुखी विकास और इतनी प्रचुर प्रतिभा का परिचय दिया हो। इस काल में प्रत्येक विभाग का विकास और प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन इतनी शीघ्रता से हुए कि इसे साहित्यिक क्रान्ति का युग कह सकते हैं।[1]

आधुनिक युग का आरम्भ उत्पादन यातायात और वितरण के नये साधनों के साथ होता है। अंग्रेजों ने भारत की आर्थिक व्यवस्था में अनेक नये परिवर्तन किये। एक ओर तो उन्होंने देशी उद्योग-धन्धों को आमूल तहस-नहस किया। किन्तु दूसरी ओर उन्होंने विदेशी पूंजी से नये उद्योग-धन्धे भी भारत में स्थापित करने शुरू किए। इनका लक्ष्य भारत का आर्थिक शोषण ही था किन्तु रेल,तार डाक आदि जो उन्होंने अपनी आर्थिक और राजनीतिक सत्ता कायम करने के लिए खड़े किये भारत में एक नये जीवन और संस्कृति के दूत भी बन गए। भारत के विशाल साम्राज्य को चलाने के लिए उन्हें सस्ते क्लर्कों की भी आवश्यकता थी इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का भारत में सूत्रपात किया। यह अस्त्र जो उन्होंने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए चलाया था सुदर्शन चक्र की भांति उलटकर उन्हीं के मर्म स्थान पर लगा। अंग्रेजी शिक्षा ने भारत की उर्वरा भूमि पर एक नये विचार-दर्शन के बीज छिटका दिये जो आगे चलकर बड़े वृक्ष बने और फले-फूले।[2]

आधुनिक हिन्दी-साहित्य की क्षिप्र प्रगति और विकास में कितनी ही शक्तियों ने पतिवर्द्धन का कार्य किया। निःसंदेह गतिवर्द्धक शक्तियों में सर्वप्रथम स्थान इण्डियन नेशनल कांग्रेस का है जिसकी स्थापना बम्बई में १८८५ ई० में हुई। राजनीतिक क्षेत्र में यह भारतीयों की प्रथम जागृति थी और उसका अनुकरण अन्य क्षेत्रों में भी अनिवार्य था। कांग्रेस ने हमें अपनी वास्तविक दशा से परिचित कराया। हमें अपनी पराधीनता का ज्ञान हुआ। गोपालकृष्ण गोखले ने रायल कमीशन के सामने १८९९ में

---

१ आलोचना (इतिहास अंक), पृ० ७२
२ आलोचना (इतिहास अंक), पृ० ७२

अपने वक्तव्य में कहा था—वर्तमान (राजनीतिक) व्यवस्था के प्रभाव से भारतीय जाति का विनाश अवश्य हो रहा है। हमें अपने जीवन भर एक हीनता के वातावरण में रहना पड़ता है। इस अनुभव से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के हृदय में चेतना जाग्रत हुई, ऐसे व्यक्ति देश और जाति की चिंता करने लगे और उनकी उन्नति के लिए साहित्य और समाज धर्म और दर्शन सभी क्षेत्रों में भारतीय गौरव के पुनरुत्थान का प्रयास करने लगे।[3]

साहित्य के जन-साधारण की वस्तु होने से गद्य-साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले-पहले गद्य की परम्परा चलाई और गद्य-शैली को जन्म दिया परन्तु गद्य-साहित्य की प्रधानता उपन्यास और उपयोगी साहित्य के कारण हुई जिसका वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। मध्यकाल में जब विद्याध्ययन और शिक्षा केवल कुछ गो-मानों तक ही सीमित थी साधारण जनता मौखिक कथा वार्ता तथा उपदेशों से ही संतोष कर लेती थी परन्तु जब शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा तब पान की दुकान पर बैठे हुए दुकानदारों रेलगाड़ी में आये ऊँघते हुए यात्रियों तथा काम-काज से छुट्टी पाए हुए शिक्षित नर-नारियों को समय काटने के लिए कथा-कहानियों की आवश्यकता हुई। इस प्रकार उपन्यासों की रचना होने लगी और 'चन्द्रकान्ता' से प्रारम्भ होकर क्रमशः साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

प्रारम्भिक युग

हिन्दी-साहित्य में 'चरित्रों' का सर्वप्रथम विकास गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं से प्रारम्भ होता है।[4] कथा-साहित्य में उसका वास्तविक विकास प्रेमचन्द से प्रारम्भ होता है, परन्तु उसके कुछ कुछ लक्षण हमें भारतेन्दुकाल की रचनाओं से दिख-लाई पड़ने लग गये थे।[5] अव्यवस्था वाले युग में देवधार से मानवीय भावनाओं के चित्रण की जो परम्परा थी उसके स्थान पर सीधे सादे मनुष्य के अभावों और उसकी परिस्थितियों का चित्रण भी हिन्दी-साहित्य में उसी समय प्रारम्भ हो गया। परिणाम स्वरूप पिछले काल के शृंगारक कृष्ण तथा राधा और रामचन्द्र का चित्रण वर्तमान युग के अनुकूल होने लगा। क्रमशः प्रारम्भिक साहसपूर्ण और विचित्रता से भरी आख्या यिकाओं के स्थान पर जिनकी घटनाएँ राजकुमारों से ही सम्बद्ध होती थीं—मनुष्य के वास्तविक जीवन का चित्रण प्रारम्भ होता है। भारत के लिए उस समय दोनों ही वास्त विक थे—यहाँ के दरिद्र जनसाधारण और महाशक्तिशाली नरपति।[6]

हिन्दी के आदि मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' के चरित्र भी अपनी वैयक्तिक

---

३ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २६

४ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १०

५. द्विवेदी, पृ० १२९

६. काव्यकला और अन्य निबन्ध, पृ० ११६

७. काव्यकला और अन्य निबन्ध, पृ० ११६

विशेषताओं के कारण नहीं, बल्कि मानवीयता के कारण हमें आकृष्ट करते हैं। उनके प्रति चरित्रों का क्रमिक-विकास नहीं होता पर मानवीय दुर्बलताओं और सबलताओं से युक्त होने के कारण हमारे जाने-पहचाने जीते-जागते मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। इस उपन्यास के द्वारा तत्कालीन, मध्यवर्गीय समाज का विस्तृत परिचय मिल जाता है। नायक 'मदन मोहन' नव-शिक्षित मध्यवर्ग की कमजोरियों का मूर्तिमान रूप है। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक सामाजिक एवं नैतिक चरित्रों को रचने के प्रयोग हुए। देवकीनन्दन खत्री गोपालराम गहमरी किशोरीलाल गोस्वामी ने काल्पनिक तिलस्म जासूस और ऐयारों के ऐसे चमत्कार दिखलाये कि पाठकों की आँखें चौंधिया गयीं। मानव जीवन के व्यापक चारित्रिक मूल्यों की चर्चा जैसी की मांग हो रही है इनमें मिलना असम्भव है।[8] इस युग के अधिकांश कथाकारों ने बंगला एवं अंग्रेजी के 'शरीर और मन' वाले चरित्रों को भी हिन्दी का लिबास पहनाने की चेष्टा की। 'चन्द्रकान्ता' के लेखक की सफलता यह थी कि उसने बहुत काफी कूड़ा-करकट डालकर एक ऐसे भाव को खोज निकाला था जो समाज-व्यवस्थाओं की सन्धि से झांककर प्रयत्नपूर्वक अपना सिर उठा रहा था और आने वाली समस्याओं को अपने में समोकर साक्षात् प्रश्न चिह्न बना समाज-द्रष्टा उपन्यासकार के सामने आ खड़ा हुआ था।

मध्यवर्ग का प्रतीक भूतनाथ दो प्रवृत्तियों का द्वन्द्व है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह की आग उसे एक दुरुस्त चालाक अय्यार के रूप में चलाये रख रही है। 'विद्रोह' उस युग के यौवन की आवाज थी और यह विद्रोह व्यक्तिगत ही यह उसकी सीमा। किन विशेष परिस्थितियों का किस-किस रूप में हड्डियों का ढांचा यह भूतनाथ शिकार है इसे चारों ओर से सोचने का उसके नये निर्माताओं को समय नहीं था। उन्होंने उसके केवल विद्रोह के आवेग को पकड़ा और 'रक्त मंडल' 'लाल पंजा' इत्यादि आये।[9] दुर्गाप्रसाद खत्री ने अनेक उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'लाल पंजा' 'प्रतिशोध' 'रक्तमंडल' और 'सफेद शैतान' मुख्य हैं। ये चारों उपन्यास जैसे एक ही शृंखला की कड़ियां हैं और इनके मुख्य पात्रों को हम एक के बाद दूसरे उपन्यास में अपने कार्यक्रम का विस्तार करते हुए देख सकते हैं। इन उपन्यासों के पात्रों को मोटे रूप में दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। एक ओर लुटेरे हैं जलसाई हैं विद्रोही और क्रांतिकारी हैं तथा भारत को और आगे चलकर समूचे एशिया को विदेशी व्यापारियों और साम्राज्यवाद के नागपाश से मुक्त कराने के लिए अपनी जान होम देने वाले लोग हैं। दूसरी ओर अंग्रेजी हुकूमत है गोरे अफसर और भारतीय जासूस हैं रखवाले रायबहादुर तथा खान बहादुर हैं।

सन् सैंतालीस के बाद, मानो बांध तोड़कर जासूसी उपन्यासों की धारा बाढ़ बनकर बह चली अपने साथ बहुत-सा कूड़ा-करकट समेटे हुए। १९५१ ई० में जासूसी उपन्यासों ने एक नया मोड़ लिया और कुछ ऐसे उपन्यास प्रकाशित हुए जो भावाभि

---

८. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० ६१

९. आलोचना (१४) पृ० ३१

अपने वक्तव्य में कहा था—वर्तमान (राजनीतिक) व्यवस्था के प्रभाव से भारतीय जाति का विकास अवरुद्ध हो रहा है। हमें अपने जीवन-भर एक हीनता के वातावरण में रहना पड़ता है। इस अनुभव से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के हृदय में चेतना जाग्रत हुई, ऐसे व्यक्ति देश और जाति की चिन्ता करने लगे और उनकी उन्नति के लिए साहित्य और समाज धर्म और दर्शन सभी क्षेत्रों में भारतीय गौरव के पुनरुत्थान का प्रयास करने लगे।[3]

साहित्य के जन-साधारण की वस्तु होने से गद्य-साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। उन्नीसवीं शताब्दी ने पहले-पहले गद्य की परम्परा चलाई और गद्य-शैली को जन्म दिया परन्तु गद्य साहित्य की प्रधानता उपन्यास और उपयोगी साहित्य के कारण हुई जिसका वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। मध्यकाल में जब विद्याध्ययन और शिक्षा केवल कुछ गो-मानों तक ही सीमित थी साधारण जनता मौखिक कथा-वार्ता तथा उपदेशों से ही संतोष कर लेती थी परन्तु जब शिक्षा का प्रचार बढ़ने लगा तब पान की दुकान पर बैठे हुए दुकानदारों रेलगाड़ी में आगे ऊँघते हुए यात्रियों तथा काम-काज से छुट्टी पाए हुए शिक्षित नर-नारियों को समय काटने के लिए कथा-कहानियों की आवश्यकता हुई। इस प्रकार उपन्यासों की रचना होने लगी और 'चन्द्रकांता' से प्रारम्भ होकर क्रमशः साहित्यिक उपन्यासों की सृष्टि होने लगी।

प्रारम्भिक युग

हिन्दी-साहित्य में 'चरित्रों' का सर्वप्रथम विकास गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं से प्रारम्भ होता है।[4] कथा-साहित्य में उसका वास्तविक विकास प्रेमचन्द से प्रारम्भ होता है परन्तु उसके बहुत कुछ लक्षण हमें भारतेन्दुकाल की रचनाओं से दिख लाई पड़ने लग गये थे।[5] मध्यावस्था वाले युग में देवभाव से मानवीय भावनाओं के चित्रण की जो परम्परा थी उसके स्थान पर सीधे सादे मनुष्य के अभावों और उनकी परिस्थितियों का चित्रण भी हिन्दी-साहित्य में उसी समय आरम्भ हो गया। परिणाम स्वरूप पिछले काल के सुधारक कृष्ण तथा राधा और रामचन्द्र का चित्रण वर्तमान युग के अनुकूल होने लगा। फलतः प्रारम्भिक साहसपूर्ण और विचित्रता से भरी आख्या यिकाओं के स्थान पर जिनकी कथाएँ राजकुमारों से ही सम्बद्ध होती थीं—मनुष्य के वास्तविक जीवन का चित्रण आरम्भ होता है। भारत के लिए उस समय दोनों ही वास्त विक थे—यहाँ के दरिद्र जनसाधारण और महाशक्तिशाली नरपति।

हिन्दी के आदि मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' के चरित्र भी अपनी वैयक्तिक

---

३ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० २६
४ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १०
५. द्विवेदी, पृ० १५२
६. काव्यकला और अन्य निबन्ध, पृ० ११६
७. काव्यकला और अन्य निबन्ध, पृ० ११६

विशेषताओं के कारण नहीं, बल्कि सामान्यता के कारण हमें आकृष्ट करते हैं। उनके प्रति चरित्रों का क्रमिक-विकास नहीं होता, पर सामर्थ्य व दुर्बलताओं और क्षमताओं से युक्त होने के कारण हमारे जाने-पहचाने जीते-जागते मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। इस उपन्यास के द्वारा तत्कालीन, मध्यवर्गीय समाज का विस्तृत परिचय मिल जाता है। नायक 'मदन मोहन' नव-शिक्षित मध्यवर्ग की कमजोरियों का मूर्तमान रूप है। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक सामाजिक एवं नैतिक चरित्रों को रचने के प्रयोग हुए। देवकीनन्दन खत्री गोपालराम गहमरी किशोरीलाल गोस्वामी ने काल्पनिक तिलस्म जासूस और ऐयारों के ऐसे चमत्कार दिखलाये कि पाठकों की आंखें चौंधिया गयीं। मानव जीवन के व्यापक चारित्रिक मूल्यों की चर्चा जैसी की आज हो रही है उनमें मिलना असम्भव है।[8] इस युग के अधिकांश कथाकारों ने बंगला एवं अंग्रेजी के 'शरीर और मन' वाले चरित्रों को भी हिन्दी का लिबास पहनाने की चेष्टा की। 'चन्द्रकान्ता' के लेखक की सफलता यह थी कि उसने बहुत काफी कूड़ा-करकट छानकर एक ऐसे पात्र को खोज निकाला था जो समाज-व्यवस्थाओं की सन्धि से झांककर यत्नपूर्वक अपना सिर उठा रहा था और आने वाली समस्याओं को अपने में समोकर साक्षात् प्रश्न चिह्न बना समाज-स्रष्टा उपन्यासकार के सामने आ खड़ा हुआ था।

मध्यवर्ग का प्रतीक भूतनाथ दो प्रवृत्तियों का द्वन्द्व है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह की आग उसे एक पुस्त-नालाक अय्यार के रूप में बनाये रख रही है। 'विद्रोह' उस युग के यौवन की आवाज थी और यह विद्रोह व्यक्तिगत हो, यह उसकी सीमा। किन विशेष परिस्थितियों का किस-किस रूप में 'हड्डियों का ढांचा' यह भूतनाथ शिकार है इसे चारों ओर से खोजने का उसके नये निर्माताओं को समय नहीं था। उन्होंने उसके केवल विद्रोह के आवेग को पकड़ा और 'रक्त मंडल', 'लाल पंजा' इत्यादि आये।[9] दुर्गाप्रसाद खत्री ने अनेक उपन्यास लिखे हैं जिनमें 'लाल पंजा' 'प्रतिशोध', 'रक्तमंडल' और 'सफेद शैतान' मुख्य हैं। ये चारों उपन्यास जैसे एक ही शृंखला की कड़ियां हैं और इनके मुख्य पात्रों को हम एक के बाद दूसरे उपन्यास में अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करते हुए देख सकते हैं। इन उपन्यासों के पात्रों को, मोटे रूप में दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। एक ओर लुटेरे हैं, बलवाई हैं, विद्रोही और क्रांतिकारी हैं तथा भारत को और आगे चलकर समूचे एशिया को विदेशी व्यापारियों और साम्राज्यवाद के नागपाश से मुक्त कराने के लिए अपनी जान होम देने वाले लोग हैं। दूसरी ओर अंग्रेजी हुकूमत है, गोरे अफसर और भारतीय जासूस हैं, रजवाड़े रायबहादुर तथा खान बहादुर हैं।

सन् सैंतालीस के बाद मानो बांध तोड़कर, जासूसी उपन्यासों की धारा बाढ़ बनकर बह चली अपने साथ बहुत-सा कूड़ा-करकट समेटे हुए। १९५१ ई० में जासूसी उपन्यासों ने एक नया मोड़ लिया और कुछ ऐसे उपन्यास प्रकाशित हुए जो आजादी

---

८. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृ० ५१

९. आलोचना (१४) पृ० ५१

लिखने के बाद ही लिखे जा सकते थे उससे पहले नहीं। इन उपन्यासों के लेखक हैं ओमप्रकाश शर्मा। ओमप्रकाश शर्मा के उपन्यास और उनके उपन्यासों में लगे हुए पात्र अन्य देशी विदेशी जासूसी उपन्यासों से भिन्न हैं।

आलोचकों द्वारा आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य की सीमा को 'रानी केतकी की कहानी', 'परीक्षा गुरु' 'भाग्यवती संतति' आदि तक ले जाया गया है। वस्तुतः चरित्र विकास की दृष्टि से प्रेमचन्द के पूर्व की ये कथाकृतियाँ काफी कमजोर, सतही और छिछली हैं क्योंकि उस समय तक का कथा-साहित्य घटना-प्रधान था चरित्र-प्रधान नहीं।[१०] पर कथाकारों की इस प्रकार की प्रवृत्ति के पीछे साहित्य की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया कार्य कर रही थी। चरित्र विकास के क्षेत्र में 'परीक्षा गुरु' से लेकर प्रेमचन्द के युग तक इसी बाह्य वाचिकता[११] तड़क-भड़क और निर्जीवता का साम्राज्य था। उस युग का वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था।[१२] जीते वे मानवीय स्पर्श के साथ चमत्कार और प्रेम की सृष्टि करने के लिए सब तत्त्वों का समन्वय कर दिया गया है। ऐसे प्रेमप्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण केवल नाम का रहा है।[१३] उनमें तो घटना और कथा-वस्तु की ही प्रधानता रहती है। प्रेमचन्द ने ऐसे उपन्यासों का विरोध किया। उन्होंने बताया कि उपन्यास का लक्ष्य लोगों का मनोरंजन ही नहीं है वरन् उनका सुधार करना भी है। वह पहले उपन्यासकार थे, जिन्होंने स्वयं चरित्र प्रधान उपन्यास लिखे और दूसरों को भी वैसे उपन्यास लिखने के लिए कहा।[१४] प्रेमचन्द के साहित्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि एक युग गया और दूसरा युग आया एक वर्ग मर गया और दूसरा वर्ग उभर आया। जीवन चरित्रों के देश से राजा के विलास-कुंजों से निकलकर खेतों और बाजारों में आ गया। रूसी किसानों के लिए जो काम टाल्सटाय ने किया है, भारतीय किसानों के लिए वही काम प्रेमचन्द ने किया है।[१५]

प्रेमचन्द युग (१९१६ १९३६) के कथा-साहित्य में हमें इन दो दशकों के साथ नैतिक और सामाजिक जीवन के चरित्रों का सम्पूर्ण आकलन दिखाई देता है। प्रेमचंद से पहले हिन्दी उपन्यास की भूमि कल्पना और रोमांस की भूमि थी फिर उसे चाहे सामयिक जीवन का आधार लेकर उपस्थित किया गया हो या ऐतिहासिक कथा अथवा चरित्रों पर उसकी नींव रखी गई हो। इसमें सन्देह नहीं कि एक प्रकार का आदर्शवाद अथवा आदर्शवादी चरित्रों की अवतारणा भी हिन्दी-उपन्यास में पहले-से शुरू हो गई थी और हिन्दी के पहले उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८२ ई०) में ही एक पथभ्रष्ट नव

---

१० आलोचना (उपन्यास अंक), पृ० १२१—'हिन्दी उपन्यास शिल्प का विकास' निबन्ध से।

११ आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० १८०

१२ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान

१३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४६८

१४ प्रेमचन्द एक विवेचन—डा० इन्द्रनाथ मदान,

१५ वही, पृ० ८४

युवक के सुधार की आदर्शात्मक गाथा उपस्थित की गई थी। परन्तु इस सुधारवाद में कला का योग नहीं और आदर्शवादी पट इतना मोटा था कि चरित्र विकास में गत्यावरोध उत्पन्न हो गया था। प्रेमचन्द के युग में इस सुधारवादी दृष्टिकोण को सूक्ष्म और कलात्मक बना लिया गया और उसमें कोरा आदर्शवाद नहीं रह गया। इस आदर्शवाद को एक ओर बुद्धिवाद से पुष्ट किया गया और दूसरी ओर उसे यथार्थोन्मुख बनाया गया।[१६]

प्रेमचन्द युग

कला की शक्ति और महत्त्व इस बात में है कि वह साधारण स्त्री-पुरुष के चरित्र के उदात्त मानसिक गुणों और प्रतिनिधिक सकारात्मक विशेषताओं को खोज सकती है तथा उन्हें प्रकाश में लाती है और उनके साधारण स्त्री-पुरुष के ऐसे सजीव कलात्मक रूप-चित्र उपस्थित करने में समर्थ होती है जो दूसरों के लिए अनुकरण की मिसाल बन सकते हैं।[१७] प्रेमचन्द ने अपने औपन्यासिक दृष्टिकोण को 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' कहा है। आदर्श और यथार्थ चरित्रों का यह नया सम्बन्ध प्रेमचन्द के उपन्यासों में खूब निभा यद्यपि प्रेमचन्द के अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में यथार्थ की विजय है और आदर्श गई और कटु वस्तुस्थितियों की चोट से टकराकर चकनाचूर हो गया (जैसे होरी के गाय का स्वप्न भग) जो हो इन दो दशकों के उपन्यास-साहित्य में हमें चरित्रों के अनेकानेक बरबस हुए रूप मिलते हैं और उनके अध्ययन से हमें हिन्दी के उपन्यासकारों की गंभीर सामाजिक चिन्ता और सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का पता चलता है।

हिन्दी का उपन्यास नारी-चरित्रों की महत्वपूर्ण समस्याओं को लेकर ही क्षेत्र में आया। विभिन्न यथार्थवादी सामाजिक चरित्रों का चित्रण समाज-सुधार की भावना से हुआ। वृद्ध-विवाह बाल-विवाह दहेज वेश्या-गमन और हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य आरम्भ से ही हिन्दी उपन्यासकारों के विषय बन गए। प्रेमचन्द का पहला महत्वपूर्ण उपन्यास 'सेवासदन' प्रकारान्तर से 'परीक्षा गुरु' और 'सौ अजान एक सुजान' की समस्या—वेश्या-चरित्र को ही उपस्थित करता है। प्रेमचन्द के एक सम-सामयिक विश्वम्भरनाथ 'कौशिक' ने माँ (१९२९) लिखकर एक बृहत उपन्यास के रूप में 'सेवासदन' के चरित्रों को ही नये ढंग से प्रस्तुत किया यद्यपि माँ के द्विविध रूपों और पारिवारिक स्थितियों का भी उसमें चित्रण है। वेश्या-चरित्र सम्बन्धी औपन्यासिक दृष्टिकोण का क्रमश विस्तार हमें मठमठ (राजेश्वरप्रसाद १९२८) पाप और पुण्य' (प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' १९३१) पतिता की साधना (भगवतीप्रसाद वाजपेयी, १९३६) अप्सरा (निराला, १९३१) और वेश्या का हृदय (जगीराम प्रेम १९३३) में दिखलाई देता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनमेल विवाह के प्रसंग में कई महत्वपूर्ण चरित्रों का

---

१६. आलोचना (११), पृ० ८१
१७ नया पथ (१९५८) ज्यार्जी मालेन्कोव, पृ० ११

चित्रण होता है और 'निर्मला' (१९२३) उपन्यास में तो 'निर्मला' के चरित्र का केन्द्र बिन्दु ही अनमेल विवाह और दहेज की समस्या है। इस समस्या से प्रेमचन्द व्यक्तिगत रूप से परिचित थे। इस विषय पर अन्य रचनाएं हैं, 'क्षमा' (श्रीनाथ सिंह, १९२६) मीठी चुटकी (भगवतीप्रसाद वाजपेयी १९१८) और तलाक (प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' १९३२)।[18]

हिन्दू-मुस्लिम समस्या से सम्बन्धित पात्र भी उनके कई उपन्यासों में आये हैं। प्रेमाश्रम (१९२२) रंगभूमि (१९२४) और कायाकल्प (१९२८) में प्रेमचन्द इस समस्या के कई पहलुओं को उपस्थित करते हैं। समाज के भीतर के अनेक वर्गों को भी प्रेमचन्द ने व्यापक रूप से देखा है और जमींदार-किसान सूदखोर महाजन और निर्धन कर्जदार श्रमिक महाजनी संस्कृति के पाद-पीठ धर्म-पुरोहित और स्थितिहीन वर्गों में भूमिहीन खेतिहर और भिखारी वर्ग भी सामने आते हैं।[19]

ग्रामीण जीवन-सम्बन्धी अन्य दृष्टिकोण एवं चित्रण निम्नलिखित उपन्यासों में मिलते हैं— रामलाल (मन्नन द्विवेदी १९२१) देहाती दुनिया (शिवपूजन सहाय १९२६) तितली (प्रसाद १९३४) और गोदान (प्रेमचन्द, १९३६)।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' में समाज से बहिर्भूत कंजर-गूजर आदि वर्गों का विशद चित्रण है और 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द अमरकान्त को ऐसे गांव में ले जाते हैं जहां ढोरों का चमड़ा उठाने वाले चमार रहते हैं। धार्मिक दम्भ और आचार की पोल के लिए गंगाप्रसाद श्रीवास्तव की रचना स्वामी चौपटानंद (१९३५) और कर्मभूमि (प्रेमचन्द १९३२) एवं तितली (प्रसाद १९३४) के कुछ पृष्ठ महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचंद ने मजदूरों का चित्रण गोदान में किया है। खन्ना की मिल में हड़ताल की समस्या को लेकर उन्होंने मजदूरों का पक्ष लिया है। वास्तव में वर्ग-चरित्रों का चित्रण स्पष्ट १९२८ के बाद ही सामने आता है और १९३६ तक मजदूर-वर्ग एवं पूंजीपति-वर्ग का पार्थक्य स्पष्ट नहीं हुआ था। प्रेमचन्द ने 'मजदूर' चित्रपट और अपने अलिखित उपन्यास मंगलसूत्र में इन चरित्रों को नये संदर्भ में देखने का प्रयास किया था। निम्न मध्यवर्ग के चरित्रों का चित्रण प्रेमचन्द का भी अपना विशेष क्षेत्र रहा है किन्तु उनमें इस वर्ग का मानवतावादी दृष्टिकोण ही से देखने का विशेष आग्रह परिलक्षित होता है। उनका ध्यान सदा इस वर्ग के पात्रों की सज्जनता पर ही लगा रहा। मोटे तौर पर कहें तो एक वाक्य में हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द मानव की (चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो) सज्जनता के कलाकार हैं। यह तो उनकी कला का पारस है जिसके स्पर्श से उनके आदर्शपात्र भी इतने विश्वसनीय और यथार्थ की हद छूते से लगते हैं और हम पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

'गोदान' लिखने से पहले प्रेमचन्द ने अपने एक पत्र में लिखा था— 'भाई एम

---

१८. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ० १९८

१९. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ० ९९

एन माइक्रियेमिस्ट विथ ए टच आफ रियलिज्म।"[20]

इस युग की कथाओं में नारी चरित्र की विषमताओं और उसके विभिन्न प्रतिबन्धों एवं समस्याओं को उठाया गया। नारी के त्यागमय जीवन की गाथा 'त्यागमयी' (भगवतीप्रसाद वाजपेयी १९३२), नारी हृदय (शिवरानी देवी, १९१२) मदारी (गोविन्द वल्लभ पंत १९३६) और बन्धन का मोल (उमादेवी मिश्रा १९३६) में अवलोकनीय है।

विधवा, दहेज वेश्या, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह ये कुछ प्रमुख समस्याएं हैं जिनसे हिन्दी के औपन्यासिक चरित्रों का पोषण हुआ। श्रीनिवास दास बालकृष्ण भट्ट और राधाकृष्ण दास पहले भी इन समस्याओं से उपलब्ध चरित्रों को अपनी कृतियों का विषय बना चुके थे परन्तु प्रेमचन्द के द्वारा इन चरित्रों को विस्तृति और गम्भीरता मिली और उनका चित्रण रोमांस मूलक न होकर वस्तुनिष्ठ और अपेक्षाकृत व्यापक था। विधवा की समस्या अनेक अन्य उपन्यासों का भी विषय है जैसे हृदय का कांटा' (देवरानी दीक्षित, १९२८) प्रतिज्ञा (प्रेमचंद १९२८) विधवा के पत्र (चन्द्रशेखर शास्त्री १९३३) चतुरसेन शास्त्री के तीन उपन्यास 'अमर अभिलाषा' (१९३३) आत्मदाह' (१९३६) और 'नीलमणि' (१९४०) एवं जैनेन्द्र का प्रसिद्ध उपन्यास 'परख' (१९३०)। इन सभी विषयों से संबंधित चरित्रों पर प्रेमचंद और उनके समसामयिक उपन्यासकारों ने व्यापक दृष्टि से विचार किया है। किन्तु प्रेमचंद ने यहां यथार्थ चित्रण को अपनाया और शरत की भावुकता को बचाया वहां कथाकारों का एक वर्ग शरत्चन्द्र के चरित्रों को आदर्श बनाकर चला और उनमें यथार्थता गंभीरता एवं काठिन्य के स्थान पर करुणा और भावुकता का प्राधान्य रहा। तपोभूमि, परख और जैनेन्द्र के परवर्ती उपन्यासों में यही शरत्चन्द्रीय भावुकता मिलती है। एक प्रकृतवादी दल भी इस युग में विकसित हुआ जो नग्न चित्रण जुगुप्सा एवं यौन आकर्षणमूलक आत्मघाती प्रवंचना को विशेष प्रश्रय देता था। चतुरसेन शास्त्री ऋषभचरण जैन और उग्र के नारी जीवन विषयक चरित्र इसी कोटि में आते हैं। कथाकार उन गर्हित चरित्रों के चित्रण में जैसे रस लेता हो ऐसा प्रतीत होता है। वास्तव में इन कृतियों की बौद्धिक भूमि शिथिल है।"[21] इस युग के चरित्रों की प्रेम समस्या या रोमांस भी विचारणीय है। यह प्रश्न जाति-वर्ण-व्यवस्था पर सीधा प्रहार करता था। कथाकारों ने इस प्रश्न को उठाया पर अपने चरित्रों को विद्रोही बनाने से वे सर्वथा बचते रहे। 'रंगभूमि' में प्रेमचंद इसीलिए सोफिया का बलिदान कर देते हैं। और 'कर्मभूमि' में सकीना के आकस्मिक परिवर्तन से उसके चरित्र को गिरा देते हैं। 'गढ़ कुण्डार' की सारी संघर्ष भूमि ही इस समस्या को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर उभारती है और उसका वृत्तांत इस युग के चरित्रों की दुर्बल मनःस्थिति का सूचक है, जो क्रांति के पथ पर बढ़ने से बार-बार हिचकती है। आलोच्य युग का उपन्यास

२० श्री भरतप्रसाद गुप्ता—'अश्क' के उपन्यास 'पत्थर अल पत्थर' की भूमिका से
२१ आलोचना (११), पृ० ८४ ८५

दिखाई पड़ता है। 'सेवासदन' के पात्र अभी तक साहसपूर्ण निर्णयात्मक कदम नहीं उठा सकते थे। सिद्धांत रूप से सामाजिक बुराइयों को दूर करने का विचार रखते हुए भी सामाजिक अप्रतिष्ठा के डर से वे द्वन्द्वात्मक स्थिति में दिखाई पड़ते हैं। 'सेवासदन' में पुरुष वर्ग तो क्रियाशील परिलक्षित होता है किन्तु स्त्रियों में अपने आप परदे से बाहर निकलकर काम करने की शक्ति नहीं है। 'गबन' की जालपा और रतन अपनी वास्तविक स्थिति पहचानकर आत्म-प्रतिष्ठा और सम्पूर्ण आभीप्य का पर्दा चोला उतार फेंकती है। 'सेवासदन' में पारिवारिक एकता बनाए रखने के लिए पद्म सिंह, मदन और सदन पुनः एक सूत्र में पिरो दिए जाते हैं, किन्तु 'गबन' में यह धारणा चूर-चूर हो जाती है। 'गबन' की रतन हृदय की चोट से कहती है—"बहनो किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना तो जब तक अपना घर न बना लो, चैन की नींद मत सोना। यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर में तुम्हारा मान के साथ पालन होगा। परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं काँटों की शय्या है, तुम्हारी पार लगाने वाली नौका नहीं तुम्हें निगल जाने वाला जंतु है।

मध्यवर्ग की पूरी परिधि जिसमें निम्नमध्यवर्ग मध्यवय और उच्चवर्ग तीनों का सन्निवेश देखा जाता है, 'सेवासदन' में अंकित की गई है। मध्यवर्ग की नैतिकता और मर्यादा भीतर-भीतर चाहे जितनी बढ़ गई हो उसकी चिन्ता किसीको नहीं रहती। हाँ, उसे बाहर नहीं प्रकट होना चाहिए। 'सदन' इसका प्रतिनिधि उदाहरण है। सुमन ने मध्यवर्ग की इस प्रवृत्ति का पर्दाफाश करते हुए 'सदन' को खूब आड़े हाथों लिया है— और तुमने उसके साथ का अत्याचार केवल इसलिए किया कि मैं उसकी बहन हूँ। जिसके पैरों पर तुमने अपनी नाक रगड़ी है। उस समय भी तो तुम वही उच्चकुल के ब्राह्मण थे या और कोई थे। तब तुम्हारे कुकर्मों से खानदान की नाक न कटती थी। अँधेरे में जूठा खाने पर तैयार, पर उजाले में निमन्त्रण भी स्वीकार नहीं। "

पद्मसिंह मध्यवर्ग के उन व्यक्तियों के प्रतिनिधि हैं जो पुराने संस्कारों और नवीन विचारों के द्वन्द्व में उलझे हुए हैं। उनके नवीन विचार पुराने संस्कारों के सामने बराबर पराजित होते जाते हैं। इसके फलस्वरूप उनके आदर्श और व्यवहार में गहरी असंगति दिखाई पड़ती है। फिर भी सब मिलाकर उस समय के लिए उनके कार्य सर्वथा प्रगतिशील हैं।[२८]

'निर्मला' में निर्मला और तोताराम के चरित्र मध्यवर्ग की केवल स्थूल समस्याएं—दहेज-प्रथा और अनमेल विवाह की झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

१९१४ तक के विकसित मध्यवर्गीय चरित्रों को प्रेमचंद ने 'सेवासदन' में अंकित किया है।

कौटुम्बिक भूमि से उपजे हुए पात्र हमें प्रेमचंद के सभी उपन्यासों में मिलते

२८. प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचना, पृ० ५१

है। 'प्रेमाश्रम' में जमींदारी प्रथा के टूटने के फलस्वरूप और नई शिक्षा के कारण सम्मिलित कुटुम्ब पर गहरी चोट पड़ती है और बाद 'गोदान' में होरी जैसे पात्रों के द्वारा अथक प्रयास करने पर भी परिवार बिखर जाता है। इसके अतिरिक्त सौतेली माँ सास बहू देवरानी जिठानी आदि भी अनेक उपन्यासों की केन्द्र हैं और फिर सम्मिलित परिवार की प्रथा के टूटने में पात्रों के मनोवैज्ञानिक असंतुलन का भी बहुत बड़ा हाथ है।

सामाजिक चरित्रों का एक व्यापक रूप भी है जो विभिन्न जातियों और वर्गों के संघर्ष पर आधारित है। अथवा उनके व्यक्तित्व का निर्माण इसी पृष्ठभूमि में होता है। 'रंगभूमि' में हमें हिन्दू ईसाई और मुसलमान पात्र-पात्रियों का अत्यंत सहानुभूतिपूर्वक चित्रण मिलता है। 'कायाकल्प' में भी हिन्दू-मुसलिम वर्गों की विशद पृष्ठभूमि सामने आती है। एक दूसरा चारित्रिक प्रश्न नगर और गाँव के उन अनेक वर्गों से संबंध रखता है जो सीधे सामाजिक प्रक्रिया की उपज न होकर आर्थिक विकास की ऐतिहासिक उपज हैं। नगरों का मध्यवित्त पूंजीपति उद्योगपति और कर्मकर मजदूर, समाज तथा गाँव का भूमिपति (जमींदार) एवं किसान इस प्रकार के वर्ग हैं। इस युग में हम वर्ग-संघर्ष की भावना का स्पष्ट विकास नहीं पाते हैं परन्तु उपन्यासकार समाज के इन विभिन्न स्तरों के स्वार्थों को अच्छी तरह समझ गया है और इन वर्गों के अंतर्निर्वाह और अन्तर्विरोध को उसने अनेकानेक पात्रों और घटना-प्रसंगों के रूप में वाणी दी है। प्रेमाश्रम रंगभूमि और गोदान में सामाजिक संघात का यह रूप सामने आता है। उत्तर रचनाओं में पात्रोचित वर्गदृष्टि अधिक उन्मुक्त हो गई है और १९२८ १९२९ तक उपन्यासकार रूस के सर्वहारा वर्ग की साक्षी देने लगते हैं। प्रेमचंद के अतिरिक्त इस भूमि पर आने वाले उपन्यासकार कम ही हैं। जो हैं भी उनका चरित्र-विश्लेषण कलात्मकता और वैचारिक दृष्टि से उतना ऊंचा नहीं उठ पाया है। हिन्दी के इस युग के चरित्रों की राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता अप्रतिम है और उन्होंने यथार्थवादी चरित्रों की नई-नई भूमियों का आकलन किया है। स्वयं प्रेमचंद के चरित्रों में सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया का महान चयन हुआ है। परन्तु यह स्पष्ट है कि प्रेमचंद की भाँति इस युग के कलाकार क्रांति नहीं चाहते वे विकास के पक्षपाती हैं। यह स्पष्टतः इसलिए कि वे सामाजिक प्रतिक्रियाओं एवं मध्यवर्गीय ढंग के वास्तविक रूप को अभी पहचान नहीं पाये हैं। प्रेमचंद भी पात्रों के विचारों की अपेक्षा उनके चरित्र-विश्लेषण में अधिक प्रगतिशील और क्रांतिकारी हैं। केवल अपनी अंतिम कृति 'गोदान' में वह समझौते और मध्यम मार्ग के प्रति नृशंस हो उठते हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद ने गोदान में पूर्व की परंपरा को तोड़ा और गोबर जैसे विद्रोही चरित्र का सृजन किया। धनिया एवं मेहता में भी वह परंपरागत मोह नहीं रह गया।

मध्यवर्ग का विकास

प्रेमचंदोत्तर कथा-चरित्रों का चित्रण मूलतः मध्यवर्गीय वस्तु-तत्त्व के विकास का ही क्रम है। आगे हमने देखा प्रेमचंद के चरित्रों पर भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा

क्योंकि वास्तविक सामाजिक संबंधों की स्थापना ने कथा-साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। अतएव प्रेमचंदोत्तर चरित्रों में मध्यवर्गीय पात्रों की ही प्रधानता मिलती है। जैनेन्द्र अज्ञेय जोशी भगवतीचरण वर्मा प्रभृति प्रतिष्ठित कथाकारों ने इसी वर्ग को अपना विषय बनाया। यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि मध्यवर्ग का विभ्रम इतना बड़ा कि कथाकारों का ध्यान अन्य वर्गों की ओर से सिमटकर केवल मध्यवर्ग पर ही केन्द्रित हो गया जिसमें कि साहित्यिक सुरुचि को उत्पन्न करने में बाधा अवश्य पहुँची। इसके लिए सम्पूर्ण रूप से कथाकारों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि मध्यवर्ग की ऐतिहासिक भूमिका तैयार हो चुकी थी।[26]

किन्तु प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासकारों ने जीवन के नये अंश छुए जरूर। उन्होंने मध्यवर्ग के रहस्य जीवन के चित्र अंकित किये। उन्होंने मानव चरित्र की सूक्ष्म अनुभूतियों और गुत्थियों को समझने और चित्रित करने का प्रयास किया।[27]

प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद-युग की व्यापकता का लोप हो गया। प्रेमचंद के पात्र वाजिटिव करेक्टर अधिक हुए साधु पात्र कम। "आज का कहानीकार कथानक को पीछे छोड़ता हुआ केवल चरित्र-विश्लेषण और अध्ययन के लिए दौड़ रहा है।"[28] जैसा कि आगे विचार किया जा चुका है, प्रेमचंदोत्तर चरित्रों के निम्नलिखित विभाजन किए जा सकते हैं। इस प्रकार का विभाजन प्रेमचंद के जीवन काल में ही स्पष्ट हो गया था—सुनीता उपन्यास पर अपनी राय प्रकट करते हुए प्रेमचंद ने इस ओर संकेत भी किया था—(१) यथार्थोन्मुख आदर्श चरित्र—जैनेन्द्रकुमार, (२) मनोविश्लेषणात्मक या व्यक्तिनिष्ठ यथार्थवादी चरित्र—इलाचंद्र जोशी—अज्ञेय (३) साम्यवादी या समाजवादी चरित्र—यशपाल (४) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ—द्वारिकाप्रसाद।

आधुनिक कथाकृतियों की गतिविधियों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक कथाकार मानव-चरित्र को उसकी सम्पूर्णता और व्यापकता में देखता है। "वह अनेक सूक्ष्म अनुभूतियाँ और प्रतिक्रियाएँ मनुष्य के चरित्र में दर्शाता है।"[29] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी कथाकृतियों के लिए चरित्र-विकास को महत्त्वपूर्ण अंग माना था।[30] इसका उल्लेख करते हुए डा॰ रामविलास शर्मा ने 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' नामक पुस्तक में लिखा है—शुक्लजी ने उपन्यासों के बारे में कुछ उम्दा सुझाव दिए हैं, बहुत से पात्र और घटनाओं को इकट्ठा करने के

---

२६ आलोचना, उपन्यास अंक, पृ॰ १२५
२७ प्रकाशचंद्र गुप्त—कल्पना, अगस्त १९५१
२८. डा॰ लक्ष्मीनारायण लाल—आलोचना, पृ॰ ३४
२९. प्रकाशचंद्र गुप्त—कल्पना, अगस्त, ५१
३० आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना (भूमिका) डॉ॰ रामविलास शर्मा, पृ॰ ६

उसने पात्रों के भरे-पूरे चित्रण और उनके चरित्र विकास पर जोर दिया है। उन्होंने प्रेमचंद का आदर्श रखते हुए जनसाधारण के जीवन पर उपन्यास लिखना आवश्यक बताया है। शुक्लजी ने अपने इतिहास में लिखा है, 'वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही हैं उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।"

शुक्लजी ने उपन्यासों के मुकाबले में कहानियों के विकास को और भी विशद और विस्तृत' बतलाया है इस विकास में 'कवियों का भी पूरा योग रहा है यह विशेषता बतलाई है।

प्रसिद्ध कथाकार अज्ञेय भी कहते हैं कि चरित्र विकास की सफलता ही उपन्यास की सफलता की कसौटी है।[११] आधुनिक युग के कथाकारों ने चरित्र की विशेषता को समझा और प्रेमचंद प्रभृति कथाकारों ने चरित्र-विकास पर ही यथेष्ट बल दिया। इस चरित्र चित्रण को इतना अधिक महत्व दिया गया कि आधुनिक उपन्यासों में पात्रों का आत्मान्वेषण ही उसकी उच्चता का प्रतिमान बन गया। यह आत्मान्वेषण बढ़ते-बढ़ते आज आत्मचरितात्मक के छोर का स्पर्श कर रहा है। यथा आज का उपन्यास आत्मचरित्र हो गया है।[१२] नागार्जुन का बलचनमा कुलमोचन आदि पर इसका प्रभाव है। "प्रेमचंद के पश्चात् जितने भी उपन्यासों की सृष्टि हुई है उनमें अधिकांश ने यही आत्मचरित्रात्मक शैली अपनायी है। जैनेन्द्र का त्यागपत्र इसी शैली में है। उनके इधर के जितने उपन्यास हैं सुखदा विवर्त व्यतीत सबकी शैली यही है। बाणभट्ट की आत्मकथा, पर्दे की रानी उसका मरुप्रदीप शेखर एक जीवनी आदि में यह शैली दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं स्वयं प्रेमचंद अपने अन्तिम दिनों में इसी शैली की ओर प्रवृत्त हुए थे। कौन नहीं जानता कि उनकी अधूरी, पर अंतिम कृति 'मंगलसूत्र' में इसी शैली को अपनाया गया है।"[१३]

आत्म चरित्रात्मक चरित्रों का विकास

इतना ही नहीं प्रेमचंद ने इस संबंध में स्पष्ट घोषणा की—"भविष्य में उपन्यास में कल्पना कम सत्य अधिक होगा हमारे चरित्र कल्पित न होंगे बल्कि व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगे। भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा। चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायगा कि जिनपर उसने विजय पायी है। हां वह जीवन-चरित्र इस ढंग से लिखा जायगा कि उपन्यास मालूम होगा। अभी हमें मूल आधार दिखाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो या किसी देशभक्त का या किसी बड़े आदमी का पर उसका

---

११ आजकल अक्षय, पृ० १२ मार्च, १६५३
१२ कथा के तत्त्व पृ० ५०
१३ कथा के तत्त्व—डा० देवराज उपाध्याय, पृ० ५०

क्योंकि वास्तविक सामाजिक संबंधों की स्थापना ने कथा-साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। अतएव प्रेमचंदोत्तर चरित्रों में मध्यवर्गीय पात्रों की ही प्रधानता मिलती है। जैनेन्द्र अज्ञेय जोशी भगवतीचरण वर्मा प्रभृति प्रतिष्ठित कथाकारों ने इसी वर्ग को अपना विषय बनाया। यह भी एक उल्लेखनीय बात है कि मध्यवर्ग का चित्रण इतना बढ़ा कि कथाकारों का ध्यान अन्य वर्गों की ओर से सिमटकर केवल मध्यवर्ग पर ही केन्द्रित हो गया जिसमें कि साहित्यिक सुरुचि को उत्पन्न करने में बाधा अवश्य पहुँची। इसके लिए सम्पूर्ण रूप से कथाकारों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि मध्यवर्ग की ऐतिहासिक भूमिका तैयार हो चुकी थी।[25]

किन्तु प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासकारों ने जीवन के नये पंथ छुए जरूर। उन्होंने मध्यवर्ग के गृहस्थ जीवन के चित्र अंकित किये। उन्होंने मानव चरित्र की सूक्ष्म अनुभूतियों और वृत्तियों को समझने और चित्रित करने का प्रयास किया।[26]

प्रेमचंदोत्तर युग

प्रेमचंद-युग की व्यापकता का लोप हो गया। प्रेमचंद के पात्र पार्सिटिव करेक्टर अधिक हुए बाकी पात्र कम। "आज का कहानीकार कथानक को पीछे छोड़ता हुआ केवल चरित्र-विश्लेषण और अध्ययन के लिए दौड़ रहा है।"[27] जैसा कि आगे विचार किया जा चुका है, प्रेमचंदोत्तर चरित्रों के निम्नलिखित विभाजन किए जा सकते हैं। इस प्रकार का विभाजन प्रेमचंद के जीवन काल में ही स्पष्ट हो गया था—सुनीता उपन्यास पर अपनी राय प्रकट करते हुए प्रेमचंद ने इस ओर संकेत भी किया था—(१) यथार्थोन्मुख आदर्श चरित्र—जैनेन्द्रकुमार, (२) मनोविश्लेषणात्मक या व्यक्ति-निष्ठ यथार्थवादी चरित्र—इलाचंद्र जोशी—अज्ञेय (३) साम्यवादी या समाजवादी चरित्र—यशपाल (४) और तटस्थ या वैज्ञानिक यथार्थ—द्वारिकाप्रसाद।

आधुनिक कथाकृतियों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक कथाकार मानव-चरित्र को उसकी सम्पूर्णता और व्यापकता में देखता है। "वह अनेक सूक्ष्म अनुभूतियाँ और बारीकियाँ मनुष्य के चरित्र में दर्शाता है।"[28] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी कथाकृतियों के लिए चरित्र विकास को महत्त्वपूर्ण अंग माना था।[29] इसका उल्लेख करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' नामक पुस्तक में लिखा है—शुक्लजी ने उपन्यासों के बारे में कुछ उम्दा सुझाव दिए हैं, बहुत से पात्र और घटनाओं को इकट्ठा करने के

---

२६ आलोचना, उपन्यास अंक, पृ० १२२

२७ प्रकाशचंद्र गुप्त—कल्पना, अगस्त १९५३

२८. डा० लक्ष्मीनारायण लाल—आलोचना, पृ० ३४

२९. प्रकाशचंद्र गुप्त—कल्पना, अगस्त, ५३

३० आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना (भूमिका) डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० ९

उसने पात्रों के भरे-पूरे चित्रण और उनके चरित्र विकास पर जोर दिया है। उन्होंने प्रेमचंद का आदर्श रखते हुए जनसाधारण के जीवन पर उपन्यास लिखना आवश्यक बताया है। शुक्लजी ने अपने इतिहास में लिखा है, "वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है उसके विभिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियां उत्पन्न हो रही हैं उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।"

शुक्लजी ने उपन्यासों के मुकाबले में कहानियों के विकास को 'और भी विशद और विस्तृत' बतलाया है इस विकास में कवियों का भी पूरा योग रहा है, यह विशेषता बतलाई है।

प्रसिद्ध कथाकार अज्ञेय भी कहते हैं कि चरित्र विकास की सफलता ही उपन्यास की सफलता की कसौटी है।[११] आधुनिक युग के कथाकारों ने चरित्र की विशेषता को समझा और प्रेमचंद प्रभृति कथाकारों ने चरित्र-विकास पर ही यथेष्ट बल दिया। इस चरित्र चित्रण को इतना अधिक महत्त्व दिया गया कि आधुनिक उपन्यासों में पात्रों का आत्मान्वेषण ही उसकी उच्चता का प्रतिमान बन गया। यह आत्मान्वेषण बढ़ते-बढ़ते आज आत्मचरित्रात्मक के छोर का स्पर्श कर रहा है। यथा आज का उपन्यास आत्मचरित्र हो गया है।[१२] नागार्जुन का बलचनमा दुखमोचन आदि पर इसका प्रभाव है। "प्रेमचंद के पश्चात् जितने भी उपन्यासों की सृष्टि हुई है उनमें अधिकांश ने यही आत्मचरित्रात्मक शैली अपनायी है। जैनेन्द्र का त्यागपत्र इसी शैली में है। उनके इधर के जितने उपन्यास हैं सुखदा, विवर्त व्यतीत सबकी शैली यही है। बाणभट्ट की आत्मकथा पर्दे की रानी उनका मकदीप शेखर एक जीवनी आदि में यह शैली दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं स्वयं प्रेमचंद अपने अन्तिम दिनों में इसी शैली की ओर प्रवृत्त हुए थे। कौन नहीं जानता कि उनकी अधूरी पर अंतिम कृति 'मंगलसूत्र' में इसी शैली को अपनाया गया है।"[१३]

आत्म-चरित्रात्मक चरित्रों का विकास

इतना ही नहीं प्रेमचंद ने इस संबंध में स्पष्ट घोषणा की—"भविष्य में उपन्यास में कल्पना कम सत्य अधिक होगा हमारे चरित्र कल्पित न होंगे बल्कि व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगे। भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा। चाहे किसी बड़े आदमी या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायगा कि जिनपर उसने विजय पायी है। हां वह जीवन-चरित्र इस ढंग से लिखा जायगा कि उपन्यास मालूम होगा। अभी हमें मूल आधार दिखाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो या किसी देशभक्त का या किसी बड़े आदमी का, पर उसका

---

११ आजकल अज्ञेय पृ० १२ मार्च १९५१
१२ कथा के तत्त्व, पृ० ५०
११ कथा के तत्त्व—डा० देवराज उपाध्याय, पृ० ५०

आधार यथार्थ पर होगा। तब यह काम उससे कठिन होगा जितना अब है, क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्हें बहुत से मनुष्यों को भीतर से जानने का गौरव प्राप्त हो।"[१४] आज के कई उपन्यासों को पढ़ने पर ठीक यही मालूम पड़ता है कि जैसे हम किसी की आत्मकथा पढ़ रहे हैं।[१५] पेस्टरनाक का उपन्यास 'डाक्टर जिवागो' निकोलाई ओस्त्रोवस्की का उपन्यास 'अग्निदीक्षा' आदि इसका सुन्दर उदाहरण है। 'अग्निदीक्षा' दरअसल शुरू से आखिर तक लेखक की आत्मकथा है। इस युग के उपन्यास के लिए चरित्र विकास ही प्रधान हो गया। आज की हिन्दी कहानियों में भी यही प्रवृत्ति पायी जाती है।[१६] आज के उपन्यास शिल्प का मेरुदंड है चरित्र।[१७] श्री श्रीपतराय का मत है कि आज का उपन्यास अविच्छिन्न आत्मकथा का रूप लेता जा रहा है।[१८]

इन उपन्यासों एवं कहानियों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यदि इन रचनाओं से प्रमुख चरित्र को हटा लिया जाय तो वह धराशायी होकर टूट जायगी। अथवा उसका कोई प्रभाव ही ग्रहण नहीं किया जा सकेगा। उदाहरण के लिये भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' को ले सकते हैं—चित्रलेखा समस्या-प्रधान है—और वह समस्या है पाप और पुण्य की। कुछ चरित्रों के माध्यम से कथाकार उसे सुलझाना चाहता है। किन्तु उपन्यासों में चरित्र ही प्रमुख हो जाते हैं। "अज्ञेय के शेखर में शेखर चट्टान की तरह खड़ा है। जो कुछ हो रहा है वह शेखर को ही लेकर है बीच में एक-दो पात्र आ भी गये हैं तो शेखर के व्यक्तित्व को स्पष्टता देने के लिये ही है।"[१९] हिन्दी की अन्यान्य कृतियों जैसे—शेखर, सुनीता, कल्याणी, नदी के द्वीप, त्यागपत्र आदि में यही प्रवृत्ति वर्तमान है। किन्तु विश्व की श्रेष्ठ कृतियों में इतना संकोच नहीं है। उदाहरण के लिये 'गोदान' ऐसी महाकाव्यात्मक कृतियों को लें—यदि गोदान से प्रधान चरित्र होरी को उपन्यास से हटा लें तो भी धनिया, गोबर, तथा गोदान का विषय गोदान को गोदान बनाये रखता है और उसकी मर्यादा की रक्षा भी हो जाती है। विश्व कथा साहित्य की अन्यतम कृति 'मदर' का उदाहरण भी अपेक्षित होगा—गोर्की के 'मदर' से यदि माँ या

---

१४ कुछ विचार—प्रेमचंद पृ० २६

१५. योरोपीय उपन्यास पृ० १३७

१६ "घटना की बाहों से छूटकर हिन्दी कहानी 'चरित्र' के ही आलिंगन में आ बंधे यह हिन्दी कथा-सृष्टि के लिए शुभ-संयोग है। चरित्र ऐसे जिनके प्राण का आविर्भाव कल्पना के आकाश से न होकर कथाकार की आत्मानुभूति के धरातल से हो, ऐसी योजना नई लेखनी द्वारा ही संयोजित हुई।"—नये कवियों की नय की दिशा लेखक जगदीश नारायण श्रीवास्तव 'आज' साहित्य विशेषांक १९६१ पृ० १८

१७ आलोचना (उपन्यास विशेषांक)—लक्ष्मीनारायण लाल पृ० १२८

१८ उपन्यास का रूप-विधान, साहित्यकार सम्मेलन, इलाहाबाद में पठित निबंध १९५७ ई०

१९. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० १०२

पावेल का चरित्र हटा दिया जाय तो उपन्यास में वर्णित विद्रोह रूस के मजदूरों का जीवन-संघर्ष अपनी वेष भूषा (गेसचर पोसचर) के द्वारा भी उपन्यास के प्रभाव को जीवित रखते हैं। समकालीन विश्व-विख्यात कथाकारों की कृतियों में यही गुण अभी भी वर्तमान है। इलिया एहरेनबुर्ग की आंधी अग्निलीक, हेमिंग्वे के उपन्यासों विशेष रूप से सागर और बूढ़ा आदमी (दी ओल्डमैन एंड दी सी) ऐसे लघु उपन्यासों से भी यदि प्रमुख चरित्र को लें तो उपन्यास का प्रभाव सुरक्षित रह जाता है, जो मानव के श्रम-संघर्ष अथवा सागर और यौवन का परिचायक है, रस-परिपाक में इससे कोई बाधा नहीं होती पाठक साधारणीकृत हो जाता है। जहाँ तक पात्रों की प्रमुखता एवं प्रभाव की सफलता की बात है यदि बूढ़ा आदमी को निकाल दिया जाय तो उपन्यास का उपनायक छोटा लड़का भी सागर और पौरुष का प्रतीक बन जाता है। गोदान की परंपरा को विकसित करते हुए युग की समकालीन परिस्थितियों को लेकर प्रेमचंद एवं अन्य समष्टिवादी कथाकारों की-सी संवेदना का ऐसा ही परिचय 'परती परिकथा' में फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने दिया। सम्पूर्ण परती धरती की कथा जित्तन, भुतो ताजमनी सुबंशलाल आदि के द्वारा सामने आती है अर्थात् यदि शेक्सपीयर से विचार उधार लिया जाए तो कहा जा सकता है कि 'परती' एक रंगमंच है और उपन्यास के विभिन्न पात्र उसपर अभिनय करने वाले अभिनेता हैं। इसीलिए 'परती परिकथा' के पात्र व्यक्ति-चरित्र नहीं हैं क्योंकि उनकी कथा प्रमुख नहीं है बल्कि वे समष्टि चरित्र या कलेक्टिव पात्र हैं, मात्र जाति (टाइप) चरित्र से भी अधिक।

औपन्यासिक—महाकाव्यात्मक व्यक्तित्व के अभाव में प्रेमचन्दोत्तर कथाकारों ने खण्डित व्यक्तित्व का चित्रण किया। फलतः अधिकांश कथा-साहित्य चरित्रों के रिपोर्ताज होकर रह गये। हालांकि हिन्दी आलोचकों का यह दावा रहा कि मानव के जीवन को विभिन्न खण्डित आयामों एवं इकाइयों में ही देखा जा सकता है। 'कामसिस' के इस युग में सम्भव नहीं कि 'गोदान' ऐसी महाकाव्यात्मक रचना का सृजन हो यद्यपि पृष्ठों की तुलना में गोदान से अधिक पृष्ठ वाले उपन्यास भी प्रकाशित हुए, (यद्यपि ऐसा प्रयास भी सफल हो सकता था, पर ऐसी पंक्तियाँ हिन्दी में नहीं आयीं) पर उनमें 'गोदान' का-सा व्यापक परिवेश नहीं है—उदाहरण के लिए शेखर, पथ की खोज बूंद और समुद्र इन्दुमती अथवा चतुरसेन शास्त्री[40] के उपन्यासों को देखा जा सकता है जो उपन्यास नहीं इतिहास-पुराणों के अनुवाद हैं। भविष्य में कथा-साहित्य पर शोध करने वाले विद्वानों को इन पंक्तियों को अपवाद रख कर ही कथा-साहित्य पर शोध करना होगा। साधारणतः साहित्यिक कला-कौशल का अभाव होने पर ही कथाकार इतिहास पुराण की ओर जाता है। इसीलिए नन्ददुलारे वाजपेयी[41] ऐसे आलोचक भी ऐसी साहित्यिक रचना को वर्णसंकर कृति मानते हैं।

---

४० वयं रक्षामः सोमनाथ, वैशाली की नगर वधु,

४१ आधुनिक साहित्य

प्रतिबिंबित करने वाले कथा सिद्धान्त का ही रूपान्तर मात्र है। इसलिए स्पष्ट है कि यदि जीवन-वास्तव को रूपायित करने का प्रश्न ही न रहे तो लेखक अनिवार्यतः रूप और टैक्नीक के माध्यम से स्वयं अपने ही जीवन-वृत्त को लेकर मनोविश्लेषण में प्रवृत्त होगे और अपने अनुरूप पात्रों के प्रति मोहासक्त होकर उनके अहंकारी, दायित्व हीन अनैतिक और स्वेच्छाचारी आचरण को उनकी अभिशप्त आत्मा का परिणाम सिद्ध करके उन्हें अतिरिक्त महिमा से मंडित करेंगे। हिन्दी के नये आख्यान-साहित्य में जहाँ मनोविश्लेषण है, वहाँ यह प्रवृत्ति भी है और आत्मचरितात्मक उपन्यासों की संख्या बढ़ती जा रही है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।[48] प्रेमचन्द के परवर्ती प्रायः सभी उपन्यासों में यह विशेषता वर्तमान है। अज्ञेय का शेखर साधारणतया जीवनी मूलक उपन्यास है, एक व्यक्ति-चित्र है। जैनेन्द्रकुमार का त्यागपत्र भी अंततः व्यक्ति-चित्र है और सुनीता के पात्र सामाजिक व्यक्ति नहीं रचना-संघटित मात्र हैं, जिनके द्वारा लेखक एक मानसिक संघर्ष को मूर्त रूप देना चाहता है। भगवतीचरण-वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' ('भूले बिसरे चित्र' को छोड़कर) राजनीतिक आन्दोलन के तीन रास्तों—गाँधीवादी कम्युनिस्ट और आतंकवादी—के अध्ययन के नाम पर वास्तव में राजनीतिक संघर्ष के परिपार्श्व में व्यक्तियों का ही चित्रण है। तीन पंक्तियों में कोई भी यथार्थ और सामाजिक मानव का चित्र नहीं है। इलाचन्द्र जोशी का 'निर्वासित' भी अन्ततोगत्वा व्यक्ति चरित्र का उपन्यास है। एक ही व्यक्ति और वह भी ऐसा व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व अनेकों मानसिक ग्रंथि वर्जनाओं से कुंठित और विघटित हो गया है उपन्यास का केन्द्र है। उस व्यक्ति को लेखक की सहानुभूति तो मिली है, लेकिन पाठक की सहानुभूति इसलिए नहीं मिलती कि उसकी अकारण अस्थिरता के साथ पाठक नहीं चल सकता। उपन्यास की एक यह विशेषता जरूर है कि हिन्दी में एक मात्र इस उपन्यास में एटमबम के आविष्कार की महत्ता और उसकी दूर-व्यापी सम्भावनाओं पर जोर दिया गया है। इतना ही नहीं, उपन्यास के घटनाक्रम में यह आविष्कार एक धुरी का काम करता जान पड़ता है। लेकिन वास्तव में चरित्र नायक पहले ही जिस संपूर्ण पराजय और कुंठितावस्था तक पहुँच चुका है उसी को पाठक पर अभिव्यक्त कर देने के लिए एटमबम निमित्त बना लिया गया है। अगर मानव की उन्नति पर चरित्र-नायक का विश्वास पहले ही टूटा हुआ न होता (वास्तव में अहंकारी नायक का मानव में विश्वास कभी रहा ही नहीं और घटनाचक्र से जो कुण्ठित हुआ वह केवल उसका आत्मविश्वास है) तो एटमबम की घटना उसे तोड़ देने के लिए काफी न होती। जिन्हें मानवता पर विश्वास रहा उन्हें आज भी है और यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब मूर्ख हैं जो कि एटमबम की महत्ता से परिचित नहीं हैं? परिपार्श्व के साथ उसके अन्योन्याश्रय को न देखना व्यक्ति को ऐसी आकाश बेल मानना है जो कि अपने आधार को मार ही सकती है और कुछ नहीं कर सकती। ऐसी कल्पना का परिणाम संघर्ष, पराजय और निराशावाद ही हो

४८. साहित्यानुशीलन, पृ० ६५

सकता है। जहाँ तक मानवीय सहानुभूति का लेखक मानव की विश्व मानव के साथ एकता का प्रश्न है, प्रेमचन्द इस बात में आगे थे। उनकी दृष्टि अधिक उदार थी इतर मानवों के साथ उनकी समवेदना का सूत्र अधिक सजीव और स्पन्दनशील था। डी॰ एच॰ लारेंस ने कहीं कहा था कि आधुनिक सफाई-सैनिटेशन की जड़ में यह बात है कि मानव को मानव की बू असह्य हो गयी है। बहुधा मानव जाति की उन्नति और सुधार की अपेक्षा में भी मानव के प्रेम नहीं मानव के प्रति अवहेलना या घृणा की भावना काम करती है। बुद्धिवादी के लिए यह खतरा सदा बना रहता है कि उसकी मानवीय संवेदना का स्रोत कहीं सूख न जाय, मानव के लिए उसका दर्द एक रूखी अनुकंपा का ही रूप न ले ले। प्रेमचन्द की और हमारी दृष्टि में ऐसा अन्तर पाया जा रहा है। अज्ञेय मानते हैं कि परवर्ती उपन्यासकारों (अज्ञेय जैनेन्द्र इलाचन्द्र जोशी) ने उपन्यास साहित्य को प्रेमचन्द से आगे बढ़ाया है लेकिन केवल टेक्नीक की दिशा में।"[४९]

मार्क्सीय विचार-धारा के प्रभाव के कारण यशपाल के नारी और पुरुष पात्र एक नये मोड़ का सृजन करते हैं। जब कभी यशपाल ने अपनी दृष्टि इतिहास की ओर भी फेंकी है, उसका चरित्र-चित्रण चरित्र-विकास की एक नयी शैली का सूत्रपात करता है। यशपाल का नवीन उपन्यास 'अमिता' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। दादा कामरेड, मनुष्य के रूप पार्टी कामरेड आदि उपन्यासों में जितने सारे चरित्रों का निर्माण यशपाल ने किया है ऐसे चरित्र यशपाल के उपन्यासों के पूर्व के उपन्यासों में नहीं आये थे।

अश्क को चरित्र-विकास के मोड़ के रूप में स्वीकार करना संदिग्ध होगा, क्योंकि अश्क पर प्रेमचन्द का अत्यधिक प्रभाव है। मध्यवित्त जीवन के चित्रण में भी प्रेमचन्द के चरित्र-विकास की पद्धति का परिचय अश्क ने दिया है। अश्क और यशपाल तक आते-आते कथा-साहित्य पुनः बहिर्मुखी जीवन-चित्रण की ओर आगे बढ़ जाता है। अश्क ने इस अवधि में मध्यमवर्गीय बाह्य जीवन का और नागार्जुन ने ठेठ गाँव के किसान-मजदूरों का चित्रण किया प्रेमचन्द ने जहाँ तक चरित्र का निर्माण कर छोड़ दिया था वहाँ से आगे नागार्जुन बढ़ते हैं। नवीन सामयिक जन-दृष्टि और राजनीतिक जन-चेतना के मूर्तरूप उनके पात्र हैं जिसका नितान्त अभाव प्रेमचन्द के पात्रों में था। क्योंकि प्रेमचन्द के पात्रों का युग-सत्य वही था और ऐसा कहा जा सकता है कि नागार्जुन का बलचनमा गोबर का विकसित रूप है। मनोवैज्ञानिक कथालोक के क्षेत्र में अज्ञेय एवं जोशी प्रभृति लेखकों के द्वारा जो कुण्ठित निराशाजनक प्रयोग हुए थे उसने आशावादी मोड़ लिया और इन कथाकारों की नयी कृतियों ने चरित्र-सृष्टि के द्वारा नवीन विकास की परम्परा को आगे बढ़ाया। नवीन ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के कारण कथा-साहित्य में रेल तार इंजन एटमबम राकेट की बातों को भी संरक्षण मिलने लगा। साथ ही समुद्र अजीब विशेषताएं टेस्ट ट्यूब बेबीज यौन परिवर्तन

४९. दृष्टिकोण प्रकाश, जनवरी १९४९, पृ॰ २१.

प्रतिबिंबित करने वाले कथा-सिद्धान्त का ही रूपान्तर मात्र है। इसलिए स्पष्ट है कि यदि जीवन-वास्तव को रूपायित करने का प्रश्न ही न रहे तो लेखक अभिव्यंजना रूप और टैकनीक के माध्यम से स्वयं अपने ही जीवन-वृत्त को लेकर मनोविश्लेषण में प्रवृत्त होंगे और अपने अनुरूप पात्रों के प्रति मोहासक्त होकर उनके अहंकारी, दायित्व हीन अनैतिक और स्वेच्छाचारी आचरण को उनकी अभिशप्त आत्मा का परिणाम सिद्ध करके उन्हें अतिरिक्त महिमा से मंडित करेंगे। हिन्दी के नये आख्यान-साहित्य में जहाँ मनोविश्लेषण है वहाँ यह प्रवृत्ति भी है और आत्मचरितात्मक उपन्यासों की संख्या बढ़ती जा रही है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।[४८] प्रेमचन्द के परवर्ती प्रायः सभी उपन्यासों में यह विशेषता वर्तमान है। अज्ञेय का 'शेखर' साधारणतया जीवनी मूलक उपन्यास है, एक व्यक्ति चित्र है। जैनेन्द्रकुमार का त्यागपत्र भी अंततः व्यक्ति-चित्र है, और सुनीता के पात्र सामाजिक व्यक्ति नहीं, रचना-संगठित यन्त्र हैं जिनके द्वारा लेखक एक मानसिक संघर्ष को मूर्त रूप देना चाहता है। भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' ('भूले बिसरे चित्र' को छोड़कर) राजनीतिक आन्दोलन के तीन रास्तों—गाँधीवादी कम्युनिस्ट और आतंकवादी—के अध्ययन के नाम पर वास्तव में राजनीतिक संघर्ष के परिपार्श्व में व्यक्तियों का ही चित्रण है। तीन पंथियों में कोई भी यथार्थ और सामाजिक मानव का चित्र नहीं है। इलाचन्द्र जोशी का 'निर्वासित' भी अन्ततोगत्वा व्यक्ति-चरित्र का उपन्यास है। एक ही व्यक्ति और वह भी ऐसा व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व अनेकों मानसिक यौन वर्जनाओं से कुंठित और विघटित हो गया है उपन्यास का केन्द्र है। उस व्यक्ति को लेखक की सहानुभूति तो मिली है लेकिन पाठक की सहानुभूति इसलिए नहीं मिलती कि उसकी अकारण अस्थिरता के साथ पाठक नहीं चल सकता। उपन्यास की एक यह विशेषता जरूर है कि हिन्दी में एक मात्र इस उपन्यास में एटमबम के आविष्कार की महत्ता और उसकी दूर-व्यापी सम्भावनाओं पर जोर दिया गया है। इतना ही नहीं, उपन्यास के घटनाक्रम में यह आविष्कार एक धुरी का काम करता जान पड़ता है। लेकिन वास्तव में चरित्र नायक पहले ही जिस संपूर्ण पराजय और कुंठितावस्था तक पहुँच चुका है उसी को पाठक पर अभिव्यक्त कर देने के लिए एटमबम निमित्त बना लिया गया है। अगर मानव की उन्नति पर चरित्र-नायक का विश्वास पहले ही टूटा हुआ न होता (वास्तव में अहंकारी नायक का मानव में विश्वास कभी रहा ही नहीं और पश्चाताप से जो कुण्ठित हुआ वह केवल उसका आत्मविश्वास है) तो एटमबम की घटना उसे तोड़ देने के लिए काफी न होती। जिन्हें मानवता पर विश्वास रहा उन्हें आज भी है और यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब मूर्ख हैं जो कि एटमबम की महत्ता से परिचित नहीं हैं? परिपार्श्व के साथ उसके अन्योन्याश्रय को न देखना व्यक्ति को ऐसी आकाश बेल मानना है जो कि अपने आधार को मार ही सकती है और कुछ नहीं कर सकती। ऐसी कल्पना का परिणाम संघर्ष पराजय और निराशावाद ही हो

४८. साहित्यानुशीलन, पृ० १२

सकता है। जहाँ तक मानवीय सहानुभूति का, लेखक मानव को विश्व मानव के साथ एकता का प्रश्न है, प्रेमचन्द इस बात में आगे थे। उनकी दृष्टि अधिक उदार थी इतर मानवों के साथ उनकी समवेदना का सूत्र अधिक सजीव और स्पन्दनशील था। डी० एच० लारेंस ने नहीं कहा था कि आधुनिक सफाई-सैनेटेशन की जड़ में यह बात है कि मानव को मानव की बू असह्य हो गयी है। बहुधा मानव जाति की उन्नति और सुधार की प्रचेष्टा में भी मानव से प्रेम नहीं मानव के प्रति अवहेलना या घृणा की भावना काम करती है। बुद्धिवादी के लिए यह खतरा सदा बना रहता है कि उसकी मानवीय संवेदना का स्रोत कहीं सूख न जाय मानव के लिए उसका दर्द एक रूखी अनुकंपा का ही रूप न ले ले। प्रेमचन्द की ओर हमारी दृष्टि में ऐसा अन्तर आता जा रहा है। अज्ञेय मानते हैं कि परवर्ती उपन्यासकारों (अज्ञेय जैनेन्द्र इलाचन्द्र जोशी) ने आख्यान साहित्य को प्रेमचन्द से आगे बढ़ाया है लेकिन केवल टेकनीक की दिशा में।[४९]

मार्क्सिज्म विचार धारा के प्रभाव के कारण यशपाल के नारी और पुरुष पात्र एक नये मोड़ का सृजन करते हैं। जब कभी यशपाल ने अपनी दृष्टि इतिहास की ओर भी फेंकी है इनका चरित्र-चित्रण चरित्र-विकास की एक नयी शैली का सूत्रपात करता है। यशपाल का नवीन उपन्यास 'अमिता' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। दादा कामरेड मनुष्य के रूप, पार्टी कामरेड आदि उपन्यासों में जितने सारे चरित्रों का निर्माण यशपाल ने किया है, ऐसे चरित्र यशपाल के उपन्यासों के पूर्व के उपन्यासों में नहीं आये थे।

अश्क को चरित्र-विकास के मोड़ के रूप में स्वीकार करना संदिग्ध होगा क्योंकि अश्क पर प्रेमचन्द का अत्यधिक प्रभाव है। मध्यवित्त जीवन के चित्रण में भी प्रेमचन्द के चरित्र-विकास की पद्धति का परिचय अश्क ने दिया है। अश्क और यशपाल तक आते-आते कथा-साहित्य पुनः बहिर्मुखी जीवन-चित्रण की ओर आगे बढ़ जाता है। अश्क ने इस अवधि में मध्यमवर्गीय बाह्य जीवन का और नागार्जुन ने ठेठ गांव के किसान-मजदूरों का चित्रण किया प्रेमचन्द ने जहाँ तक चरित्र का निर्माण कर छोड़ दिया था वहाँ से आगे नागार्जुन बढ़ते हैं। नवीन सामयिक जन-दृष्टि और राजनीतिक जन-चेतना के मूर्तरूप उनके पात्र हैं जिसका नितान्त अभाव प्रेमचन्द के पात्रों में था। क्योंकि प्रेमचन्द के पात्रों का युग-सत्य वही था और ऐसा कहा जा सकता है कि नागार्जुन का बलचनमा गोबर का विकसित रूप है। मनोवैज्ञानिक कथालोक के क्षेत्र में अज्ञेय एवं जोशी प्रभृति लेखकों के द्वारा जो कुण्ठित निराशाजनक प्रयोग हुए थे उनने यथार्थवादी मोड़ लिया और इन कथाकारों की नयी कृतियों ने चरित्र-सृष्टि के द्वारा नवीन विकास की परम्परा को आगे बढ़ाया। नवीन ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के कारण कथा-साहित्य में रेल तार, इंजन एटमबम राकेट की बातों को भी संरक्षण मिलने लगा। साथ ही समुद्र क्षेत्रीय विशेषताएं टेस्ट ट्यूब बेबीज यौन परिवर्तन

४९. दृष्टिकोण प्रयाग, जनवरी, १९४९, पृ० ११.

प्रतिबिंबित करने वाले कला-सिद्धान्त का ही रूपान्तर मात्र है। इसलिए स्पष्ट है कि यदि जीवन-वास्तव को रूपायित करने का प्रश्न ही न रहे तो लेखक अनिवार्यतः रूप और टेकनीक के माध्यम से स्वयं अपने ही जीवन-वृत्त को लेकर मनोविश्लेषण में प्रवृत्त होगे और अपने अनुरूप पात्रों के प्रति मोहासक्त होकर उनके अहंकारी, दायित्व हीन अनैतिक और स्वेच्छाचारी आचरण को उनकी अभिशप्त आत्मा का परिणाम सिद्ध करके उन्हें अतिरिक्त महिमा से मंडित करेंगे। हिन्दी के नये आख्यान-साहित्य में जहाँ मनोविश्लेषण है, वहाँ यह प्रवृत्ति भी है और आत्मचरितात्मक उपन्यासों की संख्या बढ़ती जा रही है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।[४८] प्रेमचन्द के परवर्ती प्रायः सभी उपन्यासों में यह विशेषता वर्तमान है। अज्ञेय का 'शेखर' साधारणतया जीवनी मूलक उपन्यास है, एक व्यक्ति चित्र है। जैनेन्द्रकुमार का त्यागपत्र भी केवल व्यक्ति-चित्र है, और सुनीता के पात्र सामाजिक व्यक्ति नहीं रचना-समष्टि मात्र हैं जिनके द्वारा लेखक एक मानसिक संघर्ष को मूर्त रूप देना चाहता है। भगवतीचरण-वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' ('भूले बिसरे चित्र' को छोड़कर) राजनीतिक आन्दोलन के तीन रास्तों—गांधीवादी कम्युनिस्ट और आतंकवादी—के अध्ययन के नाम पर वास्तव में राजनीतिक संघर्ष के परिपार्श्व में व्यक्तियों का ही चित्रण है। तीन पंथियों में कोई भी यथार्थ और सामाजिक मानव का चित्र नहीं है। इलाचन्द्र जोशी का 'निर्वासित' भी अन्तर्मुखी व्यक्ति-चरित्र का उपन्यास है। एक ही व्यक्ति और वह भी ऐसा व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व अनेकों मानसिक ग्रंथि वर्जनाओं से कुंठित और विघटित हो गया है, उपन्यास का केन्द्र है। उस व्यक्ति को लेखक की सहानुभूति तो मिली है लेकिन पाठक की सहानुभूति इसलिए नहीं मिलती कि उसकी अकारण अस्थिरता के साथ पाठक नहीं चल सकता। उपन्यास की एक यह विशेषता जरूर है कि हिन्दी में एक मात्र इस उपन्यास में एटमबम के आविष्कार की महत्ता और उसकी दूर-व्यापी सम्भावनाओं पर जोर दिया गया है। इतना ही नहीं, उपन्यास के घटनाक्रम में यह आविष्कार एक धुरी का काम करता जान पड़ता है। लेकिन वास्तव में चरित्र नायक पहले ही जिस संपूर्ण पराजय और कुंठितावस्था तक पहुँच चुका है उसी को पाठक पर अभिव्यक्त कर देने के लिए एटमबम निमित्त बना लिया गया है। अगर मानव की उन्नति पर चरित्र-नायक का विश्वास पहले ही टूटा हुआ न होता (वास्तव में अहंकारी नायक का मानव में विश्वास कभी रहा ही नहीं और घटनाचक्र से जो कुण्ठित हुआ वह केवल उसका आत्मविश्वास है) तो एटमबम की घटना उसे तोड़ देने के लिए काफी न होती। जिन्हें मानवता पर विश्वास रहा उन्हें आज भी है और यह नहीं कहा जा सकता कि वे सब मूर्ख हैं जो कि एटमबम की महत्ता से परिचित नहीं हैं? परिपार्श्व के साथ उसके अन्योन्याश्रय को न देखना व्यक्ति को ऐसी आकाश बेल मानना है जो कि अपने आधार को मार ही सकती है और कुछ नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था का परिणाम संघर्ष, पराजय और निराशवाद ही हो

४८. साहित्यानुशीलन, पृ० १५

इत्यादि की बातें भी कथा-साहित्य में प्रवेश करने लगी हैं। राष्ट्रीय नव निर्माण एवं कलों, दफ्तरों और कुर्सीधारियों की नई गड़गड़ाहट के बीच से नया मानव चित्रित होकर कथा-साहित्य में स्थान पाने लगा है।[10] इतना होते हुए भी नागार्जुन तक कथा-साहित्य में व्यक्ति को ही प्रमुखता मिलती रही है—गोदान जैसी महाकाव्यात्मक संवेदना एक भी कृति में नहीं आई, जिसमें व्यक्ति के माध्यम से कथा विकसित नहीं होती बल्कि सामाजिक समूह अथवा समाज उसका नायक है और इस समूह का प्रतिनिधि होती है। और समूह के इस चरित्र-विश्लेषण की व्यापकता को लेकर ही फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने अपने उपन्यासों की सृष्टि की है। प्रकृति का एक खंड कुमारी ताप की धूल भरी-परती-धरती तथा मिथिला का 'मैला आंचल' उसकी कथा का विषय है। उपन्यास का नायकत्व किसी एक व्यक्ति को प्रदान नहीं किया गया है। क्योंकि केवल व्यक्ति का महत्त्व वहाँ नहीं है। कथा व्यक्ति के पीछे नहीं चलती। आज के उपन्यासों में प्राचीन काल के धीरोदात्त क्षत्रिय का ऐश्वर्योन्मुख नायकों का सर्वथा अभाव हो गया है और उनके स्थान पर साधारण मजदूर किसानों की बात छोड़िए, असाधारण अविकसित मानव तथा अपराधी मनोवृत्ति वाले और जुआबाज और व्यसनी मनुष्यों का साधिकार प्रवेश होने लगा है। अभी हाल के बीस वर्षों के अन्दर औपन्यासिकों का ऐसा दल पनपा है, जो उपन्यासों में शिशु और शिशु-मानस को प्रतिष्ठा देने का आग्रही है। उनका कथन है कि मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के जीवन की रूपरेखा जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही निश्चित हो जाती है। मनुष्य को जिस ऊँचाई तक उठना है अथवा जिस गहराई तक पतित होना है इसका निर्णय इन्हीं प्रारम्भिक वर्षों के हाथ में है। हिन्दी के अधिकांश कथाकारों का ध्यान शिशुओं की ओर नहीं गया। प्रेमचन्द की रचनाओं में अज्ञेय के शेखर में सेठ गोविन्ददास की इन्दुमती में तथा परती परिकथा में थोड़ा शिशु-मानस का आधार अवश्य लिया गया है पर अब औरों का भी ध्यान इधर गया है। सेठजी के 'इन्दुमती' में एक मारवाड़ी सेठ रामस्वरूप की बड़ी सफल तस्वीर उतारी गई है। स० ही० वात्स्यायन का मत है कि ऐसे सफल चित्र हिन्दी में दो और नहीं मिलेंगे। मारवाड़ी सेठ की मनोवृत्ति के यह सच्चे और सही चित्र हैं। वास्तव में इस प्रकार के पात्र पहली बार उनकी कृति में नहीं आये। उनके एक नाटक में भी एक वृद्ध मारवाड़ी पात्र है। वह उनके सभी नाटकों में सबसे सफल चरित्र है। उन्होंने सैकड़ों नाटकीय पात्रों की सृष्टि की होगी। उन सबसे सफल पात्र वह वृद्ध मारवाड़ी है। यह जो सेठ रामस्वरूप है, वह भी उसी की प्रतिमूर्ति है और यह प्रतिमूर्ति सेठजी ने गढ़ी नहीं वह उनके संस्कार में रमी हुई है। सेठजी का कथन है कि उसकी प्रेरणा उन्हें अपने पितामह से मिली है।[11] किन्तु यह जो पात्र का चित्रण है वह एक पीढ़ी पहले का चित्रण है। अब के युग को और आज की समस्याओं को लेकर जैसे पात्र का चित्र नागार्जुन ने अपने 'बलचनमा' में दिया है, उसका प्रभाव

---

१० कथा के तत्त्व

११ आजकल,—डा० नगेन्द्र, मार्च, १९५१, पृ० ११

हमें 'रंगभूमि' में मिलता है। इस कारण से 'बलचनमा' अधिक सफल जान पड़ता है। प्रेमचन्द की परम्परा के यथार्थ का सच्चा निर्वाह इस बलचनमा में मिलता है। गोदान का होरी इस दृष्टि से भारतीय कथा-साहित्य में बेजोड़ है और पात्र के चरित्रों में तो इस तरह का एक ही प्रयत्न ध्यान में आ रहा है जिसे इतने अधिक संबंधों और सम्पर्कों में रखने की कोशिश की गई—यह है बलचनमा।

होरी के उत्तराधिकारियों में नागार्जुन का बलचनमा और अमृतलाल नागर का 'सेठ बाँकेमल' उल्लेख्य है। ये चरित्र अपने व्यक्तित्व में सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं को इस तरह आत्मसात करके साकार हो उठे हैं और इतने अधिक 'अपने व्यक्तित्व' के कोष बन गये हैं कि जहाँ हम उनमें एक युग को अपनी सारी विशेषताओं के साथ देखते हैं, वहाँ ये बहुत ही साधारण लेकिन बेजोड़ आदमी भी हैं। यदि सामन्तवाद की समाप्ति के साथ होरी की कहानी समाप्त होती है तो 'बाँकेमल' और 'बलचनमा' अपने पुराने संस्कारों के साथ नई सभ्यता का ऐसा गंगा-जमुनी समन्वय होते हैं कि दो व्यक्तित्व सामने आते हैं। बाँकेमल तो सचमुच ही अद्वितीय चरित्र है जो हँसते-हँसते अपने युग की प्रतिक्रियावादी और प्रगतिशील दोनों धाराओं का दिग्दर्शन कराता है। रतिनाथ और बलचनमा के रूप में ऐसा लगता है कि नागार्जुन ने प्रेमचंद की विस्मृत कथा-परंपरा और होरी की वंशावली अर्थात् गोबर को चित्रित किया है। लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक सत्यों को समोकर वह भी इतना सशक्त पात्र नहीं दे सके जो बाँकेमल है। हालाँकि बाँकेमल अपने आपमें उपन्यास का अधूरा ही पात्र है जिस तरह होरी का ढीला-ढाला प्रशान्त चरित्र बिना धनिया की तेजी और झड़क के नहीं निखर सकता था उसी तरह बाँकेमल तो केवल चौबेजी के चरित्र का पूरक है।

'परती परिकथा' के पूर्व और 'गोदान' के बाद के कथा-साहित्य की प्रगति मुख्य व्यक्ति-चरित्र प्रधान साहित्य रचना का उदाहरण है। यह परंपरा 'बलचनमा' तक चलती रही और आज भी हिन्दी में अच्छी प्रतिशत रचनाएँ व्यक्ति चरित्र मूलक ही प्रकाशित होती हैं। (हालाँकि 'बलचनमा' में व्यक्ति का सामाजीकरण किया गया है) साथ ही अधिकांश चरित्रों के चारित्रिक विश्लेषण में हिन्दी के पूर्ववर्ती एवं बंगला के कथा-चरित्रों से तुलना करने पर कोई विशेष मौलिकता दिखाई नहीं पड़ती। जैनेन्द्र अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी प्रभृति लेखकों के अधिकांश चरित्र प्रेमचन्द एवं शरत के इर्द गिर्द ही चक्कर काटते रहे। शरत के पात्रों की असीम करुणा, विशेष रूप से नारी पात्रों की हिन्दी कथाकारों पर अब भी हावी है। 'परती परिकथा' के नारी पात्रों में भी जैसे ताजमनी और इरावती में इसी करुणा की छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यशपाल अश्क, अमृतराय और भगवतीचरण वर्मा ऐसे प्रगतिशील कथाकार के अधिकांश चरित्र भी प्रेमचन्द, शरत और रवीन्द्र से अधिक आगे नहीं जा पाये। जैनेन्द्र की सुनीता जैनेन्द्र को प्रेमचन्द की मालती, और अज्ञेय की शशि सुनीता का प्रतिरूप बनकर आती है। देवराज और धर्मवीर भारती के पात्रों पर जैनेन्द्र-अज्ञेय का स्पष्ट प्रभाव तो देखा ही

जा सकता है।[५२] 'बलचनमा' को पढ़ते हुए हठात् गोबर की याद आ ही जाती है। कुछ आलोचकों ने यह भी आरोप किया है कि आजकल अनेक प्रतिष्ठित उपन्यासकार केवल एक पात्र का निर्माण करना चाहते हैं जो वे स्वयं हैं और उसकी फिर-फिर पुनरावृत्ति करते हैं। भुवन (नदी के द्वीप) शेखर का ही दूसरा रूप है गर्मराख का नायक 'चेतन' का प्रतिरूप है और सुषमा एवं मिनर्वे, सुनीता की ही दूसरी और तीसरी आवृत्ति है।[५३]

समकालीन नयी हिन्दी कहानियों की अधिकांश कहानियों ने चरित्रांकन के नये प्रतिमान अवश्य उपस्थित किए हैं किंतु उनका रूप अभी इतना व्यवस्थित नहीं हुआ है कि प्रेमचंद की तुलना में उनकी नवीनता को हम स्वीकार कर लें। क्यों कि आंचलिकता के अभाव भार से कहानी दबी रहने के कारण चरित्रांकन स्पष्ट नहीं हो पाया है। यह बात दूसरी है कि कुछ कृतियों में नये और सबल चरित्र दिखाई पड़ रहे हैं। उदाहरण के लिए शिवप्रसाद सिंह कमलेश्वर और मार्कण्डेय आदि के कहानी-संग्रहों को लिया जा सकता है। किंतु अब कहानी-निर्माण का प्रमुख और एक मात्र सूत्र चरित्र हो गया है।

नारी चरित्रों के विश्लेषण में भी प्रेमचंद की तुलना में कोई उल्लेखनीय नवीन तत्वों की उपलब्धि नहीं हुई—हिन्दी के अधिकांश उपन्यासों एवं कहानियों में नारी का रूप भी एक ही प्रकार का रहा है शायद सम्पूर्ण आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में। हिन्दी की आजतक की कथाकृतियों की उपलब्धियों को देखने पर भी यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रेमचंद की कथाकृतियों में ही आज के विकसित विभिन्न कथा चरित्रों के रेखा चरित्र दिखलाई पड़ने लगे थे और प्रेमचंद ही पहले कथाकार थे जिनकी कृतियों के द्वारा ही चरित्र विकास की परंपरा प्रारंभ हुई।[५४] किन्तु आज का युग 'होरी' ऐसे नायक का नहीं है। सामंती तथा पूंजीवादी व्यवस्था के ह्रास के साथ ही वैसे नायक का ह्रास हो रहा हो। अतएव अलग-अलग उपन्यासों में उसे गोबर और उसके विकसित रूप को ढूंढने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रेमचंद की परंपरा का विकास उसे इसी खोज में दिखायी दे सकता है। यहां फिर यदि गोबर को वह नायक के रूप में ढूंढने का प्रयत्न करेगा तो धोखा खायेगा। यदि उसे नायक का इतना ही मोह है तो उसे कई उपन्यासों के कई गोबरों को मिलाकर एक मूर्ति गढ़नी होगी।[५५] फिर भी 'गोदान' के रचयिता प्रेमचंद ही हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक हैं। प्रेमचंद उस शिखर के समान हैं जिसके दोनों ओर पर्वत के दो मार्गों के उतार-चढ़ाव हैं। हमें पर्वत के दोनों मार्गों और शिखर को दूर से और

---

५२ आलोचना (१४) पृ० ४२

५३ हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० १८८

५४ प्रेमचंद : एक विवेचना पृ० ४८

५५. भरत प्रसाद गुप्त—'पत्थर अल पत्थर' की भूमिका से पृ० २।

समीप से, अवलोकन का प्रयास करता है।[२५] हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास का सेहरा अब भी 'गोदान' पर ही है।[२६] प्रेमचंद के पश्चात् उसी राष्ट्रीय पैमाने का, उसी समस्त सर्जना-शक्ति का दूसरा लेखक हिन्दी उपन्यास जगत में शायद कोई नहीं था। अब हमारी दृष्टि रेणु की ओर जा सकती है।[२७]

वस्तुतः प्रेमचंद के बाद व्यक्ति चरित्र प्रधान-उपन्यासों एवं कहानियों की सृष्टि ही हमारे साहित्य में अपना महत्व रखती है। सुनीता से बलचनमा-दुखमोचन तक की विकास-यात्रा इसी की परिचायक है। बलचनमा के प्रणयन के बाद हमने आशा प्रकट की थी कि शीघ्र प्रेमचंद की परंपरा में नव हस्ताक्षर होंगे और संभवतः इसका नेतृत्व बिहार करेगा। वस्तुतः ऐसा हुआ भी पर नागार्जुन बलचनमा के बाद पुनः बलचनमा की ऊँचाई तक भी नहीं पहुँच सके अथवा बलचनमा की सृष्टि के बाद उन्होंने जिस महाकाव्यात्मक नाटक के प्रथम अंक का प्रदर्शन किया था, वह केवल संभावना बनकर रह गया जिसे कुछ दिनों तक हिन्दी के बहुत सारे आलोचक रहस्य समझते रहे। किन्तु मैला आँचल और परती परिकथा के प्रकाशन के बाद हमारा यह रहस्य समाप्त हो जाता है और हम स्वीकार कर लेते हैं कि बलचनमा का विकसित विस्तृत रूप परती परिकथा है। नागार्जुन, प्रेमचंद की अपेक्षा श्रेष्ठ-चेतन संघर्षशील वर्गचरित्र निर्मित करते हुए भी व्यक्ति तक ही सीमित रह जाते हैं, जिसकी पुष्टि उनके अधिकांश उपन्यासों के नामों से भी हो जाती है जैसे बलचनमा रतिनाथ की चाची दुखमोचन। केवल दो-एक कृतियों जैसे बाबा बटेसरनाथ नई पौध वरुण के बेटे आदि में व्यक्ति की वैयक्तिकता से निकलकर वे व्यापक भूखंड को नायक बनाने का प्रयास करते हैं, किन्तु नागार्जुन का झुकाव उस ओर नहीं है, उन्हें व्यक्ति चरित्र के निर्माण में ही सफलता मिलती रही है। परन्तु रेणु का प्रयास प्रारंभ से ही व्यापक भूखंड को चित्रित करने का रहा है इसीलिए उन्होंने नागार्जुन की तरह केवल टाइप चरित्र का ही निर्माण नहीं किया बल्कि कलेक्टिव चरित्र की स्थापना की।[२८] बहुत दूर तक इस दृष्टि का अभाव प्रेमचंद में भी था। विश्वविख्यात उपन्यासकारों ने इस दृष्टि को विकसित किया है। इसीलिए रेणु विश्वविख्यात उपन्यासकारों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी हैं। दुखमोचन वरुण के बेटे आदि का सृजनकर नागार्जुन विश्व उपन्यासकारों की कतार में खड़े होने तक के अधिकारी नहीं हैं किन्तु उन्होंने बलचनमा लिख कर और कुछ न लिखा होता तो विश्व उपन्यासकारों की पंक्ति में आ ही जाते। पर

---

२५. आलोचना (इतिहास विशेषांक) अक्टूबर १९५२, पृ० ११२ ले० नलिनविलोचन शर्मा

२६ आजकल अगस्त, १९५१, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पुस्तक समालोचना के अन्तर्गत यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' के संबंध में व्यक्त विचारों से

२७. आलोचना—संपादकीय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ८

२८ भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास गंगा मैया में इस टेकनीक का सफल प्रयोग हुआ है।

देर की बात है कि अपने औपन्यासिक 'रति परिवर्तन'[10] के दौरान में नागार्जुन ने अन्यान्य उपन्यासकारों की तुलना में एक-पर-एक निर्जीव बेजान पात्रों की सृष्टि की है। और कहीं-कहीं कथा तथा कथन में इतनी नीरसता आ गयी है कि उपन्यास को समाप्त करना कठिन हो जाता है।[11] यद्यपि उनकी उपयोगी जन दृष्टि आज भी व्यापक है और गोर्की इलिया इहरेन बुर्ग एलेक्सी टाल्सटाय ऐसे कथाकारों के निकट नागार्जुन पहुँच जाते हैं। किन्तु रेणु औपन्यासिक यथार्थवाद मानवतावाद उपयोगितावाद एवं मनोरंजकता का निर्वाह करते हुए शेक्सपीयर, टाल्सटाय[12] और हार्डी के निकट पहुँच जाते हैं और कहीं-कहीं उनसे भी महत्वपूर्ण कहे जाते हैं।

हमने नागार्जुन के उपन्यास बलचनमा को हिन्दी का महाकाव्य कहा है। किन्तु बलचनमा यदि चरित्र प्रधान महाकाव्य है तो परती परिकथा व्यापक धरती का महाकाव्य है जिसे शिवदान सिंह चौहान ऐसे आलोचक इस युग का महाकाव्य मानते हैं 'साथ ही यह 'गंगा मैया'[13] और 'कोसी मैया'[14] की गाथा है, जिसकी जमीन को[15] मटक और जित्तन[16] जोतना चाहते हैं जोतते हैं—सुधार और बंजर उपजाते हैं।

'कुदरत को आईना' दिखाते हुए प्रेमचंद ने बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के व्यापक समूह को गोदान का पात्र और विषय बनाया था उसी प्रकार परती परिकथा में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के व्यापक जन-समूह को पात्र और विषय बनाया गया है। इसलिए हर व्यक्ति, समाज का हर वर्ग राजनीति का हर दल उसमें अपने आचरण और अपनी वर्तमान भूमिका का सही चित्र देख सकता है।[17]

अतः आज हमें ऐसा मान लेने में संकोच नहीं करना चाहिये कि प्रेमचंद के बाद नागार्जुन, और रेणु द्वारा महत्वपूर्ण चरित्रों के निर्माण हुए हैं और रेणु ने चरित्र विकास के नये प्रतिमान स्थापित किए हैं। हालांकि डाक्टर रामविलास शर्मा[18] इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। रेणु की परती परिकथा की तुलना वे इलियट के 'वेस्ट लैंड' से करते हैं और उसके चरित्रों को वेस्टलैंड के मछुआ राजा की तरह पुंसत्वहीन समझते हैं। साथ ही वे परती परिकथा की जनता को प्रेमचंद की जनता से बिलकुल भिन्न मानते हैं।

आधुनिक ह्रासोन्मुख पूँजीवादी युग के पाश्चात्य उपन्यासकारों की

---

१० यह कथन नागार्जुन का ही है।
११ इस पंक्ति के लेखक को उपन्यासकार अश्क ने ऐसा ही कहा था।
१२ 'युद्ध और शांति' के टाल्सटाय
१३ भैरवप्रसाद गुप्त
१४ रेणु
१५. गंगा मैया का पात्र
१६ परती परिकथा का पात्र
१७ शिवदानसिंह चौहान—आलोचना के मान पृ० १४
१८ समालोचक, अगस्त ५८, पृ० १

कृतियों में हीरो की मृत्यु'' हो चुकी है—अर्थात् पाश्चात्य उपन्यासकार मनुष्य को विषय न बनाकर परिस्थितियों और बाह्य या आंतरिक घटनाओं को उपन्यास का विषय बनाते हैं। रेणु इस ह्रासोन्मुख परंपरा से अपने को सर्वथा मुक्त तो नहीं कर पाये, लेकिन एक क्रान्तिकारी उपन्यासकार की तरह उन्होंने परिस्थितियों के माध्यम से मनुष्य—बिरसा वावनदास मखारी आदि को पुनः कला के केन्द्र में स्थापित करने की चेष्टा की है।[69] इस संबंध में डा० सुषमा धवन का मत है कि वास्तव में उनका अस्तित्वहीन होना युग-चेतना के अनुकूल है। आधुनिक गत्यात्मक संस्कृति महाकाव्य के नायक को जन्म नहीं दे सकती जिसमें दृढ़ निश्चय हो अपराजेय साहस हो असीम आदर्शवाद हो और समाज को बदलने की शक्ति हो। आज मानव स्वयं को ऐसी परिस्थिति में जकड़ा हुआ पाता है जो उसे आत्म-केन्द्रित तथा आत्मरत बना देती है जिसके कारण उसका संबंध समाज तथा बाहरी जीवन से कट जाता है या शिथिल पड़ जाता है।[70] चरित्र के बारे में यही वह दृष्टिकोण है जो कि उपन्यासों से सर्वथा लुप्त हो चुका है जिसे क्रांतिकारी उपन्यासकार को फिर से स्थापित करना होगा। उसे वास्तविकता से डरना नहीं है पूर्ण मानव का चित्रण करने से कतराना नहीं है। उसे अब उसी काम को उठाना है जिससे बुर्जुआ वर्ग के उपन्यासकार मुँह मोड़ चुके हैं। वह काम है अपनी कल्पनात्मक शक्ति से प्रतिनिधि मानव की हमारे युग के नायक की, रचना करना और इस प्रकार, जसाकि स्तालिन ने कहा था 'मानवात्मा का अभियंता' बनकर अपने को सार्थक सिद्ध करना।[71]

औपन्यासिक नायकों का भविष्य

वाल्टर एलन की तरह फाक्स का स्पष्ट मत था कि उपन्यास को मुख्यतः चरित्र के सृजन पर ध्यान देना चाहिए। अतएव उपन्यासकार का केन्द्रीय काम यह है कि मानव को उपन्यास में वह फिर उसके अपने स्थान पर स्थापित करे, मानव का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करे सामयिक मानव के व्यक्तित्व की दुर अवस्था को समझे तथा उसे कल्पनात्मक रूप में मूर्त करे। मानव की चेतना का विस्तार हो गया है। पूँजीवादी समाज द्वारा लगाये गये बंधनों-बाधाओं को तोड़कर उन्मुक्त होने के लिए यह व्यग्र है आधुनिक समाज की उन तमाम अद्भुत सुविधाओं का प्रयोग करने के लिए वह बेचैन है जो स्थल और वायु द्वारा दूर संचार के विकास ने सिनेमा बेतार के तार और टैलीविजन के विकास ने, कुत्सित और आत्मा को गिराने वाले श्रम से मुक्त घरों में रहने की संभावना ने प्रदान की हैं। ये सब चीजें अभी उसकी पहुँच से बाहर हैं। केवल कुछ गिने-चुने लोग पूँजीवादी दुनिया के भाविक आधुनिक जीवन के इन अद्भुत

६९. उपन्यास और लोक-जीवन, राल्फ फॉक्स, पृ० ८२
७०. आलोचना के मान, पृ० २२
७१. हिन्दी उपन्यास पृ० २०५
७२. उपन्यास और लोक-जीवन, पृ० ९०

आविष्कारों का उपयोग कर सकते हैं, और वे लोग उनका उपयोग करते हैं—मानव की आत्मा को और विकसित करने के लिए नहीं, बल्कि उसका पूर्ण विनाश करने के लिए। फिर भी करीब-करीब हर पुरुष और स्त्री में—चाहे वह भारतीय हो या चीनी अंग्रेज हो या फ्रांसीसी—यह चेतना वर्तमान है कि जीवन के सुख को अभी भी गहरा और विस्तृत बनाया जा सकता है। यह चेतना अमन की एक नई दुनिया बनाने के प्रयास का, रूप धारण कर रही है। मानव-मुक्ति का एक नया युग आरम्भ हो रहा है।[७३] उपर्युक्त मान्यताओं का समर्थन करते हुए प्रसिद्ध उपन्यासकार इलाचंद्र जोशी[७४] का मत है कि भविष्य में उपर्युक्त पृष्ठभूमि में एक ऐसा उपन्यास लिखा जायगा जिसका चरित्र-नायिका या पात्र-नायिकाएँ किसी विशेष देश या विशेष समाज की विशिष्टता से संबंधित न होकर रवीन्द्रनाथ के 'गोरा' की तरह विश्व मानवत्व के प्रतीक होंगे। और इस प्रकार के उपन्यासकार के उपन्यास के लिए उपयुक्त जमीन आज हमारे देश में तैयार है क्योंकि इस प्रकार की विश्व-जनीन अनुभूति परंपरागत सांस्कृतिक प्रेरणा केवल इसी देश को प्राप्त है और युग की विषमता और विरोधाभास के सारे प्रतीक भी आज इसी देश में सिमटते चले आ रहे हैं विशेष रूप से हिन्दी प्रदेश में। संक्षेप में उस महा-उपन्यास का नायक कुंठा निराशा, घृणा और उबकाई से बहुत दूर, जीवन के आदि काल से लेकर आज तक के सहज-स्वस्थ बाह्य और अंतरीय विकास-पथ पर स्थित रहेगा और आज के युग के समस्त द्वन्द्वों और प्रतिद्वन्द्वों से परे, प्रकृति की मूलधारा से सम्बद्ध जीवन के आनंद की अनुभूति से डूबी हुई महान आत्मा की वाणी को अपूर्व कला के माध्यम से उसी तरह प्रसारित करेगा जिस प्रकार बसंत में खिलनेवाले फूल सारी प्रकृति में सहज रूप, चारों ओर के वातावरण में परिमल बिखेरते हैं।

---

७३ उपन्यास और लोक-जीवन पृ० ६०

७४ आलोचना (११), पृ० ८६

७५. स्व० प्रेमचंद द्वारा श्री इन्द्रनाथ मदान को २६ दिसम्बर १९३४, एवं ७-११-३२ को लिखे गये पत्र। डा० इन्द्रनाथ मदान की पुस्तक 'प्रेमचंद : एक विवेचना' में संकलित, पृ० १०२ से १०८ के बीच।

परिशिष्ट–२

प्रेमचन्दोत्तर नारी-चरित्र और औपन्यासिक प्रेरणा

हिन्दी के अधिकांश तथाकथित मनोविश्लेषक उपन्यासों में नारी का रूप 'असा धारण'-सा है। सभी जगह सब तरफ, सबमें शायद सम्पूर्ण प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी कथा साहित्य में। वह असहाय बना दी जाती है जिसके लिये वह स्वयं दोषी है। अनीता सुनीता मोहनी साधना श्यामा सुधा पति की है पर उससे कम या अधिक प्रेमी की भी है। एक प्रतिस्पर्द्धा तो है जो शायद अन्तर में चलती है। बाहर से ठीक-ठीक दिखायी नहीं पड़ती (यदि दिखाई पड़ती तो समस्या नहीं रहती) वह मर्म है केवल बाहर। सब सब कुछ जानते हैं पर कोई कुछ नहीं जानता—सब व्यापार खुला है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास विवर्त में लिखा है— 'नरेश का यह स्वभाव है। मोहनी को पहले दिन से उन्होंने स्वीकार किया। कभी पूछताछ नहीं। बाईस बरस की युवती के पास अपना इतिहास भी हो सकता है। उस वर्तमान के पीछे काफी कुछ अतीत भी हो सकता है। बल्कि नरेश का मत है कि होना चाहिये। पर इस सबमें विवाह के कारण पति नाम के व्यक्ति के लिए भी—उलझन और उत्सुकता हो चले यह वह अनिवार्य नहीं मानते, बल्कि उचित भी नहीं मानते।"

नारी निकाल दी जाती है—जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्र' में निकाला—अज्ञेय ने 'शशि' को 'शेखर' में निकाला और डा० देवराज ने 'पथ की खोज' में। नारी निकाल दी जाती है लेकिन क्यों? भयंकर कार्य के साथ कोई कारण भी तो होना ही चाहिये। निस्संदेह वह कारण इतना महान् हो कि टाला नहीं जा सके। मनुष्य नहीं टालने से ही टाल देता है, लेकिन यह क्या? किसी पूर्व उपेक्षित प्रेमी का कोई भावुकता पूर्ण पत्र (साधारण क्षेम प्रेम से भरा) पत्नी को आता है और पति उसे छोड़ने को तैयार—छोड़ ही देता है। उसकी अभ्यर्थना वहाँ सुनी नहीं जाती है, स्यात् वह अभ्यर्थना करती हुई केवल चल देती है, चली ही जाती है। लेकिन वह कुछ कहने को ठहरती नहीं जैसे लगता है उसके पास कहने को कुछ हो भी नहीं और वह चली ही जाती है, वेश्या जैसा जीवन बिताने—निर्मम कलुषित और कठोर जीवन बिताने। अपने प्रिय मित्र के पास जिसे वह चूम चुकी होती है अथवा एक मित्र के रूप में रहकर वासना तृप्त करने। इससे अधिक कुछ भी नहीं जबकि उसके लिए—अन्य मार्ग भी हो सकता है वह साधना का मार्ग भी हो सकता है वह दूसरे पति को ग्रहणकर गृहस्थ जीवन बिताने की कल्पना भी हो सकती है पर ऐसा कुछ नहीं होता। वह एक जाल से छूटकर दूसरे जाल में चली जाती है—

मछली की तरह जैसे वह जाल के लिये ही बनी हो। नदी में वह है जब तक है तब तक है। वह जाती है जाल इसलिए कि अत्याचार एवं यातना की तुष्टि कर सके। और फिर वह मनोविकार बनता चलता है जैसे वह मनोविकार विष हो, जो फूले तो फैलता जाये और मनुष्य का शरीर विषाक्त कर दे। प्रगतिवादी आलोचकों का कथन है 'आज के साहित्यकार जीवन की प्रेरणा मनोविकारों में खोजते हैं।' और मनोविकार बाह्य से अन्तर की ओर ही तो जाता है। पर अन्तर की कोई मांग भी होती है उसका क्या कोई सम्यक समाधान बाह्य जीवन या अन्तर में हो पाता है? जीवन व्यवस्था को बदलेगा कैसे? चूंकि वह जीवन अनदेखा जो है। फिर अन्तर को कुरेदा क्यों जाय? कथाकार उसे कुरेदकर दे तो चलता है पर दुर्भाग्यवश पहुंचता है अंधेरी गली में—प्रकाश में नहीं। और अन्यता क्या उदासी से कम गहरा महत्त्व रखता है? पर उदास मनुष्य इतना कैसे रहे वह केवल उदास रहने को तो नहीं आया—उसकी प्राकृतिक प्रक्रिया तो नहीं बताती है। उदास ही रहना रहे तो वह सूरज क्यों निकले सूरज के लिए सुबह का यह जागरण-गान क्यों हो—कुछ हैं जरूर जो सूरज के सामने अवश्य हैं पर वे कुछ ही तो हैं। उदासी तो सब नहीं चाहते। बंधु-वियोग होने पर भी कुछ ही सब लोग उदास रहना चाहते हैं रहते हैं वह उदासी सब दिन की अपनी तो नहीं होती। होती तो मनुष्य जीयेगा भी क्या? उसमें कष्ट भी होता है व्यायाम भी पर व्यायाम भी तो कुछ ही क्षण किया जा सकता है, सब दिन जो नहीं हो वह शाश्वत साहित्य का मापदंड कैसे?

'शशि' की निकास की जाती है। वह मन शेखर के पास है, उदास है मायूस है और गौरवहीन। पर वह है, क्योंकि उसे होना है । और उदासी भी उसे आ जाती है। लेखक ने उसे आ जाने दिया मानो वह कोई पाप तो नहीं था पर उसे क्या *दिया गया लेखक ही ने बताया क्योंकि उसके मन का 'चोर' बोल उठा—"और न* सहसा चोर कह उठे मन में अहंवाद है स्वाभाव क्योंकि युग समवादी है।" (अज्ञेय)

अंधेरा जो उसके सामने है वह पाठक के सामने भी अंधेरा हो जाता है।

'पथ की खोज' की साधना निर्वासित घूमती फिरी (सीता हेमा उसका प्रतिरूप है) जबकि उसका लेखक स्वयं कहता है, "आज हमें बदली हुई मनोवृत्तियों और चारित्रिक सम्भावनाओं के संदर्भ में ही नये नैतिक मानव की खोज और प्रतिष्ठा करनी है।" अंधेरे में क्या वह सब कुछ हो सकता है जो होता है जो अहम है जो लेखक की मूल समस्या है, पर जो समाधान खोजने के लिये यहीं लायी गई है। 'नरेन्द्र' 'मदन' और 'कमलनाथ' भी तो अपने अन्धकार में भटकते ही रह जाते हैं।

'व्यतीत' की 'अनीता' ऐसा लगता है कि जयंत से रूठी हो। (हालांकि लेखक ने इसका निर्देश नहीं किया) वह उसके बिना जी नहीं सकती इसलिए वह बार-बार जयंत को दुखी देखना चाहती है, उसे सामने देखना चाहती है, वह उसकी सीमाओं के पार-पार देखना चाहती है, उसके लिये उसके पति मिस्टर 'पुरी' पति हैं इसलिये हैं, पर जयंत ही सच है शाश्वत है। वह कुछ है जो अपने आपमें अर्थ रखता है, 'अनीता' उसके लिये कहती है—"घर बांधकर बैठते तुम जयंत तो मेरा भी घर बंधा रहता। नहीं तो ज्वालामुखी पर बैठी कब तक बात आपका कह नहीं सकती" । मेरा घर

बना रहा तो तुम होगे, उजड़ गया तो भी तुम होगे।" जयंत कितनी जमीन घेर लेता है ?

मनीता जानती है—जयंत मुझसे प्यार करता है, केवल वासना से नहीं प्यार है कुछ जो वह करता है। स्यात् इसलिए वह कर्तव्य के क्षणों में पायी गई 'बच्ची' को भी प्यार नहीं कर पाता ऊपर तो प्यार करने को चाहता है। जब मनीता यह सब जानती है तो मर्माहत हो कराह उठती है—"मैं ब्याहता हूँ फिर क्या चाहते हो? आदमी बनो जयंत नहीं तो माथा घर मेरा जल गया है, क्या बाकी भी तुम नहीं बचने दोगे ?'

और अन्त में व्यथा का कठिन भार ढोता हुआ जयंत संन्यासी हो जाता है विरक्त। मनोविकार और मनोविश्लेषण का भार मनुष्य को क्या से क्या बना देता है। 'त्यागपत्र' का 'प्रमोद' भी 'बच्ची' छोड़ देता है विरक्त बन जाता है। मानस उसको ऐसा कहता है और वह विरक्त हो ही जाता है।

और धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता' में सुधा का क्या होता है—चन्दर के बिलगाव को वह नहीं सह पाती व्यथा का भार ढोते-ढोते उसमें अवज्ञा के लिये स्थान नहीं रह गया था फलतः वह जलती और गलती ही रही तनाव बढ़ा और अन्त में सुधा चन्दर के लिये चल बसी पर वह विवाहिता थी। विवाह के बाद चन्दर को एक लड़की मित्र ने लिखा, "कांग्रेचुलेशंस एण्ड पीटी यन योर रोमांटिक डेथ।"

'मृत्यु' का यह काला आवरण सब पर पड़ता गया जैनेन्द्र से लेकर भारती तक। पर मृत्यु के विरुद्ध किसीने विद्रोह नहीं किया। सम्भवतः विद्रोह होता—तो मनोविश्लेषण नहीं रह जाता वह केवल एक व्यक्ति विरक्त रह जाता है। ट्रेजडी का प्रतीक—सब कुछ छोड़कर मात्र एक व्यक्ति जो व्यक्ति का गौरव और व्यक्तित्व प्रसारित करने में भी लाज समझता है। वह रहना चाहता है कि वह नहीं है, उसके रहने को 'क्या वह है' तो वह होना भी नहीं पसन्द करता।

पर विरक्त क्या मानव होता है ? हो पाया है कभी ? कथाकार की इस माया से निराशा टपकती है। क्या जीवन की चरम परिणति में पलायन है ? जयंत प्रमोद इसीलिये समष्टि के व्यक्ति नहीं हैं, व्यक्ति की समष्टि भी शायद हों। इसलिए यह नारी का चरित्र है उपन्यास का नहीं।

परिशिष्ट-३

हिन्दी के कथाकारों एवं आलोचकों के विचारों को जानने के लिए अधोलिखित प्रश्नों के उत्तर देने का आग्रह कथाकारों एवं आलोचकों से किया गया था। हिन्दी के कतिपय लेखकों ने इन प्रश्नों का उत्तर देने का कष्ट किया है जिसे हम यहाँ साभार उद्धृत कर रहे हैं। इन उत्तरों के सिलसिले में हमें हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकारों एवं आलोचकों यथा इलाचन्द्र जोशी यशपाल अश्क रेणु नागार्जुन, अमृतराय, उदयशंकर भट्ट अमृतलाल नागर भैरवप्रसाद गुप्त डा० रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान आदि से चर्चा करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

हिन्दी के कथाकारों के विचारों को जानने के लिए शोधकर्ता द्वारा तैयार की गयी प्रश्नावली—

(१) प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य के चरित्र विकास की उपलब्धि के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

(२) आपके कथा चरित्रों की क्या विशेषताएँ हैं? कृपया अपने प्रिय एवं उल्लेखनीय कथा-चरित्रों का नामोल्लेख भी करें।

(३) कृपया हिन्दी के प्रतिनिधि कथा-चरित्रों का नामोल्लेख करें।

(४) छायावाद प्रगतिवाद आदि का प्रभाव क्या हिन्दी कथा-चरित्रों पर भी पड़ा है?

(५) आपके कथा शिल्प और कथा चरित्रों में क्या सम्बन्ध है?

(६) अन्यान्य—

(क) आपके कथा-चरित्र क्या किसी सिद्धान्त के वाहक हैं?

प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र गुप्त का पत्र

इलाहाबाद।
१० जुलाई, १९५८

प्रिय बन्धु,

आपका पत्र मिला, प्रसन्नता हुई।

प्रश्नावली के उत्तर संक्षेप में भेजता हूँ।

१—(अ) प्रेमचन्द के बाद समाजवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र का प्रभाव हिन्दी कथा-साहित्य पर गहरा हुआ है। प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी थे। प्रेमचन्दोत्तर

साहित्य में पात्र अधिक जटिल और स्वाभाविक हैं। यशपाल अश्क आदि के उपन्यासों में हम ऐसा देख सकते हैं। रेणु अमृतलाल नागर (बूंद और समुद्र), कृष्ण बलदेव वद (मेरा बचपन) आदि की कला में अधिक यथार्थ-परक दृष्टि हम देखते हैं।

(ब) मध्यवर्ग के पात्रों का विकास हुआ है। इसकी शुरुआत जैनेन्द्र भगवती चरण वर्मा आदि ने की थी और इस प्रवृत्ति का निरन्तर विकास होता रहा है।

(स) इलाचन्द्र जोशी (प्रेत और छाया) और अज्ञेय के पात्र मानसिक ग्रन्थियों और विकृतियों के शिकार हैं। इनपर फ्रायड और पश्चिम के ह्रासोन्मुख साहित्य का प्रभाव पड़ा है। अपने नए उपन्यासों में (मुक्ति-पथ सुबह के भूले जहाज का पंछी) इलाचन्द्र जोशी अधिक स्वस्थ पात्रों की ओर मुड़े हैं।

(द) पिछले दिनों में हिन्दी के कथाकार फिर से गाँव जीवन और किसान पात्रों की ओर मुड़े हैं। इनमें नागार्जुन और रेणु प्रमुख हैं।

(२) प्रश्न का पहला अंश आलोचकों के लिए नहीं है।

प्रिय चरित्रों में होरी गोबर,कट्टो (परख) बिन्दा अनिता बलचनमा, डाक्टर (मैला आँचल) आदि कुछ नाम गिना सकता हूँ। अप्रिय किन्तु उल्लेखनीय पात्रों में अज्ञेय के शेखर और भुवन हैं।

(३) हिन्दी के प्रतिनिधि कथा-चरित्रों के नामों का ऊपर उल्लेख है। इनके अतिरिक्त सुनीता बुआ (त्यागपत्र) जग्गा (देशद्रोही) चेतन (गिरती दीवारें) आदि हिन्दी कथा-साहित्य के प्रमुख पात्र हैं। पहले और दूसरे प्रश्नों के उत्तर मिलाकर प्रतिनिधि सूची बनाई जा सकती है।

(४) मेरी सम्मति में छायावाद का प्रभाव चरित्रों की अपेक्षा वातावरण के निर्माण पर अधिक पड़ा है। अलौकिक सौन्दर्य-बोध, रोमान्सवाद इस प्रभाव के विशेष गुण हैं। छायावाद का प्रभाव कविता पर भी विशेष रूप से पड़ा है।

प्रगतिवाद का प्रभाव कथा-साहित्य पर गहरा पड़ा है। सोशलिस्ट रियलिज़्म की ओर हिन्दी उपन्यास उन्मुख हुआ है। यशपाल राहुल अश्क रांगेय राघव नागार्जुन, रेणु, अमृतलाल नागर की कला में चरित्र यथार्थ और स्वाभाविक हैं साथ ही सामाजिक चेतना भी तीव्र है। प्रेमचन्द की तुलना में पात्र आदर्श नहीं हैं आदर्शोन्मुख हैं।

(५) प्रश्न कथाकारों के लिए है।

आशा है इन बिखरे विचारों से मेरा मत कुछ स्पष्ट होगा। मिलने पर और अधिक स्पष्टीकरण कर सकूँगा। पत्र द्वारा कुछ और सम्भव नहीं है।

सस्नेह,
आपका—
प्रकाशचन्द्र गुप्त

प्रोफेसर प्रकाशचन्द्र गुप्त का पत्र

१८६ ममफर्ड गंज,
इलाहाबाद
१२-८ ५८

प्रिय भाई,

आपकी इच्छा के अनुसार प्रश्न सं० १ का उत्तर लिख रहा हूँ

मैंने 'विदाह' के चरित्र पर सब ध्यान केन्द्रित किया है। वास्तव में इस उपन्यास को एक व्यक्ति का चरित्र' कह सकते हैं। उपन्यास में जो कुछ भी कथा शिल्प है, वह चरित्र के केन्द्र से ही उभरता है। इस सम्बन्ध में अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध कथाकार गॉल्सवर्दी की मुझे याद आती है। उन्होंने कहा था

"ए ह्यूमन बीइंग इज़ दी बेस्ट प्लॉट देयर इज़।"

आपकी सुविधा के लिए पूरा उद्धरण दे रहा हूँ

"प्लाट इज़ दैट स्टोरी, व्हिविच ब्रिंग राइजेज आउट ऑफ दी इन्टरप्ले ऑफ सरकमसटांस ऑन कैरेक्टर एण्ड ऑफ कैरेक्टर ऑन सरकमस्टांस।

बिट्विन द इनकोरिस सरकमफरेन्स ऑफ ऐन आइडिया।

"ए बैड प्लॉट ऑन द अदरहैण्ड इज़ सिम्पली ए रो आफ स्टैम्स विद ए कैरेक्टर इमपेल्ड आन ऐंच"

(सम प्लेटिच्यूड्स कॉन्सर्निंग ड्रामा)

आपका—
प्रकाशचन्द्र गुप्त

डॉ० देवराज का पत्र

बादशाह नगर, लखनऊ
२४ १२ ५८

प्रियबन्धु,

आपका २० १२ ५८ का पत्र मुझे कुछ पूर्व 'युग चेतना' कार्यालय में मिला था। व्यस्ततावश तुरन्त उत्तर न दे सका। उत्तर अधूरे से इस प्रकार है—

(१) प्रेमचन्द के बाद इस युग की उपलब्धी में पढ़े सचेत विचारशील मध्य वर्गीय पात्रों का चित्रण महत्त्वपूर्ण है। यह स्थैतिक मूल्यों के विघटन का युग है। फ्रायड आदि विचारकों का प्रभाव भी पड़ा है—उसने विघटन की चेतना और उसे प्रकट करने का साहस दिया है।

उपलब्धि अधूरी है—कारण,

(१) लेखकों का सीमित अनुभव (सामाजिक परिस्थितियों के कारण),
(२) रूढ़िवादी वातावरण में आत्म-प्रकाशन का भय।

(२) मेरे चरित्रों में सापना चन्द्रनाथ ('पथ की खोज' में), कुछ हद तक

नरेन्द्र (भाग २ में) बाहर भीतर का बदला नायक—दर्शनीय है।

(३) हिन्दी के प्रतिनिधि कथा-चरित्र—मुझे कम ही उपन्यासकार पसन्द हैं। अज्ञेय के शेखर, धर्मवीर भारती (गुनाहों का देवता) ... रेखा कमजोर है—अपूर्ण) आंचलिक उपन्यासों में होरी आदि, फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने चरित्र सृष्टि कम की है, सामूहिक-चित्रण प्रधान है।

(४) शायद नहीं—महत्वपूर्ण उपन्यासों के पात्रों पर नहीं।

(५) ।

(६) नहीं

देवराज

प्रेमचन्द के पत्र[1]

"मैंने अपने प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श पात्र रखा है। उसमें मानवीय भावनाएं और गुण भी हैं। लेकिन है वह आदर्श ही। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर है 'रंगभूमि' में सूरदास है। उसी प्रकार 'कायाकल्प' में चक्रधर है 'कर्मभूमि' में अमरकान्त है।

"मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना। त्याग बिना फल की आशा के हो सेवा सदैव बिना असन्तोष प्रकट किये हुए हो और पवित्रता सीज़र की पत्नी की भांति ऐसी हो जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।

"मानव चरित्र में जो कुछ भी सुन्दर है और मानवोचित तत्त्व है उसी के उद्घाटन की दृष्टि से मैं अपनी कथावस्तु का निर्माण करता हूं। यह कार्य अत्यन्त रहस्यमय है क्योंकि कभी इसकी प्रेरणा मुझे किसी व्यक्ति से मिलती है कभी किसी घटना से और कभी किसी स्वप्न से। लेकिन मैं अपनी कहानी का आधार मनोविज्ञान ही रखता हूं। मित्रों के सुझावों से लाभ उठाने के लिए मैं सदा तैयार रहता हूं।

"यद्यपि मैं कल्पना का भी पर्याप्त पुट देता हूं तथापि मेरे अधिकांश पात्र यथार्थ जीवन से लिये गए हैं। जब किसी पात्र का यथार्थ में अस्तित्व नहीं होता तब वह छायामात्र अनिश्चित और अविश्वसनीय हो उठता है।"

श्री अमृतराय जी का पत्र

हंस प्रकाशन
५१, जीरो रोड इलाहाबाद
२६-११ ५८

प्रिय बन्धु

आपका कृपा पत्र और प्रश्नावली मिली।

प्रश्नावली इतनी टेढ़ी है कि इस परीक्षा में गुड़क जाना ही अधिक सुविधा-

---

१ डा० इन्द्रनाथ मदान को २६ दिसम्बर, १९३४ एवं १९३५ को लिखे गये पत्र। डा० इन्द्रनाथ मदान की पुस्तक 'प्रेमचन्द एक विवेचना' में संकलित पृ० १०२ से १०४ के बीच।

जनक मालूम होता है। इन प्रश्नों का सम्यक उत्तर दे सकूँ, इतना अवकाश भी दुर्भाग्यवश इस समय हाथ में नहीं है।

कभी इधर आना हो तो बातचीत में सम्भव है कुछ निकल सके, अन्यथा आप जो समझें वही ठीक है।

विनीत,
अमृतराय

उपलब्धि-स्थान

(अर्थात् जहाँ से लेखक ने पुस्तकें प्राप्त कीं)

(१) लेखक का निजी संग्रह
(२) मारवाड़ी महाविद्यालय भागलपुर
(३) मुरारका महाविद्यालय सुलतानगंज भागलपुर
(४) टेकनारायण बनैली महाविद्यालय भागलपुर
(५) स्नातकोत्तर विभाग पुस्तकालय, भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर
(६) सिन्हा लाइब्रेरी, पटना
(७) पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय पटना
(८) राज्य सूचना केन्द्र पटना
(९) काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी
(१०) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
(११) इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय प्रयाग
(१२) लखनऊ विश्वविद्यालय पुस्तकालय लखनऊ
(१३) मनमान पुस्तकालय भागलपुर
(१४) भागलपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय, भागलपुर

परिशिष्ट-४

आकर साहित्य-सूची

हिन्दी एवं संस्कृत ग्रन्थों की सूची

उपन्यास और लोक जीवन —रैल्फ फॉक्स। अनुवादक नरोत्तम नागर, भूमिका ले० डा० रामविलास शर्मा। पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली। प्रथम संस्करण, १९५७।

अभिनव नाट्यशास्त्र —सीताराम चतुर्वेदी। अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी। प्रथम संस्करण, संवत् २००८ वि०।

प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व —हंसराज 'रहबर'। आत्माराम एण्ड संस दिल्ली। १९५१।

साहित्य का श्रेय और प्रेय —जैनेन्द्र कुमार। पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५३।

वाङ्मय-विमर्श —विश्वनाथ मिश्र। हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस। तृतीय संस्करण सं० २००७।

शिवपूजन रचनावली —शिवपूजन सहाय। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना।

निराला —डा० रामविलास शर्मा। जन प्रकाशन गृह बम्बई ४।

साहित्यालोचन —श्यामसुन्दर दास। प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग। प्रकाशन वर्ष २००६, नवीं आवृत्ति।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास —कृष्णशंकर शुक्ल। प्रकाशक हिन्दी साहित्य-कुटीर बनारस।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र शुक्ल। प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशी। संवत् २००७ वि०।

साहित्य की झांकी —डा० सत्येन्द्र। प्रकाशक साहित्य रत्न भंडार, आगरा। चतुर्थ संस्करण।

साहित्य सरिता —सं० प्रोफेसर शिवपूजन सहाय। प्रकाशक पुस्तक भंडार लहेरिया सराय और पटना।

जैनेन्द्र के विचार —सं० प्रभाकर माचवे। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई। प्रकाशन वर्ष दिसम्बर, १९३७।

प्रस्तुत प्रश्न —जैनेन्द्रकुमार। प्रकाशक हिन्दी ग्रंथरत्नाकर, बम्बई। प्रकाशन वर्ष जनवरी १९३९।

प्रसाद की कला —गुलाबराय महेन्द्र। प्रकाशक साहित्य रत्न भण्डार, आगरा प्रकाशन वर्ष अप्रैल १९३८।

प्रेमचन्द उनकी कहानी-कला —डा० सत्येन्द्र। प्रकाशक साहित्य रत्न भंडार, आगरा। प्रथम संस्करण।

प्रसाद की कहानियाँ —केदारनाथ शुक्ल। प्रकाशक सरस्वती मन्दिर, जतनबर, बनारस। प्रथम संस्करण १९५० ई०।

हिन्दी साहित्य की भूमिका —हजारीप्रसाद द्विवेदी। प्रकाशक नाथूराम प्रेमी हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई। संस्करण चौथी बार सितम्बर १९५०।

हिन्दी कहानी लेखिकायें और उनकी कहानियाँ —श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश बी० ए०। प्रकाशक प्रमोद पुस्तक माला कटरा प्रयाग। प्रथम संस्करण मार्च १९३५।

त्रिशंकु —अज्ञेय। प्रकाशक सरस्वती प्रेस बनारस। प्रकाशन वर्ष १९४५।

प्रगतिवाद युग —डा० शम्भूनाथ सिंह। प्रकाशक : सरस्वती मंदिर जतनबर, बनारस। प्रथम संस्करण १९५२।

साहित्य का साथी —हजारीप्रसाद द्विवेदी। प्रकाशक राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा। प्रकाशन वर्ष १९४९, प्रथम संस्करण।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता —वल्लभाचार्य।

दो सौ बावन वैष्णवन वार्ता —वल्लभाचार्य। रणछोड़ पुस्तकालय डकोर। प्रकाशन वर्ष संवत् १९६० फाल्गुन।

काव्य-कला तथा अन्य निबन्ध —जयशंकर प्रसाद। प्रकाशक भारती भण्डार, इलाहाबाद।

साहित्य-मीमांसा —श्री युत पूर्णचन्द्र वसु-कृत। साहित्य चिन्ता नामक बंगला ग्रंथ का अनुवाद, अनुवाद कर्ता पं० रामदहिन मिश्र। प्रकाशक

हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई। प्रथम संस्करण, जून १९२१।

संस्कृत साहित्य का इतिहास —प्रथम भाग—द्वितीय भाग। लेखक सेठ कन्हैयालाल पोद्दार। रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रन्थ माला मुलुक बिल्डिंग चर्चगेट, बम्बई। प्रथम संस्करण १९१८।

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला —जनार्दन झा 'द्विज'। प्रकाशक वाणी मन्दिर छपरा। प्रथम संस्करण दिसम्बर १९३३ ई०।

साहित्य —श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर। अनुवादक पं० वंशीधर विद्यालंकार। प्रकाशक हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई। प्रथम संस्करण दिसम्बर १९२२ ई०।

रूपक रहस्य —डा० श्यामसुन्दर दास पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। प्रकाशक इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। प्रथम संस्करण १९३८।

दृष्टिकोण —प्रथम भाग नलिन विलोचन शर्मा। पुस्तक भण्डार, पटना लहेरियासराय। प्रथम संस्करण १९५०।

आधुनिक हिन्दी साहित्य —सं० स० ही० वात्स्यायन। प्रकाशक अभिनव भारती ग्रंथमाला, कलकत्ता। प्रथमबार दिसम्बर, १९४०।

रीति काव्य की भूमिका —डा० नगेन्द्र। प्रकाशक गौतम बुक डिपो, नई सड़क दिल्ली। प्रथम संस्करण १९४९।

हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद —विश्वम्भर मानव। प्रकाशक सरस्वती मन्दिर, जतनबर, बनारस। दूसरा संस्करण, अक्टूबर, १९५०।

वक्रोक्ति और अभिव्यंजना —रचयिता रामनरेश वर्मा। प्रकाशक ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस। प्रथम संस्करण संवत् २००८ वि०।

जयशंकर प्रसाद —आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी। भारती भंडार, प्रयाग। तृतीय संस्करण सं० २००७ वि०।

वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यास-कला —प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०। सरस्वती पुस्तक सदन मोती कटरा आगरा।

कहानी-कला और उसका विकास —कविनाथ त्रिपाठी। साहित्य सदन देहरादून। प्रथम संस्करण अप्रैल १९५१।

खड़ी बोली के गौरव ग्रंथ —विश्वम्भर मानव, एम० ए०। प्रकाशक हिन्दी भवन जालंधर। चतुर्थ संस्करण १९५० ई०।

दोआब —शमशेरबहादुर सिंह। सरस्वती प्रेस बनारस। प्रकाशन वर्ष १९४८।

आलोचना के सिद्धांत —कृष्णानन्द पन्त, यज्ञदत्त शर्मा। राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५१।

साहित्य मीमांसा —डा० सूर्यकान्त। हिन्दी भवन जालन्धर और इलाहाबाद। पाँचवाँ संस्करण।

नीर-क्षीर —गंगाप्रसाद पांडेय। नवलकिशोर प्रेस लखनऊ। पहली बार, १९५१।

मैं इनसे मिला —पद्मसिंह 'कमलेश'। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली।

विचार और विवेचन —डा० नगेन्द्र। गौतम बुक डीपो दिल्ली। द्वितीय बार, १९५१ ई०।

साहित्य-चिन्ता —डा० देवराज। गौतम बुक डीपो दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५०।

काव्य-चिन्तन —डा० नगेन्द्र। नवभारती प्रकाशन मेरठ। द्वितीय बार, १९५१।

प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन —नंददुलारे वाजपेयी। हिन्दी भवन जालन्धर और इलाहाबाद। प्रथम संस्करण १९५२।

शिलीमुखी —शिलीमुख। गौतम बुक डिपो दिल्ली। प्रथम संस्करण, १९५१।

योरोपीय उपन्यास साहित्य —विनोद शंकर व्यास। प्रकाशक साहित्य सेवक कार्यालय काशी।

हिन्दी कहानी और कहानीकार —प्रो० वासुदेव एम० ए०। प्रकाशक वाणी विहार, बनारस। प्रथमावृत्ति, सितम्बर, १९५१।

कहानी और कहानीकार —मोहनलाल जिज्ञासु। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५२।

कहानी-कला —विनोदशंकर व्यास। हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस। चतुर्थ संस्करण, संवत् २०१०।

प्रसाद और उनका साहित्य —उपर्युक्त। प्रकाशक उपर्युक्त। तृतीय संस्करण, २००६ वि०।

साहित्य दर्शन —प्रथम भाग—शचीरानी गुर्टू। गौतम बुक

डिपो दिल्ली। प्रथम संस्करण सन् १९५०

सामयिकी —शान्तिप्रिय द्विवेदी। ज्ञानमंडल लिमिटेड, काशी। विक्रम सम्वत् २००५।

साहित्य-समालोचना —डा० रामकुमार वर्मा। हिन्दी भवन जालंधर और इलाहाबाद। १९५१, प्रथम संस्करण।

सियारामशरण गुप्त —डा० नगेन्द्र। गौतम बुक डिपो दिल्ली। प्रथम संस्करण, १९५०।

प्रेमचन्द : एक विवेचना —डा० इन्द्रनाथ मदान। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

हिन्दी-कलाकार —डा० इन्द्रनाथ मदान। हिन्दी-भवन जालंधर और इलाहाबाद। तीसरा संस्करण, नवम्बर १९४९।

कृति —कृष्णचन्द्र। राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली। प्रथम संस्करण।

विचार और अनुभूति —डा० नगेन्द्र। गौतम बुक डिपो दिल्ली। दूसरा संस्करण।

कुछ विचार —प्रेमचन्द। सरस्वती प्रेस बनारस। चतुर्थ संस्करण १९४९।

आधुनिक कथा-साहित्य —गंगाप्रसाद पांडेय। प्रमोद पुस्तकमाला इलाहाबाद। प्रथम बार, २००१।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल —आचार्य डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। प्रथम संस्करण सन् १९५२।

हिन्दी साहित्य का इतिहास —डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय। मालवीय पुस्तक भवन, लखनऊ।

शरच्चन्द्र : चिंतन व कला —इन्द्रनाथ मदान। हिन्दी भवन जालंधर और इलाहाबाद। प्रथम संस्करण मार्च १९५४।

जीवन-स्मृतियाँ —क्षेमचन्द्र 'सुमन'। आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

नयी समीक्षा —अमृतराय। हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस। प्रथम संस्करण १९५०।

हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी —नन्ददुलारे वाजपेयी। इण्डियन बुक डिपो लखनऊ।

साहित्यिक निबन्धावली —धर्मेन्द्रकुमार द्विवेदी ग्रन्थमाला कार्यालय बाँकीपुर, पटना। प्रथम संस्करण, २००३।

मेरी कहानी —जवाहरलाल नेहरू। सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली। आठवाँ संस्करण १९५२।

आत्मकथा —डा० राजेन्द्रप्रसाद। साहित्य संसार पटना। प्रथम संस्करण १९४७।

रेवातट —(पृथ्वीराज रासो) सं० विपिन बिहारी त्रिवेदी। हिन्दी विभाग लखनऊ विश्व विद्यालय। सन् १९५३ ई०।

अर्ध नारीश्वर —रामधारीसिंह 'दिनकर'। उदयाचल प्रकाशन कलकत्ता-७। प्रथम संस्करण १९५२ ई०।

नया साहित्य नये प्रश्न —नंददुलारे वाजपेयी। विद्या मंदिर, ब्रह्मनाल, बनारस १।

वैदिक कहानियाँ —बलदेव उपाध्याय। शारदा मन्दिर, काशी। द्वितीय संस्करण १९४६।

संस्कृत साहित्य का इतिहास —उपर्युक्त। चतुर्थ संस्करण १९५६।

नया हिन्दी साहित्य एक भूमिका —प्रकाशचन्द्र गुप्त। सरस्वती प्रेस बनारस। चतुर्थ संस्करण दिसम्बर १९५३।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास —डा० श्री कृष्णलाल। हिन्दी परिषद्, विश्व विद्यालय प्रयाग। तृतीय संस्करण १९५२।

आधुनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि —प्रकाशचंद्र गुप्त। आलोक प्रकाशन, बीकानेर। प्रथम बार १९५२।

सन्तुलन —प्रभाकर माचवे। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५४।

भारतेन्दु युग —डा० रामविलास शर्मा एम० ए०। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

हिन्दी उपन्यास —शिवनारायण श्रीवास्तव। प्रकाशक सरस्वती मन्दिर, बनारस। तृतीय संस्करण, सं० २००७ वि०।

साहित्य-विवेचन —क्षेमचन्द्र 'सुमन' योगेन्द्रकुमार मल्लिक। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली। १९५२।

साहित्य-साधना की पृष्ठभूमि —बुद्धिनाथ झा 'कैरव'। ज्ञानपीठ लिमिटेड पटना-४। प्रथम संस्करण सन् १९५३।

हिन्दी गद्य साहित्य —शिवदानसिंह चौहान, विजय चौहान। राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

संस्कृति और साहित्य —डा० रामविलास शर्मा। किताब महल इलाहाबाद। प्रथम संस्करण, १९४९।

प्रगतिवाद की रूपरेखा —मन्मथनाथ गुप्त। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली ६। १९५२।

प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड —रांगेय राघव। सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा।

प्रगतिवाद की रूपरेखा —शिवचन्द्र शर्मा। किताब महल इलाहाबाद। १९५२।

कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र —कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगिल्स। पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड नई दिल्ली १।

हिन्दी साहित्य में विविध वाद —डा० प्रेमनारायण शुक्ल। पद्मजा प्रकाशन कानपुर। प्रथम संस्करण २०१० वि०।

हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास —डा० लक्ष्मीनारायण लाल। साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद। प्रथम संस्करण १९५१ ई०।

हिन्दी उपन्यास —ब्रजरत्नदास। हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस। प्रथम संस्करण, संवत् २०११।

हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद —त्रिभुवनसिंह। प्रचारक पुस्तकालय, बनारस। प्रथम संस्करण, २०१२ वि०।

समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द —डा० महेन्द्र भटनागर। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी। प्रथम संस्करण १९५७।

आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान —डा० देवराज उपाध्याय। साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण १९५६ ई०।

पंचतन्त्रम् —विष्णु शर्मा। खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई।

अरस्तू का काव्यशास्त्र —अनु० डा० नगेन्द्र। भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण, सं० २०१४।

हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास —डा० शम्भूनाथ सिंह। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस। प्रथमावृत्ति १९५६।

विवेचना —इलाचन्द्र जोशी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। द्वितीय संस्करण, २००५।

विश्लेषण —इलाचन्द्र जोशी। भारती प्रकाशन, भागलपुर। प्रथम संस्करण १९५७।

प्रेमचन्द और उनके उपन्यास —रघुनाथ सरन झालानी। नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई सड़क, दिल्ली।

बाणभट्ट की आत्मकथा —हजारीप्रसाद द्विवेदी। हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई। दूसरी बार १९५४।

उपन्यास-कला —विनोदशंकर व्यास। हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस। तृतीय संस्करण १९५० ई०।

हिन्दी के उपन्यासकार —यज्ञदत्त शर्मा। भारती भवन दिल्ली। प्रथम बार १९५१।

हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन —डा० ब्रह्मदत्त शर्मा। प्रकाशक सरस्वती पुस्तक सदन मोती कटरा आगरा। प्रथम संस्करण मई, १९५८।

आधुनिक हिन्दी साहित्य (१८५०-१९०० ई०) —डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय। हिन्दी परिषद् इलाहाबाद युनीवर्सिटी। १९ ४।

ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा —रामचरण मिश्र एम० ए०। प्रकाशक अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल नया टोला, पटना ४। १९५५।

यशपाल और हिन्दी कथा-साहित्य —सुरेशचन्द्र तिवारी। सरस्वती प्रेस बनारस ४। प्रथम संस्करण १९५६।

ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा —डा० गोपीनाथ तिवारी। सरस्वती पुस्तक सदन मोती कटरा, आगरा। संवत् २०१५

उपन्यास के मूल तत्त्व —जयनारायण एम० ए०। प्रकाशक अजन्ता प्रेस पटना। संवत् २०१० वि०।

गोदान-समीक्षा —रत्नसिंह खाण्डिलवाल एम० ए०। सरस्वती पुस्तक सदन आगरा। प्रथम संस्करण २०१४।

गीत निरूपण —जगदीश पांडेय अखिल भारतीय हिन्दी शोध मंडल पटना। प्रथम संस्करण जुलाई, १९५८।

हिन्दी उपन्यास में वर्ग-भावना (प्रेमचन्द युग) —प्रतापनारायण टंडन। लखनऊ विश्व विद्यालय प्रथम संस्करण १९५६।

कहानी का रचना-विधान —डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस। प्रथम संस्करण ई० १९५६।

हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार —पं० नलिनविलोचन शर्मा शिवचन्द्र शर्मा। अखिल भारतीय शोध मंडल पटना।

[illegible] —डा० गोपीनाथ तिवारी। साहित्य रत्न

भंडार, आगरा। प्रथम संस्करण १९५८।

हिन्दी के युगान्तरकारी उपन्यास —रा० पु० कपूर। साहित्य रत्न भण्डार आगरा।

हिन्दी के सामाजिक उपन्यास —ताराशंकर पाठक। मध्य भारत हिन्दी साहित्य-समिति, इन्दौर। प्रथम संस्करण सम्वत् १९९६।

परीक्षा गुरु —श्रीनिवास दास। ज्ञान प्रकाशन ८१ कावड़ी बाजार, दिल्ली ६। नवीन संस्करण, १९५९।

हिन्दी साहित्य कोश —डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि। ज्ञान मंडल लि०, वाराणसी।

साहित्य-धारा —प्रकाशचन्द्र गुप्त। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस। प्रथम संस्करण १९५६।

राधिकारमण सिंह व्यक्ति और कला —शरद्। लहर प्रकाशन, इलाहाबाद।

जन्तुविज्ञान कोष —कामताप्रसाद गुप्त एम० एस० सी०। किताब महल इलाहाबाद। १९५५।

साहित्य-शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश —राजेन्द्र द्विवेदी। आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६। १९५५।

हिन्दी काव्य में नारी भावना —शैलकुमारी। हिन्दोस्तानी एकेडमी इलाहाबाद। १९५१।

मानव मनोविज्ञान —द्वारकाप्रसाद एम० ए०। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद। सन् १९५३।

राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य —रामेश्वर शर्मा। मानव भारती प्रकाशन, दिल्ली। १९५३।

सरल मनोविज्ञान —लालजीराम शुक्ल। नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस। द्वितीय बार, १९४८ ई०।

बाल मनोविकास —उपर्युक्त। द्वितीयावृत्ति १९४८।

बाल मनोविज्ञान —उपर्युक्त, काशी नागरी प्रचारिणी सभा। द्वितीय संस्करण सं० २००३ वि०।

मनोविज्ञान —चन्द्रमौलि सुकुल। गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ। प्रथमावृत्ति सं० १९८१ वि०।

मन के भेद —प्रो० राजाराम शास्त्री। अभिनव भारती ग्रंथ माला कलकत्ता। प्रथम बार १९५०।

स्वप्न दर्शन —राजाराम शास्त्री। काशी विद्यापीठ, बनारस। प्रथम संस्करण, सं० २००४।

काम, प्रेम और परिवार —जैनेन्द्रकुमार। पूर्वोदय प्रकाशन ७ दरिया गंज दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५३।

शिक्षा मनोविज्ञान —हंसराज भाटिया। ज्ञानमंडल काशी। दूसरा संस्करण आषाढ़ सं० २००५।

आधुनिक मनोविज्ञान —लालजीराम शुक्ल। साहित्य सेवक कार्यालय काशी। प्रथम संस्करण सं० २००५।

बाल मनोविज्ञान —पुस्तक भंडार, पटना ४।

मनोविज्ञान और जीवन —लालजीराम शुक्ल। साहित्य सेवक कार्यालय, काशी। प्रथम संस्करण १९५१।

फ्रायड : मनोविश्लेषण —अनु० श्री देवेन्द्रकुमार। राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली १९५८।

मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं —डा० पद्मा अग्रवाल, एम० ए०, पी-एच० डी०। मनोविज्ञान प्रकाशन बनारस। द्वितीय संस्करण १९५५।

सरल मनोविज्ञान —रामप्रसाद पांडेय एम० ए०। प्रकाशिका श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, मुजफ्फरपुर। १९५४।

संचलन —सं० कपिलदेव नारायणसिंह कपिल। ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना-४। १९५१।

सामुद्रिक शास्त्रम् —राधाकृष्ण मिश्र। कल्याण मुंबई। सम्वत् १९७१।

बृहत् संहिता —पं० बलदेवप्रसाद मिश्र। कल्याण मुंबई। सन् १८६७।

कोक शास्त्र —कोका पण्डित अनु० ठाकुर विजयबहादुर सिंह। परोपकारी प्रकाशन मण्डल, चौक, बनारस सिटी। प्रथम संस्करण १९३५।

समीक्षाशास्त्र —आचार्य सीताराम चतुर्वेदी। अखिल भारतीय विक्रम-परिषद काशी। संवत् २०१० विक्रमाब्द।

समाज की भूमिका —पंचानन मिश्र। श्री अजन्ता प्रेस लि० पटना ४।

नाट्य शास्त्र —भरतमुनिकृत अनुवादक भोलानाथ शर्मा। प्रकाशक साहित्य निकेतन कानपुर। प्रथम मुद्रण १९५४।

हिन्दी उपन्यास —डा० सुषमा धवन। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। १९६१।

हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास —डा० रणवीर रांग्रा। भारती साहित्य मन्दिर फव्वारा, दिल्ली १९६१।

हिन्दी उपन्यास कथा और शिल्प का विकास —डा० प्रतापनारायण टंडन। हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ। १९६०।

हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास —डा० प्रतापनारायण टंडन। हिन्दी साहित्य भण्डार, गंगाप्रसाद रोड लखनऊ।

वृन्दावनलाल वर्मा: व्यक्तित्व और कृतित्व —डा० कमलेश। सर्वोदय प्रकाशन मंदिर दिल्ली।

अग्नि पुराण का काव्य शास्त्रीय भाग —सम्पादक तथा अनुवादक श्री रामलाल वर्मा एम० ए०। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज दिल्ली १९५९।

कहानी-दर्शन —भालचन्द्र गोस्वामी भ्रमर। साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

इलाचन्द्र जोशी साहित्य और समीक्षा —प्रेम भटनागर। साहित्य प्रकाशन मालीवाड़ा दिल्ली। १९५९।

हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन —डा० श्रीनारायण अग्निहोत्री। सरस्वती पुस्तक सदन मोती कटरा, आगरा।

कलाकार प्रेमचन्द —रामरतन भटनागर। यूनिवर्सल प्रेस, १९ शिवचरण लाल रोड, इलाहाबाद। प्रथम १९४१।

हिन्दी के छ उपन्यास —रामरतन भटनागर। विश्वविद्यालय परीक्षा बुक डिपो पामरपीवा, प्रयाग। १९५१।

प्रसाद का कथा-साहित्य —रामरतन भटनागर। इलाहाबाद प्रेस इलाहाबाद। १९५०।

मनोविश्लेषण और उसके सम्प्रदाय —सन्तोष परितोष शर्मा। प्रगति प्रकाशन दिल्ली।

हिन्दी साहित्य कोश —सं डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान), डा० व्रजेश्वर वर्मा डा० धर्मवीर भारती, श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, डा० रघुवंश (संयोजक)। ज्ञान मंडल लिमिटेड प्रथम संस्करण २०१५।

प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ —डा० रामविलास शर्मा विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा। द्वितीय १९५७।

संकेत —सं० 'अश्क'। नीलाभ प्रकाशन गृह प्रयाग १।

अध्ययन के विचार — विष्णुकिशोर। कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स ज्ञानवापी वाराणसी। १९५७।

युग और साहित्य — श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी इण्डियन प्रेस लिमिटेड इलाहाबाद। १९५० द्वितीय संस्करण।

हिन्दी कथा कोष — श्रीहरि। हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

शरत्चन्द्र व्यक्ति और कलाकार — इलाचन्द्र जोशी। अशोक प्रेस पटना ६।

हिन्दी विश्व कोष — सं० नगेन्द्रनाथ वसु। विश्वकोष-कुटीर, ६ विश्वकोष लेन बागबाजार, कलकत्ता। १९१६।

कादम्बरी (संस्कृत) — बाण भट्ट। प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी १।

सर्वदर्शन संग्रह — श्री वेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय मुंबई।

न्याय दर्शन — चौखम्भा संस्कृत पुस्तकालय बनारस सिटी। १९०६।

हिन्दी शब्द सागर — सं० श्यामसुन्दर दास। काशी नगरी प्रचारिणी सभा। इण्डियन प्रेस प्रयाग। १९१४।

प्रगतिवाद — श्री शिवदानसिंह चौहान। प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद। १९४६।

साहित्य का मर्म — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी। विश्वविद्यालय लखनऊ।

कथा के तत्त्व — डा० देवराज उपाध्याय। ग्रंथ माला कार्यालय। पटना १९५९।

समाज-शास्त्र के मूलतत्त्व — डा० मर्मेश्वरप्रसाद। कुसुम प्रकाशन, पटना ६।

साहित्य दर्पण — व्याख्याकार डा० सत्यव्रतसिंह एम० ए०। चौखम्भा विद्याभवन चौक वाराणसी १। १९५७।

हिन्दी काव्यालंकार — रुद्रट प्रणीत। निर्णय सागर प्रेस बम्बई।

हिन्दी पुस्तक साहित्य — डा०माताप्रसाद गुप्त। हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

सिद्धांत और अध्ययन — गुलाबराय। प्रतिभा प्रकाशन २०६ हैदरकुली दिल्ली।

जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत — लक्ष्मीनारायणसिंह सुधांशु। जनवाणी प्रकाशन, कलकत्ता।

चिन्तामणि —रामचन्द्र शुक्ल। इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग। १९२१।

जायसी ग्रंथावली की भूमिका —रामचन्द्र शुक्ल। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

हिन्दी गद्य संग्रह —बिहार विश्वविद्यालय प्रकाशन पटना।

गोस्वामी तुलसीदास —रामचन्द्र शुक्ल। काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

हिन्दुत्व —रामदास गौड़। सेवा उपवन काशी। १९९५ सम्वत् प्रथम संस्करण।

श्रीनिवास ग्रन्थावली —काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

आत्मनेपद —अज्ञेय। भारतीय ज्ञानपीठ काशी। सन् १९६० ई०।

हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव —रवीन्द्र सहाय वर्मा। पद्मजा प्रकाशन कानपुर।

आधुनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि —प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त। चम्पालाल रांका। आलोक प्रकाशन के० ई० एम० रोड, बीकानेर। प्रथम १९५२।

हिन्दी काव्य में शृंगार-परम्परा और महाकवि बिहारी —डा० गणपतिचन्द्र गुप्त। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। अक्तूबर, १९५९।

उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा —डा० शशिभूषण सिंह। वही १९६०।

पद्मावत का काव्य सौन्दर्य —शिवसहाय पाठक। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई। प्रथम सं० सितम्बर १९५६।

हिन्दी कहानी —दीक्षित। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। प्रथम १९६०।

पंडित बालकृष्ण भट्ट —डा० राजेन्द्र शर्मा। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। प्रथम १९५८।

समीक्षा शास्त्र —डा० दशरथ ओझा। राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली। प्रथम १९५५।

आधुनिक साहित्य —नन्ददुलारे वाजपेयी। भारती भण्डार, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण सं० २००७ वि०।

हिन्दी काव्यादर्श —आचार्य दण्डी व्याख्याकार रणधीरसिंह एम० ए०। ओरियंटल बुक डिपो नई सड़क दिल्ली। १९५८।

अनुसंधान का स्वरूप —डा० सावित्री सिन्हा। आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ६। १९५४।

हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा —प्रकाशचन्द्र गुप्त। किताब महल इलाहाबाद। प्रथम १९५३।

प्रेमचन्द और गोर्की —सं० शचीरानी गुर्टू। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। १९५५ ई०।

प्रेमचन्द चिन्तन और कला —सं० इन्द्रनाथ मदान। सरस्वती प्रेस बनारस।

प्रसाद साहित्य कोश —डा० हरदेव बाहरी। भारती भण्डार, इलाहाबाद। प्रथम सं० २०१४।

हिन्दी साहित्य का इतिहास —डा० रामकुमार वर्मा। रामनारायण लाल प्रयाग। द्वितीय १९५७।

अध्ययन और आस्वाद —डा० गुलाबराय। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली ६।

मार्क्सवाद और साहित्य —महेन्द्र राय। साधना प्रकाशन ६४/६४ गोला दीनानाथ वाराणसी। प्रथम १९५७।

चिन्तन और साहित्य —देवेन्द्र इस्सर। साहित्य प्रकाशन दिल्ली। १९५८।

पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ —ब्रजविलास श्रीवास्तव। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। प्रथम १९५५।

भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा —परशुराम चतुर्वेदी। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। प्रथम १९५६।

जयशंकर प्रसाद : चिन्तन व कला —डा० इन्द्रनाथ मदान। हिन्दी भवन इलाहाबाद। प्रथम १९५६।

विश्वसाहित्य की रूपरेखा —डा० भगवतशरण उपाध्याय। राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली। प्रथम अक्तूबर, १९५७।

आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना —डा० शैलकुमारी। हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद। प्रथम १९५१।

साहित्य की समस्याएँ —शिवदानसिंह चौहान। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली ६।

जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा —डा० रामरतन भटनागर। साहित्य प्रकाशन दिल्ली। १९५८।

प्रेमचन्द घर में —शिवरानी देवी। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली। १९५६।

लोकजीवन और साहित्य —डा० रामविलास शर्मा। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। प्रथम नवम्बर १९५५।

विराम चिह्न —डा० रामविलास शर्मा। वही। प्रथम अगस्त १९५७।

प्रसाद का जीवन और साहित्य —डा० रामरतन भटनागर। राजधानी प्रकाशन, देहली।

वृन्दावनलाल वर्मा साहित्य और समीक्षा —सियारामशरण प्रसाद। साहित्य प्रकाशन दिल्ली। प्रथम १९६०।

ज्यादा अपनी ओर कम परायी —अश्क। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद। प्रथम १९५९।

वट-पीपल —रामधारीसिंह दिनकर। उदयाचल प्रकाशन आर्य कुमार रोड पटना ४। प्रथम संस्करण जनवरी १९६१ ई०।

हिन्दी साहित्य (१९२६ १९४७ ई०) —डा० भोलानाथ एम० ए० डी० फिल्। हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय। प्रथम १९५४ ई०।

दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि —प्रो० कामेश्वर शर्मा। गांधी ग्रंथागार बनारस। प्रथम संस्करण १९५२।

रश्मिरथी —रामधारीसिंह 'दिनकर'। अजन्ता प्रेस लिमिटेड पटना ४। तृतीय संस्करण १९५५।

चरित्र परखने की कला —फ्रैडरिक मेयर अनुवाद उमापतिराय चान्देयल। मुंशी गुलाबसिंह एण्ड सन्स लि० नई दिल्ली।

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य —डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५८।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास —बलभद्र तिवारी एम० ए०। रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स दिल्ली। प्रथम संस्करण १९५८।

साहित्य के स्वर —उदयशंकर भट्ट। आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली-६। १९६१।

आलोचना के मान —शिवदानसिंह चौहान। रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स चाँदनी चौक दिल्ली ६।

प्रेमचन्द एक अध्ययन —डा० राजेश्वर गुरु। मध्य प्रदेशीय प्रकाशक समिति जुमेराती गेट भोपाल। १९५८।

प्रेमचंद —डा० रामविलास शर्मा। सरस्वती प्रेस, बनारस। अप्रैल १९४१।

प्रेमचंद और उनका युग —डा० रामविलास शर्मा। मुंशीराम मनोहर लाल, दिल्ली। द्वितीय संस्करण १९५५।

हीनभाव —डब्ल्यू० जे० फैकबाईड। राजकमल प्रकाशन बम्बई। तृतीय आवृत्ति १९५६।

नवरस —गुलाबराय। नागरी प्रचारिणी सभा आगरा। द्वितीय संस्करण १९३४।

ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद —प्रभुदयाल मीतल। अग्रवाल प्रेस मथुरा। द्वितीय संस्करण श्रावण सं० २००५ वि०।

रीतिकालीन कविता और शृंगार रस का विवेचन —राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी। सरस्वती पुस्तक सदन मोतीकटरा आगरा। प्रथमावृत्ति दिसम्बर १९५३।

उर्वशी —रामधारीसिंह दिनकर। उदयाचल प्रकाशन पटना। १९६१।

महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग —डा० उदयभानुसिंह। हिन्दी-साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ।

अपनी खबर —पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'। राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली। प्रथम संस्करण १९६०।

साहित्य का उद्देश्य —प्रेमचंद। सरस्वती प्रेस बनारस।

कथाकार प्रेमचंद —मन्मथनाथ गुप्त। सरस्वती प्रेस बनारस।

प्रेमचंद उपन्यास और शिल्प —हरस्वरूप माथुर। ग्रंथ कुटीर पी० रोड कानपुर। दिसम्बर १९५७।

छायावाद —डा० नामवरसिंह। सरस्वती प्रेस बनारस। प्रथम संस्करण सितम्बर १९५५।

विचार-प्रवाह —डा० देवराज। ग्रंथमाला-कार्यालय, पटना-४।

विचार और विश्लेषण —डा० नगेन्द्र। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १३ दरियागंज दिल्ली।

साहित्यानुशीलन —शिवदानसिंह चौहान। आत्माराम एंड संस दिल्ली ६।

प्रेमचंद उनकी कृतियाँ और कला —प्रेमनारायण टंडन। विद्या मंदिर, रानीकटरा लखनऊ। द्वितीय संस्करण १९४६।

प्रेमचंद —डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित एम० ए० पी-एच० डी०। साहित्य निकेतन कानपुर। प्रथम संस्करण १९५२।

साहित्य का इतिहास दर्शन —नलिनविलोचन शर्मा। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना। प्रथम संस्करण १९६०

(ख) अंग्रेजी-ग्रन्थों की सूची

लिटरेचर एंड आर्ट —कार्ल मार्क्स एंड फ्रडरिक एंगल्स। करेंट बुक हाउस बम्बई। १९५६।

आर्ट एंड सेक्स —एम० जे० निकोलसन। मित्रा प्रेस, लंदन।

साइकोलाजी : दी स्टडी आफ बिहेवियर—विलियम मैकडोगल। विलियम एंड नरगेट लन्दन। १९१२।

ए हिस्ट्री आफ इंगलिश लिटरेचर —बी० आइफर इवान्स। पैनगुइन बुक्स लिमिटेड इंगलैंड। प्रथम संस्करण १९४०।

स्टडीज इन ए डाइंग कल्चर —काडवेल। जानलेन दी बोडलेहेड लंदन।

कल्चर इन ए चेंजिंग वर्ल्ड —वी० जे० जेरोम। न्यू सेनचुरी पब्लिशर्स, न्यूयार्क।

सिक्स ए० एम० एंड अदर स्टोरीज —ली पाई यु०। फोरेन लैंग्वेज प्रेस, पेकिंग। १९५१। प्रथम संस्करण, अंग्रेजी, १९२१।

आइलैंड्स न्यू लिटरेचर एंड आर्ट —चाउ यांग। उपर्युक्त। प्रथम संस्करण १९५४।

लिटरेचर एंड रीयेलिटी —हावर्ड फास्ट। पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस लि० बम्बई। प्रथम संस्करण मार्च १९५२।

दी मोमेन्ट एंड अदर एसेज —वर्जीनिया वुल्फ। दी हागर्थ प्रेस लंदन। १९५२।

दी आसपेक्ट्स आफ दी नाविल —ई० एम० फोरस्टर। एडवर्ड आर्नल्ड एंड कम्पनी लंदन। प्रथम प्रकाशित १९२७। पॉकेट एडिशन १९४९।

दी स्ट्रक्चर आफ दी नावेल —एडविन मूर। दी हागर्थ प्रेस, ४०-४२, विलियम ४ स्ट्रीट लंदन—डब्ल्यू सी २। पाँचवाँ संस्करण, १९४६।

ग्रुप साइकोलाजी एंड दी एनैलाइसिस आफ इगो—सिगमंड फ्रायड। दी हागर्थ प्रेस एंड दी इन्स्टीट्यूट ऑफ साइकोएनेलाइसिस। पाँचवाँ संस्करण १९४९।

दी इंगलिश नावेल —वाल्टर एलन। फोनिक्स हाउस लिमिटेड लंदन। पुनर्मुद्रित, १९५७।

एन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ लिटरेचर —डब्ल्यू एच० हडसन। जार्ज जी० हैरप एंड कम्पनी लिमिटेड लंदन टोरेन्टो वेलिंग्टन सिडनी। जून १९५८।

दी क्राफ्ट आफ फिक्शन —पर्सी लबक। जनाथन केप ३० बेडफोर्ड स्क्वायर, लंदन।

वी राइडर एंड दि काफ्ट —इलिया एहरेनबुर्ग। पिपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

(ग) मौलिक कथा कृतियों की सूची

अनु० ज्ञानप्रकाश जैन —सागर और मनुष्य। अर्नेस्ट हेमिंग्वे। हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।

यशपाल —यशपाल की श्रेष्ठ कहानियाँ। राजकमल प्रकाशन। १९६०।

अनु० सं० बालकृष्ण —संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ। हिन्द पाकेट बुक्स दिल्ली।

सं० मोहन राकेश —पाँच लम्बी कहानियाँ। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६०।

—हिन्दी कहानी संग्रह। बिहार विश्वविद्यालय पटना। द्वितीय संस्करण ११ अगस्त १९५४।

मोहनसिंह सेंगर —नया स्वर। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस। अगस्त १९६०।

मन्नू भंडारी —तीन निगाहों की एक तस्वीर। अमजीवी प्रकाशन इलाहाबाद।

सं० विनोदशंकर व्यास —मधुकरी (१ से ४ भाग)। पुस्तक मंदिर, काशी। (१९११ ई० से १९३२ ई० तक की प्रमुख कहानियों का संकलन)।

सं० डा० नर्मदेश्वरप्रसाद आदि —अपरम्परा (संकलन) खंड १ २। ज्ञानपीठ पटना ४। १९५८।

सोमदेव भट्ट अनु० स्व० केदारनाथ शर्मा सारस्वत —कथा सरित्सागर। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना ३। १९६०।

मार्कण्डेय —पान फूल। नर्मदा पब्लिकेशन्स हैदराबाद। १९५४।

मार्कण्डेय —भूदान। नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद।

—सेमल के फूल। नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद।

ख्वाजा अहमद अब्बास —मेरा बेटा मेरा दुश्मन। नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग १। १९५३।

—चिराग तले। नीलाभ प्रकाशन गृह प्रयाग १। १९५३।

—प्रणय की शाम। नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग १। १९५२।

वात्स्यायन और अन्य —हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ। प्रगति प्रकाशन नई दिल्ली। १९५२।

सं० धर्मवीर भारती एवं लक्ष्मीकांत वर्मा —निकष १, २। साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।

अनु० मन्मथ पूरनजी —मण्टो की कहानियाँ। साहित्य प्रकाशन, दिल्ली। १९५५।

रामकुमार —हुस्ना बीबी और अन्य कहानियाँ। सरस्वती प्रेस बनारस। १९५६।

रामचन्द्र तिवारी —सागर, सरिता और अकाल। सरस्वती प्रेस बनारस।

नागार्जुन —रतिनाथ की चाची। किताब महल प्रयाग। प्रथम १९५०।

नागार्जुन —नई पौध। किताब महल प्रयाग।

—बाबा बटेसरनाथ। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। १९५४।

—बलचनमा। राजकमल प्रकाशन। १९५२।

—दुखमोचन। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। १९५७।

कृष्णा सोबती —डार से बिछुड़ी। राजकमल प्रकाशन। दिल्ली।

लक्ष्मीचन्द्र जैन —टाम काका की कुटिया। भारती ग्रंथागार, बनारस। १९४६।

लक्ष्मीनारायण लाल —धरती की आँखें। सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद। प्रथम १९५१।

—बया का घोंसला और साँप। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद। १९५३।

—काले फूल का पौधा। भारती भंडार, इलाहाबाद। सं० २०१२ वि०।

—रूपाजीवा। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। प्रथम १९५९।

भैरवप्रसाद गुप्त —गंगा मैया। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ६। १९५२।

—मशाल। नीलाभ प्रकाशन, प्रयाग १९५१।

—अंधेरे और नया आदमी। हंस प्रकाशन इलाहाबाद। १९५६।
—सती मैया का चौरा। नीलाभ प्रकाशन प्रयाग। १९५९।

प्रभाकर माचवे
—परंतु। प्रगति प्रकाशन नई दिल्ली। १९५१।

राजा राधिकारमण सिंह
—राम रहीम। अशोक प्रेस पटना ६। १९३६।
—सूरदास। अशोक प्रेस पटना ६। १९ ६।
—संस्कार। राजेश्वरी साहित्य मंदिर, सूर्यपुरा। १९४६।
—नारी एक पहेली। राजेश्वरी साहित्य मंदिर सूर्यपुरा १९४६।
—पूरब और पश्चिम। राजेश्वरी साहित्य मंदिर सूर्यपुरा। १९४९।
—चाचनी शर्मा। राजेश्वरी साहित्य मंदिर सूर्यपुरा। १९५१।
—गांधी टोपी। राजेश्वरी साहित्य मंदिर सूर्यपुरा। द्वितीय सं० १९५१।

सच्चिदानन्द, हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'
—शेखर एक जीवनी। सरस्वती प्रेस बनारस।
—नदी के द्वीप। सरस्वती प्रेस, बनारस।
—अमर वल्लरी और अन्य कहानियाँ। सरस्वती प्रेस इलाहाबाद। १९५४।
—कहानियाँ। सरस्वती प्रेस इलाहाबाद। १९५४।
—विपथगा। सरस्वती प्रेस इलाहाबाद। १९५४।
—परम्परा। सरस्वती प्रेस इलाहाबाद। १९५४।
—कोठरी की बात। सरस्वती प्रेस इलाहाबाद। १९५४।
—जयदोल। प्रगति प्रकाशन दिल्ली। १९५१।
—शरणार्थी। प्रगति प्रकाशन दिल्ली। १९५१।
—नदी के द्वीप। सरस्वती प्रेस बनारस।

वृन्दावनलाल वर्मा
—मुसाहिब जू। मयूर प्रकाशन, झाँसी। प्रथम १९४६।

—अचल मेरा कोई। मयूर प्रकाशन झाँसी। तृतीय १९५४।
—कभी न कभी। सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर।
—झाँसी की रानी। मयूर प्रकाशन, झाँसी। तृतीय १९४९।
मृगनयनी। मयूर प्रकाशन। सप्तम, १९५५।
—गढ़ कुंडार। गंगा पुस्तक माला, लखनऊ। सप्तमावृत्ति सं० २०१०।
—कुंडली चक्र। गंगा पुस्तक माला लखनऊ। षष्ठ सं० २०११।
—विराटा की पद्मिनी। गंगा पुस्तकमाला लखनऊ। पंचम, २००८।
—प्रत्यागत। मयूर प्रकाशन। प्रथम १९५१।
—लगन। मयूर प्रकाशन। द्वितीय १९५१।
—कचनार। मयूर प्रकाशन। तृतीय १९५४।
—प्रेम की भेंट। मयूर प्रकाशन झाँसी। द्वितीय १९५१।
—अहिल्याबाई। मयूर प्रकाशन झाँसी। १९५५।
—अमरबेल। मयूर प्रकाशन झाँसी। प्रथम १९५३।
—टूटे काँटे। मयूर प्रकाशन झाँसी। प्रथम १९५४।
—सोना। मयूर प्रकाशन झाँसी। प्रथम १९५२।
—संगम। गंगा पुस्तक माला लखनऊ। द्वितीय सं० १९९६।

बलभद्र ठाकुर
—राधा और राधन। ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया। १९५३।

देवेन्द्र सत्यार्थी
—रथ के पहिये। एशिया प्रकाशन, बेयर्ड रोड, नई दिल्ली। १९५३।
—कठपुतली। एशिया प्रकाशन, बेयर्ड रोड नई दिल्ली। १९५४।
—ब्रह्मपुत्र। एशिया प्रकाशन, दिल्ली। १९५६।

—पाप का रंग। प्रगति प्रकाशन, दिल्ली। १९४१।
—धूपछाँह। एशिया प्रकाशन, दिल्ली। १९६०।

डा॰ देवराज
—पथ की खोज। प्रगति प्रकाशन दिल्ली।
—बाहर भीतर। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
—रोड़े और पत्थर। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
—अजय की डायरी। राजपाल एण्ड संस दिल्ली।

शान्तिप्रिय द्विवेदी
—दिगम्बर। हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी।

प्रबोधचन्द्र गुप्त
—विपाक। राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

वीरेन्द्र नारायण
—अमराई की छांह में। कुसुम प्रकाशन, पटना-१।

फणीश्वरनाथ 'रेणु'
—मैला आँचल। समता प्रकाशन पटना ४।
—परती परिकथा। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। १९५७।
—ठुमरी। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। १९६०।

इलाचन्द्र जोशी
—संन्यासी। भारती भंडार, इलाहाबाद। चतुर्थ सं॰ २००६।
—पर्दे की रानी। भारती भंडार, इलाहाबाद। सं॰ २००६।
—निर्वासित। चान्द कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद। प्रथम सं॰ १९२९।
—प्रेत और छाया। चान्द कार्यालय चन्द्रलोक, इलाहाबाद। प्रथम १९२९।
—घृणामयी। चान्द कार्यालय चन्द्रलोक इलाहाबाद। प्रथम १९२९।
—खंडहर की आत्माएँ। चान्द कार्यालय चन्द्रलोक इलाहाबाद। सं॰ १९२९।
—मुक्ति पथ। हिंदी भवन इलाहाबाद। प्रथम १९५०।
—सुबह के भूले। हिंदी भवन इलाहाबाद। द्वितीय सं॰ १९५१।

—जहाज का पंछी। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। १९५५।
—डायरी के नीरस पृष्ठ। सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद।
—जिप्सी। सेन्ट्रल बुक डिपो इलाहाबाद।
—होली निर्वासित। सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद।
—भारती भंडार इलाहाबाद।

रामानंद सागर —और इंसान मर गया। मोडेलिंग पब्लिशर्स, १४ ई० फीरोजशाह रोड दिल्ली। १९५१।

प्रेमचंद —रंगभूमि। गंगा पुस्तकमाला लखनऊ।
—गोदान। हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग प्रयाग। सरस्वती प्रेस, बनारस। १०वाँ सं० १९४८ ११वाँ १९५०।
—निर्मला। सरस्वती प्रेस। बनारस, ८वाँ सं० १९५०।
—प्रतिज्ञा। सरस्वती प्रेस, बनारस। ७वाँ १९४९ ८वाँ १९५०।
—कर्मभूमि। हिन्दुस्तानी प० प्रयाग। ६वाँ सं० १९५२।
—कायाकल्प। सरस्वती प्रेस, बनारस। १०वाँ सं० १९५६।
—वरदान। सरस्वती प्रेस, बनारस। १०वाँ सं० १९५६।
—गबन। सरस्वती प्रेस बनारस १०वाँ सं० १९५६।
—सेवा सदन। सरस्वती प्रेस बनारस।
—मंगलसूत्र। सरस्वती प्रेस, बनारस।
—प्रेमाश्रम। हिन्दी पुस्तक एजेंसी बनारस।
—मानसरोवर। सरस्वती प्रेस बनारस।
—सप्तसरोज। सरस्वती प्रेस बनारस।
—प्रेम पचीसी। सरस्वती प्रेस बनारस।

लाला श्रीनिवास दास —परीक्षा गुरु। ज्ञान प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली। नवीन संस्करण १९५८।

इंशाअल्ला खाँ —सं० श्यामसुंदरदास। रानी केतकी की

कहानी । काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

किशोरीलाल गोस्वामी
—त्रिवेणी । प्रकाशक लेखक ही बनारस ।
—तारा । प्रकाशक लेखक ही बनारस । दूसरी बार, १९१० ।
—पन्नाबाई । प्रकाशक लेखक ही । दूसरी बार, १९११ ।
—चपला । छबीले गोस्वामी । द्वितीय १९२९ ।
—लवंगलता । छबीले गोस्वामी । द्वितीय १९१५ ।
—तरुण तपस्विनी । छबीले गोस्वामी । द्वितीय १९१५ ।
—हृदयहारिणी । छबीले गोस्वामी । द्वितीय १९१५ ।

देवकीनन्दन खत्री
—चन्द्रकान्ता संतति । लहरी बुक डिपो । (१ से २४ भाग) पाँचवीं बार, १९२४ ।
—कुसुमकुमारी । चन्द्रकान्ता संतति । लहरी बुक डिपो । पाँचवीं बार, १९१४ ।
—चन्द्रकान्ता । जगन्नाथ प्रसाद शर्मा । पहली बार, सं० १९४८ ।

रांगेय राघव
—विषाद मठ । सरस्वती प्रेस बनारस ।
—घरौंदे । सरस्वती प्रेस, बनारस ।
—तूफानों के बीच । किताब महल इलाहाबाद ।
—सीधा सादा रास्ता । किताब महल इलाहाबाद ।
—हुजूर । आलोक प्रकाशन बीकानेर । सं० १९५२ ।
—साम्राज्य का वैभव । सरस्वती प्रेस बनारस । सं० १८४० ।
—कब तक पुकारूँ । राजपाल एंड सन्स दिल्ली ।
—राई और पर्वत । राजपाल एंड सन्स दिल्ली । प्रथम संस्करण १९५८ ।

भगवतीचरण वर्मा
—चित्रलेखा । भारती भंडार, इलाहाबाद ।
—तीन वर्ष । भारती भंडार इलाहाबाद ।
—टेढ़े-मेढ़े रास्ते । भारती भंडार

	—आखिरी दाँव । भारती भंडार, इलाहाबाद ।
	—पतन । भारती भंडार, इलाहाबाद ।
	—भूले बिसरे चित्र । राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९५९ ।
	—दो बाँके । भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग । सं० २००१ ।
	—इन्सटालमेंट । भारती भंडार, लीडर प्रेस प्रयाग । सं० २००१ ।
	—सीमा और सामर्थ्य । राजकमल प्रकाशन दिल्ली । प्रथम संस्करण, १९४६ ।
चन्द्रधर शर्मा गुलेरी	—गुलेरीजी की अमर कहानियाँ । सरस्वती प्रेस बनारस । पु० सं० १९४२ ।
रायकृष्ण दास	—अनाख्या । भारती भंडार प्रयाग । द्वितीय सं० २००९ ।
उदयशंकर भट्ट	—नये मोड़ । मसिजीवी प्रकाशन, नई दिल्ली । १९५९ ।
	—सागर, लहरें और मनुष्य । राजकमल प्रकाशन दिल्ली ६ ।
शिवप्रसाद मिश्र रुद्र	—बहती गंगा । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६ । १९५२ ।
सुदर्शन	—सुदर्शन सुमन । राजपाल एंड संज, दिल्ली ।
	—सुदर्शनसुधा । हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई-४ ।
जयशंकर प्रसाद	—तितली । भारती भंडार, इलाहाबाद ।
	—कंकाल । भारती भंडार, इलाहाबाद ।
	—इरावती । भारती भंडार, इलाहाबाद ।
	—आँधी । भारती भंडार, इलाहाबाद । द्वितीय सं० १९८७ ।
	—आकाशदीप । भारती भंडार, इलाहाबाद । १९९६ ।
	—प्रतिध्वनि । भारती भंडार, इलाहाबाद । सं० २०११ ।
	—इन्द्रजाल । भारती भंडार, इलाहाबाद । तृतीय सं० २००७ ।
उपेन्द्रनाथ अश्क	—गिरती दीवारें । नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद । द्वितीय सं० १९५३ ।

—गर्म राख। नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, १९५२।
—सितारों के खेल। नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।
—पत्थर अल पत्थर। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद। १९५९।
—बड़ी बड़ी आँखें। नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।
—कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद। १९५९।
—जुदाई की शाम का गीत। नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।
—काले साहब। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद।
—पिंजरा। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद।
—दो धारा। नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद। प्रथम सं० १९४९।
—बैंगन का पौधा, नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद १९४६।

कमलेश्वर —राजा निरबंसिया। राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद।

मोहन राकेश —जानवर और जानवर। राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद। प्रथम सं० १९५८।
—अँधेरे बन्द कमरे। राजकमल प्रकाशन इलाहाबाद। १९६१।
—एक और जिन्दगी। राजपाल एंड संस दिल्ली ६। प्रथम सं० १९६२।

श्यामल किशोरिया —इंसान की जिन्दगी। भारती प्रकाशन भागलपुर। १९५८।

टालस्टाय —टालस्टाय की कहानियाँ। हिन्दी पुस्तक एजेंसी पटना।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' —किसलय। पुस्तक भंडार पटना ४।

वाचस्पति पाठक, —द्वादशी। भारती भंडार, प्रयाग।
—इक्कीस कहानियाँ। भारती भंडार प्रयाग।
—प्रदीप। भारती भंडार प्रयाग। चतुर्थ सं० सम्वत २००८।

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'
—कच्चा धागा। विद्या भास्कर बुक डिपो, बनारस।

पदमराजसिंह
—भूदानी सोनिया। अशोक प्रेस, पटना।

बलवन्तसिंह
—काले कोस। सरस्वती प्रेस, बनारस। १९५७।
—रात, चोर और चाँद। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

शिवपूजन सहाय
—देहाती दुनिया। ग्रंथमाला कार्यालय पटना-४।

अमृतलाल नागर
—महाकाल। भारती भंडार, इलाहाबाद। प्रथम १९४७।
—पाँचवाँ दस्ता। शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद। प्रथम १९५७।
—बूँद और समुद्र। किताब महल इलाहाबाद। १९५६।
—सुहाग के नूपुर। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। प्रथम सं० १९६०।
—ये कोठेवालियाँ। राजकमल प्रकाशन दिल्ली। १९६१।

रामेश्वर शुक्ल अंचल
—उल्का। न्यू लिटरेचर कं० इलाहाबाद। प्रथम १९५०।
—नई इमारत। हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, शाहगंज, इलाहाबाद।
—चढ़ती धूप। हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स शाहगंज इलाहाबाद।
—मरु प्रदीप। साहित्य भवन लि० इलाहाबाद। प्रथम १९५१।

धर्मवीर भारती
—गुनाहों का देवता। साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद। प्रथम १९४९।
—सूरज का सातवाँ घोड़ा। साहित्य भवन लि० इलाहाबाद।
—आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ। साहित्य भवन लि०। प्रथम २००३।
—चाँद और टूटे हुए लोग। किताब महल, इलाहाबाद। प्रथम १९५५।

मद्युम्न बलरामपुरी
—मालिक। पुस्तक भंडार पटना ४।

अमृतराय —बीज। हंस प्रकाशन इलाहाबाद। प्रथम सं० १९५३।

—नागफनी के देश में। हंस प्रकाशन, इलाहाबाद। प्र० सं० १९५५।

—तिरंगे कफन। हिन्दोस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस, १९४८।

—जीवन के पहलू। हिन्दोस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस।

—रक्त आलोक। हिन्दोस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस।

—इतिहास। हिन्दोस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस।

—लाल धरती। हिन्दोस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस।

सेठ गोविन्ददास —इन्दुमती। नेशनल इन्फारमेशन एण्ड पब्लिकेशन्स लि०, बम्बई। प्रथम संस्करण १९५०।

केसरी कुमार —प्रतिनिधि कहानियाँ। मोतीलाल बनारसी दास, पटना। १९५३।

पहाड़ी —निर्देशक। प्रकाशनगृह, नया कटरा, इलाहाबाद।

—सराय। प्रकाशन गृह, नया कटरा, इलाहाबाद।

—सड़क पर। प्रकाशन गृह नया कटरा, इलाहाबाद।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी —पतिता की साधना। छात्र हितकारी पुस्तकमाला, इलाहाबाद।

—पिपासा। छात्र हितकारी पुस्तकमाला, इलाहाबाद।

—प्रेमपथ। छात्र हितकारी पुस्तकमाला इलाहाबाद।

—निमंत्रण। छात्र हितकारी पुस्तकमाला इलाहाबाद।

—उनसे न कहना। राजपाल एंड सन्स दिल्ली, १९५६।

जैनेन्द्रकुमार —परख । हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ४।
—त्यागपत्र । हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ४।
—सुनीता । हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ४। प्रथम सं० १९३५।
—कल्याणी । हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ४।
—सुखदा । पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली। १९५२।
—विवर्त । पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली। १९५९।
—व्यतीत । पूर्वोदय प्रकाशन दरियागंज दिल्ली। १९५३।
—जयवर्द्धन । पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली। १९५६।
—जैनेन्द्र की कहानियाँ । पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली। (१ से ७ भाग)।
भाग १, १९५८ द्वितीय सं०।
भाग ५, १९५२ प्रथम सं०।
भाग ६, १९५३ प्रथम सं०।
भाग ७ १९५४ प्रथम सं०।

कमल जोशी —फूलों की माला । नवयुग प्रकाशन, दिल्ली। १९५५।
—पत्थर की आँख । रहीम ११८ बी०, चित्त रंजन एवन्यू कलकत्ता ७।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' —निरुपमा । भारती भंडार, इलाहाबाद। २१ १ १९६।
—अलका । गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ। सं १९९३।
—अप्सरा । गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ। प्र० सं० १९९६।
—प्रभावती । किताब महल प्रयाग। द्वि० १९४२ तृ० १९४८।
—चतुरी चमार । गंगा पुस्तकमाला लखनऊ। १९४७।

—सिली। गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ।
—सुकुल की बीवी। भारती भंडार, प्रयाग।

सियारामशरण गुप्त
—गोद। साहित्य सदन चिरगांव, झांसी। सं० २००७ प्र० सं०।
—नारी। साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी। सं० १९८४ प्र० सं०।
—अंतिम आकांक्षा। साहित्य सदन, चिरगांव झांसी।

महादेवी वर्मा
—अतीत के चल चित्र। भारती भंडार, प्रयाग।
—स्मृति की रेखाएँ। भारती भंडार, प्रयाग।

जी० पी० श्रीवास्तव
—भैया अकिल बहादुर। भारतीय प्रकाशन मन्दिर, बनारस। १९५२।
—लतखोरीलाल। भारतीय प्रकाशन मन्दिर, बनारस।

बेचन शर्मा 'उग्र'
—सरकार तुम्हारी आँखों में। गंगा पुस्तकमाला लखनऊ। १९५२।
—शराबी। आत्माराम एण्ड संस दिल्ली।
—चाकलेट। गंगा पुस्तकमाला लखनऊ।
—जब सारा आलम सोता है। विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा। १९५१।

कृश्नचन्दर
—भूमिदान। नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली। १९५५।
—सीमा। राजपाल एण्ड संज दिल्ली। १९५४।
—अन्नदाता। राजपाल एण्ड संज, दिल्ली। १९५४।
—हम वहशी हैं। हंस प्रकाशन इलाहाबाद।

शैलेश मटियानी
—बोरीबली [redacted] बोरीबन्दर तक। आत्माराम एण्ड संस दिल्ली। प्रथम १९६०।
—कबूतरखाना। आत्माराम एण्ड संस दिल्ली।

विष्णु प्रभाकर
—निशिकान्त। आत्माराम एण्ड संस दिल्ली। १९६१।
—तट के बंधन। सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली। १९५५।

राधाकृष्ण —बोगस । किताब घर पटना । १९५३ ।
—फुटपाथ । एम० एल० बर्मन०, पटना । १९५१ ।
—गल्पिका । हंस प्रकाशन, इलाहाबाद । १९५६ ।
—रामलीला । युगान्त प्रकाशन समिति, पटना-३ । १९५७ ।

गिरधरगोपाल —चांदनी के खंडहर । साहित्य भवन लि० इलाहाबाद ।

विश्वम्भरनाथ 'कौशिक' —कल्लोल । विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा । भा० १ सं० १९८६ ।
—माँ । विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
—भिखारिणी " "

नरेश मेहता —डूबते मस्तूल । आत्माराम एण्ड संस दिल्ली ।

राजेन्द्र यादव —उखड़े हुए लोग । राजकमल प्रकाशन दिल्ली, । १९५६ ।
—कुलटा । हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली । १९६० ।
—सारा आकाश । राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
—प्रेत बोलते हैं । प्रगति प्रकाशन दिल्ली ।
—खेल खिलौने । भारतीय ज्ञान पीठ, काशी ।

हिमांशु श्रीवास्तव —लोहे के पंख । ज्ञान पीठ लि० पटना । १९५७ ।

चतुरसेन शास्त्री —हृदय की परख । गंगा पुस्तक माला लखनऊ ।
—हृदय की प्यास । " सं० १९८४ ।

सं० नलिनविलोचन शर्मा —हिन्दी के प्रतिनिधि कथाकार । अखिल भारतीय शोध मण्डल आर० के० भट्टाचार्य रोड पटना १ ।

यशपाल —दादा कामरेड । विप्लव कार्यालय, लखनऊ ।
—दिव्या । "
—देशद्रोही । "
—पार्टी कामरेड । "
—मनुष्य के रूप । "
—झूठा सच (१ २ खंड) । "
—अमिता । "

—उत्तराधिकारी। , १९५१।
—चक्कर क्लब। "
—पिंजड़े की उड़ान। "
—भस्मावृत्त चिनगारी। १९४६
—फूलों का कुर्ता। " १९४९
—न्याय का संघर्ष।
—ज्ञान दान। " १९४४
—तर्क का तूफान। " १९५०
—दो दुनिया। " १९४२
—धर्म युद्ध। "

(य) हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की सूची

साहित्य —(त्रैमासिक पत्र), सं० शिवपूजन सहाय नलिनविलोचन शर्मा। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।
जुलाई, ५६, अक्टूबर ५६, जनवरी ५७, अप्रैल १९५०।

दृष्टिकोण —सं० शिवचन्द्र शर्मा। अखिल भारतीय हिन्दी कोष मण्डल पटना।
सितम्बर ५१ मई १९५२, जून जुलाई, अगस्त सितम्बर ५१, जनवरी १९४९।

नया पथ —(मासिक पत्र) सं० यशपाल, राजीव सक्सेना शिववर्मा। केसरबाग, लखनऊ, बम्बई।
जनवरी १९५८, जनवरी, १९५४ मई, ५५, फरवरी १९५६ मार्च, ५६, सितम्बर ५७, अप्रैल ५८।

नवनीत —सं० सत्यकाम विद्यालंकार। नवनीत प्रकाशन लि० १४१ तारदेव बम्बई १४। मई १९६२।

नवराष्ट्र (दैनिक) —प्र० सं० देवव्रत शास्त्री सं० रामवचन पांडेय। कदमकुआँ पटना २२ मई १९६०।

नवभारत टाइम्स (दैनिक) —दिल्ली १० नवम्बर १९५८।

प्रतीक —(द्वैमासिक संकलन) सं० सियाराम शरण गुप्त नगेन्द्र श्रीपतराय सं० ही० वात्स्यायन। अंक ६, खंड २, नवम्बर, ५७।

समालोचक —सं० डा० रामविलास शर्मा। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। अप्रैल, १९५९, अगस्त १९५९, सितम्बर १९५९।

अजन्ता —सं० वंशीधर विद्यालंकार। हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद (दक्षिण)। जनवरी ५८, फरवरी ५८। अक्टूबर-नवम्बर १९५७।

प्रसारिका —पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत सरकार, दिल्ली ८, जुलाई, सितम्बर ५७।

सारिका —सं० कार्यकारी सम्पादक आनन्दप्रकाश जैन। बनेट कोल मैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, बम्बई। फरवरी '६२।

अवन्तिका —सं० लक्ष्मीनारायण सुधांशु। अजन्ता प्रेस, पटना। मार्च ५५, जुलाई ५३, अगस्त ५६, जनवरी ५४।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका —संपादक मण्डल डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, करुणापति त्रिपाठी डा० बच्चनसिंह (संयोजक)। काशी नागरी प्रचारिणी सभा। वर्ष ६३ संवत् २०१५, अंक २।

ज्योत्स्ना —सं० शिवेन्द्रनारायण। ज्योत्स्ना कार्यालय, पटना-१। मार्च ६१।

नई धारा —सं० रामवृक्ष बेनीपुरी। अशोक प्रेस पटना ६।

प्रेरणा —सं० कमल कोठारी। सोजती गेट, जोधपुर। १९५४।

सरिता —सं० विश्वनाथ। कनाट सर्कस, नई दिल्ली। जनवरी १९५८।

ज्ञानोदय —सं० जगदीश सं० शरद देवड़ा। ११, क्लाइव रो कलकत्ता १। फरवरी ५८, जनवरी ६१, अक्टूबर ५८ मार्च ६२।

वसुधा —सं० रामेश्वर गुरु हरिशंकर परसाई। जबलपुर, फरवरी १९५८।

युग चेतना —डा० देवराज लखनऊ। अप्रैल ५५।

सुप्रभात —सं० पृथ्वीनाथ शास्त्री। कलकत्ता-७ जनवरी-फरवरी ५५।

सरस्वती —महावीरप्रसाद द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल

	बख्शी देवीदत्त शुक्ल श्रीनारायण चतुर्वेदी। इण्डियन प्रेस प्रयाग।
साहित्य सन्देश	—सं० महेन्द्र। साहित्य रत्न भण्डार, आगरा। जुलाई अगस्त १९५१ (उपन्यास विशेषांक) मार्च ६०, अगस्त १९५४ नवम्बर ५९।
नई कहानियाँ	—सं० भैरवप्रसाद गुप्त। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली मार्च ६२।
कृति	—सं० नरेश मेहता। जनपथ नई दिल्ली मई १९५९।
विनोद	—सं० भोलानाथ मिश्र प्रभु नरेश। विनोद प्रकाशन १२ लोअर चितपुर रोड कलकत्ता १। अगस्त, १९६०।
कल्पना	—सं० आर्येन्द्र शर्मा आदि। बेगम बाजार हैदराबाद (दक्षिण)। जून ५४ फरवरी ५८ जुलाई ६१ अगस्त १९५३ अक्टूबर ५९।
आजकल	—सं० देवेन्द्र सत्यार्थी। पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली-८।
"	—सं० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार। प्रकाशक उपर्युक्त। मार्च ५१ जून १९५१ वार्षिक अंक ४८ अगस्त ५६, नवम्बर ५६ मई ५४, दिसम्बर ५७ मार्च ५८ अगस्त ६१, जून ६१ अक्टूबर ५६, दिसम्बर ५८।
कहानी	—सं० श्रीपतराय भैरवप्रसाद गुप्त। सरस्वती प्रेस इलाहाबाद। जनवरी १९५६ नव वर्षांक ५७ नववर्षांक ५८, जनवरी १९५६, मार्च ६२, जनवरी ६२ अक्टूबर १९६०।
आलोचना	—(त्रैमासिक) सं० शिवदानसिंह चौहान। राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
	—सं० धर्मवीर भारती आदि।
	—सं० नन्ददुलारे वाजपेयी।
	—अंक १ से २५ तक।
साप्ताहिक हिन्दुस्तान	—सं० बांकेबिहारी भटनागर। हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस नई दिल्ली। २१ ११ ६१।
साप्ताहिक धर्मयुग	—सं० सत्यकाम विद्यालंकार।
	—सं० डा० धर्मवीर भा०। गोसमैन

समालोचक —सं० डा० रामविलास शर्मा। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा। अप्रैल १९५९, अगस्त १९५९ सितम्बर १९५९।

अजन्ता —सं० बंसीधर विद्यालंकार। हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद (दक्षिण)। जनवरी ५८, फरवरी ५८। अक्टूबर-नवम्बर १९५७।

प्रसारिका —पब्लिकेशन डिवीजन भारत सरकार, दिल्ली-८ जुलाई, सितम्बर ५७।

सारिका —सं० कार्यकारी सम्पादक आनन्दप्रकाश जैन। बैनेट कोल मैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, बम्बई। फरवरी '६२।

अवन्तिका —सं० लक्ष्मीनारायण सुधांशु। अजन्ता प्रेस, पटना। मार्च ५५, जुलाई ५३, अगस्त ५६, जनवरी ५४।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका —संपादक मण्डल डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, करुणापति त्रिपाठी, डा० बच्चनसिंह (संयोजक)। काशी नागरी प्रचारिणी सभा। वर्ष ६३ संवत् २०१५, अंक २।

ज्योत्स्ना —सं० शिवेन्द्रनारायण। ज्योत्स्ना कार्यालय, पटना ३। मार्च ६१।

नई धारा —सं० रामवृक्ष बेनीपुरी। अशोक प्रेस पटना ६।

प्रेरणा —सं० कमल कोठारी। सोजती गेट जोधपुर। १९५४।

सरिता —सं० विश्वनाथ। कनाट सर्कस, नई दिल्ली। जनवरी १९५८।

ज्ञानोदय —सं० लक्ष्मीचन्द्र जैन सं० शरद देवड़ा। ९ अलीपुर रोड कलकत्ता-१। फरवरी ५७, जनवरी ६१ अक्टूबर ५८ मार्च, ६२।

वसुधा —सं० रामेश्वर गुरु हरिशंकर परसाई। जबलपुर, फरवरी १९५८।

युग चेतना —डा० देवराज लखनऊ। अप्रैल ५८।

सुप्रभात —सं० पृथ्वीनाथ शास्त्री। कलकत्ता-७ जनवरी-फरवरी ५८।

सरस्वती —महावीरप्रसाद द्विवेदी, पदुमलाल पुन्नालाल

बख्शी देवीदत्त शुक्ल श्रीनारायण चतुर्वेदी। इण्डियन प्रेस प्रयाग।

साहित्य सन्देश —सं० महेन्द्र। साहित्य रत्न भंडार, आगरा। जुलाई, अगस्त १९५५ (उपन्यास विशेषांक) मार्च ५०, अगस्त १९४४ नवम्बर ४१।

नई कहानियाँ —सं० भैरवप्रसाद गुप्त। राजकमल प्रकाशन दिल्ली मार्च ६२।

कृति —सं० नरेश मेहता। जनपथ नई दिल्ली मई १९५९।

विनोद —सं० भोलानाथ मिश्र मधु नरेश। विनोद प्रकाशन १२, लोअर चितपुर रोड कलकत्ता १। अगस्त, १९६०।

कल्पना —सं० आर्येन्द्र शर्मा आदि। बेगम बाजार हैदराबाद (दक्षिण)। जून ५४ फरवरी ५८ जुलाई ६१ अगस्त १९५१ अक्टूबर ५६।

आजकल —सं० देवेन्द्र सत्यार्थी। पब्लिकेशन्स डिवीजन दिल्ली-८।

" —सं० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार। प्रकाशक उपर्युक्त। मार्च ५१ जून १९५१ वार्षिक अंक ४८ अप्रैल ५६, नवम्बर ५६ मई ५४ दिसम्बर ५७ मार्च ५८ अगस्त ६१ जून ६१ अक्टूबर ५९, दिसम्बर ५८।

कहानी —सं० श्रीपतराय भैरवप्रसाद गुप्त। सरस्वती प्रेस इलाहाबाद। जनवरी १९५५ नववर्षांक ५७ नववर्षांक ५८, जनवरी १९५६, मार्च ६२, जनवरी ६२ अक्टूबर १९६०।

आलोचना —(त्रैमासिक) सं० शिवदानसिंह चौहान। राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
—सं० धर्मवीर भारती आदि।
—सं० नन्ददुलारे वाजपेयी।
—अंक १ से २१ तक।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान —सं० बाँकेबिहारी भटनागर। हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस नई दिल्ली। २१ ११ ६१।

साप्ताहिक धर्मयुग —सं० सत्यकाम विद्यालंकार।
—सं० डा० धर्मवीर भारती। बैनेट कोलमैन

एण्ड कम्पनी लि०, टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस बम्बई। अगस्त १९५१।

दैनिक 'आज' —(साहित्य विशेषांक)
—ज्ञानमण्डल कबीर चौक वाराणसी १। १२ जनवरी १९५९ ई० ११ फरवरी १९४१ ई० १७ जनवरी १९६० ई०

हिन्दी टाइम्स (साप्ताहिक) —सं० नरोत्तम नागर। २ डी। ३ रोहतक रोड नई दिल्ली—५। १७ मार्च, ६२ २४ मार्च ६२ ११ मार्च ६१ १४ अप्रैल ६२।

अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की सूची

इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया —सम्पादक ए० एस० रामन। बैनेट एण्ड कोलमैन एण्ड कम्पनी, लि०। दी टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस बम्बई। नवम्बर १६, १९५८

दी टाइम्स आफ इण्डिया —सं० एम०जे० मनमोरिया। दी टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बैनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लि० दिल्ली। रविवार, १८ जून १९६१ २५ जून १९६१ १९ फरवरी १९६१

भवन्स जनरल —सं० एस० रामकृष्णन। भारतीय विद्या भवन आर्थर रोड बम्बई-७। फरवरी १९५९

दी स्टेट्समन —६ मार्च, १९५६ ई०

अन्य सामग्रियाँ

—साहित्यकार सम्मेलन इलाहाबाद (१९५७) में पठित निबन्ध एवं परिचर्चा
—आकाशवाणी से प्रसारित वार्ताएँ।